रामायण-महाभारत, मनुस्मृती, भगवद्गीता ब्राह्मणों के संगठित हिंसा के प्रतीक!

☆ लेखक ☆

प्रो. विलास खरात

☆ पुरस्कार ☆

न्या.पी.बी.सावंत

(पूर्व जज, सुप्रीम कोर्ट)

☆ प्रस्तावना ☆

मा.वामन मेश्राम

(राष्ट्रीय अध्यक्ष, बामसेफ)

☆ प्रकाशक☆

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर रिसर्च सेंटर,

नई दिल्ली

रामायण-महाभारत, मनुस्मृति, भगवद्गीता ब्राह्मणों के संगठित हिंसा के प्रतीक!

लेखक : प्रो. विलास खरात

प्रथम आवृत्ती : 6 दिसम्बर, 2020
डॉ.बाबासाहब आंबेडकर
महापरिनिर्वाण दिन

प्रकाशक : डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर रिसर्च सेंटर,
नई दिल्ली
घर नं.11263, जी.एफ. केलाकोठी,
डोरीवालान, गौशाळा रोड, रोहतक रोडजवळ,
करोलबाग, नई दिल्ली-110005

(C) संपूर्ण अधिकार प्रकाशक के अधीन

सहयोग राशि : रूपये 250/-
टाईप सेटिंग : मूलनिवासी पब्लिकेशन ट्रस्ट
मुखपृष्ठ : गौरव कासारे
मुद्रक : छत्रपति प्रिंटर्स
सर्वे नं. 5,4/311, केशव नगर, मुंढवा,
पुणे - 411036. (020-26812932)

महान सम्राट अशोक,
उपगप्त महाथेरो,
महाराजा प्रसेनजीत,
बौद्ध रानी कुमारदेवी गहड़वाल,
राष्ट्रपिता महात्मा फुलेजी,
पेरियार रामासामी नायकर,
पेरियार ललई सिंह यादव ,
राम स्वरुप वर्मा,
आर.एल.चंदापुरी,
जगदेव बाबू कुशवाहा तथा
संत कबीर, संत रैदास,
संत नामदेव, संत तुकाराम और
तमाम बहुजन संतों को
सादर अर्पण.

अनुक्रमणिका

1)	पुरस्कार–जस्टीस पी.बी.सावंत	6-7
2)	प्रस्तावना–वामन मेश्राम	8-12
3)	साकेत का पुरातात्विक साक्ष्य	13-35
4)	नागेश्वरनाथ मंदिर सम्राट अशोक के स्तम्भ को तोड़कर बनाया है।	38-45
5)	बौद्ध रानी कुमार देवी का साकेत के साथ संबंध	46-56
6)	रामायण : दशरथ जातक की चोरी मात्र है!	57-115
7)	मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता मौर्योत्तर कालीन रचना हैं।	116-154
8)	रामायण, महाभारत धार्मिक ग्रंथ नहीं, राजनीतिक ग्रंथ है!	155-183
9)	भारत में बौद्ध धर्म का पतन किसने, क्यों और कैसे किया?	184-213
10)	राम मंदिर के बहाने हिन्दू राष्ट्र के नाम पर छुपा षड्यंत्र!	214-232

****

परिशिष्ट

1)	उत्तर –पश्चिम अवध प्रांत के पुरातात्विक अहवाल–1891	233-235
2)	बौद्ध रानी कुमार देवी का सारनाथ का शिलालेख–स्टेनकोनो	236-246
3)	दशरथ जातक	247-252
4)	महर्षि वाल्मिकी कपुरथला कोर्ट का ऐतिहासिक फैसला–2009	253-259
5)	रामायण में राजनीतिक विचारधार –शेल्डन पोलॉक	260-291
6)	तीर्थयात्रा का स्थल के रुप में अयोध्या का विकास– हॅन्स वेकर	292-333
7)	महाभारत में बुद्ध शब्द का जिक्र–ग्रेग वेली	
8)	बौद्ध धम्म का इस देश में फिर से पुनर्जिवन हो रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है, इस बाबत मुझे तनिक भी संदेह नहीं –डॉ.बाबासाहब आंबेडकर	334-361 362-364

****

पुरस्कार

डॉ.बाबासाहब आंबेडकर ने हिंदू धर्म की गुत्थियाँ (रिडल्स इन हिंदूइजम) में तथा अपने भाषणों, लेखनो में जनता के सामने लाया है। लेकिन हिंदू धर्म यह एक गुत्थी है। यह आज तक अनेक भारतीय, पौर्वात्य और पाश्चात्य देशों के तज्ञों ने सिद्ध करने का प्रयास किया है। सिंधु नदी के इस किनारे के हिन्दू अरब 'स' अक्षर का उच्चारण 'ह' करते हैं। ऐसा कुछ लोगों का कहना है, लेकिन उसमें तथ्य नहीं है। हिंदू शब्द इस देश में सन 8 वीं सताब्दी में अरब के व्यापारियों के कारण प्रचार में आया। हिंदू कोन है? और किसे हिंदू कहा जाता है, हिंदू की उत्पत्ति कैसे हुई? वह कहां से हुई? कुछ लोगों के अनुसार, ब्राह्मण यह आर्टिक्ट प्रदेश के किझगीस्थान के मध्य एशिया से हैं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि वे इसी भूमि से हैं। आर्टिक प्रदेश पहले भारत में था, लेकिन बाद में वह खिसकता गया और दूर चला गया। झूठ को सच बताने वालों का यह शब्द खेल हैं। अनेक कल्पना विलास और षड्यंत्र उन लोगों ने (ब्राह्मणों ने) किए हैं। इसके ढ़ेर सारे मनोरंजक प्रयोग ऐतिहासिक लेखन में भी स्पष्टता दिखाई देते है।

प्रो.विलास खरात ने उनके इस ऐतिहासिक किताब में पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों के संबंध में जो विवेचन किया है वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कुछ विद्वानों ने रामायण, महाभारत, मनुस्मृति और भगवद्गीता यह ग्रंथ बौद्ध धर्म के प्रसार के पश्चात लिखे गए हैं और उनका जनकत्व जातक कथाओं को जाता है और उसके लिए शेल्डन पोलॉक, हेन्स बेकर और ग्रेग वेली इनके जैसे विश्वविख्यात शोधकों का आधार लिया गया है। इतना ही नहीं, ब्राह्मणवादी ग्रंथ हिंसक प्रतिक्रांति के प्रतीक हैं, यह बात भी इस ग्रंथ के माध्यम से सामने लाई गयी है। अन्य पौर्वात्य और पाश्चात्य ग्रंथों के आधार पर खुद को आर्य (यूरेशियन) कहने वाले ब्राह्मणों का मूल देश भारत न होकर वे विदेश से आये हैं। यह सिद्ध करने वाले ढ़ेर सारे ग्रंथ आज प्रकाशित हो गये हैं और डीएनए के आधार पर वह सिद्ध हो चुकें हैं।

आर्य (ब्राह्मण) भारत में आकर स्थायी हो गये और मूल भारतीय लोगों को जंगली और हिंसक आज तक समझा जाता था या झूठ प्रचार किया जाता था। उनके इस झूठ को छेद देने वाले ढ़ेर सारे सबूत आज उपलब्ध हो चुके हैं। ब्राह्मण भारत में कब आये? इस संबंध में मतभिन्नता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि वे ईसा पूर्व

13000 वर्ष पहले आये। इसलिए भारतीय संस्कृति यह इजिप्शियन संस्कृति के बहुत पहले की है। आर्य ब्राह्मणों का भारत के आगमन का निश्चित समय साधारणतः ईसा पूर्व 3500 है यह अब सिद्ध हो चुका है और इसके वैज्ञानिक आधार भी हैं।

आर्य ब्राह्मण यहां पर कब आए? यह सवाल न होकर वे भारत में आने के पहले यहां पर विकसित सभ्यता और समाज वजूद में था या नहीं और अगर था तो उस समाज का आखिरकार क्या हुआ? भारत में जैसे सुजलम-सुफलम और अनेक दृष्टि से उपयुक्त भूप्रदेश में आर्य ब्राह्मण आने के पहले यहां पर कोई विकसित संस्कृति या सभ्यतापूर्ण समाज स्थायी नहीं था, यह कहना तर्कसंगत नहीं है और इसलिए इस देश के मूलनिवासी आर्य न होकर इतर जमात और अन्य जमात होंगे निश्चित।

धर्म यानी समाज व्यवस्था का नियम। उसे देवता का सहारा लेकर धर्म के स्वरुप को पेश किया गया। उसी में यहां के जीवन के पारलौकिकता से उसका संबंध जोड़कर उसे अधिक जटिल कर दिया। इस पारलौकिक संबंध और यहां के जीने के नियमों का दूर-दूर का संबंध नहीं। लेकिन यह संबंध जोड़े जाने के कारण इस नियमों को दैवीक या वैश्विक स्वरुप दिया गया। केवल धर्म धर्म के युद्ध के कारण आज तक जीवन और साधन संपत्ति की हानि इतनी हो गयी है, जितनी दोनों विश्व युद्ध में नहीं हुई होगी। समाज में स्वास्थ्य और शांति रहे और समाज का व्यवहार सही ढ़ंग से चले, इसके लिए जो नियम बनाये गए हैं उसके कारण हरेक समाज में संघर्ष होकर पूरे विश्व में अशांति और अस्वास्थ्य निर्माण हुआ है। इन्सानियत आदमी का मूल धर्म हैं जो वह मिट्टी में मिल गया है।

आज सबसे ज्यादा जरुरी है कि आदमी को उसके मूल धर्म की उसे एहसास कराके देना और वह है इन्सानियत। यह एक ही धर्म की उपासना सभी मानव जाति को करने की जरुरत है। तभी विश्व में शांति और स्वास्थ्य निर्माण होकर मानव प्रजाति की उन्नति होगी।

-मा.पी.बी.सावंत

पूर्व न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय

प्रस्तावना

''रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, भगवतगीता ब्राह्मणों के संगठित हिंसा के प्रतीक है '' इस महत्वपूर्ण किताब की प्रस्तावना लिखने के लिए विलास खरात के द्वारा अनुरोध किया गया था। बामसेफ के राष्ट्रीय अधिवेशन की तैयारी में सक्रिय रूप से सहभागी होने की वजह से प्रास्तावना लिखने के लिए ज्यादा समय निकाल पाना संभव नहीं हो रहा है। इसके साथ ही किताब जल्दी पब्लिश करने के बारे में भी सोचा जा रहा है। ऐसा भी सोचा गया है कि छोटी सी प्रस्तावना लिखी जाए, इसलिए छोटी सी प्रस्तावना लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

इतिहास लिखने का नया तरीका :–

भारत के इतिहास को खासतौर पर भारत के प्रचीन इतिहास को ब्राह्मणों ने जिस तरीके से लिखा उस तरीके से ज्यादातर बातें ब्राह्मणों ने छुपाने की कोशिश की। इसलिए आज तक बौद्ध साहित्य या पाली साहित्य में जो सबूत उपलब्ध है उसको आधार बनाकर इतिहास नहीं लिखा गया है। अगर भारत का प्राचीन इतिहास बौद्ध साहित्य या पाली साहित्य का सबूत के तौर पर उपयोग करके लिखा जाता तो भारत के प्राचीन इतिहास का दूसरा रुप सामने आता और वह रुप ब्राह्मणों के अनुकूल नहीं, बल्कि ब्राह्मणों के बहुत ही प्रतिकूल होता। इसलिए ब्राह्मणों ने बौद्ध साहित्य या पाली साहित्य को आधार बनाकर इतिहास ना लिखने का निर्धारित किया और उस पर अमल किया।

पुरातत्व के सबूत :–

भारत के प्राचीन इतिहास पर नया प्रकाश डालने के लिए दूसरे महत्वपूर्ण साधन पुरातत्व के अकाट्य और निर्विवाद सबूत हैं। इन सबूतों के द्वारा जो जानकारी सामने आ रही है वें बहुत ही महत्वपूर्ण सबूत हैं। उन जानकारी का उपयोग इतिहास को नये सिरे से लिखने के लिए बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण है। पुरातत्व के सबूतों का उपयोग करके अगर इतिहास लिखा जाता है तो भारत के प्राचीन इतिहास पर नया प्रकाश पड़ सकता है। ऐसा निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि पुरातत्व का काम अंग्रेजों के समय से शुरू हुआ और अंग्रेजों ने उस पर बहुत सारा काम किया। पुरातत्व के

सबूतों की व्याख्या करके ही भारत के प्राचीन इतिहास को समझने की कोशिश की। पुरातत्व ने ब्राह्मणों के इतिहास लिखने पर बहुत सारे प्रश्न खड़े किए और उनके पास उसका कोई जवाब नहीं है।

पुरातत्व के बारे में एक और बात जाननी जरुरी है कि आजादी मिलने के बाद पंडित जवाहर लाल नेहरू के द्वारा आजाद भारत पर ब्राह्मणों ने कब्जा किया और उन्होंने आजाद भारत में यह नीति निर्धारित की कि पुरातत्व में जितना ज्यादा खोदा जाएगा उतना ज्यादा बुद्ध और मौर्य की बहुत बड़ी विरासत अर्थात धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत के ही सबूत मिल सकते हैं। इससे राष्ट्रव्यापी बौद्ध धर्म और बौद्ध संस्कृति का विराट प्रभाव दिखाई देता है। इससे पता चलता है कि भारत में बौद्ध और मौर्य का प्रभाव कितने बड़े पैमाने पर था। लेकिन, वह धर्म और संस्कृति कहां गायब हो गई? किसने गायब की? और कौन इसका जिम्मेदार है? ऐसे बहुत सारे नये प्रश्न खड़े होते हैं। इसलिए ब्राह्मणों ने जो आजाद भारत के शासक बन गए थे उन्होंने ये नीति बनाई कि जमीनों के नीचे ज्यादा खुदाई करने का काम नहीं करना है। यह हैरान करने वाली नीति ब्राह्मणों ने बनाई, ऐसा पुरातत्व विभाग के व्यवहार से पता चलता है।

डीएनए का शोध :–

भारत के प्राचीन इतिहास का अभ्यास करने और उसकी व्याख्या करने के लिए एक अत्याधिक महत्वपूर्ण शोध 21वीं शताब्दी में हुआ। उसको डीएनए कहा जाता है। अब डीएनए को आधार बनाकर सत्ता और न्यायपालिका में बड़े फैसले लिए जा रहे हैं। क्योंकि, डीएनए एक सटीक आधार है, जिसके आधार पर सही और सटीक निर्णय लिए जा सकते हैं। इसलिए जब अटल बिहारी की सरकार बनी और 2001 में भारत के बारे में डीएनए का शोध हुआ तो भारत के ब्राह्मणों ने अपने लिए बहुत बड़ा खतरा माना। क्योंकि डीएनए के द्वारा ब्राह्मण विदेशी साबित हो गए। इसलिए अटल बिहार बाजपेयी ने यह निर्णय लिया कि विदेशियों को डीएनए रिसर्च के लिए अनुमति नहीं दी जायेगी और डीएनए रिसर्च करने के लिए जो आधारभूत साधन चाहिए वो विदेशियों को उपलब्ध नहीं किए जाएंगे। इससे पता चलता है कि डीएनए के साधन का भारत का प्राचीन इतिहास या इतिहास लिखने के लिए उपयोग नहीं करने दिया जायेगा। इसका अर्थ यह होगा कि ब्राह्मण नहीं चाहते हैं कि भारत के मूलनिवासियों

को भारत के इतिहास की वास्तविकता पता चले।

धार्मिक साहित्य का समय :-

ब्राह्मण धर्म के बहुत महत्वपूर्ण साहित्य उपलब्ध हैं और ब्राह्मण उसको बहुत प्रवित्र मानते हैं। उसमें वेद, श्रृति, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता है। ये सारे धर्म ग्रंथ आज उपलब्ध है। उसका लिखित साहित्य उपलब्ध है। मगर ब्राह्मणों ने जान-बूझकर समय को छिपाकर रखा। यह साहित्य कब लिखा गया, इस बात का पता न चल सके। ब्राह्मणों ने इस बात की खरबदारी ली क्योंकि, ब्राह्मणों को यह डर था कि इससे हमारी पोल खुलने का खतरा पैदा होगा। क्योंकि, ब्राह्मण उन साहित्य को अर्थात रामायण, महाभारत, मुनस्मृति, भगवतगीता को बहुत ज्यादा प्राचीन बताते हैं। मगर 5वीं शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक ब्राह्मणों के अनुकूल राजाओं का समय आता है, खासकर गुप्तकाल। तब उन्होंने ब्राह्मण साहित्य लेखन का काम किया और इस बात को राम मंदिर के केस में राम मंदिर की लड़ाई लड़ने वाले लोगों ने, वकीलों ने कोर्ट में इस बात को कबूल किया। इससे यह बात सिद्ध होती है कि यह साहित्य ईसापूर्व का साहित्य नहीं है। अर्थात यह साहित्य बुद्धोत्तर और मौर्योत्तर है। अब यह बात लगभग साबित हो गई है। इस वजह से ब्राह्मणों का इसे बहुत प्राचीन बताने का प्रयास झूठा साबित होता है।

जातक कथाओं की चोरी :-

बौद्ध साहित्य और पाली साहित्य का अध्ययन करने के बाद उनमें जातक कथाओं की जानकारी मिलती है। जातक कथाओं और रामायण, महाभारत का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद पता चलता है कि रामायण में दशरथ जातक की चोरी की गई है और चोरी करके वहां से रामायण लिखने के लिए बीज कथा ली गई है। दशरथ जातक में राम बोधिसत्व राम हैं और अनित्यता तत्व की जानकारी साधारण लोगों को देने के लिए उस जातक कथा को बुद्ध के द्वारा समझाने के लिए बताया जाता था। जातक कथाएं इतनी बड़ी लोकप्रिय थी कि उनको लोक कथाओं का दर्जा प्राप्त हो गया था। रामायण को लोकप्रिय करने के लिए ब्राह्मणों ने यह सोचा कि इसी कथा को बीज कथा बनाकर रामायण लिखा जा सकता है और लोकप्रियता हासिल करवाई जा सकती है। इतना ही नहीं, पुष्यमित्र शुंग के द्वारा सम्राट बृहद्रथ

मौर्य की हत्या करन के बाद ऐसा तो नहीं कहा जा सकता की राजा को मारने से 24 घंटे में प्रजा के मन पर बुद्ध का जो प्रभाव है वह खत्म हो जायेगा। प्रजा तो फिर भी बुद्ध को मानने वाली ही रहेगी। ऐसी प्रजा को जातक कथा के बोधिसत्व राम को रामायण का नायक बनाकर लोगों के सामने प्रस्तुत करते हैं। चोरी का आरोप ना हो इसलिए सीता को राम की पत्नी बताई गई है। जबकि, दशरथ जातक में सीता को राम की बहन बताई गई है। इसके पीछे और भी एक मकसद हो सकता है। वह मकसद यह है कि सीता को भू-माता भी कहा जाता है। उसके साथ भू-माता की वजह से लोकप्रियता का वलय है और धार्मिक मान्यता का भी वलय है। इससे रामायण को धार्मिक मान्यता भी दिलवाई जा सकती है। इस तरह से उस समय के बुद्धिस्ट प्रजा के साथ-साथ, लोकप्रिय बनने के साथ-साथ बड़े पैमाने पर धार्मिक मान्यता भी हासिल की जा सकती है। इसके द्वारा बुद्ध के जो वैचारिक सिद्धांत हैं उनका भी ब्राह्मणीकरण करवाया जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि राम कोई एतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि यह बीज कथा दशरथ जातक से चुराया हुआ है। जातक कथा की बहुत सारी बातें रामायण, महाभारत में जैसे की वैसे चुराई हुई है। इसके बावजूद भी ब्राह्मण उसको लोकप्रिय बनाने में कामयाब हो गए तो उसकी बड़ी वजह जातक कथाओं की लोकप्रियता थी, इससे सिद्ध किया जा सकता है।

''रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, भगवतगीता ब्राह्मणों के संगठित हिंसा के प्रतीक है'' इस किताब में बहुत सारे चोरी करने के सबूत दिए हुए हैं और इतने सबूत दिए हुए हैं कि पढ़कर हैरानी होती है कि ब्राह्मणों ने कितने बड़े पैमाने पर जातक कथाओं की चोरी की है। ये चोरी उन्होंने बुद्धोत्तर और मौर्योत्तर काल में खासतौर पर जब उनके लिए अनुकूल गुप्तकाल का समय आया तब उन्होंने ये काम किया। यह काम उनको करना भी जरुरी था। ब्राह्मणों का जो समाज में प्रभाव था या जिस विचारधारा का ब्राह्मण प्रचार-प्रसार करते थे, बुद्ध ने बड़े पैमाने पर उन विचारधारा का खंडन किया। इसलिए ब्राह्मणों को अपने विचारों को पुर्नजीवित करने के लिए रामायण, महाभारत लिखना पड़ा, ताकि समाप्त हुआ प्रभाव दुबारा निर्माण कर सकें। सम्राट बृहद्रथ की हत्या संगठित रुप से की गई थी और इस हिंसा की दीर्घकाल तक तैयारी की गई थी, ऐसा लगता है। इतना ही नहीं, यह साहित्य जो ब्राह्मणों का ब्राह्मणवादी साहित्य है उसे संगठित रुप से लिखा गया है। इसके लिए सम्मेलन किए

गए, सहमति बनाई गई, इसके सबूत उपलब्ध हैं। इन सबूतों के आधार पर संगठित हिंसा की गई थी और इसके बाद संगठित रुप से यह साहित्य लिखा गया था। इसलिए ये धार्मिक ग्रंथ वास्तव में राजनीतिक ग्रंथ हैं। ये संगठित हिंसा के प्रतीक हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

मुझे विलास खरात ने इस महत्वपूर्ण किताब की प्रस्तावना लिखने के लिए कहा, यह मैं अपना गौरव मानता हूँ, इसके लिए उनका धन्यवाद!

-वामन मेश्राम
राष्ट्रीय अध्यक्ष,
बामसेफ, नई दिल्ली।

साकेत का पुरातात्विक साक्ष्य

पुरातात्विक आधार पर साकेत का महत्व बहुत महत्वपूर्ण है। साकेत एक व्यापारी और बौद्ध धर्म का बहुत बड़ा केंद्र था। तथागत बुद्ध के यहाँ अधिक समयतक व्यतित करने के कारण उसे विशेष महत्व प्राप्त हुआ था। सम्राट अशोक ने साकेत को इसी कारण महत्व दिया था। साकेत को ही वर्तमान में अयोध्या कहा जाता है। पुष्यमित्र शुंग का समकालीन तथा उसके गुरु पतंजली के साहित्य में भी साकेत का ही जिक्र आता है, अयोध्या का नहीं। अयोध्या बाद के समय पड़ा हुआ नाम है। वहा आयूध यानी हथियार बनाया जाता था इसलिए भी उसका नाम अयोध्या पड़ा होगा।

साकेत 6 प्रमुख व्यापारी नगरों में से एक था। जहाँ व्यापारी केंद्र था वहाँ बौद्ध धम्म ज्यादा फला फुला, बढ़ा। साकेत के संदर्भ में पाली साहित्य में विपुल लेखन मिलता है। तथागत बुद्ध ने श्रावस्ती के जेतवन में अधिक समय बिताया था और उसके बाद साकते में भी! तथागत बुद्ध ने साकेत में वर्षावास किया था। ह्युएनसंग के अनुसार, तथागत बुद्ध ने साकेत में 6 वर्ष और टर्नर के अनुसार 16 वर्ष व्यतीत किया था। दिव्यादान में साकेत की व्याख्या मिलती है।

''स्वय मागतं स्वय मागतं साकेत
साकेत मिति संज्ञा संवृत्ता।''

अर्थात यह आप ही आया, आप ही आया इसलिए साकेत नाम पड़ गया।

विशाखा राजगृह के धनी व्यापारी धनंजय की पुत्री थी। धनंजय राजगृह से साकेत आकर बस गए थे। उन्होंने अपनी बेटी विशाखा का विवाह श्रावस्ती के मृगर के पुत्र पूर्णवर्धन से किया था। विशाखा बुद्ध के प्रारंभिक शिष्या में से एक थी। जैसे श्रावस्ती में उसने विहार बनाया था उसी तरह उसने साकेत में भी विहार बनवाया था, जिसे पुन्नाराम (पूर्वाराम) विहार कहते हैं। साकेत के पुर्वाराम विहार में तथागत बुद्ध 6 वर्ष थे। चौथी सदी में फाहियान ने जो साकेत देखा, उससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि साकेत का वैभव पूर्व में क्या था। फाहियान और ह्युएनत्संग के लिखे गए चरित्र से ही भारत के प्राचीन वैभव की खोज करना आसान हो गया था। उनका भारतीयों पर बहुत अहसान है। वे मानों प्राचीन इतिहासकार हैं।

फाहियान ने 4 थी शताब्दी मे जो साकेत देखा वह और छठीं शताब्दी में ह्युएनत्संग ने जो देखा, उसमें ज्यादा अंतर नहीं है। जनरल कनिंघम ने फाहियान ने

जिसे 'शा-ची' और ह्युएनत्संग ने जिसे 'पीसी किया' (विशाखा विशोक) कहा है, वह एक ही है। फहियान ने इस नगर का जिक्र महाजनपद के रुप में किया है। फहियान कहता है कि ''साँची नगर के दक्षिण द्वार के पूर्व के मार्ग पर बुद्ध देव ने दंतधावन करके काट के भूमि पर फेंक दिया था, वह न बढ़ता था न घटता था''[1]

मेजर जनरल कनिंघम ने यह प्रमाणित किया है कि 'अब मुझे यह दिखाना है कि फहियान की साँची ही ह्युएनत्संग की विशाखा नगरी ही थी तथा दोनों ही साकेत अथवा अयोध्या के अनुरुप ही थी।' ह्युएनसंग ने 7 फूट ऊंचा विचित्र वृक्ष को देखा था जैसे फहियान ने देखा था। वह ऐसा पेड़ जो न बढ़ता था और न घटता था। इन दोनों के वर्णन के समानता के आधार पर मेजर कनिंघम दावे से कहते हैं कि 'मेरे विचार में उपर्युक्त विविरणों की समानता के कारण इस बात में संदेह नहीं रह जाता कि फहियान की साँची ह्युएनत्संग की विशाखा नगरी ही है।' विशाखा अपने विवाह के पूर्व साकेत की निवासनी थी। साकेत को ही बाद में अयोध्या कहा जाने लगा। मेजर कनिंघम को लखनऊ के एक ब्राह्मण ने उन्हे रामायण की एक पंक्ति बताई थी जिसे उन्होंने उद्‌धृत किया था-

''साकेतम नगरम राजा नामना दशरथोवबली।
तास्मया देया मया कन्या कैकेयी नाम तो जना।''[3]

इस पंक्ति से अपने आप सिद्ध होता है कि साकेत ही अयोध्या है। महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन और प्रो.दामोदर कोसंबी भी साकेत और अयोध्या एक ही मानते हैं। डॉ.भरत सिंह उपाध्याय भी अयोध्या को ही बुद्धकालीन साकेत मानते हैं। वे इसके लिए थेरगाथा अष्ठकथा में बताए गए गवम्पती कथा का आधार प्रस्तुत करते हैं।-

''स्थवीर गवम्पती सरयू साकेत में अंजनवन मृगदाव में विहार कर रहे थे तभी वहां तथागत बुद्ध का आगमन हुआ। उनके साथ आया हुआ भिक्षु संघ अंजनवन के समीप 'सरजू' आधुनिक 'सरयू' नदी के किनारे रात में सो गये। तभी अचानक नदी में बाढ़ आने के कारण हडकंप मच गया। बाढ़ को रोकने के लिए बुद्ध ने स्थवीर गवम्पती को भेजा। 'सो इद्धिया सरभू अट्टेपोसि' सरयू की बाढ़ को रोका गया, ऐसा उल्लेख थेरगाथ में है। इससे निसंदेह स्पष्ट होता है कि साकेत के पास ही अंजनवन था और उसी से सटकर संयभू यानी सरयू नदी बहती थी, जिसे वर्तमान में घागरा नदी कहा जाता है। सरयू घाघरा की उपनदी है। आज भी अयोध्या को स्पर्श करते हुए घाघरा नदी यहां से बहती है। उसे 'सरयू' या 'सरज' नाम से पहचना जाता है। यह

'सरयू' नदी बहराईच, गोंडा जिले के पास घाघरा नदी में सम्माहित होती है। आज की 'अयोध्या' भी 'सरयू' नदी के किनारे बस्ती है। अतः आज की 'अयोध्या' ही (फैजाबाद) तब की साकेत है। इस बात को मानने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं बचता है। इस बात की पुष्टि राहुल सांस्कृत्यायन करते हुए कहते हैं, ''साकेत (अयोध्या) में बुद्ध के समकालीन प्रसेनजीत का एक राजमहल जरुर था। सरयू तट पर बसा साकेत पहले नौ व्यापार का ही नहीं, बल्कि स्थल व्यापार का भी भारी केंद्र था।''[4]

ह्युएनत्संग ने जो आँखों देखा वर्णन किया है वह बहुत मायने रखता है। साकेत में कोई 20 संघाराम और 3000 भिक्खुओं को उसने देखा था। वहाँ पर हीनयान और महायान दोनों मतों के लोग देखे थे और 50 विधर्मियों के मंदिर भी देखे थे। सम्राट अशोक के द्वारा 200 फीट ऊंचा एक स्तूप बनवाया था। तथागत बुद्ध जहाँ '6 वर्ष' व्यतित किए थे। स्तूप के नजदीक 6 या 7 फीट ऊँचा वृक्ष था, जो न घटता था और न बढ़ता था, जो बुद्ध के फेंके गए दातून के कारण बना था। दातून की कहानी को वैदिक ब्राह्मण राम के साथ जोड़ देते हैं। ह्युएनत्संग ने बुद्ध के पवित्र बुद्ध स्तूप का जिक्र करते हुए कहा कि- **''इस स्थान के निकट ही चारों बुद्धों के आने-जाने, बैठने के चिन्ह पाये जाते हैं तथा नख और बाल सहित एक स्तूप भी है। पुनीत स्थान यहाँ पर एक के बाद एक बहुत हैं तथा जंगल और झीलें भी बहुतायत हैं।''**[5]

साकेत का प्राचीन पुरातत्वीय उत्खनन एवं खोज का सारा श्रेय सर जनरल मेजर कनिंघम को जाता है। उन्होंने निश्चित तौर पुरातात्विक आधार पर यह सिद्ध किया था कि यही साकेत बुद्ध भूमि है। साकेत या अयोध्या से संबंधित पुरातत्वीय उत्खनन और खोज कार्य 1857 से लेकर 1864 तक पूरा किया गया था। सन् 1871 को पुरातत्व विभाग द्वारा 1862-63-64-65 का संयुक्त चार रिपोर्ट को सर मेजर जनरल अलेक्जेंडर कनिंघम ने प्रकाशित किया था। यह सामग्री साकेत या अयोध्या से संबंधित है और यह अंतिम निर्विवाद पुरातात्विक सामग्री है। इस महत्वपूर्ण तथ्य को इलाहाबाद हाईकोर्ट और सर्वोच्च न्यायालय ने क्यों दरकिनार किया? यह बहुत ही चिंता का विषय है। इस व्यवहार से न्यायपालिका पर कई सवाल खड़े होते हैं। साकेत के पुरातात्विक साक्ष्य पर सर मेजर जनरल कनिंघम क्या कहते हैं यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारतीय जनता को यह समझना अत्यंत जरुरी है। वैदिक ब्राह्मणों ने

प्राचीन बौद्ध स्तूप तथा प्राचीन स्मारकों पर ही कब्जा किया है। अयोध्या ब्राह्मणवादियों ने किन- किन स्मारकों पर कब्जा किया और उसे क्या-क्या नाम दिया हैं, यह जानना बहुत महत्वपूर्ण है। कनिंघम ने अत्यंत वैज्ञानिक पद्धति से वहाँ का अध्ययन किया है। वे कहते हैं-

''अयोध्या में अनेक ब्राह्मणवादी मंदिर थे, परंतु वे सभी वर्तमान के हैं और उनमें किसी भी तरह की स्थापत्यकला दिखाई नहीं देती है। उसमें से कुछ मंदिर पुराने हैं और वे मुगलो ने नष्ट किये हुए हैं। शहर के पूर्व में जो रामकोट या हनुमानगढ़ी है, वह जगह प्राचीन टिलों पर बांधी गयी आधुनिक मंदिरों के आस-पास की छोटी सी तटबंदी है। रामकोट नाम वैसे पुराना लगता है। क्योंकि, वह मणि पर्वत की परंपरा से मिलता है। उसकी जानकारी आगे प्रस्तुत करेंगे ही, लेकिन हनुमान का मंदिर (हनुमानगढी) औरंगजेब के समय से ज्यादा पुराना नहीं है। नगर के उत्तर पूर्व कोने में राम घाट स्थल है, जहाँ राम ने स्नान किया था। उसके बाद वह स्वर्ग में गये इसलिए उसे स्वर्गवारी या स्वर्गद्वार कहा जाता है। उसके उत्तर-पश्चिम दिशा में एक जगह है जहाँ उसका शरीर जलाया गया था। कुछ वर्ष पूर्व वहाँ एक पवित्र वटवृक्ष था, जिसे अक्षयवट कहा जाता था और इसका संबंध यह स्वर्गद्वार से लगाया जाता होगा या जलाए हुए लोगों को जन्म-मृत्यु के फेरे से मुक्ति मिलकर तुरंत स्वर्ग प्राप्ति होती है, ऐसी लोगों की मान्यता थी। उसी से सटकर लक्ष्मण घाट भी है जहाँ पर लक्ष्मण ने स्नान किया था, जहाँ लगभग 1/4 मील अंतर पर शहर के बिलकुल बीचोबीच रामजन्म स्थान है। उसके पश्चिम दिशा से पाँच मील अंतर पर ऊपर के हिस्से में गुप्तार घाट है, जहाँ पर सफेद रंग के मंदिर दिखाई देते हैं। इस जगह पर लक्षमण अदृश्य हुए थे, इसलिए इसे गुप्त घाट भी कहा जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि वहाँ राम अदृश्य हुए थे।

प्राचीन समय में अयोध्या में ऐसे पुरातात्विक अवशेष शहर के दक्षिण दिशा में तीन टिलों के रुप मे दिखाई देते हैं। वह लगभग 1/4 मील अंतर पर है। उसे मणि पर्वत, सुग्रिव पर्वत और कुबेर पर्वत इस नामों से जाना जाता है। मणि पर्वत शहर के नजदीक था। वह 65 फीट ऊंचा है और उस पर ईंटों और कंकड़ के टुकड़े अधिक मात्रा में हैं। पुरानी इंटे 11 ईंच लंबी और चौड़ी है। 46 फीट ऊंचाई पर उस टिले के पश्चिम दिशा में गोलाकार दिवार के अवशेष हैं जो कंकड़ के टुकड़ों में ढंके हुए हैं। इस जगह पर कंकड़ की जाडी 40 फीट है। उसका आकार प्राचीन कालीन वास्तू के आकार

से छोटा दिखता है। ब्राह्मणों का ऐसा कहना है कि राम को सहायता करते समय बंदरों ने मणि पर्वत का इस्तेमाल किया था। किषकिंधा नगरी के वानरराज सुग्रीव के हाथ से वह पर्वत यकायक नीचे गया। लेकिन, आम जनता को यह कथा मालूम नहीं होने के कारण उनकी ऐसी सोच हो गई कि रामकोट को बनाने समय मजदूर उनकी टोकरी खाली करते थे, उससे यह पर्वत तैयार हुआ। इसलिए इस पर्वत को जोवा जार या ओरा जार कहा जाता है। उसका पृष्ठ भाग ईंटों के टुकड़े के कारण खुरदरा हुआ है और वहाँ के ईंटों का आकार 11 इंच x 7.14 इंच x 2 बड़ी है। उसपर दो पुराने इमली के पेड़ हैं और उसके आसपास जंगल हैं। उसके नजदीक दक्षिण-पश्चिम में छोटा सा हौद है, जिसे हिंदू लोग गणेश कुंड कहते हैं और मुस्लिम लोग हुसैन कुंड या इमाम तालाब कहते हैं। क्योंकि वहाँ हर साल वहां ताजिया इकट्ठा किए जाते हैं। उस पर्वत के दक्षिण-पूर्व को एक बड़ा आयताकार टिला है जिसे सुग्रीव पर्वत कहा जाता है और वह जमीन से 8 से 10 फीट ऊंचा और दो हिस्सों में विभाजित है। उत्तर दिक्षा से 300 फीट ऊंचा और इस नष्ट हिस्से पर एक और टिला है जो 8.5 ईंच आकार के ईंटो से बना हुआ है और उस के बीचोबीच एक कुँआ भी था।''

कनिंघम महोदय ने ब्राह्मणों के द्वारा प्रचार में लायी गई किवदंतियों को प्रस्तुत किया और साथ में उन-उन स्थलों में प्राप्त हुई ईटों का आकार एवं टिलों का आकार पुरातात्विय दृष्टीकोण से अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया। ईटों के आकारों से उसका समय या कालनिश्चित करना आसान होता है। कनिंघम महोदय ने मणि पर्वत और कुबेर पर्वत के बीच में एक छोटा सा इस्लामी निर्माण कार्य देखा जो पूर्व-पश्चिम से 64 फीट लंबा और उत्तर दक्षिण दिशा में 47 फीट ऊंचा था। इसमें ईटों से बांधी हुई दो कबरें हैं उन्हे सिस पैगम्बर या आयुब पैंगम्बर या नबी शेस और जोब ऐसा कहा जाता है। पहली कबर 17 फीट लंबी और दूसरी 12 फीट लंबी है। इन कबरों का जिक्र अबू फजल नें भी किया है। वह कहता है कि ''शहर के नजदीक दो स्मारक है, पहला सात और दूसरा छः क्यूबीक लंबा है। मुर्ख लोग ऐसा दावा करते हैं कि यह कबर सेथ और जोब नबियों की है। वे इसके लिए ढेर सारी काल्पनिक कहानियाँ भी बताते हैं।'' कनिंघम साहब इस पर कहते है कि, शेथ की कबर मुगलों ने दुरुस्त करते समय 7 क्युबीक या 10.5 फीट से 17 फीट बड़ा आकार का बनाई। कनिंघम महोदय यह भी बताते हैं कि उपरोक्त कबरों से वह क्षेत्र घिरा हुआ है। बड़े नगरों के महामार्ग पर लोगों को दफनाया जाता है। यह मुसलमानों की परंपरा है। इसलिए कनिंघम साहब को

लगता है कि इन टिलों के पश्चिम से फिलहाल जो रास्ता जाता है वह प्राचीन समय का महत्वपूर्ण मार्ग होगा। टिले के उत्तर-पश्चिम दिशा में एक बड़ा पत्थरीला पुल है। यह रास्ता नगर के दक्षिण द्वार से सुल्तानपुर या कुसापुरा और इलाहाबाद या प्रयाग को जाता है। कनिंघम ने इन रास्तों के बारे में बहुत बारिकी से देखा है। खासकर उनके स्थल और दिशा के बारे में! उनका यह दावा है कि वह रास्ता चीनी प्रवासी फाहियान और ह्युएनत्संग ने जो बताये हैं वह पूर्ण रुप से मिलते हैं। दिशा और स्थान को इंगित करने के लिए कनिंघम ने फाहियान और ह्युएनत्संग का सबूत दिया है-

''फाहियान के अनुसार, नगर के दक्षिण दरवाजे के मार्ग से जाते समय उसके रस्ते के पूर्व में बुद्ध ने एक पवित्र वृक्ष लगाया था। ह्युएनत्संग इस वर्णन से सहमत है और उस 'विशेष वृक्ष' को उसने राजधानी के दक्षिण रास्ते के बायी ओर दिखाया है। यह वृक्ष यानी बुद्ध ने दातून के तौर पर इस्तेमाल किया हुआ है। बुद्ध ने दातून करने के पश्चात उस दंतयष्टी को जमीन पर डाल दिया था, जिन्हें जड़े आकर उसका पेड़ बन गया और वह 6 से 7 फीट ऊंचा था। यह जो किवदंती है उसके अनुरुप ही है। अब वर्तमान में ऐसा दिखाई देता है कि इसी जगह पर भग्नावशेष हुए है और ऊंचाई की जगह और उसके आस-पास शेथ और जोब की कबरें दिखाई देती हैं। यह सभी संरचना शहर के दक्षिण में रास्ते के पूर्व में या और है। इसलिए चीनी प्रवासी ने जो बखान किया है वह इसी जगह का है। वह ह्युएनत्संग के बताये जगह से बिलकुल सही मालूम पड़ता है। इसलिए मुझे लगता है कि उनकी वास्तविक पहचान करने के लिए अब कोई आशंका लेने की जगह ही नहीं बची है।

ह्युएनत्संग ने विशाखा नगर का जो वर्णन 16 ली या 2 $\frac{2}{3}$ मील आकार का किया था, इसका मतलब यही है कि उस समय राम की राजधानी वर्तमान नगर के आधे से ज्यादा आकार की नहीं थी। मगर उसकी जन आबाधी ज्यादा थी और वह अभी के आबाधि के एक तिहाई अंश या उससे कम थी। पुराने नगर में 20 से ज्यादा बौद्ध विहार थे और उसमें 3000 बौद्ध भिक्खु निवास करते थे। लेकिन उसके साथ पचास वैदिक ब्राह्मणों के मंदिर भी थे। इससे ब्राह्मणों की संख्या का अंदाजा लगता है। इससे यही लगता है कि 7 वें शतक तक विक्रमादित्य के बनाये 300 से ज्यादा मंदिरों का पतन हो गया था और इससे इस शहर की अधिक मात्रा में दुर्गती हो गयी थी, ऐसा दिखाई देता है। लेकिन, वहाँ के बौद्ध स्मारक अच्छी अवस्था में थे और

विकसित बौद्ध नगरी बनारस की तरह वहाँ अधिक संख्या में बौद्ध भिक्खु रहते थे।[7]

कनिंघम महोदय ने प्राचीन बौद्ध अवशेष, स्मारकों का स्थान निश्चित किया। अब ह्युएनत्संग ने अन्य जिन स्तूपों का वर्णन किया है वे वर्तमान में कहाँ स्थित है और उनका नाम वहीं है या उनको वैदिकों ने अलग नाम से प्रचार में लाया? इसका शोध कार्य भी उन्होंने किया है। यह शोध कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। वे अपनी रिपोर्ट में आगे लिखते हैं कि-

''ह्युएनत्संग ने वर्णन किया हुआ पहला स्मारक जिसके नाम का जिक्र नहीं किया वह एक विशाल विहार था। वह एक महत्त्वपूर्ण विहार होने के कारण साकेत का कालाराम या पुर्वाराम विहार होना चाहिए। क्योंकि, इन दोनों का वर्णन सिलोन के महावंस ग्रंथ में आया है। यहाँ के भिक्खु संगती शाखा के थे और उन्होंने तीन ख्यातनाम विद्वान देने के कारण ही वहाँ का बौद्ध विहार बाद में बहुत प्रसिद्ध हुआ था। **यह पूर्वाराम वर्तमाान में सुग्रीव पर्वत है,** जिसका वर्णन मैने इसके पहले की 500 फीट लंबा और 300 फीट चौडा, ऐसा किया है। अतिशय विशाल आकार और चौकोन स्वरुप के यह टिले का अवशेष और इसकी उंचाई यही दर्शाती है कि यह विशाल विहार था और मेरे इस दृष्टिकोण की सत्यता से सिद्ध होती है कि उसके बीचो-बीच एक कुँआ है और चारों दिशाओं में भिक्खुओं के निवास करने के लिए कमरे हैं। यह स्थान, नगर के दक्षिण दिशा में होकर नगर के रास्ते के बाएं हिस्से में या पूर्व की ओर है। यही वर्णन ह्युएनत्संग ने संघाराम के बारे में किया था। निश्चित तौर पर वह बौद्धों का ही विहार है।

इस संघाराम के पास सम्राट अशोक ने 200 फीट ऊंचा स्तूप बनवाया था जहाँ पर बुद्ध ने साकेत में रहकर 6 वर्ष धम्म प्रचार किया था। मुझे ऐसा लगता है कि यह स्थान मणि पर्वत ही है जो 65 फीट ऊंचा है और उसके पत्थर के स्थापत्य से यही लगता है कि वह पहले बहुत ऊंचा था और उसके ऊपर का धातु का एक छोर जमीन से उपर 200 फीट ऊंचा निश्चित होगा। ह्युएनत्संग ने कहा है कि यह काम सम्राट अशोक ने ही किया है और इसकी निर्मिती रचना में आधी ईंटे और आधे पत्थर होने के कारण वह कार्य सम्राट अशोक का है इसमें कोई शंका नहीं है। सम्राट अशोक पूर्व के स्तूप मिट्टी के टिले होते थे जो अब आप इसे देख सकते हैं। बेतिया के उत्तर दिशा में ऐसे ढेर सारे पुराने स्तूप लॉरिया, नंदनगढ़ में देखने को मिलते हैं। इसी जगह मुझे ऐसे प्राचीन स्तूप

देखने को मिले। यह निश्चित ही भारतीय लोगों के बांधे हुए प्राचीन स्तूप है और मेरा यह पक्का विश्वास हैं कि उनका समय इसा पूर्व 5 वें सदी के पहले का है। मैं यह विचार इसलिए रख रहा हूँ कि ह्युएनत्संग के वर्णन किये हुए या भिल्सा नाम की जगह मैंने खुद उत्खनन किऐ हुए देखे हैं जो पत्थर या ईंटो से बनाए हुए हैं। इसलिए केवल मिट्टी से बने हुए स्तूप अशोक पूर्व समय के होते हैं। बौद्ध स्तूप बुद्ध के पूर्व मिलते नहीं। अयोध्या के मणि पर्वत के बारे में कहा जाए तो उसके नीचे का मिट्टी की उंचाई बौद्ध धर्म के प्रारंभ के समय की होनी चाहिए और उस पर अशोक ने पत्थर से स्तूप बनाया होगा, ऐसा मुझे लगता है। उसके नीचले हिस्से पायदान में 'श' यह पुराने (ब्राह्मी-पाली) लिपि का अक्षार मिला। लेकिन, उसका अशोक के समय के बाद का होने के कारण वह ईंट मणि पर्वत के वास्तु संरचाना की नहीं होगी।

ह्युएनत्संग ने आगे, दंत एष्टीवृक्ष और उससे छटा हुआ पूर्व के चार बुद्ध जहाँ बैठे थे, ऐसा वर्णन किया है। वह जगह भव्य स्तूप के एकदम लगी हुई है। यह जगह यानी स्तूप के बरामदे में सेथ और जोब के समाधियों की जगह है। समाधि स्थल बुद्ध के बैठने की जगह है और उसके आगे की जगह उनके चलने-फीरने की जगह है। इस बरामदे में मुझे बुद्ध के पैर के निशान नहीं मिले, लेकिन चीनी प्रवासी ने बुद्ध पद का वर्णन किया है।

ह्युएनत्संग ने आखिरी वर्णन किया है वह एक स्तूप है। ऐसा स्तूप जिसमें बुद्ध के केस और नाखून सुरक्षित रखे गये है। उसके आस पास छोटे-छोटे असंख्य स्तूप हैं जो एक दूसरे को एकदम सटे हुऐ थे। बीचोबीच ढेर सारे पानी के हौद थे, जिससे ऐसा दिखाई देता है कि वह एक पवित्र केंद्र स्थल की भव्य वास्तू थी, जिसको पवित्र पानी हौद ने घेरकर रखा था। यह स्तूप कुबेर पर्वत है, ऐसा मुझे लगता है। जो शेथ और जोब की समाधि के कम्पाऊंड के दक्षिण को जुड़ता है और वह भग्न हुए महाविहार के पश्चिम को मिलता है। चीनी प्रवासियों ने वर्णन किए हुए असंख्य हौद में से एक हौद यानी गणेशकुंड है, जिसका वर्णन पहले ही कर चुके हैं। लेकिन, उसके आसपास की रचना स्तर (निर्माण कार्य) पहले ही नष्ट हो चुका है। क्योंकि मुगलों ने उनका इस्तेमाल मजारों, पुलों और मस्जिदों को बांधने के लिए किया। **मुझे लगता है कि बुद्ध के नाखून और केस जिस स्तूप में है वह स्तूप मणि पर्वत का हिस्सा है और उसके बीचो-बीच उत्खनन किया तो बुद्ध के पवित्र अवशेष (धातु) निश्चित तौर पर मिलेंगे और मेरे शोध कार्य को मजबूती मिलेगी।**

लोग अज्ञानता से इस ऊंचाई वाले हिस्से के उत्तर दिशा के पुराने शहर को वारेता, ऐसा कहते हैं। अयोध्या या अजुध्या, यह बाद के समय की है जिसे बारेता कहा जाने लगा, ऐसा लोगों का कहना है। लेकिन, यह नाम साकेत या विशाखा से नहीं मिलता है, केवल परंपरागत नाम इस शहर को मिला होगा। मगर, उसके कोई सबूत हमारे पास नहीं है। यह देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ कि बुद्ध की दंतवृक्ष की प्रसिद्ध किवदंती यहाँ के लोगों को मालूम नहीं। लेकिन, इस कथा की परंपरा आज भी थोड़े अधिक मात्रा में कही तो भी अस्तित्व में होगी, ऐसा मुझे लगता है। क्योंकि, इस कथा के कारण ही मुझे दो जगह की जानकारी अनपेक्षित तौर पर मिली। वह स्थान है हथिला यानी 15 मील अंतर पर और दूसरा यानी अयोध्या से 29 मील अंतर का गोंडा।''[8]

मणि पर्वत एक बहुत विशालकाय टिला है जो लगभग 4 हेक्टर क्षेत्र में फैला हुआ है। मणिपर्वत को सन् 2017 में घुमकर हमने देखा था। बाहर तो पुरातत्व विभाग का बोर्ड लगा है। मगर इस पर्वत पर पुरोहित ब्राह्मणों ने कब्जा कर रखा है और उन्होंने अपनी सुविधा के अनुसार उपरी हिस्से में तोड़ फोड़ की है। मंदिर बनाने की शक्ल तक की है। कनिंघम की रिपोर्ट के कई साल बाद भी यानी ब्रिटिश भारत से जाने के बाद की यह ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया लगती है। क्योंकि ब्राह्मणों को हमेशा सच सामने आने का डर रहता है और वह अपराधबोध से सारे गलत काम करते है। पुरातत्व विभाग भी इस षड्यंत्र में बराबर शामिल है। आगे चलकर ब्राह्मण शासक वर्ग ने 70-80 के दशक में राम पैदा हुआ है, ऐसा मानकर पुरातत्वविदो को उस स्थल पर उत्खनन करने को कहा। ''आर्क्यालॉजी ऑफ दि रामायण साइट प्रोजेक्ट'' नाम से एडवान्स स्टडी शिमला के बी.बी.लाल और एएसआई के के.बी.सौंदराजन तथा के.एन.दीक्षित ने रामकथा से संबंधित 14 स्थलों का 1975-76, 1976-77 तथा 1979-80 में उत्खनन किया।[9] ब्राह्मणवादी पुरातत्व विभाग ने वही कार्य किया जो ब्राह्मणवादी शासक चाहते थे। क्योंकि इससे राजनीतिक लाभ लेना आसान था। पुरातत्व की आड़ में ब्राह्मणों का भारत की राजनीति में वर्चस्व बढ़ता गया। एस.सी. जोशी और बी.बी. लाल जैसे ब्राह्मणवादियों ने पुरातात्विक मापदंडों को दरकिनार करके ब्राह्मणवादी मिथक इतिहास के रुप में पेश करने का दुस्साहस किया और यह सब एक तरफा चल रहा।

सन् 1977-78 को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के डॉ.डी.पी. सिन्हा और बी.एस.झा ने अयोध्या में स्वर्ग द्वार पर स्थित नागेश्वरनाथ मंदिर में सम्राट अशोक का शेर स्तंभ

का हिस्सा जो एक चमकीला कलायुक्त पत्थर का स्तंभ, जिसपर उलटे कमल की कलाकृति स्पष्ट दिखती है। सिन्हा और झा ने इसको पुरातत्विय दृष्टि से यह सिद्ध किया की वह सम्राट अशोक स्तंभ का ऊपरी हिस्सा है, जिसे अब ब्राह्मणों ने शिवलिंग कहकर पूजा में लाया है।[10] नागेश्वरनाथ मंदिर के अंदर के मौर्य स्तूप सामने आने से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण को मिथकों के पीछे भागना बंद करके ऐतिहासिक बौद्ध और सम्राट अशोक की साकेत अथवा अयोध्या यह बुद्धभूमि है, यह घोषित कर देना चाहिए था। ऐसा उन्होने क्यों नही किया? इसपर अलग से लिखूंगा। मगर यह संदर्भ इस चैप्टर में पुरातात्विक सबुत के तौर पर ध्यान रखा। बी.पी. लाल का संदर्भ आया है इसलिए उनके वास्तविक चरित्र को उजागर करने वाला तथ्य अब सामने आया है। निजी तौर पर कुछ खास लोगों को मि.लाल यह कबूल करते थे कि अयोध्या में राम की कोई चीज नहीं, वहाँ बुद्ध ही है। मगर सार्वजनिक स्थल पर वे इस जगह को रामस्थल कहते थे। हुआ ऐसा कि प्रख्यात पुरातत्वविद डॉ.वर्मा ने उनकी निजी बात को नागपुर के समारोह मे भंडाफोड कर दिया। उसके गवाह डॉ.भाऊ लोखंडे थे, उन्होंने अपनी किताब में उस बात का जिक्र किया है – ''इसी संदर्भ में पुरातत्वविद डॉ.वर्मा की दी हुई जानकारी याद आती है। वे कहते हैं, ''डॉ.बी.लाल ने अयोध्या में उत्खनन किया। मैने उनसे पूछा प्रभु रामचंद्र के संबंध में आपको कुछ सबूत मिले क्या? इस पर उन्होंने जो उत्तर दिया वह मार्मिक ही नहीं, अपितु यथार्थपूर्ण भी है। डॉ.लाल ने उनसे कहा, ''मुझे उत्खनन में श्रीराम संबंधी कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ, परंतु यह सत्य यदि मैने बताया तो अयोध्या के पंडे पुजारी मुझे चिर-फाड़कर खा जायेंगे, जीवित नहीं छोडेंगे।'' ''अयोध्या यह वास्तविक बौद्ध स्थल है, यह बात डॉ.लाल ने कबूल की थी। बस वह सार्वजनिक नहीं, बल्कि निजी तौर पर की थी।''

सन् 1986 में केंद्र की काँग्रेस सरकार के इशारे पर फैजाबाद जिले के जज कृष्णमोहन पांडे ने काले बंदर ने उनका हृदय परिवर्तन किया और दैवी साक्षात्कार हुआ, ऐसा कहकर विवादित जगह का ताला खोलने का ऑर्डर दिया था। इसपर उस समय विभिन्न स्तर पर प्रतिक्रिया हो रही थी। डॉ.भाऊ लोखंडे ने अपनी किताब में यह भी सबूत प्रस्तुत किया है कि प्रसिद्ध साहित्यविद पंडित जगन्नाथ उपाध्याय ने कबूल किया था कि अयोध्या मूलतः बौद्धों की है। वह एक प्रमाण के तौर यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।-

''मै स्वयं 1986 के फरवरी माह के प्रथम सप्ताह में आयोजित 'अखिल भारतीय,

महाकवि अश्वघोष परिषद' लखनऊ और आस-पास के परिसर में दिवाली की रोशनी नजर आ रही थी। कितने सालों बाद अयोध्या के राम मंदिर का ताला खुलने के कारण घर-घर में हिंदू बांधव खुशियां मना रहे थे। स्वभाविक ही परिषद में उपस्थित विद्वान ब्रह्मणों में उत्साहपूर्ण चर्चा शुरु हो गई। बहुतों के चेहरे अत्यानंद से पुलकित हो गये थे। तब एक तिलकधारी पंडित अभिमान से कहने लगा, ''आखिर हिन्दुओं को न्याय मिल ही गया।'' तब बनारस संस्कृत विद्यापीठ के प्रकाण्ड पंडित जन्मजात ब्राह्मण जगन्नाथ उपाध्याय अत्यंत शांतचित्त से अपितु करारी मुद्रा बनाकर करारे स्वर में बोले, ''अयोध्या का राम मंदिर न तो हिन्दुओं का है और न मुसलमानों का है, अगर सही मायने में ईमानदारी से देखा जाय तो वह प्राचीन ऐतिहासिक धर्म स्थल मूलतः केवल बौद्धों का है। पहले हिन्दुओं ने उस पर कब्जा किया और बाद में मुसलमानों ने और फिर हिन्दुओं ने।'' यह सुन सभी की ऐसी दशा हो गई मानों काटो तो खून नहीं।, जैसे काशी के गागाभट्ट ने अंतिम निर्णय सुनाया हो। सभी को जैसे सांप सूंघ गया हो। क्षणभर के लिए ऐसा सन्नाटा छा गया यदि सुई भी गिरे तो आवाज हो। किसी के मुंह से एक शब्द भी न निकल सका। उपाध्याय जी आवाहन देते हुए आगे कहते हैं ''अगर आज भी हम निःपक्ष रुप से उत्खनन करते हैं तो उस स्थल पर केवल बुद्ध के ही पुरातात्विक अवशेष प्राप्त होंगे।[12] ''अयोध्या बौद्ध स्थल ही है, यह इसका और एक प्रमाण है।

अयोध्या का उत्खनन रिपोर्ट (2002-03) क्या कहता है?

''दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद का ढांचा गिराया गया। वह सब सुनियोजित था। कांग्रेस का विश्व हिंदू परिषद को पहले से ही समर्थन था। पी.वी.नरसिंह राव पल-पल की खबरें लेते थे। बाबरी मस्जिद गिराने के दशक बाद सन् 2003 में विवादित जगह का उत्खनन करने का आदेश इलाहाबाद हाईकोर्ट ने दिया। जैसा कि उस रिपोर्ट में दर्ज है कि- दि. 5 मार्च 2003 के आदेशानुसार, पुरातत्विय सबूत यह विवादित केस के फैसले के लिए महत्त्वपूर्ण होगा ''जो कि, वह कोई भी मंदिर/संरचना थी जो ध्वस्त की गई और उस पर मस्जिद बांधी गई हो'' इसलिए पुरातात्विय विभाग उसका सर्वेक्षण करेगा''

उस आधार पर यह उत्खनन किया गया, ऐसा रिपोर्ट में कहा गया है। शासक जाति ने अपना उद्देश्य पहले तय किया और बाद में लोकतांत्रिक होने का नाटक

किया। बहुत ही कम समय में उत्खनन रिपोर्ट इलाहाबाद उच्च न्यायालय को सादर की गयी। अगस्त 2003 को 574 पृष्ठों की रिपोर्ट सादर की गई। इस पुरातात्विक रिपोर्ट का उद्देश्य भले ही हिन्दू-मुसलमानों के पुराने विवाद का हल ढूंढ़ना हो, मगर एक लंबी बहस के बाद सन् 2009 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने आस्था और श्रद्धा का हवाला देकर वैदिक ब्राह्मणों के पक्ष में फैसला सुनाया। वह रिपोर्ट एक तीसरे पक्ष के समर्थन में आ गयी थी और वह तीसरा पक्ष बौद्धों का पक्ष था। न्यायपालिका निरपेक्ष है, न्यायपालिका संविधान से बंधी है, मगर न्यायपालिका ने आस्था और श्रद्धा को सर्वोपरी माना। खैर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग भी एक पुरानी संस्था है और इसके भी कुछ बुनियादी सिद्धांत हैं। हरि मांझी और बी.आर.मणि के नेतृत्व में यह रिपोर्ट तैयार की गई। उन्हे उस कार्य में 22 सहयोगियों ने सहयोग किया। उस रिपोर्ट में बौद्धों के संदर्भ में ढेर सारे तथ्य पर ही हम ज्यादा ध्यान देंगे। क्योंकि, उसे पुरातात्विक प्रमाण के तौर पर यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। विवादित जगह पर लगभग 90 जगह गड्ढा खोदा गया। ढेर सारे गड्ढों को छोड़ा गया। यइ इस तरह है-23 से 25, 28 से 32, 34 से 36, 40 से 42, 47 ये 55, 58, 60 से 62, 66, 67, 70 से 72, 75, 76, 79, 82 इ. यानी उस जगह पर पूर्णतः उत्खनन कार्य नहीं किया गया।

रिपोर्ट खंड 1 के पृ.51 पर 'विवादित ढाँचा' नाम से एक स्वतंत्र परिच्छेद है। जिसमें दिवार क्र. 5 के बगल में पहले के दो सुशोभित किए हुए वालुकामय पत्थर के दो ब्लॉक दिखाई पड़े, जिसपर फूलों के आकार के मकर का चिन्ह उकेरा हुआ मिला। **इसके आगे यह भी स्पष्ट किया गया कि वहाँ जो स्ट्रक्चर मिला वह वैसा ही था जैसा कुमार देवी ने सारनाथ में जो धम्मचक्र राजे महाविहार बनाया था।**[13] अब सवाल है कि वह स्ट्रक्चर गहड़वाल साम्राज्य की रानी कुमार देवी से संबंधित है तो वह बौद्धस्थल ही है, यह अपने आप सिद्ध हो जाता है। जो कुमार देवी सारनाथ में महाविहार बनाती है वही रानी अयोध्या में राम मंदिर बनाएगी? इस सवाल का जवाब एक स्वतंत्र चेप्टर में देंगे। क्योंकि, वह पुरातात्विय आधार पर बहस से सिद्ध करने की बात है।

एएसआई की रिपोर्ट खंड 1 के पृ.70 पर 'The Ciruler Shrine' नाम से मुद्दा है, जिस पर इलाहाबाद होईकोर्ट में काफी बहस हुई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने भी उसे अपने फैसले में दोहराया है। 'The Ciruler Shrine' का हिन्दी में अर्थ गोलाकार स्मारक होता है। उसका हिन्दी शब्दकोश में पगोडा या मंदिर के साथ-साथ तीर्थ

स्थान, पवित्र स्थान, समाधि, पवित्र अस्थियाँ रखने की डिबिया, पुण्यस्थान, पवित्र द्रव्यागार, ऐसे अर्थ हिन्दी शब्द कोश में बताए गए हैं। Shrine का वैसा सीधा मतलब स्तूप भी होता है। पुरातत्व विभाग उस गोलाकार स्मारक को उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती में जो मिले उसी की भाँति वह है, ऐसा रिपोर्ट में लिखा है। वह लगभग 5 मीटर का घेराव किया हुआ स्मारक है और उसके मध्य में बीचोबीच 2.20 चौरस मीटर आकार का चबूतरा हैं। ''जिसपर बिच में शिवलिंग स्थापित किया हुआ है, ऐसा दिखता है।'' अब मणि और माँझी ने उस गोलाकार स्तूप को शिवलिंग घोषित करने की ठानी ही थी। मध्य प्रदेश, उ.प्र. आदि के प्रमाण दिये गए। अयोध्या में पाए गए स्थान पर वह गोलाकार स्मारक का समय दसवीं शताब्दी में माना गया। सारनाथ पर मणि ने एक किताब 'Sarnath Archeology Art and Architecture' नाम से सन् 2006 में प्रकाशित की थी, जिसमें पृ.42 पर बुद्ध स्तूप के लिए Shrine शब्द का ही प्रयोग किया है। (पृ.42) इलाहाबाद हाईकोर्ट में मुस्लिम वकील ने वह किसी मंदिर के अवशेष है इसका प्रतिरोध किया और उसके लिए पाँच दलिलें दी। जिसमें 3 नंबर पे कहा था कि- ''ASI के आखीव आकृति के अनुसार पेश की गई संरचना यह एक बड़े गोलाकार संरचना का केवल एक चौथाई हिस्सा है। इस तहर की संरचना मुस्लिमों के बांधकाम के रुप में दिवारों में खासतौर पर दिखाई देती हैं।''

''यह स्मारक 6 या 7 वीं शताब्दी का बौद्ध स्तूप भी हो सकता है।'' इसपर इलाहाबाद हाई कोर्ट ने मुस्लिम पक्षकार वकील का ऑब्जेक्शन रिजेक्ट करके कहा -''रिपोर्ट में उपरोक्त गोलाकार संरचना प्राप्त हुई है। उसे मुस्लिम पक्ष के बहुत से विद्वानो ने नकारते हुए थोड़े अधिक प्रमाण में स्वीकार किया और मुद्दे से लक्ष्य विचलित करने के लिए वह संरचना बौद्ध स्मारक (स्तूप) होगा या फिर इस्लाम धर्म की धार्मिक मजार होगी। DW30 उन्होंने पेज 15 पर स्प्ष्टतः से यह बात मान्य की है कि उन्होंने ऑफिड्यूट के पैरा 14 में ऐसा कहा है कि वह संरचना उन्होंने प्रत्यक्ष रुप से देखी नहीं है केवल फोटो देखकर वह अनुमान किया है।''[14] भारतीय पुरातत्विय सर्वेक्षण रिपोर्ट में जो छायाचित्र दिए हैं उसमें तो वह साफ तौर यही सिद्ध होता है कि वह बौद्ध स्तूप ही है। रिपोर्ट के कर्ताओं ने ठोस नहीं कहा कि वह शिवलिंग ही है। उन्होंने केवल अनुमान जताया है। अगर वह शिविलंग है तो उसके नीचे का हिस्सा ईंटो से इतना उठवादार क्यों है? उपरी हिस्सों मे जो छेद नजर आता है वह बौद्ध स्तूपों में ही होता है। पल भर के लिए मान भी लिया जाए की वह शिवलिंग ही है तो वह

राम मंदिर कहां से हुआ? वह तो शिव मंदिर हुआ। खिंचातान करके उस जह पर मंदिर था चाहे फिर वह कोई भी क्यों न हो, यह सब शासक जातियों की चाल थी। बहरहाल पुरातात्विक अध्ययन के आधार पर वह बौद्ध स्तूप ही था, यही पता चलता है।

हजारों की तादात में विवादित ढ़ांचे के नीचे त्रिरत्न मिले, इसका क्या अर्थ होता?

एएसआई की रिपोर्ट में पृ. 85 पर क्या लिखा है देखें-

''कालखंड III''-

मिट्टी के बर्तन की कार्यकुशलता के बारे में विचार किया जाए तो इस कालखंड में ढेर सारी मात्रा में ऐसे मिट्टी के बर्तन मिले हैं। (फीगर 33-39) और प्लेट 69-70) यह मिट्टी के बर्तन मुख्यतः लाल रंग के हैं। उनकी रचना मध्यम है और उसका पेंदा बड़े आकार का है। फुलदानी मध्यम से बड़े आकार का है। उपर्युक्त मिट्टी के बर्तन मध्यम से अच्छी तरह भुने हुऐ हैं। स्लिड रेड वेअर यह आकर्षक ऐसे बर्तन है। खास आकर्षक ऐसे ऐसे मिट्टी के बर्तन यानी पुष्पपात्र के दो आकार के जो एक की गर्दन मोटी है तो दूसरे की गर्दन आगे-आगे बड़ी होती गई है। दोनों पर भी भारी मात्रा में नक्षीकाम किया गया है, जिसमें दोनो साईड में पूर्ण खिला हुआ सूर्य फूल है और साथ मे त्रिरत्न है। वह नली की तरह होकर ऊपरी हिस्से मे मकर के आकार का खुला है। मुह में दाँत उकेरे गए हैं कि वह पुष्पात्र जिंदा मकर की तरह दिखे।''[15]

फीगर-33, फीगर-34 में भी त्रिरत्न चिन्ह पाये गए, ऐसा उक्त रिपोर्ट में जिक्र है।[16] वैसे आकृति 33 से 39 तक त्रिरत्न चिन्ह जो बुद्ध, धम्म, संघ का प्रतिक है वह पाए गए हैं, यह स्पष्टता से लिखा गया है। पुराविद यह बात तो मानते ही हैं कि त्रिरत्न बौद्ध धम्म की एक निर्विवाद पहचान है। सांची के शिल्पों में चक्र के साथ-साथ त्रिरत्न के भी चिन्ह पाये जाते हैं। जैसे की सांची के शिल्प पर जो चक्र है वह सारनाथ के अशोक स्तम्भ जैसा कमल है, जिसकी पंखुड़ियाँ नीचे की ओर झुकी हुई है। इस पर जो चक्र है उसमें बत्तीस तिली है और साथ में ही चक्र के उपर बत्तीस त्रिरत्न है। त्रिरत्न बहुत ही आकर्षक बनाया होता है, उसमें तीन नोकें निकली रहती हैं। वह निर्विवाद बुद्ध, धम्म, संघ का प्रतिक है। ''कभी-कभी यह चक्र की छोटी सी आकृति टिले पर बनाए जाती थी। इस प्रकार का चक्रयुक्त त्रिरत्न उस युग के शिल्पियों के लिए केवल एक प्रतीक ही नहीं रहा था, अलंकरण भी बन गया था।

भरहूत के आकर्षणों में त्रिरत्न की डिजाईन दिखाई देती है। तोरणों में सबसे ऊपरी भाग मे चक्रयुक्त त्रिरत्न की विशाल आकृति आंकी जाती थी। सांची के इस दृश्य में चार राजा अपनी पत्नियों सहित चक्र की उपासना करने आये हैं, वे हाथ जोड़े खड़े हैं। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों तथा भरहूत के शिलालेख के अनुसार यह चारों दिशाओं के लोकपाल हैं जो भगवान बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन के समय आ गए है। चक्र के ऊपर भी छत्र तना है, जिसमें मालाएं लटक रही हैं। विद्याधर उस पर फूल-मालाएं चढ़ा रहें हैं। यह करने के लिए ही शिल्पियों ने स्तम्भ के नीचे हिरनों की टोली दिखा दी है। यह अर्थपूर्ण चित्र दक्षिणी ओर के तोरण स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। ह्युएनत्संग ने प्राचीन भारत में त्रिरत्न की पूजा भारतीय लोग आमतौर पर करते थे, यह देखा था। अयोध्या की विवादित जगह के नीचे जो सामग्री मिली और उसमें भी जो मिट्टी के बर्तन मिले हैं, उसके ऊपर जो त्रिरत्न चिन्ह पाये गए हैं वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वह उस बात का प्रमाण है कि वह स्थान पुरातात्विक आधार पर बौद्धों का है। फीगर 33 में मिट्टी के बर्तन पर 6 त्रिरत्न चिन्ह है और 27 फूलों के चिन्ह हैं। प्रतिभाधारक के अध्ययन में इनके निश्चित अर्थ हैं। 6 संख्या का बौद्धों की संकल्पना में अर्थ है कि - शाक्यमुनि तथागत बुद्ध सम्मारम्भ बुद्ध हैं। उनके साथ पाँच बुद्ध होते हैं जो लोगों को निर्वाण पथ दिखाते हैं। तथागत बुद्ध के पूर्व 6 बुद्ध माने गए हैं। वे हैं - विपस्सी, सिखी, वैस्सभ, क्रकुच्छंद, कोणागमन और कश्यप। अंजता में इस संदर्भ में एक शिलालेख भी है और उसके पश्चात 24 बोधिसत्व हो गए हैं, यह मान्यता है। यह भी मान्यता है कि बुद्ध पूर्व 27 बुद्ध हो गए। फूल के आकड़ों की संख्या 27 दिखाई देती है। फीगर 33 और 34 के प्रतीक चिन्ह का अर्थ बौद्धों के दर्शन से संबंधित है।

फीगर 34 के बारे में लिखा है कि - ''लाल रंग के सुशोभित पुष्यपात्र के ऊपर का हिस्सा दिखाई देता है, उसकी कड़ी (किनार) टूटी है और गर्दन मध्यम आकार की है। उसकी साइड चौरस चौकोन आकर की होकर उसपर चौरस पट्टे में फूलों की मुहरें विशिष्ठ अंतर पर मारी गई है। निचले हिस्से पर त्रिरत्न के चिन्ह की मुहर स्पष्टता से दिखाई देती है।''[18]

इस रिपोर्ट के विश्लेषण में भले ही बौद्धों के प्राचीन अवशेषों का जानबूझकर अनुल्लेख किया हो, लेकिन चौथे चेप्टर के Archhitectural Fragments के अंतर्गत जो की पुरातत्वीय चीजों की लिस्ट छापी है उसमें यह बात दर्ज है कि ढेर मात्रा में त्रिरत्न और कमल तथा चक्र मिले हैं। यह बात क्या सिद्ध करती है? यही सिद्ध करती

है कि यह बौद्धो की वास्तू है?

कमल, चक्र, हाथी

चक्र का महत्त्व हमने ऊपर देखा ही है। यह चक्र बुद्ध के धम्मचक्र प्रवर्तन के संबंध में है। बुद्ध के चरण चिन्ह पर भी चक्र की प्रतिमा आंकी गई है। हिरण, भिक्खुओं का प्रतीक है। सम्राट अशोक ने धम्मचक्र गतिशील किया था। यही प्रेरणा बौद्ध रानी कुमार देवी गहड़वाल तक दिखाई देती है। कमल के क्या मायने है? कमल बुद्धत्व का प्रतीक है। कमल किचड़ में रहते हुए भी पवित्र है, शुद्ध है। तथागत बुद्ध को शिल्प के प्रतीकों में हाथी के रुप में दिखाया है। महामाया के सपने में सफेद हाथी का दृश्य शिल्पो में बुद्ध के प्रतीक रुप में दिखाया है। रामपुरवा के स्तम्भ पर चौकी गोलाकार है। उस पर पक्षी का चित्रण दिखाई देता है। चौकी के ऊपर एक शेर शान से बैठा है। रामपुरवा के दूसरे स्तम्भ पर बैल की आकृति है। उसके नीचे गोलाकार चौकी पर कमल पुष्पों और कलिकाओं का अलंकरण है। भरहूत और सांची में कमल के चिन्ह अधिक मात्रा में आंके गए हैं। बौद्धों के शिल्प कला में कमल त्रिरत्न और चक्र अधिक मात्रा में पाया जाता है। भारतीय शिल्प के ये अलंकार भी थे और भारतीय दर्शन के आधार भी थे।

अयोध्या उत्खनन रिपोर्ट में कमल के कई प्रमाण दर्ज किये गए हैं। ''86) एक शिल्प का हिस्सा मिला है। उसपर कमल के कली का टुकडा है और उसपर कमल के आकर्षण आंके गए पंखुडियाँ भी दिखाई देती है।''[19]

इस रिपोर्ट के अंदर पृ.140 पर नोट नं. 122 पर मानो सम्राट अशोक के स्तम्भ का ही वर्णन है, जिसमें कमल पुष्प का जिक्र है।

''122) यह स्तम्भ काले पत्थर से बनाया गया है, जो उसके दो टुकड़े हुए हैं। स्तम्भ के मलस्थानक पर वह टूटा हुआ है। स्तम्भ का आकार चौरस है। उसपर अत्यंत आकर्षण घटपल्लव उकेरी गई है। उसका सबसे आकर्षक हिस्सा यानी स्तम्भ के ऊपरी हिस्से पर झुका हुआ गण (मानवी आकृति) (जो एक यक्ष है) जो अपने हाथों से छत का भार संभालता हुआ दिखाई देता है। स्तम्भ के घट हिस्से में आकर्षक ऐसा गोलाकार हिस्सा, जिसपर कमल आंका गया है और मध्य हिस्से में पुष्पमाला आंकी गई है। स्तम्भ के चारों हिस्सो में पल्लव डिजाइन का किर्तीमुख उकेरा गया है। उसपर अष्टकोण का डंडा छोटा होता हुआ दिखता है। सबसे आकर्षक बात यह है कि पल्लव और फूलों की नक्काशी भी उसके उपर छोटी-छोटी आकार होती जाती है।

मगर बीच के हिस्से की नक्काशी नष्ट कि गयी है। ऊपर कहे गए मलस्थान (निचला स्थान) अष्टकोण जैसा बनया गया है, जिसपर फूलमाला दिखाई देती हैं। उसके आगे स्तम्भ के गर्दन के पास के हिस्से पर कुछ अष्टकोण नक्काशी दिखती हैं। गर्दन के ऊपर स्तम्भ का डंडा फिर चौकोन हिस्से में परिवर्तित होता है। उसके मध्य में स्पष्ट रेखाएं दिखती है।''[20]

यह सारी नक्काशी बौद्ध प्रतिकों से संबंधित है और दुःख की बात है कि वैदिक ब्राह्मणों ने उसे वैदिकों की बताकर अपना उल्लू सीधा कर लिया। आज तक का वैदिकों का यह धोखेबाजी का इतिहास रहा है। रिपोर्ट में कमल से संबंधित एक-एक जानकारी मिली है-

''164) 40-विकृत किये गये सिलिंग स्लॅब के पत्थर पर उसके बीचोबीच कमल पुष्प की नक्काशी दिखाई देती है। वह तीन समकेंद्री गोलाकार हिस्सो में आंके गए हैं। उसके परिध भिन्न-भिन्न हैं। उसकी गोलाकार नाभी मध्य में है। यह कमल की नक्काशी तोड़फोड़ की गई है। बीच वाले कमल के टुकडो के आठ कमल पंखुडियाँ के हिस्से दर्शाते हैं। हरेक सर्कल में कमल की 16 पंखुडियाँ होती है। उसके साथ-साथ स्लॅब का टूटा हुआ हिस्सा भी आप देख सकते हैं।''[21]

इसके साथ में इसी रिपोर्ट में एक और नोट पाई गई है, जिसमें कमल के साथ-साथ चक्र भी पाया गया है।

''165) 41 बॅकेट का एक ही हिस्सा है, जिसपर ऊपरी हिस्से में फिरता हुआ चक्र है और उसके नींचे अत्यंत आकर्षक कमल पुष्प है। यह नक्काशी वालुकामय पत्थर पर कि गई है।''[22]

रिपोर्ट के 105 नोटिंग गुप्त काल के समय में हाथी का जिक्र है।-

''105) हाथी की पीठ, पेट और कान टूटी हुई स्थिति में पाया गया। गुप्तकालीन समय।''[23] अब आश्चर्य की बात है कि आगे मौर्यकालीन हाथी के टूटे हुए शिल्पों का जिक्र आया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वह अत्यंत प्राचीन होने के कारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

''124) रजि.न. 1225-

हाथी का टूटा हुआ सिर, जिसपर सिर का ऊपरी हिस्सा, आंखें और बाया कान स्पष्टतः दिखाई दे रहा है। मौर्यकालीन स्तर का उत्खनन।''[24]

मौर्यकालीन हाथी के संबंध में एक और जिक्र आया है-

125) रजि.न. 1239 – ''हाथी के सिर का पिछला हिस्सा अंदर से खोखला है उसे दो पैर चिपके हुए हैं। मानवी शरीर के दो पैर हाथी के पिछले दो पैर से सटे हुए हैं। –मौर्यकालीन।[25] रिपोर्ट खंड 1 के पृ.192 पर 58, 59, 60, 61, मुद्दों पर गुप्त काल और गुप्तोत्तर काल के ढेर सारे हिस्से मिले हैं। सबसे प्राचीन अवशेष ज्यादा से ज्यादा मौर्यकालीन यानी ईसा पूर्व तीसरी सदी के मिले हैं। अब सवाल है कि इन मौर्यकालीन अवशेषों को तोड़ा किसने? और क्यो तोड़ा?

यह प्राचीन मौर्यकालीन अवशेष पुष्यमित्र शुंग ने ही तोड़े होंगे। बौद्ध और मौर्य का वह दुश्मन था। बौद्धों के सबसे बड़े केंद्र साकेत पर इसी पुष्यमित्र शुंग ने हमला किया था। इन टूटे हुए अवशेषों पर मांझी और मणि जैसे पुरातत्व विशेषज्ञो ने कोई भी भाष्य नहीं किया, यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। पुरातत्व विभाग का यह नया हमला है?

विवादित ढांचे से प्राप्त हुए प्राचीन शिलालेख उस जगह का कौन मालिक है यह सिद्ध करता है–

मौर्यकालीन तथा बौद्ध सबूत–

नक्काशी कांच का हिस्सा–

''रजि.नं.778) लाईट ब्लू कलर में बटन के आकार का एक कांच का हिस्सा (टुकड़ा) है (शायद यह कांच के रिंग का एक टुकड़ा होगा) जो दो हिस्से में दिखाई देता है। (बाद के समय में उसे झुकाया गया होगा) उसपर ईसा पूर्व तीसरी सदी के ब्राह्मी अक्षर में उकेरे गये दो शब्द स्पष्टतः दिखाई देते हैं। उन दो अक्षरों को मिलाकर ''सिद्धे'' शब्द बनता है।''[26]

ब्राह्मी यह मूलतः पाली भाषा ही है। सम्राट अशोक ने अपने शिलालखों में इस भाषा का जिक्र 'धम्मलिपी' ही किया है। मौर्यकालीन शिलालेख की भाषा जॉन प्रिन्सेस ने डीकोड किया था। इतने वर्ष बीत गए, मगर ब्राह्मणों के कारण वह प्राचीन भाषा और वह महान सम्राट लोगों के दिमाग से ही मिट गया था। सम्राट अशोक के शिलालेख से ही प्राचीन भारत का वास्तविक इतिहास तारिखों के साथ सामने आया। इसलिए उनकी धम्मलिपी और उनके शिलालेख ब्राह्मणों के लिए आज भी सिरदर्द बने हुए हैं।

''नं.4 (रजि.नं.571) भूने हुए मिट्टी के काले रंग की गोल आकार की एक मुद्रा

मिली है, जिसपर दूसरी सदी के पाँच ब्राह्मी अक्षर हैं।– ''धम्ममीतासा।''[27]

''नं.5 (रजि.नं.987) भूने हुए मिट्टी के डार्क ब्राऊन कलर की एक टूटी हुई मुद्रा प्राप्त हुई। उसके बिच का हिस्सा टूटा होने के कारण कुछ अक्षर नष्ट हो चुके हैं। उसके ऊपर के केवल दो ही अक्षर दिखाई देते है। वह है – (.. ना सा..) यह अक्षर ब्राह्मी लिपि के हैं।''[28]

अब दो और प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जो विवादित ढांचे के नीचे प्राचीन बौद्ध समय के ब्राह्मी (धम्मलिपि) के सबूत मिले हैं–

''नं.7 (रजि.नं. 1033) भूने हुए मिट्टी की दो मुद्रा और उसपर ऐसी दो मुहर मिली है जिसमें पहले मुद्रा आकार अंडाकृति गोल है और उसपर कुछ खास चिन्ह बनाये गए हैं। लेकिन, वह मुद्रा काफी टूटी हुई है। उसपर तीसरे शतक का ''पा हा'' अक्षर उकेरा गया है।''[29]

''नं.1 (रजि.नं.478) – ऊंचे ढेर के दक्षिण के हिस्से में एक तांबे की मुद्रा मिली है। अयोध्या के स्थानीय शासक ने शायद बनाई होगी। उस मुद्रा का ऊपरी हिस्सा– बाये और बैल अपना मुह आगे करके खड़ा है और उसके नीचे 'विजयमितासा' अक्षर उकेरे गए हैं। मुद्रा का दूसरा हिस्सा–मुर्गा और ताड़ का पेड़ संदर्भ–एस.आर.गोयल The Coins is ansiant India, जोधपुर, 1995'' पृ.182, प्लेट–9)

''यह मुद्रा आर्यमित्र की होगी जो विजयमित्र की मुद्रा की तरह दिखती है।''[30]

मौर्यकालीन याक्षिणी की प्रतिमा–

अयोध्या के उत्खनन रिपोर्ट में यह बात भी दर्ज है कि ईसापूर्व तीसरे शतक यक्षिणी की प्रतिमा पाई गई, लेकिन जिसका सिर टूटा हुआ था यह एक बहुत ही महत्वपूर्व सबूत है। यक्ष बौध्दों की प्राचीन परंपरा है। रामायण, महाभारत में यक्षों को ही शत्रू दिखाया है। बुद्ध को जिन या यक्ष ही माना जाता है। बौध्द धर्म को यक्षों ने यानी नाग लोगों ने स्वीकारा था। प्राचीन पुरातात्विय शिल्पों में यक्ष या नाग दम्पत्ति के शिल्प अत्याधिक मात्रा में पाए जाते हैं। पाटलिपुत्र में भी यक्षिणी का मोहक शिल्प मिला था। साकेत में वैसा ही मौर्यकालीन यक्षिणी का प्राचीन शिल्प होना ही यह इस बात का सबूत है कि वह मौर्यो की विरासत है। यक्षिणी का टूटा हुआ हिस्सा इस बात का सबूत है कि वह बाद के समय में वहां पर विधर्मियों का हमला हुआ होगा। पुष्यमित्र शुंग का ही वह हमला हो सकता है।

विवादित ढाँचे के नीचे बुद्ध से संबंधित मिले हुए अवशेष

अयोध्या विवादित जगह उत्खनन शुरु हुआ था, तब यह भी कयास था कि उसमें बुद्ध अवशेष मिलेंगे वैसा ही हुआ। TV 9 में भारत वर्ष Live प्रोग्राम में यह दिखाया गया था कि सबूत नं 3 विवादित ढाँचे के खुदाई में मिली बुद्ध की प्रतिमा हैं। एंकर भी कह रहा था कि उस प्रतिमा का हाँथ टूटा हुआ है और उस मुर्ति के साथ चेहरा भी मिला है यह दिखाया जा रहा था। यह तो खबरों की बात हुई। मगर, भारतीय पुरातत्व विभाग का अयोध्या उत्खनन रिपोर्ट - 2002-03 क्या कहता है? यह जरा देखते हैं।

'चीवर' का जिक्र -

रिपोर्ट के 181 पृष्ठ पर 'Chivara' के संबंध में यह बात दर्ज है-''क्र. 42. रजि.नं. 933 - चबूतरे पर खड़ी मानव मूर्ति जिसकी कमर का ऊपरी हिस्सा टूटा है और नीचे पूरे शरीर पर परिधान किया हुआ चीवर दिखाई पड़ता है। पैर की उँगलिया स्पष्ट दिखाई दे रही है। यह मूर्ति छठीं शताब्दी की है।''[32] चीवर बौद्धों से ही संबंधित है यह कहने की जरुरत नहीं।

बुद्ध से संबंधित मूर्तियाँ

बुद्ध से संबंधित गुप्तकालीन मूर्ति विवादित ढांचे के नीचे प्राप्त हुई है, जिसका जिक्र रिपोर्ट में है- ''क्र.51 रजि.नं. 1069 - मानवी मूर्ति जिसके कमर का ऊपरी हिस्सा और जंघे के नीचे का हिस्सा टूटा हुआ है। बायाँ हाथ घुटने पर टिका हुआ है। दाहिना हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ है। अच्छी मिट्टी का इस्तेमाल करके मूर्ति का हिस्सा स्पष्ट बनाया है। गुप्तकालीन मूर्ति।''[33]

यह बुद्ध की प्रवचन मुद्रा की मूर्ति है। मगर मणिजी ने उस रिपोर्ट में यह बुद्ध की मूर्ति है, ऐसा डायरेक्ट क्यों नहीं लिखा? इसमें कुछ ना कुछ रहस्य छुपा हुआ है। दूसरी बुद्ध की एक और मूर्ति है जिसमें हाथ पर चक्र है। मथुरा में ऐसी मुर्तियाँ मिलती हैं।

''53) रजि.नं. 1086- पुरुष की मुर्ति स्पष्टतः दिखाई देती है, जिसके बाये हाथ में बीचोबीच छेदयुक्त चक्र दिखाई देता है। सिर पर उष्णीव दिखाई देता है। मजबूत हाथ (जिसमें दाहिना हाथ टूटा हुआ है) पूर्णतः दिखाई देते हैं। पेट बढ़ा हुआ दिखता हैं और बीच में नाभी दिखाई पड़ती है। आँखे आधी खुली है, कान लंबे हैं और होंठ

बड़े हैं। यह मूर्ति दूसरी सदी की (कुषाण) कालीन है।''[34]

कुषाणकालीन प्रतिमा के लक्षण से 53 नं. के नोट में किया गया वर्णन पूर्ण रुप से मिलते हैं। मगर, उस नोट में मणि ने यह प्रतिमा बुद्ध की है, यह लिखने में पुरातात्विक विशेषज्ञ के धर्म का पालन क्यों नहीं किया होगा? क्या उनमें इतनी भी उदारता नहीं है? कुषाणकालीन बौद्ध शिल्प बहुत ही आकर्षक माने जाते हैं। क्योंकि वह कलाशास्त्र की रीति से बनाये गए थे। 'बुद्ध के प्रमुख लक्षणों से उष्णीव शीर्ष, नासाग्रदृष्टि, लंबे कर्णपाश, जालांगुलीय हस्तपाद, चक्रांकित हस्तपाद, विविध हस्तमुद्राएं व वस्त्रविन्यास है।'[35] उसके अनुसार वे सारे प्रतिमा लक्षण अयोध्या में प्राप्त हुए प्रतिमा में दिखाई देते हैं।

शीर्ष उष्णीव का तात्पर्य दीर्घनिकाय के अनुसार पगड़ी के समान उन्नत गोला शीर्ष से है। कुषाण युग से यह संबंधित है। गुप्त काल में वह उभारयुक्त शीर्ष तथा गुप्तोतर काल में वह बनाया गया है। स्टेला क्रैमरिश और एलिस गेट्टी के अनुसार, कलाकारों ने बुद्ध के बुद्धत्व और अलौकिक ज्ञान के प्रतीक के रुप में उष्णीव को शीर्षस्थ पर उभार के रुप में बना दिया है। यह तर्क संगत है। ह्युएनत्संग जलालाबाद इलाके में (नागरहारा) असंख्य बौद्ध स्तूप देखे, जिसमें सम्राट अशोक द्वारा बनाये 300 फीट ऊंचा बुद्ध स्तूप भी देखा। अनेक संघाराम देखे। हिलों अर्थात हिड़ा नामक कस्बे में ह्युएनत्संग ने बुद्ध से संबंधित अत्यंत महत्त्वपूर्ण चीजें देखी। जहाँ दो मंजिलों का मूल्यवान सप्तधातुओं से बना हुआ स्तूप देखा, जिसमें तथागत बुद्ध के सिर की 1 फीट दो इंट की गोल हड्डी देखी। वह वहाँ पवित्र भावना से ही गया था। उसने वहाँ पर बुद्ध का 'उष्णीव' भी देखा था जो छोटे से स्तूप में रखा हुआ था। जिसका वर्णन उसने ऐसा किया है- ''इसकी सूरत कपलपत्र के समान है और रंग सफेदी लिए हुए पीला है तथा यह एक बहुमूल्य डिब्बे में सुरक्षित और बंद है।'' बिल महोदय के अनुसार, वह- ''बौद्धों का एक चिन्ह विशेष है जो सिर पर रहा करता था। वह सिर के बालों का ही होता था।''[36] कुषाण काल में बुद्ध के लंबे कान उन 32 लक्षणों में से एक है।

चक्रांकित हस्तपाद कें संदर्भ में मीरा शर्मा ने कहा है कि-''बुद्ध प्रतिमाओं में हाथ की हथेली एवं पैर के तलवों में बना चक्र बुद्ध के महापुरुष व चक्रवर्ति होने का प्रतीक है तथा इसे भी बुद्ध के 32 महापुरुषों के लक्षणों में से एक माना गया है। बुद्ध के धर्मकाय का पर्याय माना गया है, जहां वो संसार चक्र को चलाने वाले हैं। बुद्ध के धर्मकाय की परिकल्पना पाली ग्रंथ से ही मिलने लगती है। पाली ग्रंथ जैसे दीर्घनिकाय (।।। ,84)', संयुक्त निकाय (20) आदि में बुद्ध को आदित्य बंधू, राजा,

चक्रवर्ती आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है। प्रारंभिक बौद्ध कला में बुद्ध को प्रमुख चक्र के रुप में परिकल्पित किया गया है। बुद्ध के मानवीकरण के साथ बौद्ध कला के चक्रस्तम्भ को कालांतर में प्रतीक स्वरुप चक्रांकित हस्तपदयुक्त बुद्ध प्रतिमा में परिवर्तित कर दिया गया।''[37]

आँख आधी खुली यह बुद्ध का ही पुंडरिक्ष नेत्र का प्रतिक है। सारे वर्णन के अनुसार यह प्रतिमा बुद्ध की ही है। 'पेट बड़ा है', यह वर्णन क्यों किया गया? यह समझ में नहीं आता। शायद जानबूझकर किया हो ताकि लोगों को भ्रमित किया जा सके। कुषाणकालीन बुद्ध की मूर्ति अयोध्या के विवादित ढाँचे में ढेर सारी मिली। यह इस बात का प्रमाण है कि साकेत बुद्ध नगरी है।

बौद्ध स्तूपों, विरासस से प्राचीन भारत के इतिहास का पता चला। फाहियान और ह्युएनत्संग ने बुद्ध स्तुपों को देखने के लिए ही भारत भ्रमण किया। सम्राट अशोक ने 84 हजार सुत्तों की निर्मिती की थी। 84 हजार ही क्यों? तो तथागत बुद्ध ने 84 हजार सुत्तों का निर्माण किया था इसलिए! सम्राट अशोक ने सुत्तों को बहुत महत्त्व दिया था। कलकत्ता-बैराट भाब्रु के शिलालेख में 'विनयसमुकस, आलय वसानि, अनागतभयानि, मुनिगाथा, मोनेयुसत्त, उपतिस पसिन तथा लाघुलोवा (राहुलोवाद) में मुषावाद' इत्यादि में बुद्ध ने जो कहा है या उपदेश किया है उसका स्मरण भी भिक्खुओं को सम्राट अशोक ने याद दिलाया। सुत्त ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण थे यह इस शिलालेख से पता चलता है।

साकेत में कई सुत्तों का निर्माण :

साकेत में तथागत बुद्ध ने अलग-अलग समय 6 वर्ष व्यतित किए थे। तब उन्होंने वहां कई सुत्तों की रचना की। जैसे की- कुकध सुत्त - संयुक्त निकाय में इसका संदर्भ मिलता है। कुंडली सुत्त जो बुद्ध ने अंजनवन के मृगदाय विहार में इसे रचा था। इसमें 7 वाध्यांगो के अभ्यास पर चर्चा की गई है। बुद्ध का कालामों को मंगल कामना का उपदेश भी यही पर दिया था-जिसे केशपुत्र कालामसुत्त कहते हैं। बैररहित चित्त, द्रोहरहित चित्त, निर्मल चित्त, विशुद्ध चित्त का उपदेश और उसके लाभ बताया है। कालाम साकेत राज्य के निवासी माने जाते थे। कहा जाता है कि बुद्ध ने उन्हें 6 मास तक धम्मोपदेश दिया। यही पर बुद्ध ने भिक्खु और चोरी की कथा (विनयपिटक-चुल्लवग्ग 113) बताई है। अर्हतों का घात करने वालो को उपसंपदा नहीं देनी चाहिए, ऐसा उसमें कहा है। जीवक वैद्य की कथा (जीवक चरित-अभिधम्म पिटक), फालतू

चीवर की कथा (महावग्ग-41) की कथा, रथविनीत सुत्त (महावग्ग-41) भी यही पर बताये थे। विशाखा की कथा (धम्मपद भाग-1) खेमा थेरी सुत्त (संयुक्त निकाय भाग-2 गाथा सं.42) खेमा भिक्खुनी शास्त्रार्थ में बहुत निपूण थी। यदेथ सुत्त (संयुक्त निकाय भाग-3, गाथा सं.45) साकेत के कंटक वन का इसमें जिक्र आया है। द्वितीय कष्टकी सुत्त बताया गया है। कुट सुत्त (44.1.7) साकेत सुत्त (संयुक्त निकाय) में पंचबल के संदर्भ में उपदेश दिया है। साकेत के ही अंजनवन मे बुद्ध मेण्डसिर स्थविर को उपदेश दिया था, जिसका थेरगाथा में संदर्भ मिलता है। साकेत में अहिंसा का भी उपदेश किया था-

''जो मुनि लोग अहिंसक, सदा काया में संयम करने वाले हैं, वह (उस) अच्युत स्थान (जिस स्थान पर पहुंचकर, फिर गिरना नहीं होता) को प्राप्त होता है और जहाँ जाकर फिर शोक नहीं किया जाता। साकेत से अश्वघोष का भी संबंध था। बुद्ध साकेत कालकराम विहार में निवास किये थे और वहाँ उन्होंने भिक्खुओं के लिए आदर्श जीवन क्या होता है यह बताने के लिए विनय नियम सुत्त बताये थे। पालि साहित्य में बुद्ध का साकेत के साथ सीधा संबंध था। इसके ढेर सारे संदर्भ मिलते हैं। साकेत जातक नाम से एक जातक कथा भी प्रसिद्ध है।

साकेत में महाविहार, स्तूप होने के कारण वह स्थल अत्यंत, पवित्र माना जाता है। सम्राट अशोक ने तथागत बुद्ध के केस और नाखून को एक स्तूप में रखा था। जिसकी पहचान मेजर जनरल कनिंघम ने की है। जिसका पहले ही जिक्र आया है। स्तूप का जिक्र आया है इसलिए उसका पुरातात्विक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। स्तूप की रचना यह बुद्ध धम्म का एक पवित्र प्रतीक ही है। स्तूप की हर्मिका होती है। वह बुद्ध के संबोधी का प्रतीक माना जाता है। बोधिवृक्ष के ऊपर भी छत तनी हुई दिखाई देती है। उसमें मालाएं लटकती रहती हैं। फूल और मालाएं यह पवित्रता का द्योतक हैं। छत्र सम्मान का भी द्योतक है। सांची और भरहुत स्तूप बहुत विशालकाय है। उनके आकार-प्रकार से पता चलता है कि बुद्ध धम्म के इन स्तूपों ने समुचे देश और राष्ट्र को एक सूत्र में बांध कर रखा है। सम्राट अशोक धम्मयात्रा किया करते थे। इन धम्मयात्रा से प्रेरित होकर आम जनता प्राचीन स्तूप महाविहारों पर इकट्ठा होते थे। ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टिकोण से साकेत पवित्र बौद्ध स्थल है। जहां समुचे देश से बौद्ध लोग इकट्ठा होते थे। सम्राट अशोक ने वहां विशालकाय स्तूप बनाये थे इससे उसकी महत्ता सिद्ध होती है।

●●●

संदर्भ

1. Record of Buddisitic Kingdoms Being an accounts by the Chinis Monk Fahien - Transietion by - Jemes Legge, (1880) पृ.54-55
2. Cunningham's Ancient Geographo of India Edited by- Indranath Mujumdar Sastri, (1924) पृ. 460
3. उपर्युक्त, पृ. 461-462
4. बुद्धभूमी साकेत बनाम रामजन्मभूमी अयोध्या और बाबरी मस्जिद की ऐतिहासिक तहकीकात, लेखक–प्रो.डा.भाऊसाहब लोखंडे, पृ. 13
5. SI-YU-KI, Buddhist Records of the western world (Translated From the Chiness of Hiuen Tsiang (A.D.629) by- Samuel Beal, Londen (1906), पृ. 240
6. Archeological Survey of India - Four Reports made during the years 1862-63-64-65-Vol. I. by- Alexander cunnigham पृ. 322-323
7. उपरोक्त– पृ.324-325
8. उपरोक्त– पृ.325-327
9. Indian Archaeology a Review-1976-77 पृ. 52-53 और Rndian Archoeology a Review- 1979-80, पृ. 76-77
10. Indian Archaeology a Review-1977-78 पृ. 83
11. बुद्धभूमी साकेत बनाम रामजन्मभूमी अयोध्या लेखक–डॉ.भाऊसाहब लोखंडे– पृ.28
12. उपरोक्त– पृ.29
13. Ayoddya : 2002-03 Excavation at the Disputed site Vol. 1, (Text) पृ. 52
14. सर्वोच्च न्यायालय का फैसला, पृ.545
15. Ayoddya : 2002-03 Excavation at the Disputed site Vol. 1, (Text) पृ. 85
16. उपरोक्त– पृ.86
17. Bharhit by cunnigham plate - 14 - I
18. Ayoddya : 2002-03 Excavation at the Disputed site Vol. 1, (Text) पृ. 86
19. उपरोक्त– पृ.127
20. उपरोक्त– पृ.140
21. उपरोक्त– पृ.142
22. उपरोक्त– पृ.143
23. उपरोक्त– पृ.119
24. उपरोक्त– पृ.202
25. उपरोक्त– पृ.202
26. उपरोक्त– पृ.208
27. उपरोक्त– पृ.208
28. उपरोक्त– पृ.209
29. उपरोक्त– पृ.209
30. उपरोक्त– पृ.211
31. उपरोक्त– पृ.177
32. उपरोक्त– पृ.181
33. उपरोक्त– पृ.183
34. उपरोक्त– पृ.183
35. बुद्ध प्रतिमा में प्रमुख प्राथमिक लक्षण एवं उनकी गठन– शैलिया–मीरा धर्मा का शोधनिबंध प्राग्धारा, अंक[6] (उत्तर प्रदेश पुरातत्व संगठन शोध पत्रिका –1995–96) में प्रकाशित लेख – पृ.241
36. SI - YU- KI - Buddhist Records the Western World Translation by - Samual Beal, Oriental Books Delhi Reprint (1969) पृ. 96
37. मीरा शर्मा का शोधनिबंध पृ. 243

नागेश्वरनाथ मंदिर सम्राट अशोक के शेर स्तम्भ को तोड़कर बनाया है!

सम्राट अशोक दुनिया में अद्वितीय सम्राट हुए हैं। सम्राट अशोक ने पूरे विश्व में धम्म का संदेश फैलाया था। आज भी उसके सबुत पाकिस्तान, अफगानीस्तान और ग्रीक तक पाए जाते हैं। सम्राट अशोक के बनाए हुए स्तूप शिलालेख और अशोक स्तम्भ के कारण ही प्राचीन भारत का वास्तविक इतिहास सामने आया। इतिहास की कड़ियाँ जुड़ना आसान हुआ। मगर, हम देखते हैं कि प्रिन्सेप ने अगर अशोक के लिपि को पढ़ा नहीं होता तो भारत का इतिहास ही ब्राह्मण लोग तोड़-मरोड़ देते और सम्राट अशोक का नामोनिशान मिटा देते और उसके स्तम्भ को हनुमान की पूँछ या लठ कह कर इतिहास का गोबर बना देते!

इस सदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात यहाँ बताना चाहता हूँ।-

''अंग्रेजों के इस देश में आने के पहले एक प्रकार से प्राचीन तम विद्याओं के लिए अन्धकार युग हो चला था। यहां के प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता सात-आठ वर्षो तक की पुरानी लिपियों को यथोचित पढ़ लेते थे, परन्तु पुरानी लिपियों को पढ़ना एकदम भूल चुके थे। चौदहवीं शताब्दी में फिरोजशाह तुगलक ने बड़े पश्चिम से टोपरा और मेरठ से अशोक के लेख वाले दो विशाल स्तम्भ मंगवाये थे, परन्तु उन दिनों उस लिपि को पढ़ने वाला कोई पण्डित नहीं मिला। सम्राट अकबर भी इन लेखों का आशय जानना चाहते थे, परन्तु भारत वर्ष में प्राचीन लेखों के पढ़ने की विद्या लुप्त ही हो गयी थी। सर विलियम जोन्स ने अशोक के लिपियों की छाप बनारस के तत्कालीन हाकिम के पास भेजी कि वहाँ के किसी पण्डित से पढ़वायें। एक पण्डित ने उस लेख को युधिष्ठिर के गुप्त बनवास का लेख कहकर पढ़ दिया और पुरानी लिपियों की एक जाली पोथी भी तैयार कर दी। बहुत दिनों तक उस जाली पोथी ने शोधप्रिय पण्डितों को गुमराह किया।''[1] सम्राट अशोक का जिक्र सत्यसंघ कहकर कल्हण की राजतरंगिनी में जिक्र भी आता है। ब्राह्मणों ने सम्राट अशोक और बुद्ध को गाली का रुप दिया था। संस्कृत व्याकरण के नाम पर 'देवनामप्रियदरसी' का अर्थमुख पढ़ाया जाता था। सिद्धान्त कौमुदी के रचयिता भट्टोजी दीक्षित और अभिधान चिंतामणि के रचयिता हेमचंद्र ने सम्राट अशोक को बदनाम किया। हेमचंद्र 12 वीं सदी और भट्टोजी दीक्षित 17 वी शताब्दी में हुआ। 12 वीं सदी में बौद्ध धर्म के प्रति अत्यंत घृणा भाव

रखते हुए अभिज्ञान चिंतामणि में एक संस्कृत में श्लोक लिखा है कि-''देवनाम प्रिय इसका अर्थ महामूर्ख, नीच, दीर्घसूत्री (आलसी और काम में विलंब लगाने वाला) ऐसा जाने.'' सम्राट अशोक को यह लोग जानते थे। बौद्ध धम्म के विषय में द्वेष भावना से ये लोग ऐसा घृणित लिखते हैं। ''बौद्ध धर्म के प्रति उदासिनता और अनादर के वृद्धि के साथ देवनाम प्रिय के मूल अर्थ में विकृति आई उसी तरह जैसे परवर्ती युगों में 'बुद्ध' से 'बुध्दु' बनाए''[3] सम्राट अशोक के प्रति इतनी घृणा की वजह बुद्ध धम्म के प्रति द्वेष भावना है। 12 और 17 सदी के ब्राह्मणों द्वारा लिखा गया संस्कृत साहित्य में देवनाम प्रियदस्सी का संदर्भ सम्राट अशोक के साथ था। यह उन्हे पता होने के बावजूद भी उन्होने अंगेजों के द्वारा खोजे जा रहे सम्राट अशोक के अभिलेख के बारे में अपना मुँह तक नहीं खोला। प्रिन्सेस महोदय का धन्यवाद है कि उन्होंने यह प्रियदस्सी सम्राट अशोक की वास्तविक खोज की! अयोध्या में हम देखते हैं कि सम्राट अशोक के स्तम्भ पर ही ब्राह्मणों ने कब्जा किया हुआ है। कुछ ब्राह्मणों का यह मानना है कि नागेश्वरनाथ मंदिर सफदरजंग के दिवान नवल राय ने बनाया। नागेश्वर नाथ मंदिर स्वर्ग घाट के ऊपर स्थित है। भारतीय पुरातत्व विभाग के सहयोग से ही उस सम्राट अशोक के स्तम्भ अवशेष पर ब्राह्मणों का वर्तमान में भी कब्जा है। यह इतिहास के साथ बहुत बड़ी धोखेबाजी है।

सम्राट अशोक के स्तम्भलेख पर ब्राह्मणों का कब्जा क्यों?

गुप्त काल में खासकर द्वितीय चंद्रगुप्त उर्फ विक्रमादित्य के समय ब्राह्मणवाद को बढ़ावा दिया गया था। मगर इसी राजा ने सांची में भी भिक्खुओं को दान और दीपक का दान दिया था। उसका एक अभिलेख उपलब्ध है। सम्राट अशोक अयोध्या आए थे इसका भौतिक प्रमाण वह स्तम्भ है, जिसपर आज नागेश्वरनाथ मंदिर बनाया जा चुका है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग ने उस पर एक मनगढ़ंत कहानी भी रची है कि राम के पुत्र कुश ने वह मंदिर बनवाया है। ब्राह्मण किसी भी वास्तू पर कब्जा करने के लिए ढेर सारी किवदंतियाँ तैयार करने में माहीर हैं। वर्तमान भाजपा सरकार को वह स्थल क्या है? यह पता होने के बावजूद जानबूझकर एक नई कहानी बनाकर उस प्राचीन स्तम्भ पर नाजायज कब्जा किए हुए हैं। चलो इसकी वास्तविकता को जानते हैं। डॉ.डी.पी.सिन्हा और बी.एस.झा जो पुरातत्व विशेषज्ञ थे, उन्होंने 1977 में नागेश्वरनाथ मंदिर का पुरातात्विक परीक्षण किया। यह कार्य भारतीय पुरातत्व

सर्वेक्षण विभाग द्वारा किया गया था। इस संदर्भ में यह भी रिकॉर्ड किया गया था कि नागेश्वरनाथ मंदिर का शिवलिंग यह शिवलिंग नहीं है, बल्कि वह सम्राट अशोक के स्तम्भ का एक हिस्सा है। सरकारी रिपोर्ट में जो बात दर्ज है वह इस तरह है, – **''68 मौर्यो के कमलयुक्त स्तम्भः अयोध्या जिला फैजाबाद (डी.पी.सिन्हा और बी.एस.झा) मध्य पूर्व मंडलीय सर्वेक्षण के निर्देशन में आया कि स्तम्भ के उलटे आकार के कमल पर मौर्य की कुशल कारीगरी और विशिष्ठपूर्ण मौर्य का चकाकीयुक्त स्तम्भ का उर्ध्व भाग है, जिसे बाद के समय में अयोध्या के स्वर्ग द्वार के नागेश्वर मंदिर में शिवलिंग के नाम पर रुपांतरित किया गया''**[4]

सम्राट अशोक के स्तम्भ का अयोध्या में मिल जाना, यह ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है। 1977–78 में सम्राट अशोक के स्तम्भ की पुरातत्व विभाग ने पहचान की थी। फिर उसके बाद बौद्धों के प्राचीन धरोहर की खोज पुरातत्व विभाग ने क्यों नहीं की? क्योंकि जो शासक वर्ग ब्राह्मण था वह पुरातत्व विभाग के ब्राह्मणों को राजनीतिक मंशा से अयोध्या पर ब्राह्मणों का कब्जा कैसे हो, उस बाबत निर्देश दे रहे थे।

सरकारी रिपोर्ट के अलावा यहाँ एक और सबूत देना चाहेंगे। 1999 दिलीप चक्रवर्ती का 'Archaoelogical Geography of the Ganga Plain' नाम से एक किताब प्रकाशित हुई है। यह किताब पुरातात्विक आधार पर लिखी गयी है। इस किताब में भी यह बात मान्य कि गई है कि नागेश्वरनाथ मंदिर का शिवलिंग, शिवलिंग का रुप नहीं है, बल्कि सम्राट अशोक के स्तम्भ को शिवलिंग घोषित किया है। उनका क्या कहना है, उसे यहाँ शब्दशः उद्धृत करना चाहेंगे–

''फैजाबाद–अयोध्या

25, अयोध्या (63/1) –

प्राचीन अयोध्या के सीमा पर बड़े पैमाने पर गोलाकार टिलों की संरचाना दिखाई देती है। हनुमानगढ़ी प्राचीन काल के सीमा पर खड़ी है जो अब बड़े पैमाने पर नष्ट होने के कगार पर है। उस जगह बड़े पैमाने पर उत्खनन बहुत जरुरी है जो उत्तर भारत का महत्त्वपूर्ण शहरी केंद्र है। उसके द्वारा प्राचीन समय के सीमा के पास जो गोलाकार टिलें हैं उनकी वास्तविक जानकारी मिल सकती है। अशोक के स्तम्भ का ऊपरी हिस्सा अब सरयू नदी के किनारे जो नागेश्वरनाथ मंदिर है उसमें शिविलंग का हिस्सा

बना हुआ है। उसकी संरचना सारनाथ के उलटे कमल के रचना की तरह ही है। इससे मौर्यकाल में अयोध्या का महत्व कितना बड़ा था? इसकी कल्पना की जा सकती है। इस मंदिर के पीछे एक ऊंचा टिले जैसा हिस्सा है, जिसपर अब निर्माण कार्य हुआ है। अगर उस हिस्से का उत्खनन किया गया तो वहाँ सम्राट अशोक के स्तम्भ का ऊपरी हिस्सा तथा अन्य हिस्सा और सिंह मुद्रा भी मिलेगी। ऐसी मुद्रा उस पर शिल्पाकिंत की गई होगी। मगर दुर्भाग्य की बात है कि फिलहाल राम जन्मभूमि के विवाद के कारण अयोध्या के प्राचीन शहर के नाम पर जो उसकी महत्ता है वह धोखे में आ गई है। ... अभी आधुनिक अयोध्या जनआबादी से भरी पड़ी है फिर भी वहाँ उत्खनन किया तो उसमें प्राचीन शहर मिलेगा।

नागेश्वर मंदिर में अशोक के स्तम्भ का शीर्ष भाग और उस मंदिर के पीछे के हिस्से में जो ऊंचाई का हिस्सा है, इससे तो यही स्पष्ट होता है कि सरयू नदी के किनारे अयोध्या के उसी जगर पर अशोक ने बौद्ध स्तूप बनाया होगा। खास बात कनिंघम के द्वारा खोजा हुआ मणि पर्वत इस जगह से ज्यादा दूर नहीं है।''[5]

इस तथ्य और जानकारी से यह प्रमाणित होता है कि नागेश्वरनाथ मंदिर सम्राट अशोक के स्तम्भ पर ही खड़ा किया है। इस जगह तथा मणि पर्वत का ज्यादा अंतर नहीं है। जो बड़े–बड़े स्तूप सम्राट अशोक ने वहां बनाए थे, उसमें से एक स्तूप की जगह नागेश्वरनाथ मंदिर पर है। विवादित जगह के नीचे भी बौद्ध स्तूप ही था। प्राचीन अवशेष इस बात की पुष्टि करते है जो 2002–03 के पुरातत्व विभाग के उत्खनन के रिपोर्ट से पुष्टि मिलती है। पुरातात्विक आधार पर अयोध्या मौर्य की भूमि है, तथागत बुद्ध की भूमि है। इसके बावजूद भी ब्राह्मणवादियों के मिथ्या बातों का क्यो तवज्जों दिया जाता है?

भारतीय पुरातत्व विभाग पर कई सवाल खड़े होते हैं कि वास्तविकता को छोड़कर अन्य मिथ्या बातों को ही उन्होंने इतना महत्त्व क्यों दिया? सही मायने में जब यह पता चला कि नागेश्वर मंदिर में जिसे शिवलिंग बताया जाता है, वह वास्तव में सम्राट अशोक के स्तम्भ का हिस्सा है। यह पता चलने के बाद वहां ईमानदारी से उत्खनन किया गया होता तो सम्राट अशोक का शिलालेख भी मिल जाता। मगर पुरातत्व विभाग सम्राट अशोक स्तम्भ जो राष्ट्र का प्रतीक है उसका अपमान किया, यही सच्चाई है। इससे भारतीय पुरातत्व विभाग पर कई गंभीर किस्म के आरोप लग जाते हैं।

बी.आर.मणि पर सवाल

अयोध्या के विवादित जगह का उत्खनन बी.बी.मणि और हरि माँझी के नेतृत्व में हुआ था। बी.आर.मणि (डायरेक्टर, पुरातत्व, ऑर्कोलॉजी सर्वे आफ इंडिया) ने इलाहाबाद हाईकोर्ट का जजमेंट आने से 3 साल पहले यानी सन् 2007 में पुरातत्व जो पुरातत्व विभाग का बुलेटिन मेग्जिन है उसमें एक शोध लेख प्रकाशित किया था। जिसका शिर्षक – 'A Decade of Crumbling Heritage Ayodhya (1995-2005)' अर्थात ''अयोध्या 1995–2005) : विरासत पतन का दशक'' 'दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद गिराई गई थी। मि.मणि यह जानते हैं कि अयोध्या पर वास्तविक क्या है? वे यह भी जानते हैं कि अयोध्या में सम्राट अशोक की ही धरोहर है। मगर, उक्त लेख में मणि ने 'रघुवंश' का आधार लेकर कालिदास ने जो काल्पनिक राम का बखान किया है उसके आधार पर मणि ने उसे मान्यता देने का असफल प्रयास किया। मणि ने अयोध्या महात्म्य में वर्णन को मानों ऐसा स्वीकार किया कि वह कोई ऐतिहासिक साधन हो। मणि ने उक्त लेख में ब्राह्मणों की वकालत की है। मणि ने यह बात स्वीकार की है कि वह नागेश्वर मंदिर में सम्राट अशोक के स्तम्भ के हिस्से को तोड़कर शिविलंग बनाया। पहले मणि क्या कहते हैं, वह देखते हैं और उसके बाद उनकी बदमाशी को भी उजागर करते हैं।

''नागेश्वर लिंग का पीठ जो निर्विवाद रुप से अशोक के स्तम्भ के नीचे का हिस्सा है, जिस पर उलटे कमल की नक्काशी स्पष्टतः दिखाई देती है। उसके बीचोबीच ऐसा आकार है, जिसमें स्तम्भ का ऊपरी हिस्सा बिठाया जा सके। वही हिस्सा शिवलिंग के तौर पर पवित्र स्थान पर जतन करके रखा गया है। पहला फोटो (Pl.1) यह उसके पूर्ण रुप में 1995 में लिया गया था, जब मैं बस्ती जिले में कुछ जगहों का निरीक्षण करने के लिए उत्तर प्रदेश पुरातत्व संगठन के अधिकारियों के साथ काम कर रहा था।

यह जानकारी मिली थी कि 2003 में शिवरात्रि उत्सव के दरम्यान संपूर्ण पीठ (शिवलिंग) चांदी के नक्काशीयुक्त पत्ते से ढंका जा रहा है और अब आगे से मौर्य का अत्यंत चमकीला अशोक स्तम्भ का नक्काशीयुक्त उठावदार हिस्सा किसी के नजर में भी नहीं पड़ेगा। अभी का फोटो (Pl.1) जो सन् 2005 में लिया गया है। इस तस्वीर में बदला हुआ रुप दिखता है। यह स्पष्ट नहीं है कि अशोक स्तम्भ के ऊपरी हिस्से को षड्यंत्रपूर्वक ढंका गया है या भक्ति भावना से ढंका गया है।''[6]

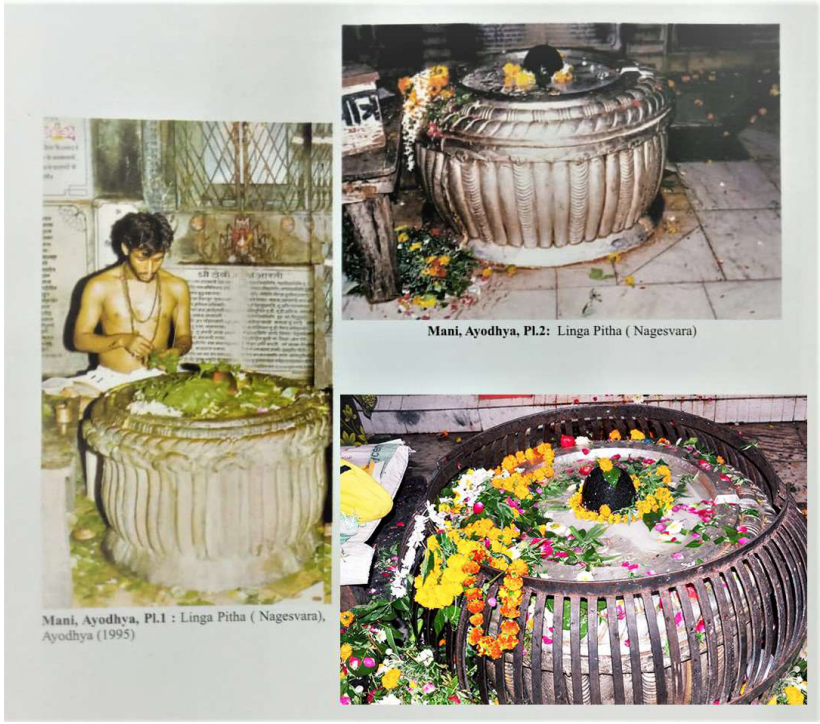

Mani, Ayodhya, Pl.2: Linga Pitha (Nagesvara)

Mani, Ayodhya, Pl.1 : Linga Pitha (Nagesvara), Ayodhya (1995)

बी.पी.मणि ने पुरातत्व विभाग के डायरेक्टर पद पर होने के बावजूद एक सच को जान बूझकर छिपाया। वह यह कि जिसे शिवलिंग कह रहे हैं वह सम्राट अशोक स्तम्भ का हिस्सा है, जिसकी पुरातत्व विभाग ने सन् 1977–78 में ही पहचान की थी। इतना बड़ा सच मणि ने क्यों छुपाया? मणि ने यह बात तो मान्य की कि शिवरात्रि के अवसर पर उस शिविलंग को चांदी के नक्काशीयुक्त पट्टे से ढंका गया। इस जानकारी के साथ में एक रहस्य छिपा हुआ है। विवादित ढाँचे के नीचे जो उत्खनन किया गया उसमें प्राचीन अवशेष बौद्धों के ही मिले। यह सच मणि और उनके अन्य सहयोगी जानते थे। सन् 2003 में रिपोर्ट का कार्य पूरा हुआ और वह इलाहाबाद न्यायालय को सादर किया। वास्तविक तौर पर वह रिर्पोट जनता के लिए भी सार्वजनिक करना चाहिए था। वास्तविकता तो वह उत्खनन करने वाले ब्राह्मण ही जानते थे। उनके कहने पर ही नागेश्वर मंदिर के सम्राट अशोक के स्तंभ को ढंकने की सलाह दी गई होगी। इसका अपराधबोध मणि के उक्त लेख में है। जब अशोक के स्तम्भ को ढंका जा रहा था।

इस पर पुरातत्व विभाग, मणि ने आपत्ति क्यों नहीं लिया? उलटा उनके षड्यंत्र का मणि ने समर्थन ही किया है। उन्होंने क्या कहा? ''यह स्पष्ट नहीं है कि अशोक स्तम्भ के ऊपरी हिस्से को षड्यंत्रपूर्वक ढंका गया है या भक्ति भावना से ढंका गया है।'' मणि के इस विधान से यही बात सिद्ध होती है कि पुरातत्व विभाग उस पाप में शामिल है। यह बात जनता में चर्चा का विषय न बने। दूसरी बात, उस पाप का भी समर्थन किया जाए और वह पाप करने वाले पंडो को वह दुष्कृत्य 'पवित्र भावना' से किया, ऐसा कहना मणि को शोभा नहीं देता। सम्राट अशोक के प्राचीन स्तम्भ जो भारत का राष्ट्रीय प्रतीक है उस पर ब्राह्मणों ने नाजायज कब्जा किया है। उसका समर्थन करना पुरातत्व विभाग को शोभा नहीं देता। ऐसा लगता है कि मणि ने अपराधबोध से पीड़ित होकर वह लेख लिखा है। उनकी मानसिकता क्या कह रही है, जरा सोचो। वास्तव में वह सबसे बड़ा गुनाह है। मणि ने 1995 से लेकर 2005 तक अयोध्या के पतन हो रहे पुरातात्विक अवशेषों में मुस्लिमों के अन्य मस्जिदों का जिक्र किया, वह सच भी है। मगर जो प्राचीन बौद्ध स्थलों की निशानियाँ है जिस पर ब्राह्मणों ने कब्जा किया है, उसे वैदिक ब्राह्मणों का केंद्र कहना सरासर अपमान है। मणि ने बौद्धों के स्मारक का अपमान किया है। मणि ने राष्ट्रद्रोह ही किया है। खासकर नागेश्वर मंदिर के अंदर पुरोहित ब्राह्मणों ने जो सामुहिक अपराध किया है उसपर मणि या पुरातत्व विभाग को कानूनन कार्रवाही करनी चाहिए थी। वह स्थान सम्राट अशोक के स्तम्भ होने के कारण उस जगह का उत्खनन किया जाना चाहिए, ऐसा उल्लेख मणि ने अपने शोध लेख में क्यों नहीं किया? मणि ने वह लेख लिखकर राष्ट्र के सामने पुरातत्व विभाग और भारत सरकार ने सामुहिक तौर पर भारत के राष्ट्रीय प्रतीक पर ब्राह्मणों को कब्जा करने के लिए प्रोत्साहित किया और सहयोग किया। इसका कबुल करने वाला वह सबूत हैं। इसलिए यह साफ होता है कि सन् 2002-03 में जो विवादित जगह पर उत्खनन किया जा रहा था, वह आरएसएस, भाजपा, काँग्रेस के ब्राह्मणों के दबाव में किया जा रहा था। उस समय कैसे दबाव में कार्य किया जा रहा था? इसका प्रमाण नागेश्वर मंदिर के अंदर जो पाप किया गया इसका प्रमाण है।

नागेश्वर मंदिर में क्या है? सम्राट अशोक के स्तम्भ का हिस्सा है। मगर उसे मणि पवित्र हिस्सा नहीं मान रहे, बल्कि उसके ऊपर सच्चाई ढकने के लिए जो आवरण बिठाया जा रहा है उसे पवित्र मान रहे हैं। मणि जिस ओहदे पर थे, उस ओहदे की भी उन्होंने इज्जत नहीं रखी। सबूतों और तथ्यों के आधार पर यही बात सामने आती है

कि पुरातत्व विभाग सम्राट अशोक और बुद्ध से जुड़े हुए ऐतिहासिक धरोहर को मिटाने के कार्य में 2003 के बाद ज्यादा ही सक्रिय हो गया था। उनको यह कार्य इसलिए भी करना जरुरी लग रहा होगा कि न्यायपालिका के माध्यम से मुस्लिम पक्ष को दरकिनार करने के बाद या उसके पहले ही मौर्य को मानने वाले यू.पी., बिहार के कुशवाहा, मौर्य लोग दावे के लिए उठ खड़े हुए तो? ब्राह्मण वर्ग जानता है कि अयोध्या वास्तविक बौद्ध धरोहर है। उसके मालिक मौर्य हैं, बौद्ध हैं। मणि के अपराधबोध से पूरे षड्यंत्रकारी समूह का पता चलता है।

नागेश्वर मंदिर में सम्राट अशोक के स्तम्भ का हिस्सा होना, यह इसी बात का सबूत है कि अयोध्या वास्तव में साकेत है और वह बुद्ध, मौर्य की धरोहर है। मणि के लेख में काल्पनिक काव्य, इतिहास और पुरातत्व का आधार दिखाने का प्रयास किया गया है। मगर, मेजर जनरल कनिंघम ने सन् 1861 में अयोध्या के बौद्ध स्थलों को चिंहित किया था। उनका जिक्र तक क्यों नहीं आया? शासक जाति क्या-क्या षड्यंत्र कर रही है इसका पता चलता है। मौर्य की धरोहर, तथागत बुद्ध की धरोहर को मिटाने के लिए पुरातत्व विभाग, पुरातत्व विभाग के ब्राह्मण अधिकारी, न्यायपालिका और राजसत्ता पर कब्जा किए हुए ब्राह्मण सभी मिलकर षड्यंत्र कर रहे हैं।

●●●

संदर्भ

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली भाग-9, पृ.242
2. अधिधान चिन्तामणि, पृ. 62
3. प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह खंड -1 (पाक गुप्तकालीन) अनुवाद व संपादन श्रीराम गोयल पृ.34
4. Indian Archaeology-1977-78 A Review, पृ. 83
5. Archaeological Geography of the Ganga Plain (The Lower and the middle ganga) by Dilip Chakrabrti पृ. 253
6. पुरातत्वए Number 37, 2007 Bulletin of the Indian Archaeological Society Edited by K.H.Dikshit. पृ. 140-141

बौद्ध रानी कुमार देवी का साकेत से संबंध

अयोध्या के विवादित ढाँचे का जब हरि मांझी और बी.आर.मणि ने उत्खनन कार्य पूरा करके सन् 2003 में उसकी रिपोर्ट भी इलाहाबाद न्यायालय को सादर की थी। तब इस रिपोर्ट में 'The Disputed Struetureʼ अर्थात विवादित ढांचे के नाम से एक परिच्छेद आकृति लोकेशन के साथ दिया था। उस परिच्छेद को यहाँ पहले उद्धृत करना चाहते हैं, जिसके आधार पर बौद्ध रानी कुमार देवी का अयोध्या के साथ सीधा संबंध था, यह अपने आप सिद्ध होता है। –

''विवादित ढाँचा''

गड्ढा D6, E6, D7, E7 और F7 इसमें विवादित संरचना के (स्ट्रक्चर 3) बुनियाद की दिवार और चबूतरे के अवशेष का हिस्सा साऊथर्न स्क्वेअर चेंबर (प्लेट 21, फिगर 4) में दिखाई दिये। जिसका अंदर का आकार उत्तर दक्षिण दिशा की ओर 6.1/4 मीटर और पूर्व–पश्चिम दिशा में 6.10 मी. है और उसके पश्चिम की ओर दिवार (दिवार क्र.5) 3 मीटर लंबी है। उसपर एक के ऊपर एक कंक्रीट ब्लॉक के पाँच स्तर हैं और उसके अंदर बीच–बीच में रेत तथा ईंटो के टुकड़े भरे गए हैं। वहाँ नजदीक ही 0.75 गहराई की जगह है और वह दिवार क्र.5 के अंदर के हिस्से में है। पहले के समय में दो सुशोभित किए हुए वालुकामय पत्थर के दो ब्लॉक के आकार के मकर प्रमाण के चिन्ह उकेरे गए हैं और यह पत्थर दिवार क्र. 5 में बाहरी हिस्से में लगाया गया है। (प्लेट 22–23) स्ट्रक्चर 3 की दिवार क्र.5 (प्लेट 24 फिगर 5) यह पहले के ईंटो के दिवार पर (दिवार क्र.16) पर झुकी हुई दिखती है, जिसकी बुनियाद पांच–छह स्तरों के कंक्रीट एवं रेत से बनी हुई है। यह संरचना इसके पहले अस्तीत्व में जो रचना कार्य था उसी से बनाया गया है। क्योंकि उसपर वनस्पति और अन्य प्रकार के डेकोरेशन दिखाई देते हैं। (प्लेट 25–26) इसी तरह के ईंटो की बड़ी दिवार और उसकी संरचना के लिए पुरानी रचनाओं का इस्तेमाल कुमार देवी के बनाए हुए धर्मचक्र राजे विहार में दिखाई देता है। कुमार देवी 12 वीं सदी की गहड़वाल शासक गोविंद चंद्र की रानी थी। उसने सारनाथ में विहार बनाया था। 1907–08 के उत्खनन के दरम्यान उस विहार के अवशेष खुले हो गए थे। 16 नंबर की दिवार के अंदर और बाहर से परत चढ़ाई है जो स्ट्रक्चर 3 के दोनों तरफ नीचला हिस्सा बुनियाद के स्तर में दिखाई देता है (प्लेट 29)''[1] इस परिच्छेद में जानकारी मिलती है जैसा कि बौद्ध रानी कुमार

देवी के सारनाथ में बनाए हुए बौद्ध विहार के स्ट्रक्चर में पाया गया है। इससे दो अर्थ ध्वनित होते हैं। सारनाथ का बुद्ध विहार जिस रानी ने बनाया वही कार्य अयोध्या में कुमार देवी ने भी किया। दूसरा अर्थ, अयोध्या में विवादित ढांचे के नीचे जो संरचना मिली उसके स्ट्रक्चर से कुमार देवी का ही वह निर्मित स्थान है। जब निर्मित स्थान है तो मांझी या मणि ने उस विवादित ढांचे पर ज्यादा स्पष्टता से क्यो नहीं लिखा? उसमें यह भी नहीं लिखा कि वहाँ मंदिर है क्या जो रानी सारनाथ में बुद्ध का विहार और सम्राट अशोक का विहार पुर्नस्थापित कर सकती है वही रानी अयोध्या में राम का मंदिर कैसे बना सकती है?

पुरातात्विक दृष्टि से उत्खनन कार्यकर्ताओं का बहुत गहरा अध्ययन चाहिए। पुरातत्वविद के व्याख्या के अनुसार ''खुदाई में निकले भवन के संबंध में पुरातत्वविद की दृष्टि में दूसरा विचारणीय विषय उस भवन की बनावट होती है। किसी अभिलेख अथवा किसी अन्य साधन से मालूम हो सकता है कि उस भवन का प्रयोजन ज्ञात हो जाना ही पर्याप्त नही है। हम यह जानना चाहते हैं कि उस काल के मंदिर, राजप्रसाद या जन–आवास के मूल रुप क्या थे। इसे जानने के लिए जो साधन हमारे खुदाई से आता है वह ग्रंथ योजना मात्र होती है। उसी पर दृष्टि रखकर पुरातत्वविद को अन्य योजना वस्तुओं एवं अपने संचित ज्ञान का आधार लेकर उस वास्तु के मुल रुप की कल्पना करनी पड़ती है।''[2] पुरातत्वविद प्राप्त अवशेषों का कालसमय निर्धारण भी उसके आकार, प्रकार संरचना से करता है। इसलिए 'जब तक सही रुप से वस्तुओं का चयन न हो कोई भी कालक्रम ठीक रुप से निश्चित नहीं किया जा सकता है'[3]

मांझी और मणि ने अयोध्या की रिपोर्ट में उस विवादित ढांचे का समय भी निर्धारित किया और उसकी संरचना से उसका संबंध बौद्ध रानी कुमार देवी से किया। यह मुद्दा बहुत ही मायने रखता है। क्योंकि यह पुरातात्विक आधार पर सिद्ध किया जा चुका है।

पुरातत्वविदो के लिए संदेश यह है कि ''चुने–मिट्टी के मूक सबूत और छिन्न–भिन्न वस्तुओं से संचित ज्ञान को जीवन के इतिहास से संबंध करना पुरातत्वविद का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। उसका यह प्रयत्न किसी भी राष्ट्र अथवा देश के प्रचलित इतिहास कथा को पुष्ट अथवा विनष्ट कर सकता है।''[4]

बाद के समय में यानी सन् 2004 में बी.आर.मणि ने कुमार देवी के ऊपर उत्तर प्रदेश के उ.प्र. राज्य विभाग की शोध पत्रिका 'प्राग्धारा' में सन् 2005–2006 में एक

शोध लेख भी प्रकाशित किया था। जिसका शिर्षक था– ''कुमार देवी के सारनाथ के विहार (भिक्खु निवास) की नई पहचान'' खास बात है कि मणि ने अपना लेख राष्ट्रीय सेमिनार ''The Archaelogy of the Ganga Plain'' के अंतर्गत लखनऊ में सन् 2004 में दिसम्बर के अंत में पेश किया था। यानी अयोध्या में मिले विवादित ढांचे के अंदर के स्ट्रक्चर पर मणि ने ज्यादा शोध किया और कुमार देवी के सारनाथ के स्ट्रक्चर पर ज्यादा रोशनी डाली। इससे तो यह अपने आप सिद्ध होता है कि अयोध्या में विवादित ढांचे के नीचे जो स्ट्रक्चर मिला वह निर्विवाद रुप से बौद्ध रानी कुमार देवी का ही था।

बी.आर.मणि ने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बताने का प्रयास किया कि जातक कथा के मृगदाय वन या बुद्ध ने जहां पहला धम्मचक्र प्रवर्तन किया, उस ऐतिहासिक स्थल का महत्त्व भारत के प्राचीन काल से लेकर कुमार देवी तक यानी 12 सदी तक है। सन जॉन मार्शल ने 1907–08 को दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त किये थे। एक राजा कलचुरी करन देव का था। (इस्वी सन् 1058) जो धम्मेक स्तूप के पश्चिम दिशा में मिला था और गहड़वाल राजा गोविंदचंद्र की पत्नी रानी कुमार देवी का शिलालेख वह धम्मेक स्तुप के उत्तर दिशा में मिला था। कुमारे दवी का शिलालेख 26 चरणों से युक्त है। उससे 'धम्मचक्र जिन विहारा' उसमें जिक्र है। बुद्ध को जिन भी कहा जाता है, जिन यानी यक्ष भी होता है। वहां पर रानी कुमार देवी ने भव्यदिव्य विहार बनवाया था। यह धम्मचक्र जिन बुद्ध विहार के साथ–साथ उसने कुषाण और गुप्त काल के उनके पहले के विहार नं. 2, 3 और 4 के अवशेषों पर बनाये थे। विहार नं.1 जो उत्तर के क्षेत्र में बनाया है वह भव्य धम्मचक्र जिन विहार बहुत ही भव्य दिव्य संरचना का है।

मुलगंधकुटी के दोनों तरफ भिक्खुओ के निवास स्थान के चिन्ह दिखाई देते हैं। साथ ही अनेक छोटे मध्यम, बड़े स्तूप जिसमें मनौती स्तूपों की भी भरमार अधिक है। मणि ने वहाँ एक जलप्रवाह भी देखा जो वरण नदी से जोड़ा गया था। वह नदी उत्तर दिशा में उसका अंत पुष्करणी सरोवर में होता है। इसलिए निवास स्थान का क्षेत्र उत्तर तथा दक्षिण की ओर विकसित हुआ है, ऐसा मणि का मानना है। धम्मचक्र चिन्ह के साथ–साथ वहां सम्राट अशोक द्वारा निर्मित धर्मराजिक स्तूप की आकर्षक रचना भी वही पर है। पश्चिम में भव्य चैत्य और उत्तर दिशा में भी भव्य स्मारक है। सम्राट अशोक के चार थेरों के प्रतीक स्तम्भ और उसके साथ चार प्राणियों का वह राष्ट्रीय

प्रतीक भी वहीं पर स्थित था। इसलिए वह जगह अत्यंत पवित्र मानी जाती थी। वहाँ जो कुमार देवी द्वारा बनाया गया स्ट्रक्चर मिला, उसका समय जीन मार्शल और स्टेन कोनो ने 11 वीं सदी निर्धारित किया है। उसे मणि ने मान्यता दी है, यह बात खास है।[5] मणि ने इस बात का भी जिक्र किया कि कनिंघम ने 1835–36 में भिक्खुनी निवास का उत्खनन किया था। मेजर कनिंघम, जॉन मार्शल जैसे विश्व विख्यात पुरातत्वविदो ने वहाँ खुदाई कार्य किया था। उसपर शोधकार्य किया था। उसके अनुसार (आकृति 4 व 5) पहला कार्य जिसमें केंद्र स्थान पर स्तम्भयुक्त बरामदा है जो खुला है। सभी वास्तु के पाँच छोटे–छोटे कमरे हैं। उसके अंदर जाने का मार्ग भी है। 68 फीट चौरस चॅपेल निवास स्थान की तरह उसे गृहित माना गया था। उसका प्रवेशद्वार दक्षिण मे है और जैसे बताया गया है कि उस दिवार की मोटाई 4.5 फीट है और बाह्य दिवार उसे 4 मंजिल ऊंची थी। इस इमारत को 3 फीट मोटी दिवार 3 हिस्सों में पूर्व की विभाजित थी। इस तरह से केंद्रीय भाग उपविभाग में पूर्व से पश्चिम विभाग में विभाजित था। जिसमें 4 प्रवेश द्वार मंडप के साथ व विभाग सम्मिलित थे।

मणि ने उसका रेखाटन शब्दो में बयान वैसे ही किया जैसे कनिंघम ने पुरातत्विय आधार पर किया था। मणि ने पुरातात्विक दृष्टि से उसका अध्ययन किया, लेकिन उसमें जो ढूंढता है वह बौद्ध प्रतिकों के माध्यम से विश्लेषण करके बयान किया। जिसमे धम्मचक्र के साथ दो हिरण जो दो भिन्न दिशा को दर्शाता है। वह शिल्प यही दर्शाता है कि तथागत बुद्ध द्वारा यहां पर धम्मचक्र गतिमान संपन्न हो चुका है। वैरोचन मंडल के अंदर के हिस्से में अमिताभ, अक्षोभ्य, अमोद्यसिद्धी, रत्नसम्भव और उनकी शक्ति क्रमशः मामकी, पंडरा, लोचना और तारा दिखाई देते है। मणि ने सम्राट अशोक के चार मुखवाले शेर के प्रतिकों का मेल बिठाने का प्रयास किया है। धम्मचक्र प्रतीक हिरण और चार शेर खास संकल्पनाओं के साथ आया है, जो प्रतिकात्मक है। ''मूलतः बांधे गए चक्र धम्म प्रतीक है। शेर के चार सिर यह वैरोचन या प्रवचन देने वाला बुद्ध (बाद में सिंहनाद लोकेश्वर संकल्पना नुसार) दर्शाया गया है और उसके नीचे चार जानवर ध्यानस्थ बुद्ध की शक्ति के साथ घुमते हैं, यह दर्शाया है और 24 आरे तथागत को दर्शाते हैं एवं मंडल के 8 अर्पण किए जाने वाली देवियां दर्शाती है।''[36] मणि ने कनिंघम और जॉन मार्शन, स्टेन कोबो के उत्खनन के आधार पर अपना शोध लेख लिखा है।

कुमार देवी बौद्ध रानी थी इस बात का सबूत मणि ने खुद दिया है। वे अपने लेख

के नतीजे पर पहुंचकर यह लिखते हैं जो बहुत महत्त्वपूर्ण है।

''कुमार देवी का शिलालेख जो निवास स्थान का स्मारक वसुंधरा को समर्पित किया है जो कनिंघम के खोले गए इमारत के नजदीक ही 1835-36 में देखा था। उसी हिस्से से जम्भाला की प्रसिद्ध 12 वीं सदी की शिल्पाकृति और वसुंधरा (प्लेट 60) भी प्राप्त हुई थी। उसके निवासस्थान में शायद स्थापित की गई हो, जो आज का जानामाना सबूत दर्शाता है। वसुंधरा के 3 खास शिल्पाकृति यह 12 वीं सदी के हैं जो मुख्य इमारत के पूर्व हिस्से तथा धम्मेक स्तूप के उत्तर हिस्से से मिले हैं। वह भी कुमार देवी की भिक्खुनी निवास स्थान को उसके निश्चित स्थान को दर्शाते हैं। इसकी पुष्टि के लिए यह मैने प्रस्तुत किये हैं।''[7]

मणि यह बात स्वीकार करते हैं कि सारनाथ में कुमार देवी ने ही नया स्ट्रक्चर बनाया था जो पूर्व के बौद्ध शासकों की निशानियों पर था। अयोध्या में विवादित ढांचे के नीचे मिली संरचना और सारनाथ में प्राप्त कुमार देवी के विहार की संरचना एक ही है। इस बात को खुद मणि ने पुष्टी की है। मणि का उपरोक्त लेख अयोध्या की खुदाई कार्य होने के पश्चात लिखा गया है। इसलिए वह कई मायने रखता है।

जम्भाला बोधिसत्व को ही कहा जाता है।[8] प्रतिमाशास्त्र के अनुसार, कुमार देवी बुद्ध के प्रतिकों को ही ज्यादा मान्यता देती है। ''सारनाथ संग्रहालय में गहड़वाल युग की कई मुर्तियाँ है, जिनमें बौद्ध देवता जम्भाला की समृद्धि देवी वसुंधरा सहित और पद्म पर खड़ी बौद्ध देवी तारा की मूर्तियाँ उल्लेखनीय है। वसुंधरा पद्म और जम्भाला नर वाहन पर खड़े है। देवी की आसन के नीचे मृम्रृद्धि एवं आश्चर्य के सूचक दो घट भी बने हैं। तारा की स्थानीय मूर्ति में केश रचना के रुप में आबद्ध है। देवी का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में है, जबकि बाये में नीलोत्पक है। यह मूर्ति नारी सौंदर्य की साक्षात अभिव्यक्ति प्रतीत होती है।''[9]

सारनाथ से प्राप्त जम्भाला प्रतिमा में सिर पर अमिताभ बुद्ध की आकृति दिखती है। इस कलाकृति में जम्भाला पैरों से धन कुबेर को कुचल रहा है और वह रत्न का वमन कर रहे दिखाया है।

कुमार देवी के विहार की गुढ़ता की गुत्थियों को खोलने वाले मणि अयोध्या में जो कुमार देवी की संरचना का स्थान मिला उसी को रिलेट उनका लेख तो नहीं कर रहा था? कुमारदेवी के अयोध्या वास्तुशिल्प से यह बात निर्विवाद सिद्ध हुई थी कि वह वास्तु अंतिम समय में बौद्ध रानी कुमार देवी ने पुर्नस्थापित की थी जैसे उसने

सारनाथ में की थी। मणि ने शिलालेख का तो जिक्र किया, मगर उसमें उसकी विरासत उसने खुद सम्राट अशोक तथा बुद्ध से जोड़ी है और वह खुद बौद्ध रानी है। जबकि, इस बात का उसमें जिक्र है फिर इस बात को मणि ने उजागर क्यों नहीं किया? स्टेन कोनो इस पुरातत्वविद ने ही कुमार देवी के वास्तविक इतिहास और उसकी शिलालेख में व्यक्त किये गये इतिहास को दुनिया के सामने लाया है। फिर भी ब्राह्मण इतिहासकार, लेखक गहड़वाल वंश को शूद्र कहने में ज्यादा ही आनंद मनाते हैं। उनका समाचार हम आगे लेंगे ही, मगर रानी कुमार देवी अपने आप को बुद्ध की असीम भक्त मानती है। नागरी वैशिष्ट्युक्त संस्कृत भाषा में 26 चरणों में कुमार देवी का शिलालेख है। उसमें-13 (क्र.3, 5, 6, 7, 11, 12, 13, 17, 18, 19, 21, 23 और 24) यह शार्दूल विक्रीडीत छंद में है। 5 (क्र.1, 10, 14, 15 और 20) यह मालिनी छंद में है। 4 (क्र. 4, 16, 22 और 25) यह वसंततिलका में है। 3 (क्र. 8, 9 और 26) यह अनुष्ठ भ में है और 1 (क्र.2) यह सग्रधारा छंद में रचे हुए है। यह काव्युक्त शिलालेख साहित्य इतिहास के मूल्य में भी सर्वश्रेष्ठ है।

कुमार देवी गहड़वाल ने धर्मचक्र जिन विहार की स्थापना किया। सम्राट अशोक के स्तूप को पुर्नस्थापित किया, वह बुद्ध के याद में बनाये गये है। जब तक सूरज चांद रहेंगे, तब तक यह बौद्ध वास्तू हमेशा के लिए रहेंगे, ऐसा उसने दावा किया है। सम्राट अशोक ने भी अपने शिलालेखों पर यही कहा था। कुमार देवी सम्राट अशोक की धरोहर बचाने का ऐतिहासिक कार्य कर रही थी। सही मायने में वह सम्राट अशोक की उत्तराधिकारी ही सिद्ध हुई। रट्ठकुट (राष्ट्रकुल) नाम परिवार से रानी कुमार देवी थी जो गहड़वाल राजा गोविंदचंद्र की पत्नी थी। वह बौद्ध रानी शिलालेख में बड़े गर्व भाव से कहती है कि-''21) यह विहार पृथ्वी का आभूषण है, जिसके घेरे में नौ भाग सम्मिलित है जो उसे बांधे हैं और उसे ऐसा सजाया है जैसे वह वसुंधरा ने ही उसे तारिणी के आकार में सजाया हो। उसके निर्माता भी आश्चर्यचकित हुए जब उन्होने अत्यंत आकर्षक, कौशल्ययुक्त देवता प्रतिमा (बुद्ध प्रतिमाओं) को कार्य पूरा होने के पश्चात देखा।''

जम्भुकी (जम्भाल) का जिक्र करते हुए कुमार देवी कहती है-

''22- वह शिलालेख के माध्यम से जो भी धर्मचक्र जिन का दान घोषित करती है। जब तक चांद और सूरज रहेगा, तब तक इस भूस्थल पर वह संरक्षित रहेगा।'' उस जाम्भुकी को उसने (कुमार देवीने) ''पट्टालिक से सर्वश्रेष्ठ'' बनाया है।''

सम्राट अशोक तथा बुद्ध का जिक्र करते हुए रानी कुमार देवी ने बड़े गर्व से कहा है। 13 वें चरण में उसने पहले ही खुद को बुद्ध धम्म तथा तथागत बुद्ध के शरण जाने का जिक्र किया है। वह धम्म के राह पर हाथी की तरह अविचल चलती है इसलिए उसकी जनता जयजयकार करती है।

–''23) (धम्म चक्र गतिमान करने वाले भगवान (बुद्ध) उसने दुबारा स्थापित किये हैं। वह वैसा ही स्थापित किया जैसा धर्म (सम्राट) अशोक के समय में था। लोगों के शास्ता को नमन। स्थविरों के लिए वह विस्तृत तौर पर स्थापित किया गया है। जब तक चांद और सूरज है तब तक वह स्थापित रहेगा''

''24)– जब तक विश्व का कोई भी व्यक्ति उसकी प्रसिद्धि को संरक्षित करेगा तो उसने (रानी कुमार देवीने) उसके दोनों चरणों पर नतमस्तक होने का वचन दिया है। जिन (बुद्ध) तुम उसके साक्षीदार रहोगे। कोई मूर्ख उसकी प्रसिद्धि छिनने का प्रयास करेगा। तब लोकपाल उस दुष्ट व्यक्ति को उसके क्रोध से सजा का भागीदार बनाएगा।''[10]

कुमार देवी बौद्ध रानी है, यह सिद्ध करने के लिए उसका सारनाथ का अभिलेख ही काफी है।

सारनाथ के बुद्ध धातु को नष्ट करने वाले की ब्राह्मण इतिहासकारों ने वाहवाही क्यों की?

सन् 1851 मे काशीराज चेता सिंह के दिवान जगत सिंह ने सारनाथ से कुछ चीजें अपने मकान के लिए ला रहे थे। वहां धमेक स्तूप के पास उन्होंने मजदूरों के जरिए खुदवाया तो उन्हे वहां इटों में एक स्तूप से पत्थर की पेटी (सन्दूचकी) में से अस्थि खंड (हड्डी के टुकडे) मिले। साथ ही मोती, स्वर्ण पान, विभिन्न रत्न मिले। जगत सिंहने वह अस्थियाँ गंगा नदी में फेंक दिया। उसकी सन्दुचकी कलकत्ता म्यूजियम में रखी गयी थी। वह अस्थि पवित्र थी, शायद वह तथागत बुद्ध की भी हो सकती थी। जिसने वह दृष्कृत्य और पाप किया। उस स्तूप को बाद में 'जगत् सिंह स्तुप' ब्राह्मणों ने ही किताबों में दिया। यह बड़ा आश्चर्य है कि उस व्यक्ति पर ब्रिटिशों ने कानूनी कार्रवाही क्यों नहीं की?

सारनाथ में सम्राट अशोक का वह ऐतिहासिक शिलालेख है जो तीसरे धम्मसंगिती में लिए गए फैसले को इस स्थान पर यादगार के तौर पर स्थापित किया गया। संघ

भेद करने वालों को दंडित करने का सख्ती से सम्राट अशोक ने आदेश दिया था। जो बौद्ध भिक्खु, भिक्खुनी संघ भेद करने का काम करेंगे उन्हे अयोग्य स्थान में रखा जाएगा, ऐसा जो संदेश सम्राट अशोक ने भिक्खुओं तथा उपासकों को भी दिया था।''[11] सारनाथ में तथागत बुद्ध ने प्रथम धर्मोपदेश तथा धर्मचक्र प्रवर्तन किया था इसलिए वह स्थान अत्यंत पवित्र स्थान था। कुमार देवी के समय तक यानी बुद्ध की ज्योत वहाँ जल रही थी। विधर्मियों ने खासकर ब्राह्मणों ने पहल करके मुगलों को साथ में लेकर उस स्थान को नष्ट किया, उसे जलाया होगा। वहाँ क्या हुआ था? इसका आकलन इस टिपण्णी से किया जा सकता है–

''फिर जब यह बौद्ध तीर्थ मुसलमानों द्वारा नष्ट किया गया उस समय स्थानीय महादेवजी का मंदिर वर्तमान में नहीं था। यदि होता तो यह भी नष्ट हुए बिना न रहता। अतः यह मानना चाहिए कि बौद्धों के प्रबल प्रभाव के लुप्त होने के पश्चात, जिस तरह बुद्ध गया में हिन्दू तीर्थ स्थापित हुआ, ठीक उसी तरह सारङनाथ (सारनाथ) का मंदिर भी बना। 'सारङनाथ' शब्द का अर्थ मृगाधिपति होता है। इस स्थान का प्राचीन नाम 'मृगदाव' है। एवं जातक आदि ग्रंथों के अनुसार बुद्ध भगवान ही उसके अधिपति थे। अतः हिन्दुओं ने स्थानीय प्राचीन स्मृति का अनुसरण कर जिस प्रकार बुद्ध के त्रिरत्न को धम्मठाकर रुप से ग्रहण किया था उसी प्रकार मृगाधिपति व्यग्रांथ अथवा बुद्ध भगवान को सारङनाथ महादेव नाम से पूजने लगे। यह पूजा कब से आरंभ हुई? इसका निश्चित करना कठिन है। कहा जाता है कि काशी के निकट सारनाथ विहार उन्नतशिल बौद्धों का प्रधान स्थान था। कदाचित कुमारिल भट्ट की उत्तेजना से ब्राह्मणों ने सारनाथ विहार की अग्नि से भस्मीभूत किया। कनिंघम, किट, टामस आदि ने इस स्थान के अधजली धातु और जले हुए स्तूप निकाले हैं।''[12] इस बात का सबूत बनारस विश्वविद्यालय के वृन्दावन भट्टाचार्य जैसे ब्राह्मण प्रोफेसर ने ही दी है। सारनाथ में विधर्मी वैदिक धर्मिय पंडो ने द्वेष भावना से बहुत बड़ा सत्यानाथ किया था।

कुमार देवी और गोविंदचंद्र राजा के प्रति ब्राह्मणों का द्वेषमलक दृष्टिकोण क्यों?

चिं. वि. जोशी ने इतिहास को बिगाड़ने का ही काम किया। गहड़वाल ग्रंथ राष्ट्रकुट ग्रंथ को मानने के बजाय उसे शूद्रों में ही गणना करने का प्रयास किया। उसकी दलील यह थी की राजपूतों के 36 कुलों में गहड़वालों का नाम नहीं है।[13] जोशी को

कुमार देवी सारनाथ शिलालेख की जानकारी थी। गहड़वाल राजा एवं रानी बौद्ध हैं, यह जानकारी थी। फिर भी उन्हे शूद्र घोषित करने की कसर जोशी ने नहीं छोड़ी। आगे चलकर फिर जोशी की ही लाईन पकड़ी गई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डा.विधुदानन्द पाठक ने गहड़वाल वंश को स्पष्टतः अपमानित किया, उन्हे खुलेआम शूद्र कहा। उन्हे 'पहाड़ी जाति' कहा है।[14] कुमार देवी के बारे में लिखना पाठक त्यागते है। इसकी खास वजह है उस रानी का बौद्ध होना! वेदलंकार, ओझा, वासुदेव उपाध्याय वगैरह लोग भी इन गहड़वाल वंश के बारे में जलते, कुढ़ते हैं और इनके प्रति घृणा का भाव रखते हुए दिखाई देते हैं। यह सब क्यों कर रहे हैं? क्योंकि वे बौद्ध राजा-रानी थे। बौद्ध शासक होने के कारण ही वे उनसे घृणा का भाव रखते हैं।

गहड़वाल वंश कौन है?

गहड़वाल वंश की वास्तविक खोज सारनाथ के कुमार देवी के शिलालेख से की गई। सर जॉन मार्शल और स्टेन कोनो ने वास्तविक पहचान दुनिया के सामाने लायी। स्टेन कोनो ने बौद्ध रानी कुमार देवी की पहचान ऐतिहासिक तथ्यो और सबूतों पर की है। वह दुनिया के सामने आया है। इसके बावजूद कुमार देवी और गहड़वाल वंश के बारे में किवंदतियाँ फैलाने का कार्य तथाकथित इतिहासकार करते हैं। कुमार देवी के शिलालेख में गहड़वाल वंश का तथा अपने मायके का भी वंश दर्ज है। कुमार देवी मुहाना की सुपुत्री थी और वह गोविंदचंद्र की एक पत्नी थी। मुहाना गौड राजा रामपाल के मामा थे। विग्रहपाल, रामपाल के पिता थे, जिन्होंने चेदी राजा कर्ण से युद्ध किया था और सफलता प्राप्त की थी। रामपाल को दो भाई थे। महिपाल और सुरपाल।

कुमार देवी मुहाना की बड़ी पुत्री है। बौद्ध रानी कुमार देवी और गहड़वाल वंश के संदर्भ में स्टेन कोनो ने जो जानकारी दी है उस लेख को परिशिष्ठ में जोड़ा गया है। वह पढ़ें जो कुमार देवी बौद्ध रानी होने को सिद्ध करता है। गहड़वाल गोविंदचंद्र के 40 दानपत्र मिलते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार के मुंगेर तक गहड़वाल साम्राज्य का विस्तार हुआ था। वे बौद्ध परंपरा को भली भाँति जानते थे। अयोध्या भी उनके नियंत्रण मे था। कुमार देवी ने सारनाथ में जैसा बौद्ध स्मारक विहार बनाये थे उसी तरह अयोध्या में भी विवादित ढांचे के नीचे जो भी सामग्री मिली है वह कुमार देवी द्वारा पुर्नस्थापित की हुई बौद्ध सामग्री है। इसके लिए अयोध्या का रिपोर्ट (2002-03) भी पुष्टि देता है।

बी.आर.मणि द्वारा कुमार देवी बौद्ध रानी थी, इसको मान्यता दी है। स्टेन कोनो ने कुमार देवी को बौद्ध रानी के रुप मे मान्य किया है। अयोध्या के विवादित ढांचे के नीचे जो संरचना मिली है उसका सीधा संबंध कुमार देवी के साथ है। इसलिए इस प्रमाण से वह बौद्ध स्थल ही था, इसमे कोई शक नहीं है। कुमार देवी के शिलालेख में तारा को ही वसुंधरा कहा है। मणि ने वह विहार भिक्खुनीयों का विहार था इसपर ज्यादा जोर दिया। मेरे मतानुसार, वहाँ भिक्खुनी समवेत भिक्खुओं का भी अलग से विहार था। विहार तीन मंजिले उँचे थे। कुमार देवी के शिलालेख में तारा को ही पार्वती, लक्ष्मी के रुप में स्वीकार किया है। मगर बौद्ध धर्म में इससे कोई मिलावट नहीं हुई है। 12 वीं सदी तक बौद्ध धर्म अस्तित्व में था और बौद्ध रानी जीजान से विधर्मियों से लड़ रही थी।

●●●

संदर्भ

1. Ayodya : 2002-03 Excavation at the Disputed site - Vol. I,
by-Hari Manjhi, B.R.Mani पृ. 51-52
प्रकाशक - Archaelogical Survey of India Janpath,
New Delhi-2003
2. पुरातत्व परिचय, लेखक- परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ. 44
प्रकाशक - किताब महल, इलाहाबाद
3. उपरोक्त - पृ. 74
4. उपरोक्त - पृ. 52
5. प्राग्धारा, उ.प्र. राज्य पुरातत्व विभाग की शोध पत्रिका-अंक-16
(वर्ष 2005-2006) संपादक - राकेश तिवारी, पृ. 150
6. उपरोक्त - पृ. 152
7. उपरोक्त - पृ. 164
8. प्रतिमा विज्ञान - (भारतीय वास्तुशास्त्र)
लेखक-डॉ.द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ.305
9. मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला,
लेखक-डॉ.मारुतिनन्दन तिवारी एवं डा.कमलगिरी,
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 131

10. Epigraphia Indica adn Record of the Archalogical Survey of India, Vol. IX, 1907-08, Edited by - E. Hultzech and sten konow पृ. 327-328
11. अशोक के अभिलेख, संपादन-राजबली पांडे, पृ.185
12. सारनाथ का इतिहास, लेखक-श्री वृन्दावन भट्टाचार्य, प्रोफेसर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पृ.25-26
13. हिन्दू भारत का अंत - चि.वि.जोशी, पृ.334
14. उत्तर भारत का राजतीतिक इतिहास, लेखक- डॉ.विशुदानन्द पाठक, पृ.345

रामायण : दशरथ जातक की चोरी मात्र है!

रामायण और रामायण कथा ने भारतीय जनता को मोहित किया है। इतना ही नहीं, बौद्ध देशों में भी एक विशिष्ट रामकथा विख्यात है। सवाल है, वह राम कौन थे, जिन्होंने लोगों को मोहित किया? डा.बाबासाहेब आंबेडकर ने क्रांति और प्रतिक्रांति संकल्पनाओं के माध्यम से समझाते हुए कहा था कि भारत का इतिहास बौद्ध धर्म बनाम वैदिक धर्म का निरंतर चला वास्तविक संघर्ष ही है। बौद्धों ने क्रांति की तो ब्राह्मणों ने प्रतिक्रांति की। अहिंसा बनाम हिंसा, सदाचार बनाम कुविचार, ऐसा लगातार संघर्ष रहा। उस प्राचीन इतिहास को कैसे समझा जाए? इस संदर्भ में डा.बाबासाहेब आंबेडकर का दृष्टिकोण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं, -

''प्राचीन भारत के इतिहास से पर्दा हटाया जाना चाहिए। इस उद्घाटन के बिना प्राचीन भारत इतिहास विहिन रह जाएगा। अच्छी बात यह है कि बौद्ध साहित्य की मदद से प्राचीन इतिहास को उस मलबे से खोदकर निकाला जा सकता है, जिस मलबे के नीचे ब्राह्मण लेखकों ने पागलपन से उसे दबाकर रखा है। बौद्ध साहित्य की मदद से बहुत हद तक मलबा हटाने और उसके नीचे छिपे तत्वों को बिलकुल स्पष्ट रुप से देखने में मदद मिल सकती है।''[1] इस दृष्टिकोण से भारत के इतिहास का अध्ययन होना बहुत जरुरी है। डा.बाबासाहेब आंबेडकर ने प्राचीन भारत के इतिहास की व्याख्या करते समय यह भी बताया था कि भारत के प्राचीन शासक नाग हैं। उनका आर्य-ब्राह्मणों से झगड़ा रहा है। वैदिक साहित्यों में उन्हीं नाग बौद्धों को यक्ष या राक्षस, दैत्य, असुर, गंधर्व बताया गया है। इसलिए वैदिक साहित्यों में प्रतिकात्मक रुप से बौद्धों को ही शत्रु बताया गया है।

शुरु में ही हम सवाल उठा चुके हैं कि रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का जनमानस पर इतना प्रभाव क्यों है? इसकी कोई खास वजह होगी। लेकिन इस प्रकरण में रामायण कथा की उत्पत्ति, विकास और उसके स्वरुप के संबंध में चर्चा की जाएगी। पहले हम देखते हैं कि रामायण की रचना काल क्या है? डा.आलब्रेच वेबर (Albrecht Weber) अपनी किताब ''ऑन दि रामायण, 1873'' में यह लिखा है कि रामायण की प्रारंभिक रचनाकाल ईसा तीसरी-चौथी शताब्दी है।[2] दिनेश चंद्र सेन ने भी वेबर के इस मत को मान्य किया है। लॅसन ने ही प्रथमतः यह मत व्यक्त

कर दिया था कि रामायण की रचनाकाल तीसरी-चौथी सदी है। ई.एन हॉपकिन्स के मतानुसार, रामायण, महाभारत के बाद लिखा गया है।[5] एच.याकीबी अपनी भी उनके किताब ''दस रामायण'' में यही कहा है कि रामायण, महाभारत के बाद लिखा गया है।[6] सी.वी. वैद्य के अनुसार, प्रचलित रामायाण का काल दूसरी सदी के बाद का है। कामिल बुल्के ने कहा है कि पाणिनी में रामायण का उल्लेख नहीं है और त्रिपिटक काल के बाद रामायण की रचना हुई है। डा.राधाकुमुद मुखर्जी मनुस्मृति को मौर्योत्तर मानते हैं। महाभारत, रामायण में शक, पल्लव, यवन जैसे उल्लेख आए हैं। इसलिए उसके आधार पर वे रामायण व महाभारत को प्राचीन होने पर संदेह व्यक्त करते हैं। लेकिन, रामायण आर्य और अनार्यों के संघर्ष और आर्यों के जिन का प्रतीक है, ऐसा उनका कहना है।[9] वेबर का कहना है कि रामायण में जो आर्य-अनार्य का संघर्ष दिखता है वह वास्तव में आर्य-ब्राह्मणों का बौद्धों पर विजय का वर्णन है।

रामायण, महाभारत पर वैदिक ब्राह्मणों ने ढेर सारे ग्रंथ लिखे हैं। रामायण अत्यंत प्राचीन है, यह दिखाने के लिए उन्होंने जी जान से प्रयास किया है। मगर वे पूर्णतः विफल हो चुके हैं। वे सभी रामायण-महाभारत को बुद्ध पूर्व दिखाने का असफल प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। लेकिन, सच्चाई बौद्ध साहित्य की मदद और पुरातात्विक तत्त्वों के आधार पर सिद्ध की जा सकती है। हमारे शोध के अनुसार, रामायण तथा महाभारत मूलतः बौद्ध जातक कथाओं को ही आधार बनाकर ईसा तीसरी-चौथी शताब्दी में प्राथमिक अवस्था में लिखा गया है।

जातक कथाओं की प्राचीनता

पाली साहित्य में जातक का मतलब जन्म संबंधी कथाएं है। बुद्ध के बाद बोधिसत्व संकल्पना का महत्त्व बौद्ध धर्म में बढ़ गया। बुद्ध होने से पहले बोधिसत्व की अवस्था से गुजरना पड़ता है। बोधि का अर्थ बुद्धत्व है और सत्य का अर्थ बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी। इत्सिंग 7 वीं सदी में भारत आया था, उसके अनुसार- ''साधारण जनता और विद्वानों को भी प्राणी मात्र के मोक्षतत्त्वों का सुंदर तथा बालबोध रीति से परिचय कराना ही जातक कथाओं की निर्मिति का मुख्य उद्देश्य है।'' जातक में बोधिसत्व के 547 जन्मों का उल्लेख है। बुद्ध की शिक्षा के अनुसार रुप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान इन पांच स्कंधों से व्यक्ति बनता है। इन पांच स्कंधों की धारा व्यक्ति के अच्छे या बुरे कर्मो के अनुसार बहती है और वह तब तक

बहती रहती है जब तक व्यक्ति तृष्णा का संपूर्ण क्षय नहीं कर लेता।

त्रिपिटक में जातक का समावेश है। इसका अर्थ यही है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद जिन ग्रंथों का संकलन किया गया था, उनमें से एक जातक कथा संग्रह है। जातक धम्मपद की तरह गाथाओं का संकलन है। उन गाथाओं को उपासकों को याद रखने के लिए उसके साथ कथा जोड़कर उसका प्रचार किया जाता था। बौद्ध सिद्धांत समझाने के लिए कथा एक माध्यम है। जातक कथानकों को लोगों के सामने रखने वाले धम्म प्रचारकों को ''भनक'' कहा जाता था। (Sbilling 2008 : 59-63)। खास बात यह है कि जातक कथाएं ब्राह्मण धर्म या जैन धर्म में नहीं मिलती, वे केवल बौद्ध धर्म में ही मिलती है। (Sbilling 2006 : 113)। जातक कथाओं की अधिकतम संख्या 565 बताई जाती है। ईसा पूर्व पहली या दूसरी सदी में रची चुल्लनिद्देश ग्रंथ में जातक कथाओं की संख्या 500 बताई गई है। (पच्चजातक सतानी) 5 वीं सदी में यानी फाहियान के समय चीन में 500 जातक कथाओं की चित्राकृति देखी गई थी। थेरवादी परंपरा के अनुसार, जातकों की संख्या 550 बताई गई है। Hodgson के अनुसार, नेपाल में प्राप्त जातक माला संग्रह में 565 कथाएं मिलती है, मगर जातक कथाओं का वास्तविक आंकड़ा जातक कथा के अनुसार, 547 ही माना गया है। हॉसबेल द्वारा संपादित जातक कथाएं 547 ही है और जातक संग्रह के विभिन्न हस्तलिपियों की बारीकी से अध्ययन करके Feer ने जातकों की संख्या 547 तय की है और उसे सभी आधुनिक विद्वानों ने मान्यता दी है।

जातक कथाओं को पाँच विभागों में विभाजित किया गया है। जैसे 1) ''पंचुपन्नवत्थु- प्रास्ताविक कथानक-जिसमें भगवान बुद्ध के अवस्थाकालीन प्रसंगों का निर्देश किया है।''

2) अतिवत्थु- इसमें बुद्ध के पूर्वजन्मों का कथा संग्रह है।

3) गाथा - इसमें बुद्ध के महत्त्वपूर्ण उपदेश हैं।

4) वैयाकरण - यह एक छोटी सी टिका है, जिसमें गाथाओं का शब्दशः अर्थ दिया हुआ है।

5) समाधान या बोध संदेश - इसमें कथा का वर्तमान काल से संबंध भगवान बुद्ध ने बताया है और कथा सुनने वाले लोगों के मन पर कथा का क्या परिणाम हुआ है? इसकी जानकारी है।

जातक का महत्त्व

कुछ विद्वान जातक कथाओं का समय ईसा पूर्व 5 वीं-6 वीं सदी मानते हैं। जातक कथाएं बुद्ध काल से ही धम्म प्रचार में लायी गई थी। प्रथम संगिती से लेकर तीसरी संगिती तक जातक कथाएं पूर्णतः ग्रंथबद्ध हो चुकी थी, इसके प्रमाण मिलते हैं। तीसरी संगिती जो सम्राट अशोक के कार्यकाल में हुई थी, उस समय जातक कथाओं को खुद्दक निकाय के अंतर्गत शामिल किया गया था। 5 वीं सदी में जातक अट्ठकथा का एक अलग से संग्रह तैयार हुआ था। तीसरी सदी में 34 जातक कथाओं का संस्कृत भाषा में ''जातक माला'' नामक संग्रह आर्य सूर ने किया था।

जातक कथाओं की शुरुआत तथागत बुद्ध के समय ही हो चुकी थी, इसके प्रमाण त्रिपिटक में मिलते हैं। तथागत बुद्ध हमेशा धम्म प्रचार के दौरान उदाहरणों का (Parables) इस्तेमाल करते थे। एक बार कोशंबी के भिक्खुओं को ध्यान के महत्त्व को समझाते हुए बुद्ध ने उन्हें तितर पक्षी का उदाहरण दिया था। तितर पक्षी लक्ष्य केंद्रित कर अपना अन्न ढूंढता है। इसलिए उसे शिकारी का एहसास जल्द पता चलता है और जरा सी हलचल से उड़कर शिकारी के चंगुल से बच निकलता है। इसी तरह भिक्खुओं को भी अपनी तृष्णा पर नियंत्रण कर अपने ध्यान पर मन केन्द्रित करना चाहिए। बुद्ध का दिया हुआ तितर पक्षी का उदाहरण बुद्ध के समय ही ''सक्कुनाही जातक कथा (नंबर 168)'' में तब्दील हुआ। इसी तरह दिघनिकाय के पायसी सुत्त में (DN, II, 342, 20) तथागत बुद्ध ने धुर्त व्यापारी और सज्जन व्यापारी का उदाहरण दिया था। बुद्ध का यह उदाहरण पन्ननक जातक (कथा नं.1) और कोसंबी जातक (कथा नं.428) में बदल गया। इस तरह तथागत बुद्ध के उपदेशों के आधार पर भी जातक कथाएं बनने लगी थी। (Janabe : 2003 : 53)

सम्राट अशोक और जातक कथाएं

सम्राट अशोक ने 84,000 स्तूप बनवाए थे। तथागत बुद्ध के 8,400 सुत्तों का यह स्मरण था। सम्राट अशोक को जातक कथाओं का महत्त्व इसलिए भी महसूस हुआ, क्योंकि अनेक जातक कथाओं का संदर्भ बुद्ध के सुत्तों में था। सर मेजर जनरल कनिंघम ने भरहुत स्तूप का उत्खनन किया था। इस स्तूप के उत्खनन के कारण एक

महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आया। वह यह था कि सम्राट अशोक जातक कथाओं को महत्त्व देते थे और उसकी महत्ता लोगों को बताते थे। भरहुत में तीस जातक कथाओं के पुराभिलेख अवशेष मिले हैं। खास बात है कि वहां पर दशरथ जातक कथा का भी आकलन किया गया है। ऐतिहासिक आधार पर अगर देखा जाए तो ईसापूर्व तीसरी सदी में भरहुत स्तूप पर बौद्ध जातक कथा, दशरथ कथा का पुरातात्विक अवशेष मिलता है।[10] इस तथ्य के अनुसार, सम्राट अशोक भी जातक कथाओं को मान्यता देते थे। सम्राट अशोक ने उपासकों के लिए तथागत भगवान बुद्ध के अनित्यतावाद सिद्धांत का प्रचार करने के लिए दशरथ जातक कथा को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। भरहुत स्तूप में दशरथ जातक कथा का केवल शिलालेख ही नहीं मिलता बल्कि, उसके पास बोधिसत्व राम और उसके प्रिय भाई भरत का शिल्प भी मिलता है। मौर्य काल में दशरथ जातक कथा का मंचन होता था। इसलिए उस कथा का जनमानस पर बहुत गहरा असर था। बोधिसत्व राम का शिल्प बनाना ही दशरथ जातक कथा की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए काफी है। तथागत बुद्ध की प्रतिमा सम्राट अशोक ने नहीं बनाई थी। मौर्यकाल तक बुद्ध का स्तूप, चैत्य, त्रिरत्न, बुद्धपद, बोधिवृक्ष इन प्रतिकों के माध्यम से दर्शाया जाता था। बुद्ध की प्रतिमा कुषाण काल में अवतरित हुई थी। लेकिन, बुद्ध के पहले बोधिसत्व राम का प्रतिकात्मक शिल्प सम्राट अशोक द्वारा निर्माण करवाया जाना यह दशरथ जातक की प्राचीनता और महत्ता को दर्शाता है।

पुरातात्विक लोगों का, खासकर सर मेजर जनरल कनिंघम और वेगलर का ध्यान जातकों की तरफ केंद्रित हुआ था। सांची, भरहुत, अमरावती का स्तूप अत्यंत प्राचीन है और उनका संबंध सम्राट अशोक से भी है। उनपर जो प्राचीन शिल्पाकृति, शिलालेख मिले हैं, उनपर जातक कथाएं दर्शाई गई है। इसलिए, पुरातत्व का सही-सही अध्ययन करने के लिए जातक कथाओं को प्रकाशित करने की उन्हें जरुरत महसूस हुई। सन् 1870 के दशक में ही प्रो.इ.वी.कॉरेल द्वारा जातक कथाओं का अनुवाद प्रकाशित किया गया था। फॉसबेल के द्वारा भी सभी 547 जातक कथाओं का अनुवाद किया गया था। हम देखते हैं कि सन 1871 में फॉसेबल ने''The Dasaratha Jataka, Being the Buddhist Story of King Rama'' शिर्षक से ग्रंथ ने प्रकाशित की थी। उसकी प्रस्तावना में उन्होंने जिक्र किया है कि प्रो.वेबर ने सबसे पहले ''Uber Dus Ramayana (on the Ramayana)'' में यह बताया था

कि रामायण का मूल दशरथ जातक है।[11] ई.जे.थॉमस ने ''Jataka Taler'' किताब में यह कहा है कि भरहुत के स्तूप का कार्यकाल ईसापूर्व 250 से 200 के बीच में है।[12] उन्होंने जातक कथाओं का कार्यकाल ईसापूर्व 200 के आसपास बताया है। भरहुत स्तूप में जातक कथाओं के शिल्प बताए गये थे, तो जन मानस में उनका प्रचलन 1 से 2 सदी पहले यानी 4 थी सदी ईसापूर्व में रहना मुमकिन है। इससे हम समझ सकते हैं कि तथागत बुद्ध के समय से सम्राट अशोक तक जातक कथाएं जनमानस की प्रचलित कथाएं बन चुकी थी। जातक कथाओं की प्राचीनता के संबंध में भदंत आनंद कौसल्यायन, हिंदी में जातक कथाओं का अनुवाद किया था। उनके अनुसार ''इस संग्रह की कहानियां (जातक कथाएं) ईसापूर्व 5 वीं सदी से लेकर ईसा प्रथम या द्वितीय सदी तक रची गई होगी। यह जातक संग्रह अपने वर्तमान स्वरुप में लगभग दो हजार साल पुराना है।''[13]

दशरथ जातक का स्वरुप एवं उद्देश

यह बात तो सिद्ध हो चुकी है कि दशरथ जातक कथा बुद्ध काल में ही प्रसिद्ध हो चुकी थी और वह कथा अत्यंत प्राचीन है। तथागत बुद्ध के धम्म का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है ''अनित्यता''। यह तत्त्व इतना महत्त्वपूर्ण है कि बुद्ध का संपूर्ण धम्म इसी मुख्य तत्त्व पर आधारित है। जब तक लोगों को विश्व का वास्तविक सत्य अनित्यता समझ में नहीं आएगा, तब तक उनके अंदर जो तृष्णा के रुप में सांसारिक बंधन है उससे वे मुक्त नहीं होंगे और न ही धम्म को अच्छी तरह से जान पाएंगे। इसलिए बुद्ध और उनके अनुयायी भिक्खु अनित्यता तत्त्व का हमेशा अपने धम्मप्रचार के दौरान जिक्र करते रहते थे। परिजन की मृत्यु होने पर शोकग्रस्त रिस्तेदारों को शोकमुक्त करने के लिए भी बुद्ध और भिक्खु संघ अनित्यता का उपदेश देते थे। धम्म तत्त्व कथा के माध्यम से अच्छी तरह से समझाया जा सकता है। यह बात ध्यान में रखकर तथागत बुद्ध ने कथा विकसित की थी।

एक बार श्रावस्ती के जेत वन में तथागत बुद्ध विहार कर रहे थे। उस समय एक उपासक के पिता की मृत्यु हो गई और वह शोक में डूबा हुआ था। उसे शोकमुक्त करने के लिए और धम्म का अनित्यतावाद समझाने के लिए तथागत बुद्ध ने उसे दशरथ जातक कथा के माध्यम से उपदेश दिया। तथागत ने उस उपासक को आठ

लोकधर्मो का उपदेश दिया था। दशरथ जातक कथा के प्रमुख पात्र इस प्रकार हैं– वाराणसी के दशरथ राजा (पिता) की 16 हजार पट्टरानियाँ है, जिसमें से ज्येष्ठ पट्टरानी दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म देती है। ज्येष्ठ पुत्र का नाम राम पंडित था तथा द्वितीय पुत्र लखन कुमार और बहन सीता देवी थी। आगे चलकर पट्टरानी मर गई, जिससे राजा शोककुल हो गया। क्रिया कर्म पूर्ण होने के बाद उसने एक दूसरी पट्टरानी बनाई। वह राजा की अत्यंत प्रिय बन गई। आगे चलकर वह गर्भवती हुई और उसने एक बच्चे को जन्म दिया, जिसका नाम भरत कुमार रखा गया। पुत्र स्नेह के कारण दशरथ राजा ने उसे वर मांगने को कहा, मगर पट्टरानी ने लिया ऐसा कहकर रख दिया। आगे चलकर भरत बड़ा हो गया तब पट्टरानी ने राजा को वर देने की बात याद दिलाई और उसके तहत पट्टरानी ने सौतेले पुत्र बोधिसत्व राम को राजा का उत्तराधिकारी बनाने के बजाए भरत कुमार को राजा बनाने का वर मांगी। यह सुनकर राजा को अत्यंत पीड़ा हुई, उन्होंने सोचा मेरे दोनों पुत्र अग्निस्कंध के समान हैं और उन्हें मरवाकर अपने पुत्र को राज्य देना चाहती है? उसके बावजूद रानी बार–बार अपने पुत्र भरत कुमार को राजा बनाने की याचना करती रही। फिर राजा को भी डर लगने लगा कि रानी राजमुहर का गलत इस्तेमाल करके राजपुत्रों को मरवा डालेगी। इसलिए उन्होंने अपने मन की पीड़ा बच्चों से बता दी। राजा दशरथ ने दोनों पुत्रों को बुलाकर उपदेश दिया कि यहाँ रहने से तुम्हारी जान को खतरा हो सकता है। इसलिए तुम किसी सीमांत प्रांत या जंगल में जाकर रहो। मेरे मरने के बाद, चुँकि वंश के राज्य की आयु सीमा 12 वर्ष बताई गई थी, इसलिए राजा ने उन्हें 12 वर्ष बाद लौटने का आदेश दिया। राम और लखन पिता की आज्ञा लेकर निकल रहे थे। उसी समय सीता देवी भी अपने भाईयों के साथ जाने के लिए तैयार हुई। जब वे तीनों भाई–बहन राज्य को छोड़ रहे थे, तब जनता भी रो रही थी और लोग उनके साथ चल रहे थे। लोगों के वापस लौटने के बाद वे तीनों भाई बहन हिमालय पहुंचे। हिमालय पानी और फलफूलों से संपन्न था। वहां पर वे तीनों आश्रम बनाकर रहने लेगे। लखन पंडित और बहन सीता देवी ने बोधिसत्व राम से आग्रह किया कि आप हमारे पितातुल्य हैं इसलिए आप आश्रम में ही रहें। हम लोग फलफूल लाकर आपका पोषण करेंगे। इस तरह नौ वर्ष बीत गये। उधर राजा राजधानी में पुत्रशोक में दुखी होकर नौ वर्ष में ही प्राण त्याग दिया। राजा का क्रियाकर्म होने के बाद पुत्र भरत कुमार को राजा बनाने का फैसला हुआ, परंतु अमात्यों ने यह कहकर विरोध किया कि छत्र के स्वामी जंगल में हैं। भरत कुमार राम पंडित को बहुत

चाहते थे। उन्हें वन से वापस लाकर भरत कुमार राम पंडित को राजा बनाना चाहते थे। इसलिए पाँच राजनीतिक चिन्ह और चतुरंगिनी सेना के साथ भरत कुमार जंगल में पहुंचे। वहां पहुंचने के बाद भरत कुमार ने रामपंडित को पिता की मृत्यु की खबर सुनाकर राम के चरणों पर गिर पड़े और रोने लगे। परंतु बोधिसत्व राम ना चिंतित हुए ना रोए। राम ने भरत को समझाया की लखन व सीता देवी छोटे हैं और भावनाशील हैं। पिता के मृत्यु की खबर सुनकर वे शोक रोक नहीं पाएंगे, जिससे उनका हृदय भी फट सकता है। इसलिए राम ने सोचा मैं उन्हें पानी में खड़ा करके शोक समाचार सुनाऊंगा। लखन और सीता वन से लौटे तब उन्हें राम ने कहा कि तुम दोनो बहुत देर से आए हो इसलिाए पानी में खड़े हो जाओ। ऐसा कहकर राम ने उन्हें पानी में खड़ा कर दिया। इसके बाद राम ने उन्हें पिता दशरथ के मृत्यु की खबर सुनाई। खबर सुनते ही वे दोनों बेहोश होकर गिर गए, होश में आकर वे विलाप करते थे और बार-बार गिरते थे। वे अत्यंत शोकग्रस्त थे। लेकिन, बोधिसत्व राम न शोक करते और न ही रोते हैं। उनके शोक रहित रहने का कारण क्या है? यह पूछा गया। तब बोधिसत्व राम ने शोकरहित रहने का कारण बताते हुए अनित्यता के सिद्धांत का उपदेश दिया। बोधिसत्व राम ने गाथा के रुप में उपदेश में कहा- **''जिसे आदमी बहुत विलाप करके भी जीवित नहीं कर सकता, उसके लिए कोई बुद्धिमान मेधावी व्यक्ति अपने आपको क्यों कष्ट दे? ।।3।।''**

तरुण, वृद्ध, मूर्ख, पण्डित, धनी तथा दरिद्र सभी मरणशील हैं। ।।4।।

पके फलों को नित्य गिर पड़ने का भय रहता है। जिसने भी जन्म लिया है उसे नित्य मृत्यु का भय रहता है। ।।5।।

प्रातः काल बहुत से आदमी दिखाई देते हैं और शाम को उनमें से कुछ नहीं दिखाई देते। शाम को बहुत से आदमी दिखाई देते हैं और प्रातः काल उनमें से कुछ आदमी नहीं दिखाई देते। ।।6।।

रोने-पीटने से अपने को कष्ट देकर मूढ़जन (मूर्ख) को यदि कुछ भी लाभ होता हो, तो ज्ञानी आदमी भी रोना-पीटना करे ।।7।।

अपने से अपनी हिंसा करता हुआ आदमी दुर्बल हो जाता है, दुवर्ण हो जाता है।।8।।

जैसे घर में आग लगने पर तुरन्त बुझा दी जाती है, उसी प्रकार धीर, ज्ञानी, मेधावी आदमी को चाहिए कि हवा में रुई को उड़ा देने की तरह

शीघ्र ही क्रोध को नष्ट कर दे।।9।।

आदमी अकेला जाता है, आदमी अकेला ही (किसी न किसी) कुल में पैदा होता है। सभी प्राणियों के सम्भोग संयोग तक ही है। ।।10।। इसलिए जो धीर है, बहुश्रृत है, इस लोक और परलोक को देखता है (अष्ट) धर्म को जानता है, उसके हृदय और मन को बड़े-बड़े शोक भी कष्ट नहीं देते हैं। ।।11।।

इसलिए मैं (वैभव देने योग्य व्यक्तियों को) वैभव दूंगा, (भोग के साधन देने योग्य व्यक्तियों को) भोग दूंगा और सम्बन्धियों का पोषण करुंगा और शेष जनों का पालन करुंगा - यही बुद्धिमान के लिए करणीय है। ।।12।।[14]

बोधिसत्व राम ने अनित्यतावाद के साथ-साथ अष्टधर्म मतलब आर्य अष्टांगिक मार्ग का महत्त्व भी बताया है। इस बात से यह प्रमाणित होता है कि जातक कथा का महत्त्व बौद्धों में क्यों था बोधिसत्व राम के अनित्यता प्रकाशन धम्मोपदेश को सुनकर जनता शोकरहित हो गई। उसके पश्चात भरत कुमार ने बोधिसत्व राम को प्रणाम करके प्रार्थना की कि आप वाराणसी चलकर राज्य को संभाले। बोधित्सव राम ने कहा, लखन और सीता देवी को साथ ले जाकर राज करो। बोधिसत्व राम ने पिता के बचन की याद दिलाते हुए कहा, -''मुझे पिता ने कहा था कि 12 वर्ष बाद आकर राज करना। मैं अभी लौट गया तो पिता के बचन का पालन नहीं होगा। इसलिए मैं शेष तीन वर्ष बीत जाने के बाद जाऊंगा।'' इसपर भरत कुमार ने पूछा की इतने देर तक कौन राज्य चलाएगा? तब बोधिसत्व राम ने कहा, ''जब तक मैं नहीं आता, तब तक पादुकाएं राज्य चलाएंगी'' ऐसा कहकर उन्होंने अपनी तीन पादुकाएं दे दी और वे तीनों पादुका लेकर राम पंडित को प्रणाम कर जनता सहित वाराणसी पहुंच गए। इस तरह राम के पादुकाओं ने तीन वर्षतक राज चलाया। सामान्य तृण पादुकाओं को राज्य सिंहासन पर रखकर मुकदमों का निर्णय करते थे। यदि मुकदमें का निर्णय ठीक न होता तो पादुकाएं आपस में लड़ती थी और निर्णय ठीक होने पर पादुकाएं शांत रहती। तीन वर्ष बीत जाने के बाद बोधिसत्व राम राज्य में वापस लौट आते हैं। उनके आने से जनता अत्यंत खुश हो जाती है और सीता देवी को बोधिसत्व राम की पट्टरानी बनाकर राज्याभिषेक किया जाता है। इस तरह रामराज्य अवतरित होता है। बोधिसत्व

राम धम्म के अनुसार 16 हजार वर्षों तक राज्य करते हैं और इस तरह से वह स्वर्ग (सदगती) का लाभ लेते हैं।

इस तरह से दशरथ जातक कथा का आशय है। मूल पाली दशरथ जातक कथा का संबंध सिद्धार्थ गौतम बुद्ध से है। यह बताते हुए शास्ता ने धम्मदेसना का जातक कथा के साथ मेल बिठाया है। बोधिसत्व राम के धम्मोपदेश से अंत में गृहस्थ श्रोतापन्न फल में प्रतिष्ठित हो जाता है। कथा के अंत में शास्ता कहते हैं कि ''उस समय दशरथ महाराज शुद्धोधन महाराज थे। माता महामाया, सीता राहुल माता, भरत आनंद, लखन सारिपुत्त, परिषद बुद्धपरिषद और रामपंडित (बोधिसत्व) तो मैं ही था।''[14]

दशरथ जातक कथा बोधिसत्व राम की कथा है, जिसके माध्यम से श्रावस्ती के एक उपासक को बुद्ध ने अनित्यतावाद, आर्य अष्टांगिक मार्ग और चार आर्य सत्यों का धम्मोपदेश दिया था। इस तरह से वह उपासक श्रोतापन्न अवस्था में पहुंच गया। कथा के अंत में सभी पात्रों का संबंध सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के साथ और उनके परिवारजनों के साथ दिखाया जाता है। इसलिए इस जातक कथा का उपदेश करने वाले बोधिसत्व राम को बुद्ध के रुप में ही देखते होंगे। जिससे प्रेरित होकर सम्राट अशोक ने भी बोधिसत्व राम के शिल्प भरहुत और सांची जैसे बौद्ध स्थलों पर बनवाएं होंगे। इस जातक कथा का नाटक या मंचन के तौर पर प्रदर्शन होता था और कथा के बाद बोधिसत्व राम व गौतम बुद्ध का जयजयकार हेाता था। इस जातक कथा में समय के साथ और भी परिवर्तन होकर विस्तारित कथा दूसरी-तीसरी सदी में चाइना में अनुवादित होकर प्रचारित हुई और वह कथा अनामक जातक के रुप में प्रचारित हुई। बौद्ध लोग भी जातक कथाओं का नितांत आदर करते थे, इसलिए किसी भी जातक कथा के साथ छेड़छाड़ करना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। इसी दशरथ जातक की तरह दूसरी विस्तारित कथा को उन्होंने जातक कथा, जिससे मूल दशरथ जातक कथा अपने वास्तविक रुप में अभी तक टिक पाई।

देवधर्म जातक और उसका उद्देश

जातक कथाओं में 6 ठें नंबर की कथा देवधर्म जातक कथा है।[15] यह कथा जेतवन विहार में बुद्ध ने धम्मदेसना के साथ कही थी, जिसका संबंध ज्यादा सामान रखने वाले भिक्खु से था। मतलब बौद्ध भिक्खुओं को उपदेश करने के लिए इस कथा

का महत्त्व था। दशरथ जातक कथा मात्र उपासकों को उपदेश करने के लिए थी। देवधर्म जातक कथा को समझे बगैर आज के ब्राह्मणों के रचे हुए वाल्मिकी कथा की बनावट समझ में नहीं आएगी। इसलिए यह कथा यहां पर चर्चा के लिए ली गई है। खास बात यह है कि देवधर्म जातक और दशरथ जातक में एक समानता मिलती है और वह है 12 वर्ष का वनवास। शास्ता (बुद्ध) ने विनय तोड़ने वाले भिक्खु को पूछा था -''भिक्खु। क्या तुमने जल राक्षस के जन्म में लज्जा तथा निंदा-भय के साथ विहार करते हुए 12 वर्ष नहीं बिताये?'' उन भिक्खुओं को बुद्ध ने फिर पूछा -''इस गौरवपूर्ण बुद्ध धम्म में प्रवर्जित होने के बावजूद भी चार प्रकार की परिषद के बीच में पहने हुए चीवर को छोड़कर लज्जा-भय त्यागकर खड़ा क्यों हो?'' उसके बाद वह भिक्खु शास्ता के वचन सुनकर लज्जा तथा निंदा-भय से युक्त होकर चीवर पहनता है और शास्ता को प्रणाम करता है। भिक्खुओं ने उस जल राक्षस की कथा को बुद्ध से प्रकट करने को कहा और शास्ता ने उस कथा को उपदेश के तौर पर बताया।

पूर्व समय में काशी देश में वाराणसी के ब्रह्मदत्त राजा राज्य कर रहे थे। उस समय बोधिसत्व ने राजा की पट्टरानी की कोख में जन्म लिया। उसका नाम महिंसासस रखा गया। राजा को दूसरा पुत्र हुआ, जिसका नाम चंद्र कुमार रखा गया। लेकिन, उनके जन्म के समय बोधिसत्व की माँ मर गई। उसके बाद राजा ने दूसरी महिला से शादी की और उसे पट्टरानी बनाया। वह राजा की अत्यंत प्रिय बनी। उससे राजा को पुत्र हुए जिसका नाम सूर्य कुमार रखा गया। पुत्र को देखकर राजा बहुत खुश हुआ और राजा ने पट्टरानी से वर मांगने को कहा। पट्टरानी ने इसपर जवाब दिया कि पुत्र के बड़े होने पर वर मांगूगी। जब उसका बेटा बड़ा हुआ तब उसने अपने बेटे को राज्य देने का वर मांगा। दशरथ जातक कथा की तरह ही इस कथा में राजा की स्थिती बताई गई है। प्रज्वलित अग्निपुंज के समान चमकने वाले मेरे दो पुत्रों को छोड़कर मैं तेरे पुत्र को राज्य नहीं दे सकता, यह कहकर राजा ने वर देने से इन्कार किया। लेकिन, रानी ने बार-बार याचना की। फिर राजा ने सोचा, यह मेरे पुत्रों का बुरा भी सोच सकती है, इसलिए राजा ने दोनों पुत्रों को बुलाकर सूर्य कुमार के पैदा होने के पहले पट्टरानी को जो वर (वचन) दिया था वे सब बातें पुत्रों को समझा दी। इसलिए राजा ने दोनों पुत्रों को जंगल जाने का आदेश दिया और मेरे मरने के बाद कुल के अधिन रहकर राज्य करने की सलाह दी। राजा अत्यंत दुखी था। अपने पुत्रों के सिर चूमकर उन्हें जंगल में भेज दिया। सूर्य कुमार को जब यह बात पता चली तब उसने भी उनके साथ जाने

की जिद की और वह भी उनके साथ निकल पड़ा। वह तीनों भाई हिमालय की ओर निकल पड़े। रास्ते में बोधिसत्व एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर सूर्य कुमार को तालाब से पानी और पानी पीने के लिए कमल के पत्ते लाने को कहा। उस तालाब को कुबेर (वैश्रवण) ने एक जल राक्षस को वह तालाब दिया था। कुबेर ने उस राक्षस को यह कहा था कि जो देवधर्म को जानता हो उन्हें छोड़ देना और जो नहीं जानता उनका आहार कर लेना। (हत्या कर देना)। सूर्य कुमार बिना सोचे समझे तालाब में उतर गया और राक्षस ने उसे पकड़ लिया और पूछा, ''तुझे देवधर्म पता है?'' तब सूर्य कुमार ने उसे जवाब दिया चांद-सूर्य ही देवधर्म हैं। गलत जवाब सुनकर यक्ष ने सूर्य कुमार को अपने वास स्थान में कैद कर लिया। अपना भाई न आता देखकर चंद्र कुमार भी उसी जेल में आ पहुंचा। उसे भी यक्ष ने पकड़ा और सवाल पूछा। कहा जब तक सही जवाब नहीं देते तब तक नहीं छोडूंगा। चंद्र कुमार ने जवाब दिया ''चारों दिशाओं में देवधर्म है।'' लेकिन, गलत जवाब के कारण यक्ष ने उसे भी कैद कर दिया। दोनों भाई अभी तक वापस नहीं लौटे। यह सोचकर बोधिसत्व महिसासस उन्हें ढूंढने निकला और दोनों भाईयों के पदचिन्हों को देखकर वह तालाब के निकट पहुंचा। तालाब पर यक्ष (राक्षस) का अधिकार होगा, यह सोचकर महिसासस तलवार निकालकर खड़ा हो गया। बोधिसत्व को तालाब में नहीं उतरते देखकर राक्षस ने मनुष्य का रुप धारण किया और बोधिसत्व के पास आकर पूछा, ''तुम तालाब में उतरकर पानी पीकर कुल को धारण करके आगे क्यों नहीं जाते?'' बोधिसत्व ने सोचा यह यक्ष है और उनका विचार सही निकला। बोधिसत्व ने उस यक्ष से सीधा पूछा कि मेरे भाईयों को क्यों कैद करके रखा है? यक्ष ने जवाब दिया ''इस तालाब में उतरने वालों पर मेरा अधिकार है। जो देवधर्म जानते हैं उन्हें मैं छोड़ देता हूँ और बाकी लोगों पर मेरा अधिकार बनता है।'' बोधिसत्व ने यक्ष से पूछा ''क्या तुम देवधर्म जानना चाहते हो?'' इसपर यक्ष ने हाँ कहा। तब बोधिसत्व ने यक्ष को जवाब दिया कि मेरा शरीर अभी साफ नहीं है इसलिए कुछ नहीं कह सकता। तब यक्ष ने उसे नहलाया, पानी पिलाया, खाना खिलाया, सुगंधित तेल लगाया, अलंकृत मंडप के बीच स्थित मंडप में बिठाया और यक्ष बोधिसत्व के पैरों के पास बैठकर कान लगाकर बोधिसत्व को सुनने लगा। तब बोधिसत्व ने यह गाथा कही-

''लज्जा और निंदा-भय से युक्त,
शुभ कर्मो से युक्त, (लोगों) का शांत और सत्पुरुष को लोग देवधम्मा

कहते हैं।''

इस तरह से देवधर्म यक्ष को समझ में आया। इस जातक कथा के द्वारा बौद्ध तत्वज्ञान को बहुत आसानी से समझाया गया है। इस गाथा में 'हिरि ओत्तप्पसमूपन्न' का अर्थ हिरि मतलब लज्जा और ओत्तप्प मतलब निंदा-भय से युक्त। हिरि लज्जा का पर्यायी शब्द है। ओत्तप्प पाप से उद्वीग्न होने का पर्यायवाची शब्द है। लज्जा अपने अंदर पैदा होती है और निंदा-भय बाहरी कारणों से तैयार होते हैं। हिरिक का स्वामी (अधिपत्य) खुद है और ओत्तप्प का स्वामी लोक है। हिरि में लज्जा का भाव रहता है, ओत्तप्प में निंदा का भाव रहता है। हिरि का लक्षण आत्मगौरव का भाव और ओत्तप्प का लक्षण दुष्कर्म करने में भयभित होना होता है। पुरुष के अंदर हिरि चार कारणों से उत्पन्न करता है-

1. जाति (जन्म) का विचार करके
2. आयु का विचार करके
3. विरता का विचार करके और
4. अपने पांडित्य का विचार करके

वह कैसे? प्राणी हिंसा, आदिकम ऊंची जातियों का काम नहीं है, वह केवल आदि नीच जातियों का कर्म है। इस प्रकार, जात या विचार कर प्राणी हिंसा आदि न कर मन के अंदर व्यक्ति हिरि उत्पन्न करता है। पाप कर्म बच्चों काम है, बडे लोगों का काम नहीं है। इस प्रकार आयु का विचार कर प्राणी हिंसा आदि न करते हुए व्यक्ति मन के अंदर हिरि उत्पन्न करता है। पाप कर्म दुर्बलों का कर्म है, वीरों का नहीं। इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है। विरता का विचार कर प्राणी हिंसा आदि न करते हुए व्यक्ति मन में हिरि उत्पन्न करता है।

पाप कर्म करना अंधे लोगों का कर्म है, पंडितों का नहीं। इस प्रकार बहुश्रुत भाव का विचार कर प्राणी हिंसा आदि न कर व्यक्ति मन में हिरि उत्पन्न करता है। इसी प्रकार अपने मन में उत्पन्न होने वाली ''हिरि'' को चार कारणों से उत्पन्न और उस हिरि को अपने चित्त में स्थापित कर पाप कर्म नहीं करता। इस प्रकार हिरि अपने मन में अंदर से उत्पन्न होने वाली होती है। इसलिए इस जातक से यही उपदेश किया है कि यदि तुम पाप करोगे तो चारों की सभा (परिषद) में निंदा के भागी होंगे। यहाँ पर सभा

या परिषद मतलब भिक्खु संघ, भिक्खुनी संघ, उपासक संघ और उपासिका संघ से बना बुद्ध का चतुर्विद संघ है।

अंगुत्तर निकाय में भी इसके संदर्भ हैं। एक व्यक्ति अपनी जाति (जन्म) की महानता का विचार कर अपने शास्ता की महानता का विचार कर, अपनी विरासत की महानता का विचार कर, अपने गुरु भाईयों की महानता का विचार कर इन चार कारणों से गौरव स्वभाव वाली हिरि को उत्पन्न कर (गौरवभाव) पाप कर्म से बचता है। दूसरा व्यक्ति आत्मनिंदा के भय से, परनिंदा के भय से इन चार कारणों के कारण दुष्कर्म करने से भयरुपी ओत्तप्प को उत्पन्न कर पाप कर्म नहीं करता।

सत्पुरुष इस तरह धम्म के आचरण से ही निर्माण होते हैं। छः प्रकार के लोग होते हैं -संस्कार लोक, सत्व (प्राणी) लोक, ओकास (स्थान) लोक, स्कन्ध लोक, आयतन लोक, धातु लोक, इस तरह से अनेक लोक हैं। एक लोक सब सुत्तों की स्थिति आहार पर निर्भर है। अठ्ठारह लोक, अठ्ठारह धातु लोक में संस्कार लोक कहा गया है। स्कन्ध लोक आदि सब उसके अंदर आ ही गये। यही लोक, परलोक, देव लोक, मनुष्य लोक आदि में सत्व लोक कहा गया है।

'यावता चन्दिमसुरिया परिहरानी दिसा भान्ति विरोचना ताव सहरसधा लोको एत्थ ते वतति वसो।।[11]

अर्थात- जहां तक चंद्रमा और सूर्य घुमते हैं, प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करते है, वहाँ तक सहस्त्र (चक्र वाले) लोक हैं और इस सारे लोक पर तेरा वश है।

अच्छाई या भलाई ही शुभ धर्म है। जो सत्वलोक में सत्पुरुष होते हैं वही देव-धम्म कहलाते हैं। देव तीन प्रकार के होते हैं- देव, उत्पत्ति देव और विशुद्धी देव।

महासम्मत लोगों को - राजा, राजकुमार आदि को ''देव'' कहकर बुलाते हैं वे सम्मुती देव है। देवलोक में उत्पन्न हुए 'उत्पती देव'। क्षिनश्रव (अरहत) ही विशुद्धी देव है।

विशुद्धी देव मतलब बुद्ध या प्रत्येक बुद्ध है और इन सभी के देव देवधर्म है। हिरि और उत्तप्प कुशल धर्म के मूल हैं। इसलिए मनुष्य भी देवधर्म है।

बोधिसत्व महिंसासस ने जब देवधर्म का अर्थ यक्ष को बताया तो इससे यक्ष बहुत खुश हुआ और उसने एक भाई को लौटाने की बात कही। उन दोनों में से किसको लौटाऊं, ऐसा उसने बोधिसत्व से पूछा। तब बोधिसत्व ने अपने सगे भाई के बजाए अपने सौतेले भाई को मांगा। यक्ष यह सुनकर चकित हुआ। इसपर बोधिसत्व ने जवाब

देते हुए कहा, ''यक्ष मैं देवधर्म जानता हूँ और उसके अनुसार आचरण करता हूँ।'' बोधिसत्व ने कहा अपने सौतेले भाई के पैदा होने के कारण पिता को सौतेली माता को वर देना पड़ा और उसी के कारण हमें वनवास मिला। अगर जो भाई इन सबकी वजह बना है उसे छोड़कर नगर में वापस गया और लोगों को बताया कि यक्ष ने सौतेले भाई को खा गया है तो लोग आरोप कर सकते हैं कि राज्य पाने के लिए यह सब किया, इससे निंदा होगी। यक्ष बोधिसत्व के देवधम्मा आचरण से प्रभावित होकर उनके दोनों भाईयों को मुक्त कर दिया। बोधिसत्व यक्ष को पाप कर्म को त्यागकर, रक्त, मास खाने को त्यागने का उपदेश कर पुण्यकर्म करने को कहा। एक दिन नक्षत्र देखकर, पिता के मरने की बात जानकर यक्ष को साथ लेकर वे तीनों भाईयों के साथ वाराणसी लौटते हैं। बोधिसत्व राजा बनता है, चंद्र कुमार उपराजा और सूर्य कुमार सेनापति बनता है। यक्ष के लिए एक आयतन अर्थात मंदिर बनाया जाता है और उसे ज्येष्ठ माला, ज्येष्ठ पुष्प और ज्येष्ठ भोजन मिलता है और वे सभी धम्मानुसार राज्य करते हैं।

शास्ता ने इस धम्मोपदेश के माध्यम से सत्य को प्रकाशित किया। चार आर्य सत्य के प्रकाशन के अन्त में तथागत ने भिक्खुओं को स्त्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित किया। दोनों जातक कथाओं की तुलना करके जातक का सारांश बता दिया। देवधम्मा जातक में उदक यक्ष (राक्षस) बहुआकर्षिक भिक्खु थे। सूर्य कुमार (उस समय का) आनंद थे और महिंसासस कुमार बोधिसत्व खुद बुद्ध थे।[15]

अनामक जातकम्

पाली जातक कथा मूलतः भारतीय कथाएं हैं और वे बौद्ध कथाएं हैं। यह कथाएं प्राचीन काल में ही देश-विदेश में फैली थी। भारत को संपूर्ण दुनिया केंद्र के रुप में देखती थी और ज्ञान बौद्ध धर्म में था। जातक कथाएं बौद्ध धर्म का अविभाज्य अंग है। जातकों के माध्यम से धम्म का प्रचार करने के लिए पहली सदी में अजंता गुफाओं का निर्माण शुरु हो चुका था और यह कार्य 5 वीं सदी तक जारी रहा, जिसमें अनेक जातक कथाएं चित्र के रुप में आज भी जीवित हैं। जातकों के लिए भव्य गुफाओं का निर्माण होता। यह जातकों का महत्त्व प्राचीन जनमानस में कितना था, यह दर्शाता है।

तीसरी सदी में अनामकं जातकम का कांग सेंग वेई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था।[16] यह जातक कथा पाली या संस्कृत भाषा में नहीं मिलती, लेकिन इसका चीनी अनुवाद चीनी त्रिपिटक में आज भी सुरक्षित है।

अनामक जातक के चीनी संस्करण में राम, सीता का वनवास है, लेकिन वह सौतेली माता के कारण नहीं, बल्कि मामा के आक्रमण की तैयारियाँ सुनकर वे राज्य को त्याग देते हैं। इस कथा में सीता हरण, जटायु का वृत्तांत, बाली व सुग्रीव का युद्ध, सेतु निर्माण, सीता की अग्निपरीक्षा इन सब का प्रसंग मिलता है। अनामक जातक कथा में किसी भी पात्र का नाम नहीं है। इसलिए इस कथा का नाम अनामक है। बाद में इस कथा के सूत्र को आधार बनाकर वाल्मिकी के कथा संग जोड़ दिया होगा। बोधिसत्व को महान राजा दिखाया गया है और वह चार गुणों से युक्त (दान, प्रियवचन, न्याय व समदर्शिता) के कारण सभी जीवों का रक्षण करते हैं। उनका मामा निर्लज्ज, लोभी, दुष्ट और निर्दयी था। मामा के कारण ही बोधिसत्व को राज्य का त्याग करना पड़ा था। अपने कारण राज्य की हानि न हो, इसके लिए बोधिसत्व ने राज्य का त्याग किया था। बोधिसत्व पहाड़ी पर निवास करने लगे और इस पहाड़ी के नीचे समंदर में एक नाग रहता था। जब बोधिसत्व फल लेने गये तब उस नाग ने छदमवेश धारण कर सीता का अपहरण करता है और इस तरह रानी की खोज में दुष्ट नाग के साथ संघर्ष शुरु हो जाता है। बोधिसत्व को बाद में एक उदास बंदर मिलता है, जिसका राज्य उसके चाचा ने छिन लिया था। दोनों मिलकर बंदरों की सेना तैयार करते हैं और नागद्वीप को घेर लेते हैं। जब दुष्ट नाग से युद्ध शुरु होता है, तब वह दुष्ट नाग बादल से सूर्य को छुपा देता है और बिजली चमकने लगती है। लेकिन, छोटा बंदर बोधिसत्व को बताता है उस बिजली पर बाण मारता है, जिसमें वह दुष्ट नाग राजा मर जाता है। इधर मामा का देहांत सुनकर बोधिसत्व राज्य में वापस लौटते है। लेकिन, पत्नी को दूसरे के घर निवास करने के कारण लोग उस पर संदेह करते हैं। नागरती खुद को पंकजा मानती है। फिर भी अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए कहती है कि अगर मेरा सतीत्व सही है तो धरती फट जाए। तभी धरती फट जाती है और उसका सतीत्व प्रमाणित होता है। फिर अंत में बोधिसत्व राजा धम्म के अनुसार राज्य करते हैं। इस कथा में देवदत्त को दुष्ट मामा, मैत्रेय बुद्ध को छोटा बंदर और सीता को गोपारानी दिखाया गया है।

वाल्मिकी रामायण मौर्योत्तर कालीन रचना है।

हमने जातकों का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक आधार पर अध्ययन करके ऐतिहासिक सच ढूंढ लिया है कि उनका संबंध बुद्ध तक जाता है। मात्र ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक आधार पर वाल्मिकी रामायण का काल कम से कम तीसरी सदी का उत्तरार्ध और चौथी सदी का पूर्वार्ध है, जो उसकी प्राथमिक अवस्था थी। 5 वीं सदी में, खासकर विक्रमादित्य (अर्थात दूसरा चंद्रगुप्त) के कार्यकाल में रामायण को एक नया स्वरुप दिया गया, जो आज वर्तमान में हम देखते हैं।

रामायण का उल्लेख पाली में नहीं है। पतंजलि के महाभाष्य में भी रामायण का उल्लेख नहीं है। हॉपकिन्स और याकोबी का कहना है कि रामायण वास्तव में महाभारत के रामोपाख्यान पर आधारित है और रामोपाख्यान किसी अन्य प्राचीन राम कथा पर निर्भर है।[17] अगर रामोपाख्यान किसी प्राचीन राम कथा पर आधारित है तो वह प्राचीन राम कथा कौन सी है? वह प्राचीन राम कथा है दशरथ जातक। अश्वघोष के बुद्ध चरित्र में भी राम का उल्लेख आता है, लेकिन वह राम कोई और नहीं बल्कि दशरथ जातक का राम है।[18] जॉन्स्टन के अनुसार, अश्वघोष के समय राम की कथा प्राथमिक अवस्था (अर्थात जातक के रुप) में थी, क्योंकि अश्वघोष को आज के रामायण का बालकांड और उत्तरकांड पता नहीं था।[19] रामायण में शक, कुषाण, हुण, यवन, पल्लव जैसे आक्रमकों का उल्लेख आया है।[20] इससे स्पष्ट होता है कि रामायण मौर्योत्तर है आज के रामायण का रचनात्क तीसरी–चौथी सदी है।[21] वेबर ने यह भी तर्क प्रस्तुत किए हैं कि रामयण में यवन, पल्लव, हुण, शक, तुखास, कन्नोज जैसे मौर्योत्तर विदेशी आक्रमकों का उल्लेख आता है। इसलिए रामायण को प्राचीन नहीं कहा जा सकता है।[22]

दिनेश चंद्र सेन ने वेबर के इस सिद्धांत को पुष्टि दी है कि दशरथ जातक से ही रामायण की उत्पत्ति हुई है।[23] राहुल सांस्कृत्यायन जो संस्कृत एवं बौद्ध साहित्य के महापंडित माने जाते थे, उनके अनुसार रामायण मौर्योत्तर कालीन रचना है। जब करपात्री महाराज ने लिखा था कि रामायण, महाभारत को सिद्ध करने के लिए पुरातात्विक साक्ष्य और आधारों की जरुरत नहीं है, क्योंकि वे करोड़ों अरबों वर्ष पहले हो चुके हैं। इसपर राहुल सांस्कृत्यायन ने उपरोधात्मक टिका करते हुए लिखा था– ''खंडहरों, सिक्कों और शिलालेखों से इतनी आसानी से छुट्टी मिल गई और सच्चे

इतिहास के ज्ञान का रास्ता कितना सरल और साफ कर दिया। भारत के इतिहास नेताओं को, विश्वविद्यालयों और कॉलेज के इतिहास अध्यापकों को सब कुछ छोड़ महाराज की शरण में जाना चाहिए।''[24]

डॉ.कमलकांत मिश्र ने पटना विश्वविद्यालय में ''जातक माला-एक अध्ययन'' इस विषय पर पी.एच.डी. हेतु शोधप्रबंध प्रस्तुत किया था। उन्हे 1976 में पी.एच.डी. से सम्मानित किया था और उनका थेसिस 1977 में प्रकाशित किया था। उन्होंने अपने शोधप्रबंध में इस बात को स्विकार किया है कि रामायण और महाभारत बौद्धों के जातक कथाओं से ही बाद में बनाए गए कथानक है। मिश्र महोदय कहते हैं-

''जातक-संग्रह की कथाओं का साम्य अथवा प्रभाव अन्य साहित्य की कथाओं में दिखाई पड़ता है। त्रिपिटक अथवा तत्कालीन अन्य किसी साहित्य में न कहीं रामायण का उल्लेख मिलता है न महाभारत का। देश में रामायण और महाभारत की कथा घर-घर होती रही। तत्कालीन साहित्य में उसके विषय में कहीं कुछ न कहा गया हो, यह हो नहीं सकता। इससे प्रतीत होता है कि रामायण एवं महाभारत जातक के बाद के ग्रंथ हैं। जातक कथा का स्पष्ट प्रभाव इन ग्रंथों पर दिखाई पड़ता है। रामायण में बुद्ध का नामोल्लेख मिलता है।''[25]

डॉ.बाबासाहब आंबेडकर ने ''Revolution and Counter Revolution''इस ऐतिहासिक ग्रंथ में सिद्ध किया है कि रामयण मौर्योत्तर ग्रंथ है और उन्होंने विभिन्न सबूतों के आधार पर यह भी सिद्ध किया है कि बाद के समय में समय-समय पर बढ़-चढ़कर लिखे गए ग्रंथ रामायण-महाभारत हैं।[26]

रामायण में बुद्ध का जिक्र क्यों?

''यथा हि चोरसः तथा हि बुद्धस्तस्थागतं नास्तिकम विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतम् प्रजाना न नास्तिके नाभिमुखो बुद्ध स्थान्।।''[27]

अर्थात, ''जैसे चोर दंडनीय होता है, इसी प्रकार तथागत बुद्ध और उनके नास्तिक अनुयायी भी दंडनीय हैं।

तथागत बुद्ध और उनके नास्तिक अनुयायियों को भी यहाँ इसी कोटि में समझना चाहिए। इसलिए राजा का यह कर्तव्य है कि प्रजा की भलाई के लिए ऐसे मनुष्यों को वहीं दंड दे जो चोरों को दिया जाता है। परंतु जो इनको दंड देने में असमर्थ या वश के बाहर हो, उन नास्तिकों से समझदार और विद्वान ब्राह्मण कभी भी वार्तालाप न

करें।''

रामायण में बुद्ध का जिक्र आना यह इसी बात का प्रमाण है कि रामायण, बुद्ध के बाद लिखी गई थी। बुद्ध के कम से कम हजार वर्षो बाद तक बौद्धों की देश में पकड़ थी और उनका देश पर राज था। उस समय अगर किसी ने उनके बारे में लिखा होता तो निश्चित ही उसे देहदंड मिला होता! इससे साबित होता है कि यह श्लोक बहुत बाद में लिखा गया है। प्रसिद्ध संस्कृत स्कॉलर ग्रेग वेली महोदय का कहना है कि रामायण में बुद्ध का 16 बार जिक्र आया है और महाभारत अयोध्या कांड में और एक जगह बुद्ध का जिक्र आया है।

''निन्दाम्यहं कर्म पितुः कृतं तद्धस्तवाम - गृहवद्विप मस्यवृद्धिम्
बुद्धया नयैवंविधया चरत्न,
युनास्तिकं धर्मपथादपेतम्''[28]

अर्थात, ''हे जाबली। मैं अपने पिता (दशरथ) के इस कार्य की निंदा करता हूँ, जिन्होंने तुम्हारे जैसे वेदमार्ग से भ्रष्ट बुद्धि वाले धर्मच्युत नास्तिक को अपने यहां रखा। क्योंकि, बुद्ध जैसे नास्तिकमार्गी, जो दूसरों को उपदेश देते हुए घुमाफिरा करते हैं, वे केवल घोर नास्तिक ही नहीं, बल्कि धर्म मार्ग से च्युत भी हैं।''

बुद्ध को वैदिक ब्राह्मणों द्वारा गालियां देना स्वाभाविक है। मगर गालियों के साथ-साथ वाल्मिकी रामयण में बुद्ध की महत्ता को भी स्विकार किया गया है। दशरथ जाबली को अपने पास क्यों रखते हैं? पुरातात्विक आधार पर जाबली बुद्ध का ही प्रतिनिधित्व करता है। बुद्ध के साथ उनके अनुयायियों के साथ ब्राह्मणों को बात भी नहीं करनी चाहिए, ऐसा क्यों कहा है? इससे साबित होता है कि जब कभी रामायण लिखा गया होगा, उस समय बौद्ध मतों से उन्हें कितना डर लगता होगा।

आश्चर्यजनक बात यह है कि वाल्मिकी रामायण पर जातकों का प्रभाव

छठें अध्याय में चैत्यों का उल्लेख मिलता है।[29] दूसरी बात यह है कि रावण की लंका के सैनिकों को ''सिधु'' कहा गया है।[30] वाल्मिकी रामायण में 5 वें अध्याय में चैत्य की तुलना स्मशान से की है।[31] चैत्यों के प्रति घृणा होने की वजह यह किया है? चैत्य शब्द बुद्ध से संबंधित है, लेकिन रामायण में इस शब्द का आना यह प्रमाणित करता है कि रामायण बुद्धोत्तर है और बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया में रामायण का निर्माण किया गया है।

अश्वघोष पर जातकों का प्रभाव

अश्वघोष प्रसिद्ध बौद्ध कवि थे, जो बौद्ध सम्राट कनिष्क का राजकवि थे। अश्वघोष बुद्ध से अत्यंत प्रभावित था। उसने तथागत बुद्ध के जीवन पर बुद्धचरित्र काव्य लिखे थे, जिसकी संस्कृत आवृत्ती आज भी उपलब्ध है। बुद्धचरित्र में तथागत बुद्ध के जीवन का अत्यंत रसभरित वर्णन किया गया है। अश्वघोष जगह-जगह पर बुद्धचरित्र का गायन करते थे। उनके मधुर बुद्ध गीत को सुनकर लोग भावविभोर होकर रोने लगते थे। इससे पता चलता है कि अश्वघोष के समय बौद्ध धर्म कितना प्रबल था और लोगों पर उनकी कितनी गहरी छाप थी। ह्युएनत्संग ने भी अश्वघोष के बुद्धचरित्र की तारिफ कर दी थी। अश्वघोष खुद अपने गायन का प्रदर्शन लोगों के सामने करते थे। इससे पता चलता है कि उस समय धम्म प्रचारक अपनी कथाओं और काव्यों का जनसमूहों के सामने तारिका (वाद्य) के रुप में प्रदर्शन करते थे। अश्वघोष साकेत के निवासी थे। (साकेत जाताह)[32]

इ.बी.कॉवेल ने लिखा है कि अश्वघोष के बुद्धचरित्र में राम का उल्लेख अनेक बार आया है। (बुद्धचरित्र, 6-33, 8.8, 9.9, 9.69) लेकिन अश्वघोष का यह राम रामायण के राम से भिन्न है। हमारा कहना है कि अश्वघोष का राम वास्तव में दशरथ जातक का बोधिसत्व ही है।

अश्वघोष का वाल्मिकी और कालिदास पर प्रभाव

अश्वघोष के संबंध में ब्राह्मण लेखकों ने संभ्रम पैदा किया है। बल्कि सच्चाई यह है कि अश्वघोष के बुद्धचरित्र पर जातक कथाओं का अधिक गहरा प्रभाव है। अश्वघोष के सामने भी दशरथ जातक कथा का बोधिसत्व राम ही है। अश्वघोष के सामने बुद्ध का त्यागमई जीवन है और उन्होंने बुद्ध के जीवन को ही आदर्श जनता के सामन प्रस्तुत किया है। महाकवि अश्वघोष के साथ कालिदास की तुलना करें तो यही बात सामने आती है कि कालिदास चोर है! कालिदास के रघुवंश के सप्तम सर्ग में किया गया महिला का वर्णन यह अश्वघोष के बुद्धचरित्र के तीसरे सर्ग के स्त्री-वर्णन की नकल मात्र है। यशोधरा को विलाप और रति विलाप से प्रभावित होकर ऐसा ही वर्णन रघुवंश में दिखाई देता है।

अश्वघोष और कालिदास की रचना में शब्दों और अर्थों में कितनी समानता दिखाई देती है इसका एक प्रमाण यहां प्रस्तुत कर रहे हैं-

कालीदास और अश्वघोष

अश्वघोष और कालिदास की रचना में शब्दों और अर्थों में समानता पाई जाती है।

अश्वघोष	कालिदास
ता सुन्दरी चेन्न लभेत नन्द; सा वा निषेवेत न तं नतभ्रूः। द्वन्द ध्रु वं तद्विकलं न शोभे- तान्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्री।। सौ04/7	परस्परेण स्पृहणीयशोभम् न चेदिंदं द्वन्दमयोजयिष्यत् श्रस्मिन्द्वये रुपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत्।। कुमार 7/66
तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष, भार्यानुरोगः पुराचकर्ष । सोऽनिश्चयान्नापियथौनतस्थौ, तरस्तरगेष्विव राजहसः ।। सौ04/42	मार्गाचलव्यतिकरा- कुलितेव सिन्धुः । शीलाथ्धिराजतनया नयमो न तस्थो । कुमार 4/85
हतत्विषोऽन्याः शिथिलांसवाहवः । स्त्रियो विषादेन विचेतना इव ।। बु0च0 8/25	निरीथदीपाः सहसाहतत्विषो वभूवुरालेख्य समर्पिता इव। रघु0 3/15
आदित्यपूर्व विपुल कुल ते नवं वयो दीप्तमिदं मार कर्तुम् । बु0च0 10/23	एकातपत्र जगत. प्रभुत्वम् नव वयः कान्तमिद वपुश्च ।
मोघं श्रम नाहंसि मार कर्तुम् । बु0च0 13/57	अलं महीपाल तव श्रमेण । रघु0 2/34
प्रमदानाम गतिनं विद्यते । सौ0 8/44	मनोरथानामगतिनं विद्यते । कुमार 5/64

दशरथ जातक कथा से क्या चुराया गया?

ऐतिहासिक तथ्य और प्रमाणों के आधार पर जातक कथाएं प्राचीन हैं और दशरथ जातक कथा भी प्राचीन है। जातकों का प्रभाव जनमानस पर बहुत गहरा था; इसलिए उन प्रभावशाली कथाओं की वैदिक ब्राह्मणों द्वारा चोरी करना स्वाभाविक है। लेकिन, वह वैदिक ब्राह्मण अब ब्राह्मणवाद को मजबूत करने के लिए वाल्मिकी रामायण को अतिप्राचीन तथा बुद्ध पूर्व दिखाने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन, उसमें तथ्य नहीं है। वाल्मिकी रामायण दशरथ कथा की चोरी मात्र है। इसके अकाट्य तथ्य एवं सबूत दशरथ जातक कथा और वाल्मिकी रामायण की तुलना करने से समझ में आएगी। उन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन नीचे दिया गया है –

दशरथ जातक में बोधिसत्व राम अनित्यतावाद के सिद्धांत को पके हुए फल का उदाहरण देकर कहते हैं,

''फलान इ पक्कानं निच्च पयतना भयं।
एवं जातान मच्चानं निच्च मरणतो भयं ।।5।।''[34]

यही पाली का उपदेश वाल्मिकी रामायण में शब्दशः संस्कृत में प्रस्तुत किया है, बस केवल भाषा का फर्क है।

रामायण में –

''यथा, फलानां पक्वाना नान्यत्र भय ।
एवं नराणां जातान न्यान्यत्र मरणादू भयं ।।''[35]

दशरश जातक में –

''एको व मच्चो अच्योती, एकोव जायते कुले ।।10।।''[36]

रामायण में –

''यद् एको जायते जन्तुरेकेव विनश्यति ।''[37]

दशरथ जातक में –

''दसवस्म सहस्सानि सष्ठि वस्स मतानिच
कम्बुग्रोवों महाबाहु रामो रज्जे अकारयि ।।3।।''[38]

रामायण में –

''दश वर्ष सहस्त्राणि दश वर्ष शतानिच
बीत शोक भय क्रोधो रामो राज्यं अकारयत।।''[39]

जैसे उपरोक्त तुलना से ब्राह्मणों की चोरी पकड़ में आयी है उसी तरह दशरथ जातक में भी जल क्रिया (गाथा–1) को वाल्मिकी रामायण में ज्यों का त्यों चुराया गया है। दशरथ जातक में नाग क्रिया – ''एवं लखन सीताच उभो ओतर धोदक।

अर्थात –'लखन और सीता दोनों जल में उतरे, क्योंकि भरत कहते हैं – राजा दशरथ मर गए।' रामायण में इसी जल क्रिया का ज्यों का त्यों जिक्र आता है ''भरतो दुःखमाचष्टे स्वगतिं पृथिविपतीम ।।15।।

जलक्रियार्थ तातस्य गमि व्यामि महात्मम 20।।''

(वाल्मिकी राम. 2/103)''

दशरथ जातक कथा के अंदर जो लिखा गया है वही जैसा का वैसा वाल्मिकी रामायण में भी उतारा गया है। इससे यही प्रमाणित होता है कि दशरथ जातक कथा की चोरी करके वाल्मिकी रामायण में उसका विस्तारिकरण किया गया है। शाब्दीक और अर्थ में इतनी साम्यता ही इस चोरी को सिद्ध करने के लिए काफी है। इसी साम्यता पर भदंत आनंद कौशल्यायन टिका करते हुए कहते हैं कि,

''महाभारत–रामायण तथा जातको में यदि कुछ साम्य दिखाई देता है तो वह जातक कथाओं की ही देन है । डा. आर.डी. आंडारकर का कहना है कि, पतंजलि के महाभाष्य तक राम का नाम नहीं है और न ही किसी प्राचीन शिलालेख में।''[40] धर्मानंद कोसम्बी का कहना है कि रामायण के रामचन्द्र और उनकी अयोध्या नगरी दोनों के भारतीय होने में शंका है। रामायण को छोड़कर पतंजलि के समय तक किसी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ में अयोध्या का नाम नहीं आता है। पाँचवी सदी के आचार्य बुद्धघोष महाभारत और रामायण से परिचित थे। लेकिन, वह बौद्धों के जातकों के। मगर उनके समय तक मूल जातक कथा को प्रक्षिप्त किया गया होगा और उससे हिंसा का बोध होता हो इसलिए कहा था– ''आख्यान का मतलब है भारत रामायण आदि। वह कथा जहाँ हो रही हो वहाँ जाना योग्य नहीं।''[41] क्योंकि उनके समय तक सीता हरण का वर्णन किसी ने जोड़ दिया था जो चीन के जातक कथा में आयी थी, उसे

हम पहले ही देख चुके हैं। बुद्ध घोष दशरथ जातक कथा को रंजक बनाने के लिए प्रक्षिप्त किया जा रहा था। इसलिए वे नाराज थे।

दशरथ जातक कथा से ही ब्राह्मणों ने वाल्मिकी रामायण की कथा को लिया है और बाद में उसमें अनेक बातों की मिलावट करके बौद्ध धर्म के खिलाफ उसका उपयोग और प्रयोग किया।

जातक कथाओं का अन्य साहित्य पर प्रभाव –

जातक कथा का प्रचार गुफा, चैत्यों के स्थानों पर अधिक मात्रा में हुआ। दानकर्ताओं ने उसके शिल्प बनाने के लिए कोष दिया। प्राचीन काल में ही बौद्धों के व्यापारों के कारण उनके साथ जातक कथाएं भी दूर-दूर तक फैली। पेशाची भाषा में रचित 'बृहत्कथा' जातकों पर आधारित है। सोमदेव ने 'कथा-सरित्सागर' की रचना की थी, उसमे अनेक जातक कथाएं हैं। पंचतंत्र तथा हितोपदेश के अनेक कथाओं का मूल स्रोत जातक कथा ही है। इसापनिती की कथा यूरोप में प्रचार में आयी थी। उनके जातक कथाओं की तुलना से रि डेव्हीडस ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ''उनमें से किसी कथा का इससे संबंध नहीं है; उनमें से अधिकांश कथाओं का मूलस्रोत जातक कथाएं हैं।'' रायसाहेब निदेशचंद्र सेन का भी यही कहना है कि भारतीय लोक कथाओं का मूल उगमस्थान जातक कथाएं हैं और भारत से ही ग्रीक व अन्य प्रांतो में जातक कथाएं पहुंची है, जो वहां अलग नाम से प्रचार में लाई गई है। अरेबियन नाईट्स जातक कथाओं पर ही आधारित है। सेन ने भी यही दावा किया है कि पंचतंत्र, हितोपदेश, कथासरितसागर, अरेबियन नाईट्स यह सभी कथाएं जातक कथाओं से बनी है।

8 वीं सदी में बगदाद के खलिफा अलमन्सुर के दरबार का संत जॉन ऑफ दमास्कस व्यक्ति भारत में आया था। उसने भारत के अंदर प्रचलित जातक कथाओं से बहुत प्रभावित हुआ और उसने उन्हें ग्रीक भाषा में अनुवादित किया। जिसका नाम है ''बलराम और जोसेफ।'' उसने बोधिसत्व को ही 'जोसफ' कहा है। संत जॉन व्यक्ति बुद्ध और जातक कथाओं से परिचित था, इससे यह स्पष्ट होता है।[44]

जिस समय हुण, यूरोप में चले गए तब वे अपने साथ कुछ जातक कथाओं को लेकर गए। एक इटेलियन विद्वान ने सिद्ध किया है कि ''किताब-उल सिंधबाद'' की अनेक कथाओं और ''अलिफ लैला (अरेबियन नाईट्स)'' का मूल स्रोत जातक

कथाएं हैं।[45]

प्राचीन काल में बौद्ध लोग व्यापार के लिए दूर-दूर तक जाते थे और उनके अच्छे स्वभाव का लोंगों पर प्रभाव पड़ता था। जातक कथाओं के माध्यम से ही अलग-अलग देशों में बौद्ध धर्म स्थापित हुआ और वहां प्रचार हुआ। इसलिए हम देखते हैं कि विभिन्न बौद्ध राष्ट्रों में भी जातक कथाओं का महत्व है। विश्व में जातक कथाओं के द्वारा ही बौद्ध धर्म फैला हुआ है। इसलिए दशरथ जातक कथा के माध्यम से म्यांमार, चाइना, नेपाल, जापान, थाइलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया, सिलोन, जावा, कोरिया जैसे बौद्ध राष्ट्रों मे बोधिसत्व राम का महत्त्व आज भी बरकरार है। ब्राह्मण आजकल भारत में झूठा प्रचार कर रहे हैं कि वाल्मिकी का राम विश्वनायक है। अगर उनकी यह बात पलभर के लिए मान भी लिया जाए तो भी ब्राह्मण अपने आप झूठे साबित हो जाते हैं कि वैदिक धर्म भारत के बाहर क्यों नहीं है? जैसे अन्य धर्मो में धर्मांतर करने की सुविधा है वैसे वैदिक धर्म में क्यों नहीं है? वैदिक धर्म, जो आजकल दांवपेच के तहत हिंदू धर्म के नाम से प्रचार में लाया जा रहा है, वह वर्णाश्रम धर्म है, ऊँच-नीच मानने वाला धर्म है। ब्राह्मणों के अनुसार राम बौद्ध राष्ट्रों में है, लेकिन वे लोग वर्णाश्रम धर्म पालन करते ही नहीं हैं। इसलिए उनका 'वाल्मिकी रामायण' का वर्णाश्रम धर्म पुनर्जीवित करने वाला ''वाल्मिकी राम'' नही है, बल्कि उनका राम दशरथ जातक कथा का ''बोधिसत्व राम'' ही है।

मौर्य काल में सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए प्रशिक्षित व बौद्ध भिक्खुओं को अलग-अलग प्रांतो में भेजा था। भिक्खु मोगल्लीपुत्त की प्रेरणा से भिक्खु महाधम्मरख्खित (महाधर्मरक्षित) महाराष्ट्र में आये थे। उन्होंने महाराष्ट्र में बौद्ध धम्म का प्रचार किया था, ऐसा वर्णन (श्रीलंका) के सिंहली भाषा में लिखे गए महावंस में मिलता है-

''महारठ्ठं इसी गत्वा सो महाधम्मरक्खितो महानारकस्साव्हं जातक कथ्रयी तहिं मग्गफलं पापुणिंसु चतुरासीति सहस्सका तेरसं तु सहस्सानि पब्बजिंसु तदानीके''

अर्थात : वह महाधम्मरख्खित महाराष्ट्र में गया और वहां उसने महानारद कस्यप नामक जातक कथा लोगों को बताई। उस जातक कथा को सुनते ही लोग इतने प्रभावित हुए कि 84 हजार लोगों को बुद्ध मार्ग का फल मिला (वे बुद्ध के अनुयायी बने) और 13 हजार लोग भिक्खु बने।''

महावंस इतना महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है कि पुरातत्त्वज्ञों ने सम्राट अशोक का शिलालेख

खोजने के लिए और उन शिलालेखों का अध्ययन करने के लिए उस ग्रंथ का सहारा लिया था। जातक कथाओं का प्रभाव जनमानस पर कितना गहरा होता था? इसका यह प्रमाण है। जातक कथाओं के माध्यम से ही बौद्ध धर्म सर्वदूर पहुंचा और जातक कथाओं ने सभी देशों के लोगों के दिल में महत्त्वपूर्ण जगह बना ली थी। इसलिए, महाराष्ट्र के सातवाहन सम्राटों ने अजंता की गुफाओं में जातक कथाओं के चित्रण किए थे। इसका दूसरा अर्थ यह है कि जातक कथा बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रभावी साधन था और इसी वजह से बौद्ध जातक कथाओं व बोधिसत्वों ने हर एक के दिल में जगह बनाई थी। जातक कथा ही बौद्ध धर्म के प्रचार का ऐसा महत्त्वपूर्ण साधन था की जिससे राजा भी प्रभावित हुए। जातकों के आलय को अर्थात अजंता गुफाओं को देखने के लिए ही ह्युएनत्संग महाराष्ट्र में आया था। उसके समय महाराष्ट्र में बुद्ध धर्म था। अजंता उस समय और आज भी विश्व का आकर्षण केंद्र है। इसकी वजह है जातक कथा!

रामायण में अन्य जातक कथाएं

ब्राह्मणवाद के मलबे के नीचे बहुत कुछ छिपा हुआ है। वाल्मिकी रामायण दशरथ जातक से निर्माण किया गया था। दशरथ जातक कथा का मकसद बुद्ध के अनित्यतावाद का प्रचार करना था। वाल्मिकी रामायण रचते समय ब्राह्मणों ने यह बात भली भांति याद रखी थी कि मूल कथा को आने वाले कई सदियों के बाद जब समाज में स्थापित किया जाएगा तब उसका मकसद क्या होगा। वाल्मिकी रामायण का मकसद जिस बौद्ध धर्म के कारण ब्राह्मणों का वर्चस्व एवं वर्ण व्यवस्था नष्ट हुई थी उसे पुनः स्थापित करना था। इसलिए, ब्राह्मणों ने बौद्ध की जातक कथा का सहारा लेकर उसी के आधार पर बौद्ध विरोधी रामायण कथा लिखी। यह जानना मनोरंजक होगा कि बौद्ध दशरथ जातक के बोधिसत्व राम को ही उन्होंने इस मकसद के लिए चुराकर इस्तेमाल किया। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए ब्राह्मणों ने बौद्धों के बोधिसत्व राम का वाल्मिकी रामायण के माध्यम से ब्राह्मणीकरण किया, ऐसा डॉ.वेबर का कहना है।[46] इतना ही नहीं, बल्कि निचली जातियों में वाल्मिकी रामायण की कथा प्रसिद्ध करने के लिए ब्राह्मणों ने उसके रचयिता वाल्मिकी को अध्यात्म रामायण में निचली जाति का दिखाया।[47] जबकि वाल्मिकी रामायण में वाल्मिकी खुद

को ब्राह्मण बताते हैं और उन्हें प्रचेता का दसवाँ पुत्र कहा गया है।[48]कपुरथला (पंजाब) के कोर्ट में एक ऐतिहासिक केस चला था, जिसमें वाल्मिकी अछूत (भंगी) थे या ब्राह्मण थे? इसपर बहुत बहस हुई थी और बाद में कोर्ट ने अपने फैसलें में घोषित किया की वाल्मिकी अछूत नहीं थे, बल्कि वे प्रचेता ब्राह्मण के दसवें पुत्र थे। इस संबंध में उसका ऐतिहासिक जजमेंट परिशिष्ट में जोड़ा गया है।

दशरथ जातक का रुपांतर ब्राह्मणों ने रामायण के नाम से किया। लेकिन, ब्राह्मणों को इस नाम की कल्पना कैसे सूझी? 'यान' शब्द से हीनयान शब्द इंगित होता है। बौद्ध धर्म में हीनयान और महायान दो अभ्यास पद्धति थी। हीनयान मतलब संकिर्ण या कठिन मार्ग, जो केवल अर्हत भिक्खुओं के लिए ही था। जिसमें कठोर विनय (नियम) थे और आम लोगों के लिए कठिन थे। सम्राट अशोक ने अर्हत भिक्खुओं के धम्म को सामान्य लोगों का धम्म (Public Buddhism) बनाया था। 'यान' शब्द बौद्ध धर्म से संबंधित है। उन शब्द को उठाकर वैदिक ब्राह्मणों ने राम के साथ उसे जोड़ दिया और वह अब रामायण (रामयान) बन गया। जिस समय दशरथ जातक के बोधिसत्व राम का प्रचार जनता में अधिक मात्रा में था और लोगों पर उसका गहरा प्रभाव भी था, उस समय उन बौद्धों को गुमराह करने के लिए ब्राह्मणों ने रामायण लिखा। मगर, उसमें यह खबरदारी ली कि बौद्धों के ही बोधिसत्व राम का इस्तेमाल किया। क्योंकि दोनों कथाओं में राम दशरथ राजा का ही पुत्र है।

इस तरह से ब्राह्मणों को प्रस्थापित नायक मिल गया। दशरथ जातक कथा से अहिंसा का बोध होता है। इसलिए नई रामकथा अत्याधिक रंजक बनाने के लिए और हिंसा का बोध देने के लिए बौद्धिकता का ब्राह्मणों ने दुरुपयोग किया। अन्य जातक कथाओं और उनके पात्रों का इस्तेमाल कर ब्राह्मणों ने मूल दशरथ कथा को वाल्मिकी रामायण की कथा के रुप में विस्तृत किया। मगर, उनका षड्यंत्र और चोरियां पकड़ में न आए इसके लिए उन्होंने कई बौद्धिक खेल खेले। ब्राह्मणवादियों के उन षड्यंत्रों को हम उजागर कर रहे हैं। सबसे पहला मुद्दा यह है कि रामायण का रचयिता किरदार वाल्मिकी वास्तव में कौन है और वो कहां से पैदा हुआ?

तथागत बुद्ध के जीवन में डाकू अंगुलीमाल की प्रसिद्ध कथा है। (मज्झिम निकाय, 86). तथागत बुद्ध एक बार श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे। तब डाकू अंगुलीमाल का प्रकोप आसपास के जंगलों में बढ़ गया था। साकेत और श्रावस्ती व्यापारी केंद्र होने के कारण उन रास्तों पर आने जाने वाले राहगिरों को लूटकर

अपना घर चलाता था और मारे गए व्यक्तियों की अंगुली गले में माला के रुप में पहनता था, इसलिए उसका नाम अंगुलीमाल पड़ा। बुद्ध के अनुयायियों ने उस क्रूर अंगुलीमाल के रास्ते से न जाने के लिए बुद्ध को आग्रह किया। लेकिन, तथागत बुद्ध ने उसी रास्ते से जाने की ठानी। जब बुद्ध अंगुलीमाल के इलाके से गुजरने लगे, तब अंगुलीमाल बुद्ध को मारने के लिए दौड़ा, लेकिन बुद्ध निर्भय स्थित प्रज्ञ होकर चलते रहे। इससे अंगुलीमाल अचंभित हो गया। बुद्ध ने अंगुलीमाल को कहा कि मुझे मारने से पहले मेरा एक कार्य पूर्ण करो। वह कार्य था वृक्ष के तीन पत्ते तोड़कर लाना। अंगुलीमाल ने पत्ते तोड़कर लाया और हंसकर कहने लगा कि यह कार्य तो बहुत आसान है। बुद्ध ने बाद मे कहा की तोड़े हुए पत्तों को फिर से जोड़ो। अंगुलीमाल ने जवाब दिया- यह कैसे संभव है? इसपर तथागत बुद्ध ने उपदेश करते हुए कहा, अगर तुम तोड़े हुए पत्ते जोड़ नहीं सकते हो फिर तुम लोगों की हत्या क्यों करते हो? अंगुलीमाल का हृदय परिवर्तन हुआ है। मज्झिमनिकाय के अंगुलीमाल सुतन्त में बुद्ध को महर्षि, शास्ता कहा है और यही महर्षि शब्द वाल्मिकी के साथ जोड़ दिया गया। बुद्ध के प्रबोधन से अंगुलीमाल ने हत्या त्याग दिया उसने बुद्ध से प्रवज्जा ली और वह अनुगामी श्रमण बना। अंगुलीमाल की कथा ऐतिहासिक कथा है और उसका संबंध उस समय के कोसल प्रांत के श्रावस्ती से (मतलब आज के अयोध्या से) जुड़ा हुआ है। राजा प्रसेनजीत बुद्ध को मिलने के लिए कड़ी धुप में दोपहर को यान में बैठकर गए। तथागत बुद्ध ने उनसे इतनी कड़ी धूप में आने की वजह पूछी। क्या तुम पर मगध के राजा बिंबिसार नाराज है या वैशाली के लिच्छवी या दूसरे राजा? राजा प्रसेनजीत ने नहीं जवाब देकर अंगुलीमाल का जिक्र किया और कहा मैं उसे मारने जा रहा हूँ। लेकिन, तथागत ने राजा से कहा कि समुंडन किया हुआ, प्रवर्जित, हिंसाविरहित, शीलवान, एकाहारी ऐसा अंगुलीमाल तुम्हे दिखेगा तो तुम क्या करोगे? तब प्रसेनजीत ने उत्तर दिया - दुस्शील पापी को ऐसा शील-संयम कहां से होगा? बुद्ध ने पास में बैठे काशाय-वस्त्रधारी भिक्खु की ओर दिखाकर कहा की यही अंगुलीमाल है। राजा अचंभित हुआ। भिक्षु बने अंगुलीमाल को भिक्षाटन करते हुए देखकर लोगों ने कोसा और हत्याओं का आरोप लगाया पर अंगुलीमाल धम्म के मार्ग पर चलता रहा और लोगों को सदाचार का मार्गदर्शन करता रहा। इस तरह अंगुलीमाल शीलवान, सदाचारी, ब्रह्मचारी, धम्म अनुयायी बना। लोगों ने बदले की भावना में उसे लकड़ी, दंडे से मारा पर भिक्खु बने अंगुलीमाल विमुक्त सुख का अनुभव करते हुए उदान

(गाया) में बहुमोल उपदेश किया :-

''पहले मैं अंगुलीमाल नाम से डाकू था और मैं बुद्ध के कारण अहिंसक बन गया और बुद्ध की शरण में आया। मैं दुर्गती से सद्गती में आया और धम्म के ज्ञान से श्रेष्ठ हो गया और निर्वाण को पा लिया।''[49]

इस तरह डाकू से भिक्खु बनकर अंगुलीमाल निर्वाण गति को प्राप्त करता है। इस कहानी को मद्दे नजर रखते हुए या इस ऐतिहासिक कहानी का लोगों को परिचय है यह जानते हुए ब्राह्मणों ने अंगुलीमाल की जगह वाल्मिकी नामक पात्र को खड़ा किया, उसी तरह वाल्मिकी का जीवन भी हिंसा से भरा रहता है। जैसे बुद्ध अंगुलीमाल डाकू का परिवर्तन करते हैं, उसी तरह नारद भी डाकू वाल्मिकी का परिवर्तन करता है और डाकू वाल्मिकी महर्षि वाल्मिकी बन जाता है। हिंसावादी अंगुलीमाल बुद्ध के कारण अहिंसावादी श्रमण बन जाता है और धम्म के अनुसार अहिंसा तत्त्व पर गाथा रचना करता है। इसकी नकल करते हुए हिंसावादी डाकू वाल्मिकी को अहिंसावादी बना दिया जाता है और अंगुलीमाल की छवि को ध्यान में रखते हुए रामायण कथा का रचयिता बताया जाता है। मगर सवाल यह है कि अहिंसावादी बने वाल्मिकी महर्षी अहिंसावादी काव्य रचने के बजाए हिंसावादी काव्य क्यों रचते है?

दशरथ जातक कथा के द्वारा जनमानस में जो बुद्ध विचारधारा स्थापित थी, उसको काउंटर करने के लिए हिंसावादी वैदिक कथा की रचना करना जरुरी था। इसलिए कथा का रचयिता भी निर्माण करना जरुरी था और यह सब ब्राह्मणों ने कल्पना से निर्माण नहीं किया, बल्कि ऐतिहासिक बुद्ध और अंगुलीमाल को ध्यान में रखकर किया।

अब नारद पात्र रामायण में अचानक कहां से आ टपका? पाली जातक कथा संग्रह में 'महानारद-कस्सप जातक' कथा (नंबर 544) है, जिसमें नारद को बोधिसत्व दिखाया गया है। नारद प्रवर्जित भेष में आकर विदेह नरेश को मिथ्यावादी विधर्मीयों से छुटकारा देकर धम्म के मार्ग पर लाता है। यह जातक कथा मौर्य काल से बहुत प्रसिद्ध था, ऐसा महावंस में बताया गया है। इससे कथा की प्राचीनता सिद्ध होती है। महानारद-कस्सप जातक कथा से पता चलता है कि बौद्ध साहित्य में नारद एक प्रतिष्ठित पात्र था। लेकिन, वैदिक साहित्य में ''झगड़े लगाने वाला कली का नारद'' ऐसा विशेषण देकर उसे बदनाम किया गया है।

सवाल है कि रामायण का उद्देश्य क्या है? तथागत बुद्ध के ज्ञानप्राप्ति के बाद

संदेह उत्पन्न होता है कि धम्म अथांग और गहन होने के कारण किसी को समझेगा या नही? तब ब्रह्म-सहंपति बुद्ध के सामने आते हैं और बुद्ध से विनती करते हैं कि लोगों के कल्याण के लिए धम्म का प्रचार करो। इसी घटना को सांकेतिक रुप में रामायण में वाल्मिकी के बारे में चित्रित की है। क्रोंच पक्षी के जख्मी हो जाने पर वाल्मिकी एक श्लोक की रचना करते हैं, इससे प्रसन्न होकर नारद उसके सामने प्रकट होते हैं और रामकथा सुनाकर नारद वाल्मिकी से विनती करते हैं कि ''हे उत्तम मुनि, आपने अच्छा श्लोक की रचना की है। अब तुम संपूर्ण रामकथा को श्लोकबद्ध करो।''[50] इसी तरह क्रोंच पक्षी की कहानी भी कुन्तिनी जातक से चुराई गई है। वह कहानी भी कोशल प्रांत की है जो कोशल नरेश के घर में रहने वाले एक क्रोंच पक्षी के बारे में है। वर्तमान कथा का प्रसंग-राजा के दूतिनी की थी। वह दूसरे राजा के पास जाने के बाद उसके दो बच्चों को मार दिया जाता है। वापस आने के बाद बदले की आग में वह दुतिनी राजकुल के दो बच्चों को बाघ के पास फेंक देती है वह उन्हे खा जाता है। फिर वह हिमालय चली जाती है। अंतिम कहानी के अनुसार, वाराणसी के बोधिसत्व राजा होते हैं। बोधिसत्व के यहां क्रोंच मादा पक्षी संदेशा लेकर जाती है और पूर्व कथा की तरह उसके भी दो बच्चे मार दिए जाते हैं। बोधिसत्व को वह सब कुछ बताती है और वह हिमालय निकलना चाहती है। तब बोधिसत्व ने उसे उपदेश में गाथा कही, फिर भी वह नहीं मानी। बोधिसत्व की कहानी भी कुतिनि जातक से चुराई गई है। वह क्रोंच पक्षी की कहानी है। वह कहानी भी कोसान का प्रतीक है।

अब दोनों प्रसंगों की तुलना करने पर यह पता चलता है कि उधर बौद्ध साहित्य में ब्रह्म संहपति बुद्ध के सामने आकर जनकल्याण के लिए धम्मप्रचार की विनती करते हैं, तो इधर नारद मुनि वाल्मिकी के सामने आकर रामकथा रचने और उसका प्रचार करने की विनती करते हैं। इस तहर बुद्ध धर्म को काउंटर करने के लिए ही वाल्मिकी रामायण का निर्माण किया गया है।

वाल्मिकी की उत्पत्ति कहाँ से हुई?

John C. Irwin ने उनके एक विश्व प्रसिद्ध शोध आलेख में सिद्ध किया है कि वाल्मिकी (वारुळ-Ant hill) को स्तूप के रुप में बौद्ध धम्म में पूजा जाता है।[51] स्तूप की बौद्ध लोग प्रदक्षिणा करते हैं, क्योंकि स्तूप में बुद्ध के पवित्र धातु होते हैं। उसी तरह वाल्मिक (Ant hill) की भी लोग प्रदक्षिणा करते हैं, क्योंकि उसके अंदर नाग

का निवास होता है, ऐसी उनकी मान्यता है। महिलाएं उसके सामने दूध को रखकर इनकी पूजा करती हैं। इसका अर्थ यह है कि बुद्ध को वाल्मिक (स्तूप) के अंदर निवास करने वाला नाग मानकर पूजा जाता है। खास बात यह है कि स्तूप के अंदर रखे हुए बुद्ध धातु (अस्तियों) को रत्न या बुद्धरत्न कहा जाता है। तो वाल्मिकी के अंदर नाग के पास भी रत्न होता है, ऐसी धारणा लोगों में होती है। ई.वी.कोवल महोदय ने ऐसा ही दावा किया है। ''वारुळ (Ant hill) के अंदर नाग रहता है, ऐसी अनेक दंतकथाएं हैं और उसमें से एक भुरीदत्त जातक (543) है, जिसे पहली सदी में अमरावती के बौद्ध स्तूप पर शिल्पित किया गया है।''[52]

नाग मूनि अर्थात नाग लोक मूनि है। बुद्ध कुबेर के पास मणि होता है इसलिए बौद्ध स्थापत्य में इसे आरंभिक व पूज्यनीय स्थान है। बुद्ध को ही नाग कहा गया है। नाग की जो पूजा की जाती है वह वास्तव नाग प्राणी की नहीं, बल्कि तथागत बुद्ध की पूजा है और नाग पंचमी के दिन जो दूध रखा जाता है वह वास्तव में सूजाता के खीर का प्रतीक है। बुद्ध को जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह उरुवेला के निरंजना नदी के तट पर हुआ इसलिए उस स्थान का नाम प्राचीन मघई भाषा के अनुसार, गयान से ज्ञान यानी बुद्ध ज्ञान अर्थात बुद्ध गया हुआ। वह स्थान उरुवेला के इलाके में ही आता है। बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति की वजह से उरुवेला को महत्त्व प्राप्त हुआ और वह पूजनीय स्थल बना। उरुवेला से वारुळ (मराठी) शब्द बना जो उरुवेला का प्रतीक होने के कारण आज भी पवित्र है। वारुळ को हिंदी में वाल्मिक कहते हैं और अंग्रेजी में Ant hill कहते हैं, जिसका सीधा अर्थ स्तूप होता है। जिस तरह उरुवेला में ध्यान साधना कर सिद्धार्थ बुद्ध बन जाते हैं और ब्रह्म सहमति के आग्रह पर तथागत बुद्ध धम्म को प्रकाशमान करने के लिए तैयार होतें हैं उसी तरह वारुळ में बैठे रत्नाकर वाल्मिकी बन जाते हैं और नारद के कहने पर रामकथा प्रकाशमान करने का निर्णय लेते हैं। नारद कस्सप जातक में बोधिसत्व नारद को 'महाब्रह्मा भिक्खु' के रुप में दिखाया गया है। बौद्ध साहित्य में ब्रह्म यक्ष बताया गया है। पुरातत्वज्ञों ने भी बौद्धों के ब्रह्म को यक्ष ही माना है। इसका मतलब बुद्ध का ब्रह्मसहंपति और वाल्मिकी का नारद एक ही है और इसी तरह बुद्ध और वाल्मिकी सांकेतिक तौर एक ही है। अब बोधिसत्व राम का ब्राह्मणीकरण करने के लिए रामकथा के रचयिता वाल्मिकी का ब्राह्मणीकरण करना ब्राह्मणों के लिए अनिवार्य था। इसलिए उन्होंने रामायण में वाल्मिकी को ब्राह्मण प्रचेता का दसवाँ पुत्र के रुप में प्रस्तुत किया।

जिस तरह बुद्ध और वाल्मिकी वारुळ (Ant hill) यानी उरुवेला या वाल्मिकी से बाहर आए हुए दिखाये जाते हैं उसी तरह देवी भवानी भी वारुळ से पैदा हुई दिखाई जाती है और उसे वारुळ के ही आकार में सजाया जाता है। खास बात यह है कि बुद्ध की तरह ही उसने भी नाग का छत्र धारण किया है।[53] भव+यानी अर्थात भवानी की उत्पत्ति है। भवानी कोई और नहीं बौद्ध देवता तारा ही है।

वाल्मिकी रामायण के रचयिता ने बोधिसत्व राम की दशरथ जातक कथा के प्रमुख पात्रों को चुराकर नए उपपात्रों को ढूंढने के लिए अन्य जातक कथाओं का भी सहारा लिया। इसलिए जब चोरी की जा रही थी वह काल निश्चित तौर पर गुप्तोत्तर काल रहा होगा। क्योंकि, बौद्ध शासकों के समय यह संभव नहीं हुआ होगा। बहरहाल, इसकी वजह जो भी हो, लेकिन वाल्मिकी रामायण के रचयिता ब्राह्मणों ने कई शताब्दियों तक रामायण की नई कथा में घटाया और बढ़ाया। लेकिन, बौद्धों के जातक कथाओं के सहारे या उनके प्रतिकों को गलत ढंग से प्रस्तुत करके बौद्ध धर्म को क्षति पहुंचाना उनका मुख्य मकसद था। महाभारत की तरह रामायण में भी ढेर सारी जातक कथाएं सम्मिलित की गई है और वह कार्य बहुत ही कौशल्यपूर्ण ढंग से किया गया है। दशरथ जातक कथा के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण कथा देवधर्म जातक का भी बहुत चालाकी से इस्तेमाल किया गया है। जिसके बारे में हमने पहले ही चर्चा की है। इसके बाद साम जातक (540) महाजनक जातक (539), चित्तसंबोध जातक (495), नकीनेका जातक (526), इंद्रिय जातक (423), अंबुलस जातक (528), सुजाता जातक (306) मारुत जातक (17), निग्रोध, मृग जातक (237) वेस्संर जातक (547) और अन्य भी जातक कथाओं के पात्र, प्रसंग या गाथा का वाल्मिकी रामायण में बखूबी से चोरी करके इस्तेमाल किया गया है इस तरह की खिचड़ी पकाकर ब्राह्मणवाद का तड़का दिया गया है।

उपरोक्त जातक कथा रामायण में कैसे सम्मिलित की गई? इसका तुलनात्मक अध्ययन करने के पहले यह समझ लेना भी बहुत जरुरी है कि ब्राह्मणों ने राम को अवतार क्यों घोषित किया? जब तक राम को अवतार घोषित नहीं किया जाता तब तक उसकी तरफ लोगों का ध्यान भी आकृष्ट नहीं हो सकता था। क्योंकि, बुद्ध जैसे महान व्यक्ति की छवि को उसी तरह समांतर छवि निर्माण करना ब्राह्मणों के लिए जरुरी था। इसलिए बुद्ध का पुरोषोत्तम विशेषण राम के साथ जोड़ दिया गया। वैदिक साहित्य में एक ही विष्णु को अनेकों अवतार लेते हुए दिखाया गया है। अवतारवाद

एक बड़ी ही रोचक मिथक कल्पना है। सवाल यह है कि ब्राह्मणों को अवतारवाद की यह कल्पना कहाँ से मिली? और उन्होंने उस कल्पना को वास्तव में कब लागू किया?

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कल्पना गुप्तकालिन है और गुप्तोत्तर है। अवतारवाद रामायण और महाभारत कथाओं के माध्यम से ही फलाफूला है। अवतारवाद को समझने के लिए पहले हम देखते हैं कि विष्णु कैसे निर्माण हुआ और कहा से आया?

सम्राट अशोक काल में ही बौद्ध धर्म में त्रिकाया संकल्पना निश्चित होने लगी थी। बौद्धों के त्रिकाया तत्त्व में बुद्ध की तीन महत्त्वपूर्ण काया समझी गई है– निर्माणकाया, संभोगकाया और धर्मकाया। निर्माणकाया का मतलब वास्तविक ऐतिहासिक गौतम बुद्ध, संभोगकाया मतलब उनके निर्वाण के बाद उन्हें मुर्ति के रुप में देखना और धम्मकाया मतलब उनकी निर्वाण काया। निर्वाण अर्थात शून्य संपूर्ण जगत को व्यापने वाला है। इसलिए तथागत बुद्ध का निर्वाण काया ''विश्व व्याप्ति'' अर्थात ''विश्वअनुनयी या विष्णु'' है। इस तरह विश्वव्यापी बुद्ध के धम्मकाया को ही विष्णु के नाम से ब्राह्मणों ने अपना लिया। महापरिनिर्वाण के बाद लोग बुद्ध को ''धम्मकाया'' के रुप में अपने बीच समझते थे। बुद्ध चले गए लेकिन धम्म के रुप में (धम्मकाया) वे आज भी हमारे बीच जीवित है, ऐसी उनकी धारणा थी।[54] धम्मकाया बुद्ध गंभीर समुद्र की तरह अथांग है। इसलिए उन्हें 'जल' (नर) भी कहा गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जल की तरह यह विश्व हमेशा बदलता रहता है इसलिए उसे जल की उपमा दी गई है।[55] बुद्ध को कमल की भी उपमा दी गई है। कमल किचड़ में पैदा होता है, मगर किचड़ से ऊपर उठकर वह शुद्ध रहता है। उसी तरह बुद्ध भी संसार में पैदा होते है; लेकिन संसार के बंधनों में लिप्त नहीं रहते। इसलिए उन्हें कमल की उपमा दी गई है।[56]

प्रवाही जल बुद्ध के अनित्यतावाद और निर्गुण विश्व को दर्शाता है तो उस पर उठा हुआ कमल सगुण विश्व को दर्शाता है।[57] प्रवाही जल के ऊपर तरंगता कमल पुष्प और उसकी पंखुडियां जल के पृष्ठ पर लेटी हुई नजर आती है। ब्रहल संहिता में यह कहा गया है कि तथागत बुद्ध को कमल पुष्प पर पद्मासन में बैठा दिखाया जाना चाहिए। (पद्मासानो पविस्साह पिजेवा जगतो भवित बुद्धाह)[58] कमल जिस तरह जल की पीठ पर पंखुडियों के सहारे लेटता है। (वानसनेय संहिता, XIII, 2), उसी तरह बुद्ध को अमरावती के शिल्प में कमल पुष्प पर लेटा हुआ दिखाया गया है और उनके पैर

पर धम्मचक्र है।

बुद्ध की तरह नारायण भी जल पर लेटा हुआ बताया गया है। नारायण मतलब जल पर लेटा हुआ।[59] वास्तव में तथागत बुद्ध कमल पुष्प के रुप में जल पर लेटे हुए सर्वप्रथम दिखाए गए थे। इसलिए, तथागत बुद्ध ही नारायण हैं। नर से ही पानी के लिए निर शब्द बना। नर और हरि को बुद्ध के दो विशेषण जोड़कर 'नरहरी' शब्द बना। बुद्ध को नरोत्तम कहा गया, इसलिए राम को भी इस शब्द की नकल करते हुए पुरुषोत्तम कहा गया है।

तथागत बुद्ध की धम्मकाया विशालकाय, विश्वव्यापी है। जो संपूर्ण सगूण विश्व (कमल या दृष्य दुनिया) और निर्गुण विश्व (जल या अदृश्य दुनिया) को धम्मकाया अपने अंदर समाहित करती है। अर्थात, बुद्ध की धम्मकाया विश्वव्यापी है। इसलिए उन्हें ''मनुष्य लौकिका, सर्व-लौकिका या विश्वरुप'' कहा गया है।[60] नारायण को भी विश्वव्यापी होने के कारण 'विश्वरुप नारायण' कहा गया है जो बाद में 'विष्णु रुप नारायण' या 'विष्णु नारायण' बन गया। विष्णु-नारायण मतलब धम्मकाया बुद्ध ही है। अर्थात, बुद्ध को ही विष्णु कहा गया है।

विष्णु बुद्ध का ही दूसरा नाम है। यह बात ब्राह्मणों ने जानबूझकर छुपाई ताकि विष्णु के नाम से बुद्ध को छुपाया जा सके। बौद्धों के प्रभाव काल में ब्राह्मणों ने बुद्ध को विष्णु नाम देकर बुद्ध की तारीफ की, फिर धीरे-धीरे विष्णु को स्थापित किया और बुद्ध को लोगों की नजरों से हटा दिया। शुरुआत में ब्राह्मणों ने बुद्ध को विष्णु के नाम से सामने लाया और बौद्धों ने भी उसे बुद्ध रुप होने के कारण स्विकार किया। ब्राह्मण पीढ़ी दर पीढ़ी बुद्ध का विष्णु रुप कायम करते गए और उसके साथ बुद्ध का नाम धीरे-धीरे हटाते गए। बुद्ध ब्राह्मण विरोधी हैं, तो बुद्धरुप विष्णु को ब्राह्मण समर्थक बनाया गया। विष्णु को ब्राह्मण समर्थक दिखाने के लिए ब्राह्मणों ने अनेक पुराण कथाएं लिखी। इसलिए आगे चलकर बुद्ध और उनका धम्म पीछे हटता गया और विष्णु के साथ-साथ ब्राह्मण धर्म फैलता गया। अर्थात बुद्ध बताकर ब्राह्मणों ने बौद्धों के खिलाफ प्रतिक्रांति कर दी थी।

ऋग्वेद में बुद्धत्व प्राप्ति को ''अवागमने'' अर्थात ''ज्ञान उतरना'' कहा गया है। अवागमन मतलब अवतारित होना। बौद्ध भावाशास्त्र में 'अवागमने' शब्द को 'उपपादुक' कहा गया है। कमल पुष्प के मध्य केंद्र को ''पदमगर्भ'' कहा गया है, जहां से अनेक शाक्य पुत्र बोधिसत्व के रुप में बुद्ध से जन्म लेते हैं।[61] सद्धर्मपुंडरिक

सुत्र में यह कहा गया है कि लोगों को दुखों से मुक्त करने के लिए बोधिसत्व बार-बार पृथ्वी पर अवतार लेंगे।[62] यही संकल्पना भगवद्गीता में कृष्ण के मुंह में डाली गई है। जब-जब इस पृथ्वी पर अधर्म बढ़ेगा तब-तब मैं जन्म लूंगा, ऐसा कृष्ण कहते हैं। अर्थात भगवद्गीता में विष्णु का कृष्ण अवतार वास्तव में बुद्ध का बोधिसत्व अवतार ही है। इसी तरह, मृत्यु के शोक से लोगों को मुक्त करने वाला और लोगों के अनित्यता का पाठ पढ़ाने वाला बोधिसत्व राम ही बुद्ध का बोधिसत्व अवतार है। इसलिए ब्राह्मणों ने बोधिसत्व राम का ब्राह्मणीकरण अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिए किया और उसे विष्णु का अवतार घोषित किया।[63]

अवतारवाद निर्विवाद रुप से बोधिसत्व संकल्पना की नकल मात्र है। ब्राह्मणों ने समन्वयवाद के द्वारा बुद्ध को बाद में विष्णु का अवतार बनाया। ''वैदिक अवतार सूची में बुद्ध का नाम गुप्त काल के बाद ही जुड़ा। क्योंकि, महाभारत प्राय! गुप्तयुग (5 वीं सदी ई.) में लिखित मानी जाती है। शांतिपर्व के अवतार सूची में बुद्ध का नाम नहीं है। धीरे-धीरे समन्वयवाद और आत्मसातीकरण की यह प्रक्रिया और तेज होती गई। बौद्ध साहित्य की ''मारख्यान कथा'' को ब्राह्मण लेखकों ने ग्रंथ में यम और काम की कथा बना दी। तांत्रिक युग में बौद्ध व ब्राह्मण दोनों तारा देवी की उपासना करने लगे। इसी प्रकार अवलोकितेश्वर, बोधिसत्व और मंजुश्री बोधिसत्व को शिव और विष्णु के रुप में वर्णित किया गया।''[64]

किन-किन जातक कथाओं की चोरी करके वाल्मिकी रामायण में जोड़ी गई है हम इसकी निरक्षीर बुद्धी और चिकित्सक पद्धति से अध्ययन करेंगे। सभी जातक कथाओं की गहराई से अध्ययन करने के बाद पता चलता है कि रामायण और महाभारत एक व्यक्ति ने नहीं लिखी है, बल्कि अनेक ब्राह्मणों ने ''एक कमिटी'' बनाकर यह कार्य किया है, रामायण को पढ़कर तो यही लगता है। हम अपनी इस दृष्टिकोण को आगे विश्लेषण में सबूतों के साथ पेश करेंगे। इस दृष्टिकोण को पुष्टि देने वाला आधार हिल्टबिटल का भी है। उन्होंने भी शोध के बाद यही अनुमान लगाया है कि रामायण-महाभारत की रचना ब्राह्मणों की एक कमिटी ने की है।[65]

वाल्मिकी के राम को वैदिक व्यवस्था के पुनरुत्थान के लिए सामने लाया गया है, तो स्वाभाविक है कि नकल करने वाले ब्राह्मणों को उस राम की प्रेरणा वैदिक परंपरा से लेनी चाहिए थी। लेकिन, जनमानस में बोधिसत्व राम की प्रेरणा और बौद्ध धर्म की प्रेरणा होने के कारण ब्राह्मणों ने बड़ी चालाकी से जातकों में बोधिसत्व का

जीन कुल परंपराओं से संबंध है उन्हीं कुल परंपराओं से वाल्मिकी के वैदिक राम को जोड़ दिया। जैसे इक्ष्वाकु वंश को ही ले लिजिए, जिसका जिक्र वाल्मिकी रामायण के पहले ही अध्याय में इक्ष्वाकु वंश और रघुवंश (वा.रा.1.17.6) के नाम से है। वास्तविक तौर पर बौद्ध साहित्य के अंबठ्ठ सुत्त में इक्ष्वाकु वंश का जिक्र आता है। इस सुत्त में तथागत बुद्ध खुद को इक्ष्वाकु वंशी बताते हैं और उन्होंने इस सुत्त में कृष्ण को भी इक्क्षाकु का पुत्र बताया है। अश्वघोष जातक कथाओं से प्रभावित था, इसलिए उसने राम और बुद्ध दोनों को इक्ष्वाकु वंशी कहा है। बुद्धचरित्र 7.6 में अश्वघोष बुद्ध को 'इक्ष्वाकुनंदन' कहा है। (वा.रा. 1.17.6; 2.44.6 । कालिदास ने रघुवंश में राम को रघुवंशी कहाँ से दिखाया? और उसने रघुवंश में राजा दिलीप को कहां से लिया? कालिदास ने ये दोनों संकल्पनाएं कट्ठहरि जातक (नंबर 7) से लिया है। रघुवंश के महाराज दिलीप को संतती प्राप्ति के लिए वशिष्ठ मुनि के आश्रम में जाकर तपस्या करनी पड़ती है। शकुंतला की कथा का कथानक कट्ठहरी जातक पर बनाया गया है, जिसमें वाराणसी का राजा उद्यान में जाता है और वहां गाना गाकर लकडियां चुनने वाली लड़की के प्रेम में पड़ जाता है और राजा से गर्भधारण होती है। जाते समय राजा उस सुंदर युवती को अंगूठी देता है और कहता है कि अगर लड़की हुई तो अंगूठी फेंक देना और लड़का हुआ तो अंगूठी के साथ राजधानी में आना। बच्चा बड़ा होने के बाद माँ से पिता के बारे मे पूछता है और पिता से मिलने का आग्रह करता है। जब वह बेटे के साथ भरी सभा में राजा के सामने जाती है तब राजा उसे व उसके बेटे को पहचानने से इन्कार करता है। आखिर में राजा पत्नि के साथ पुत्र को स्विकार करता है और राजा अपने पुत्र बोधिसत्व को अपना उत्तराधिकारी बनाता है। कहानी का अंत सुखद होता है। कथा के अंत में पिता का मतलब शुद्धोधन और कष्टवाहन राजा बोधिसत्व सिद्धार्थ समझा जाए, ऐसा लिखा है।

अब यही कहानी समाज में इतनी प्रसिद्ध हो चुकी थी कि कालिदास ने उसे ज्यों का त्यों उठा लिया और इस कहानी से रघुवंश व शकुंतला का विस्तार किया। वास्तव में कट्ठहरि जातक के आरंभ में ही तथागत बुद्ध के जीवन के प्रसंग का उल्लेख है, जिसमें वासभखत्तिय के कथा का जिक्र है। तथागत बुद्ध का भाई महानाम शाक्यों का राजा था। तब राजा प्रसेनजीत ने अपना रिस्ता शाक्यों से जोड़ने के लिए महानामा से शाक्य विवाहिता मांगी थी। शाक्य खुद को श्रेष्ठ मानते थे, इसलिए वे शाक्य वंश के बाहर विवाह नहीं करते थे। लेकिन, राजा प्रसेनजीत की मांग वे ठुकरा नहीं सकते

थे। तब महानामा ने उसकी दासी वासभखात्तिय का विवाह प्रसेनजीत से करवाया और बाद में उन दोनों से विदुभ नामक पुत्र हुआ। इस प्रकार से इस ऐतिहासिक प्रसंग से कट्ठहरि जातक विकसित हुआ था और उसके आधार पर कालिदास ने शकुंतला और रघुवंश की रचना कर दी थी।[65] खास बात यह है कि कथा 6 देवधर्म जातक की कथा को वाल्मिकी रामायण में चोरी करके पेश किया, ठीक उसके बाद की यह कथा है, जिसको ब्राह्मणों ने चुराया। हमारी खोज में यह बात सामने आयी है कि जेतवन, श्रावस्ती या साकेत से संबंधित विभिन्न जातक कथाएं रामायण में जोड़ दी गई है। इसलिए जातक कथा का संबंध सीधा साकेत या जेतवन से या उसी बात को ध्यान में रखकर ब्राह्मणों ने साकेत को अयोध्या के नाम से उनके वाल्मिकी रामायण का मुख्य केंद्र बनाया।

रामायण में दशरथ के प्रथम पुत्र को कैकेयी (सौतेली माता) के कारण वनवास मिला था। यह प्रसंग दशरथ जातक कथा और देवधर्म जातक कथा को ध्यान में रखकर वाल्मिकी रामायण में लिया गया है। उन जातक कथाओं के अंदर जो मकसद था, उसके खिलाफ उन कथाओं के प्रसंगों का रामायण में इस्तेमाल किया गया है। साम जातक (540) की तरह ही सोननंद जातक (532) का मकसद माता–पिता की सेवा करना है। माता–पिता की सेवा करना धम्म का प्रमुख अंग बनाया गया है। सम्राट अशोक के शिलालेखों मे भी इसे धम्म का प्रमुख हिस्सा माना गया है। क्योंकि, बुद्ध धम्म मनुष्य के जीवन के हर पहलु को प्रभावित करता है। वाल्मिकी के राम को क्यों वनवास भोगना पडा? क्योंकि जातक कथा के बोधिसत्व राम को भी वनवास भोगना पड़ा था। इस चोरी को लोग पकड़ न पाएं इसलिए वाल्मिकी रामायण की कथा रचने वाली ब्राह्मण टीम ने यह अक्ल लगाई की दशरथ जातक कथा की चोरी लोगों को आसानी से समझ में न आए। इसके लिए वनवास के पीछे वजह बनी एक नई कथा नियती के नाम पर जोडी जाए, फिर उन ब्राह्मण लोगों ने क्या किया? इसके लिए उन्होंने जातक कथा की ''साम जातक कथा'' को ज्यों का त्यों उठाया और उसे ब्राह्मणवादी सांचे में घोलकर श्रवण बाल की कथा में परिवर्तित किया।

मूल साम जातक में माता–पिता की सेवा करने वाला बोधिसत्व साम को ब्राह्मणों ने श्रवण बाल बना दिया और वाराणसी के पिलियक्ष की जगह अयोध्या के दशरथ राजा को जोड़ दिया। साम जातक में प्यासे माता–पिता के लिए बोधिसत्व साम पानी लेने जाता है। उसके पैरों की आवाज से ही अंधा पिता चहचान लेते हैं कि वह उनका

बेटा नहीं है। अयोध्या कांड के श्रवणबाल कहानी में आशय बिलकुल एक जैसी है। इधर दशरथ बाण मारते हैं, जिसे नागबाण कहा जाता है और उधर यक्ष राजा बाण मारते हैं। इधर जातक का घटनाक्रम योग नदी पर होता है तो उधर रामायण का भी घटनाक्रम सरयू नदी के किनारे दिखाया गया है। साम अपने मृत्यु से नहीं डरता, बल्कि अपने अंधे माता पिता का खयाल अपनी मृत्यु के बाद कौन करेगा? यह दर्द साम यक्ष राजा से व्यक्त करता है। उसी तरह रामायण में श्रवण बाल राजा दशरथ के सामने व्यक्त करता है। साम जातक में बाण लगे हुए व्यक्ति को कपि यक्ष पूछता है तुम कौन हो? तब जवाब देता हैं मैं निषाद कुल से हूँ। तो उधर रामायण में श्रवण बाल कहता है मै शूद्र हूँ। साम जातक में मरने वाले बोधिसत्व को यक्ष राजा कहता है कि तुम्हारे तरह ही मैं भी तुम्हारे माता-पिता की सेवा करुंगा। यक्ष आखिर में सच्चाई बता देता है कि साम की हत्या हुई है और वे उससे बहुत दुखी हैं। यक्ष राजा उन्हें समझाता है कि वह उनकी रक्षा और सेवा करेगा। वह वाराणसी का राजा है, ऐसा सुनकर अंधे माता-पिता कहते हैं कि आप राजा हो हम आपसे सेवा कैसे लेंगे? माता-पिता बोधिसत्व के शरीर को छूना चाहते हैं और उसी समय मुर्क्षित बोधिसत्व जिंदा हो जाता है और माता पिता को भी चक्षु मिल जाते है और अरुणोदय देवी के कारण राजा और उन चारों को धम्म का मार्ग मिलता है। इस जातक कथा में बुद्ध धर्म के महत्त्वपूर्ण तत्त्व संदेश के तौर बताए गए हैं- जैसे की दसधम्मचर्य मतलब दसशील, पंचशील, दानरमिना आदि का महत्त्व बताया गया है। साथ ही इस कथा के अंतर मृगपक्ख जातक (538), सातिगुम्भा जातक (503) और सुकन जातक (521) इन कथाओं का भी रामायण के श्रवण कुमार की कथा से संबंध है। इन जातकों में दशरथ जातक के बाद सर्वश्रेष्ठ जातक कथा का दर्जा साम जातक कथा में है। इसका मतलब है कि ब्राह्मणों ने अधिक प्रसिद्ध जातक कथाओं की चोरी की है।

साम जातक का अंत सुखद होता है, लेकिन श्रवणबाल कथा का अंत अंधे माता-पिता द्वारा दशरथ राजा को पुत्र वियोग का श्राप देकर दुखद होता है। अब सवाल यह है कि रामायण के रचयिता को इस कथा का अंत दुखद दिखाने की जरुरत क्यों महसूस हुई होगी? इसका कारण यह है कि महापुरुष बुद्ध के समांतर प्रतिस्पर्धा के रुप में राम को ब्राह्मण दिखाना चाहते थे। जैसे की त्रिपिटक में बुद्ध का जन्म अलौकिक रुप में महामाया के एक बाजू (हाथ) से दिखाया है, उसी तरह राम का जन्म श्रृंग ऋषि की खीर खाने से अलौकिक रुप में हुआ था, यह ब्राह्मण दिखाना

चाहते थे। दशरथ को नैसर्गिक रुप से राम पैदा होता, तो राम सामान्य मनुष्य के रुप में समझा जा सकता था। लेकिन, अलौकिक खीर खाने से राम का जन्म हो जाने से वह भी अलौकिक महापुरुष है। वह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है, राजा दशरथ के पुत्र वियोग शाप के पीछे यही संकेत है।

सुजाता की खीर खाने से बोधिसत्व सिद्धार्थ का जन्म बुद्ध के तौर पर होता है, अर्थात खीर बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग है और खीर खाने से बुद्ध या बोधिसत्व का जन्म होता है, ऐसा संकेत सुजाता की खीर के पीछे है। इसलिए, रामायण में भी श्रृंग ऋषि कौशल्या को पायस अर्थात खीर से बोधिसत्व राम का जन्म होता है, ऐसा वाल्मिकी रामायण में बताया गया है।

दशरथ जातक कथा का राम संयमी, शांत, शिलवान, बुद्धिमान (मेधावी), बहुश्रुत, अष्ट धर्म ज्ञानी (आर्य अष्टांगिक मार्ग का ज्ञाता) अहिंसावादी, ब्रह्मचारी, तृष्णारहित जीवन जीने वाला सत्यवादी बोधिसत्व राम है। अब यही नकल कर रामायण में राम को यही विशेषण लगाए गए है। जैसा कि,

''धर्मज्ञं, सत्यसन्ध्व, शीलवान, अनसुयक
क्षान्त, सान्त्व चिता लक्षणंः
कृतज्ञं; निजितेन्द्रिय; रामः अस्ति ।।5।।''

अर्थात-''राम धर्म के ज्ञाता, सत्य प्रतिज्ञा वाले शिलवान इर्ष्यारहित, सहनशील, स्नेही, उपकार को जानने वाले और जीतेंद्रिय है।'' ''इतना ही नहीं, बल्कि बुद्ध का एक विशेषण ''पुंडरिक्ष'' या ''कमल नयन'' यही विशेषण राम को भी लगाया गया है।- ''कमलपत्राक्षो मया रामे।''[67] वाल्मिकी रामायण में सीता के मुंह में राम के ऊपर बुद्ध का प्रभाव है, ऐसा श्लोक में कहा गया है- ''किंचित बौद्ध प्रभाव।'' इस तरह दशरथ जातक की चोरी करने वाले ब्राह्मण भी बुद्ध के प्रभाव को नकार नहीं सके और बोधिसत्व जैसा ही ब्राह्मणवादी राम खड़ा करने की चेष्टा करने लगे। उस ब्राह्मणवादी राम को ''गो ब्राह्मण प्रतिपालक'' (गोब्राह्मणहितार्थाय)[68] और चातुर्वर्ण्य व्यवस्था-पुर्नउद्धारक (चातुर्वर्ण्यहितार्थाय कर्तव्यं राजसुमनां)[69] इस तरह हम देखते हैं कि बौद्ध धर्म पर आघात करने के लिए बोधिसत्व राम का इस्तेमाल ब्राह्मणों ने बखूबी से किया। वेबर के अनुसार, खत्तिय नागवंशी लोगों को हराने के लिए या उन्हें ब्राह्मणों का गुलाम बनाने के लिए राम का गुरु ब्राह्मण वशिष्ठ को दिखाया गया और राम को क्षत्रिय दिखाने के लिए उसके नाम के सामने चंद्र शब्द लगाया। एक तो राम को बुद्ध

की तरह इक्ष्वाकुवंशी दिखाना और दूसरी तरफ बौद्ध तत्वज्ञान का प्रतीक चंद्र को राम के साथ जोड़ना, क्या दर्शाता है? यह वास्तव में ब्राह्मणों के समन्वय तंत्र को दर्शाता है। समन्वय तंत्र के द्वारा बुद्ध धर्म पर यह सीधा हमला है।

वाल्मिकी रामायण में श्रृंग ऋषि कहाँ से आया?

बुद्ध चरित्र और बौद्ध साहित्य में बुद्ध के जन्म का अलौकिक वर्णन किया है, जैसे की बुद्ध के जन्म की भविष्यवाणी। जातक कथा में भी इसका जिक्र आया है। वास्तविक अर्थ में बुद्ध का चक्रवर्ती बनना महत्त्वपूर्ण है। सिद्धार्थ के पिता भी श्रमणों की परंपरा को मानते थे, इसका संदर्भ मिलता है। बुद्ध को हाथी के रुप में भी प्रतीक के तौर पर माना जाता है। प्राचीन शिल्पों में सफेद हाथी महामाया की कोख में प्रवेश करता है, ऐसा दिखाया है। यह सारा प्रसंग महामाया के सपने के रुप में दिखाया गया है। सम्राट अशोक ने हाथी को बुद्ध के रुप में ही देखा और उसके अनुरुप शिल्पांकित किया। हाथी शांति, लेकिन शक्ति का प्रतीक है। इसलिए बुद्ध के कान हाथी की तरह दिखाए जाते हैं। पुरातन प्रतिमा शास्त्र के अनुसार, बुद्ध की प्रतिमा 32 लक्षणों से युक्त बनाई जाती है। ब्राह्मणों के लिए महान व्यक्तित्व वाले बुद्ध को नीचा दिखाने के लिए एक दूसरा काल्पनिक पात्र खड़ा करने की जरुरत महसूस हुई। इसलिए उन्होंने राम को अलौकिक दिखाने का प्रयास किया और उसके लिए उन्होंने श्रृंग ऋषि की खीर (पायस) से पैदा हुआ दिखाया।[70] श्रृंग ऋषि का महत्त्व दशरथ को पुत्रप्राप्ति के लिए (पुत्रकामेष्ठी यज्ञ) तथा अश्वमेध यज्ञ के लिए दिखाया गया है। खीर से राम पैदा हुए, यह दिखाने के पीछे का मकसद राम दैवी अवतार है, यह है दिखाना। राम को केवल सामान्य मनुष्य दिखाया तो ऐतिहासिक बुद्ध और उसके महान व्यक्तित्व को कैसे हटाया जाएगा? श्रृंग ऋषि का अर्थ है जिसके सिर पर एक सींग होता है और जो ब्रह्मचारी होता है। सींग का मतलब वैसा ही है जैसा बुद्ध के सिर पर उष्णिशा होती है।

श्रृंग ऋषि का पात्र भी रामायण के रचयिता ब्राह्मणों ने जातक कथाओं से चुराया है। वह जातक कथा नकिनेका जातक (526), आंबुलस जातक (523)। और नियोग के लिए कुश जातक (531) का इस्तेमाल किया। रामायण और महाभारत में सभी तरफ जातक कथाएं भरी पड़ी है। बस फर्क इतना है कि उन जातक कथाओं का

विद्रुपीकरण किया गया है। अब रामायण में श्रृंग का क्या संबंध है? यह समझने से पहले जातकों में श्रृंग कौन है और उसमें उसका क्या संबंध है? यह समझना होगा। जातक कथाओं में इंद्रीय नियंत्रण शील का महत्त्व तथा भिक्खुओं का ब्रह्मचर्य पर अधिक जोर दिया गया है। जातक कथा का अर्थ ही नीति बोध है। वह शास्ता के मुँह से निकली है इसलिए उन्हें महत्त्व दिया गया है। भिक्खु के उद्विग्न चित्त होने का इस कथा में संदर्भ है। संन्यास जीवन अपनाने वाले को मोहमाया में नहीं पड़ना है, यह बोध इस कथा के माध्यम से दिया गया है। इस कथा में बोधिसत्व को पिता के रुप में दिखाया है। काशी में रहते समय जंगल में वे फूल-मूल खाकर जीवन जी रहे थे। जिस जगह पर पेशाब किया, वहां घास बढ़ आयी। उस घास को हिरण ने खाया और पानी पिया उससे उस हिरण को गर्भ हो गया और उसने एक लड़के को जन्म दिया, वह है श्रृंग। बोधिसत्व ने वह जान लिया और उस बच्चे का पालन-पोषण किया। बूढ़े होने पर वह बेटे को हिमालय लेकर गया और मोहित स्त्रियों को आगाह करता है। अंत में पिता ब्रह्मलोक चला जाता है। अब ऋषि श्रृंग हिमालय में रहने लगा। उसके शीलवाल चरित्र के कारण सक्र (इंद्र) परेशान हुआ। उसने श्रृंग ऋषि का चरित्र भ्रष्ट करने के लिए सबसे बुद्धिमान और सुंदर अप्सरा अम्बुलस को चुनता है और उसे श्रृंग ऋषि के आश्रम में भेज देता है। उसकी सुंदरता को देखकर श्रृंग उसकी स्तुति करता है। अब वह अपनी सुंदरता पर निकल पड़ी। आशक्त हुए श्रृंग ऋषि ने उसके वेणी को, बालों को पकड़ा और जैसे शक्र चाहता था वैसा ही हुआ। तीन वर्ष तक वह उसकी मोह में रहा। जब उसे होश आया तब उसकी आँखें आँसुओं से बहने लगी। तुम्हे किसने श्रृंग ऋषि को लुभाने के लिए भेजा है? यह न बताया तो वह श्राप देगा। इस डर के मारे शक्र ने भेजा, यह बता देती है और उसे जाने को कहता है। बाद में उसे अपने पिता के उपदेश की याद आयी। उसने काम भोग की आशक्ती त्याग कर ध्यान किया। उसने श्रमण तेज तथा ध्यान लाभ किया। अलम्बुस उसे प्रदक्षिणा कर चली गई थी। उसका जो उपवाहन सहित स्वर्ण- पलंग, जिसपर पचास ओढ़ने तथा हजार कम्बल थे, वह उसी पलंग पर चढ़कर देवताओं के पास गई। शक्र उसे देखकर वर मांगने को कहता है, उसे लगा की वह सफल होकर आयी है। तब वह कहती है मुझे फिर श्रृंग ऋषि को लुभाने न जाने पड़े यह वर दो और इस तरह कथा खत्म होती है। इसमें कथा का मेल जोड़ा जाता है। यह कथा सुनने से भिक्खु स्त्रोतापत्ती फल में प्रतिष्ठित हुए।[71] यह कहानी बौद्ध भिक्खुओं को शीलवान रहने और ब्रह्मचर्य को कठोरता से पालन

करने के उपदेश हेतु है। इंद्रीय जातक कथा (423) भी इसी तरह उपदेश देती है।

पिछली जातक कथा के अनुरुप ही नलिनिका जातक (526) कथा है। यह कथा भी भिक्खुओं को गृहस्थी जीवन से अनाशक्त करने हेतु है। यह कथा भी हिमालय के संबंध में कही गई है। जातक कथाओं में धम्म की उच्च अवस्था प्राप्ति के बाद हिमालय जाते हैं, ऐसा समाज पर एक संस्कार किया। महाभारत में भी पांडव आखिर में हिमालय जाते हुए दिखाए गए हैं। यह जातक कथाओं का ही प्रभाव है। आज भी हिंदू धर्म को मानने वाले भोले-भाले लोग हिमालय में धर्म तीर्थ यात्रा करने जाते हैं। यानी हिमालय का महत्त्व बुद्ध धम्म के कारण ही बढ़ा। हिम का आलय (गुफा) यानी वह चैत्य या स्तूप ही है। यह कहा जाता है कि हिमालय में जहाँ धर्म भावना से लोग जाते हैं वह बौद्ध गुफा ही है। नलिनिका जातक में भी श्रृंग ऋषि के कारण शक्र कांप उठता है और उसके सदाचार और तेजस्विता के कारण शक्र (पानी की देवता) कांप उठा। इसीलिए ही काशी राष्ट्र में तीन वर्ष तक वर्षा नही हुई। जनता त्रस्त हो गई। (आर.के.नारायण की 'गाईड' कादंबरी इसी जातक कथा से प्रभावित है।) शक्र बौद्ध देवता यानी अवलौतिकेश्वर ही है। क्योंकि, कथा में राजा शील ग्रहण कर, उपोसथ व्रत रख शक्र को पानी बरसाने की याचना करता हुआ दिखाया है। बरसात न होने की वजह से श्रृंग ऋषि! क्योंकि वह शीलवान ऋषि अपनी क्रुद्ध आँखों से आकश को देखता है और उससे बरसात नहीं होती। इसलिए शक्र कशी राजा को उसकी कन्या नलिनिका को श्रृंग ऋषि का तप भंग करने के लिए भेजने का आदेश देता है। राष्ट्र और जनता को बचाने हेतु वह अपनी प्यारी लड़की को भेजने के लिए तैयार होता है। वह लड़की भी 'राष्ट्रहित' के आधार पर तैयार होती है। केले के पौधों के बीच श्रृंग ऋषि रहते हैं। बौद्ध जातक कथाओं के कारण ही केले के पत्ते का धार्मिक महत्त्व है। बाद में ब्राह्मणों ने उसे बेफिजूल बढ़ावा दिया। श्रृंग ऋषि ने इसके पहले कभी भी स्त्री को नहीं देखा था। इसलिए वह उसके शरीर के अंगों को, हिस्सों को जानता तक नहीं था। वह शारीरिक आकर्षण से भी अनभिज्ञ था। नलिनिका ने कहा उसे एक बिमारी है वह मैथून क्रिया से ही दूर होगी। उस अनभिज्ञ को मैथून भी पता नहीं होता। वह जैसा करने को कहती वह वैसा ही करता और इस तरह उसका शील खंडित हो जाता है। श्रृंग ऋषि के पिता के आने से पहले भागने की वह योजना बनाती है। उसके जाते ही उसके शरीर में जलन पैदा हो गई और वह अफसोस करता पड़ा रहा। बोधिसत्व आकर उससे पूछा कोई भी कार्य क्यों नहीं किया? इसकी वजह पूछा। श्रृंग

ने पिता को स्त्रिरुपी आशक्ती को फल के प्रतीक से वर्णन करते हुए समझाया और कहा वह न मिली तो मर जाऊंगा, इतना आशक्त हुआ। पिता बोधिसत्व ने उसे ब्रह्मचर्य और श्रमण तेज का महत्त्व समझाया। स्त्री को एक दूसरे ब्रह्मचारी के रुप में बताया। उसके साथ संलाप करेगा तो तेरा ब्रह्मचर्य वैसे ही नष्ट होगा जैसे बाढ़ से खेती! श्रृंग ने बाद में यह मान लिया कि वह कोई यक्षिणी होगी, कोई कल्पना होगी। वह डरा और पिता से माफी मांगी। बोधिसत्व ने उसे मैत्री भावना, करुणा भावना, मुदिता भावना और उपेक्षा भावना करने को कहा और ब्रह्मविहार की भावना में रहने का उपदेश किया। इस कथा का बुद्ध ने मेल बिठाया। इस कथा से उद्विग्न चित्त वाले भिक्खु का उपदेश सुनकर स्त्रोतपन्न अवस्था में पहुंचा, यानी वह अर्हत हुआ। दोनों कथाओं में बोधिसत्व को श्रृंग ऋषि का पिता दिखाया है। इन दो कथाओं में बुद्ध धम्म का तत्व चारित्र्य (ब्रह्मचर्य) और शीलत्व का महत्त्व बताया गया है। साथ ही मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा को भिक्खु नित्य आचरण में लाए, यह संदेश दिया है। इन कथाओं के द्वारा भिक्खुओं को विनयशील बनाने के पवित्र हेतु से और बौद्ध धम्म के नैतिक तत्व पर अडिग रहने के लिए इनका उपदेश और कथाओं का आज भी समाज पर उतना ही गहरा असर होगा जैसा पहले होता था। यह नीति कथा है ही श्रेष्ठ! उन नीति कथाओं की जनता के मन-मस्तिष्क पर गहरा असर था। उन्हीं कथा से पात्र लेकर उसके मुख्य हेतु को भ्रष्ट करने के लिए ही श्रृंग ऋषि को वाल्मिकी रामायण में लाया गया।

अब हम देखते हैं कि वाल्मिकी रामायण में दशरथ को निपुत्रिक क्यों दिखाया? और निपुत्रिक दशरथ क्या करता है? श्रृंग ऋषि के द्वारा ही दशरथ अपनी रानियों के साथ नियोग करता है और उनसे पुत्र प्राप्त करता है। यहाँ जो चित्र खड़ा किया गया है वह सुनने मे अत्यंत रोचक लगता है। यह रोचक कहानियां कहाँ से पैदा हुई? नियोग की कल्पना कुश जातक (531) से ली गई है। वास्तव में कुश जातक कथा भी शील के महत्त्व को बताने के लिए तथा उद्विग्न बौद्ध भिक्खु को मार्गदर्शन करने हेतु रची गई है। जातक कथाओं का नैतिक मूल्यों में अत्यंत महत्त्व है।

शास्ता ने कुश जातक के द्वारा उद्विग्न चित्त भिक्खु के बारे में उपदेश के तौर पर बतायी है। यह कथा बहुत उच्च सिद्धांतों को आसान तरिके से बताया गया है। बुद्ध शासन में प्रव्रजित हुए भिक्खुओं को विनयों का पालन करना पड़ता है। श्रावस्ती के एक पुत्र भिक्खु बनने के बाद भिक्षाटन करते समय अलंकृत स्त्री को देखकर

रागाभिभूत हो, अनिच्छुक मन में रहने लगा। वह खुद की तरफ ध्यान न देने लगा। शास्ता ने घटना प्रसंग को ध्यान में रखकर एक अतीत कथा उपदेश के तौर पर कही। 'स्त्रियों के प्रति आशक्त हो जाने के कारण पुराने समय में तेजस्वी पण्डित भी विनाश को प्राप्त हुए' यह बताने के लिए कुश बोधिसत्व की जातक बताई। दो प्रसंगों को अतित कथा में जोड़ा गया है। प्रथम प्रसंग में मल्ल राष्ट्र के कुशावती राजधानी में ओक्काक नामक राजा धम्मानुसार राज्य करता है। उसकी सोलह हजार स्त्रियाँ होती हैं, उसमें उसकी पटरानी शीलवती शीलसंपन्न होती है। 16 हजार का यह आंकड़ा दशरथ जातक में होने के कारण ही इस जातक के कशासूत्र के अंश को बिगाड़कर चुराने की लालसा वाल्मिकी रामायण के रचयिता को हुई होगी! इस कथा में राजा की 16 हजार रानियों को पुत्र नहीं होते हैं और राजकुल में वारिस को लेकर राजा को चिंतित दिखाया गया है। उसी तरह रामायण में दशरथ को निपुत्रिक दिखाया गया है। अब इस जातक में पुत्र कामना के लिए जनता की मौजूदगी में स्वयं ओक्काक राजा जंगल में एक-एक स्त्री को भेजता है। इसमें धर्मानुसार जो आचारण करती हो, जो पुण्यवान हो उसे गर्भ धारण होगा, ऐसी उसकी धारणा थी। लेकिन, राजा हताश होता है और आखिर में पटरानी शीलवती को भेजने का प्रयास करता है। वह रानी शीलवान से तेज होती है। उसके शील तेज से शक्र - भवन गरम हो जाता है। जब शक्र ने गरम होने की वजह ढूंढी तो पता चला कि पुण्यवान महिला की पुत्र कामना है। देव लोक में उन्होंने बोधिसत्व देखा तब बोधिसत्व त्रयोंत्रिश लोक में आयु समाप्त कर उसके भी ऊपर के लोक में जन्म ग्रहण करने की सोच रहे थे। शक्र ने बोधिसत्व को ओक्काक रानी की कोख में जन्म ग्रहण करने को कहा और उन्होंने हाँ भरी। उसके साथ-साथ दूसरे देव पुत्र को भी रानी के दूसरे पुत्र के तौर पर जन्म लेने को कहा। रानी शीलवती के शील की रक्षा करने के लिए शक्र बूढे ब्राह्मण के रुप में देवी के दरवाजे पर आ पहुंचा। कथा में ऐसा दिखाया है कि वह देव व्यक्ति रानी का हाथ पकड़कर अपने तेज से लेकर जाता है। सारे लोग दंग रहते हैं। उस रानी को जंगल में ले जाकर उसे खाट पर लिटाता है और उसे दैवी स्पर्श करते हुए बेहोश करता है। उसके बाद शक्र उसे त्रयोंत्रिश भवन में लेकर जाते हैं। उस अलंकृत विमान में दिव्य शैय्या पर उसे लिटाया जाता है। सातवें दिन उसे होश आता है और वह समझ जाती है कि यह बूढ़ा आदमी शक्र ही था। यह सात दिन की प्रक्रिया मानसिक तौर पर दिखाई गई है। शक्र, रानी को एक नहीं दो पुत्र देने का वर देता है। मगर, उसमें एक पुत्र दिखने में कुरुप

होगा लेकिन, प्रज्ञावान होगा और वही बोधिसत्व होगा और दूसरा लड़का रुपवान होगा लेकिन, प्रज्ञावान नहीं होगा। रानी को पूछा गया कि रानी तुम्हे कौन सा पुत्र चाहिए? रानी ने पहला लड़का 'प्रज्ञावान' मांगा। रानी के वापस आने पर राजा उसे नाना सवाल पूछता है। आखिर में उसका भी दैवी साक्ष्यों को देखकर विश्वास होता है कि वह व्यक्ति शक्र ही था। रानी के पेट से बोधिसत्व शक्र जन्म लेता है। वह दिखने में कुरुप लेकिन प्रज्ञावान होता है। कुश कुमार चलने ही लगा की उसकी कोख में दूसरे देव पुत्र ने जन्म लिया। बोधिसत्व अपने स्वयं प्रज्ञा से ही शिल्पकला का अभूत ज्ञान हासिल किया था। जम्बूद्विप में सबसे ज्यादा सुंदर कन्या से विवाह कराने की राजा-रानी ने ठानी। लेकिन कुश बोधिसत्व शादी के लिए मना करता है और वह माता-पिता की सेवा करेगा और मर जाने के बाद प्रवज्जित होकर धम्म कार्य करेगा, ऐसा जवाब देता है। राजा ने सप्ताह बाद बोधिसत्व को शादी के लिए तैयार करते हैं। लेकिन, बोधिसत्व अपनी पत्नी कैसी होनी चाहिए, इसका सोने से एक अलंकृत शिल्प बनाकर देता है। उस मूर्ति की तरह राजकन्या को ढूंढा जाता है। वह मूर्ति जिंदा कन्या की तरह लगती थी। वह मूर्ति अत्यंत मोहक, सुंदर थी। अगल-अलग जनपद, नगरो में उस मूर्ति को दिखाकर सुंदर कन्या ढूंढी जाती है। वह कही नहीं मिलती।

मद्दराजा की सात कन्यायें होती हैं।, अप्सराओं की तरह उसमें से बड़ी कन्या प्रभावती अत्यंत सुंदर थी। मूर्ति को लड़की मान दासी थप्पड मारती है हाथ टूटता है। हंसकर कहती है कि यह तो सुंदर कन्या की मूर्ति है। उससे भी ज्यादा महाराज की लड़की प्रभावती है, उसके सामने इस मूर्ति की सुंदरता 16 वें हिस्से के भी बराबर नहीं है। सेना, अमान्य सुंदर लड़की की खोज पूरी होने की जानकारी रानी तथा राजा को देते हैं। मद्दराज भी शादी के लिए राजी होते हैं। शीलवती रानी शक्र बेटे की कुरुपता के कारण बड़ी होशियारी से प्रस्ताव रखती है कि हमारा रिवाज है कि पहले एक बच्चा होने देंगे और उसके बाद शादी करेंगे। इसलिए रानी शक्र को दिन में मिलने ही नहीं देती। शक्र को कुछ दिन बीत जाने के बाद प्रभावती को देखने की चाहत निर्माण होती है। बहुत आग्रह करने पर रानी प्रभावती को कभी हाथी के पास तो कभी दूसरे बेटे के साथ शक्र को बिठाती है। प्रभावती के साथ एक कुबड़ी दासी है। असली पति कौन है? यह ढूंढने को कहती है और विफल होती है। अब प्रभावती अपनी सास को आग्रह करती है कि शक्र को देखना है। फिर उद्यान में शक्र कमल के बीचोबीच फूलों को लपेट कर छिपता है। अचानक प्रभावती को हौद में स्नान करने की चाहत

होती है, फूलों के नजदीक जाती है तब शक्र की कुरुपता को वह देखकर उसे यक्ष मानकर डर के मारे चिल्लाती है और बेहोश होकर गिर जाती है। बाद में प्रभावती शक्र को त्यागकर दूसरी शादी करुंगी, कहकर चली जाती है। बोधिसत्व को कुरुपता आने की वजह एक पूर्व जन्म की कहानी आगे जोड़ दी गई है। अब इस दूसरी कहानी से ही महाभारत के पंडू की कहानी का जन्म होता है। गहन बौद्ध तत्त्वज्ञान से भरी बोधिसत्व और प्रभावती की कहानी बाद में सुखद होती है। यह जातक कथा सुनकर, धम्मोपदेश सुनकर उद्विग्न चित्त भिक्खु स्त्रोतापत्ती फल में प्रतिष्ठित हुआ।[72]

महाराष्ट्र में एक लोकनाट बहुत प्रसिद्ध है 'गाडवाचं लग्न' इसकी प्रेरणा भी यही जातक है। उपरोक्त तीन जातक कथाओं में शील तथा चरित्र का महत्त्व ही बताया गया है। यह जातक जनमानस को धम्म का ही मार्ग बताते है। इनका प्रभाव जनता पर बहुत गहरा था। इन्हें ध्यान में रखकर वाल्मिकी रामायण के रचयिता ब्राह्मण उस शीलवान प्रेरणा को खत्म करने के लिए ही 'नियोग' की एक कथा और बाद में उसे पायस (खीर) के साथ जोड़ दिया और उसके लिए जातकों का ग्रंथ इस्तेमाल किया। इससे ब्राह्मणों ने वाल्मिकी रामायण के राम को व्यवहार से दशरथ का पुत्र बताने के बजाए श्रृंग ऋषि का पुत्र दिखाया। क्योंकि क्षत्रिय राम को ब्राह्मणवादी दिखाना इससे आसान होगा, यह बात उन ब्राह्मणों के दिमाग में चल रही होगी। लेकिन, ब्राह्मणों ने वाल्मिकी राम अब बोधिसत्व राम न लगे, इसके लिए राम तथा कौशल्या का भी चरित्रहनन किया। जातक कथाओं में उच्चतम धम्म तत्त्वज्ञान से प्रेरित और शीलवान, चरित्रवान बोधिसत्व का व्यक्तित्व दिखाया है। लेकिन, वाल्मिकी रामायण में नकल तो जातकों की कथा, पात्रों, प्रसंगों की ही, लेकिन ब्राह्मणवादी मकसद को ध्यान में रखकर तीन-चार जातक कथाओं को जोड़कर एक नई कहानी बनाई। बौद्ध धम्म के शील, चरित्र का संदेश देने वाले उन जातक कथाओं को काउंटर करने के लिए ब्राह्मणों ने रंजकता के नाम पर राम तथा कौशल्या का चरित्रहनन ही कर डाला। क्या ब्राह्मणों ने बोधिसत्व राम के प्रति घृणा रखने के भाव से इस नये राम के साथ ऐसा व्यवहार किया? बौद्ध धम्म का आधार नैतिकता, सदाचार है[73]

तो वैदिक धर्म का आधार अनाचार, अधपतन है। बौद्ध धम्म करुणा, अहिंसा और सत्य के लिए जाने जाते हैं तो वैदिक धर्म नागों का, बौद्धों का द्वेष करने वाले लोग तथा हिंसा और असत्यवादी से वैदिक ब्राह्मण जाने जाते हैं!

स्वर्ण हिरण की कथा का उगम और उसका तात्पर्य

वाल्मिकी रामायण के रचयिता इस मामले में ज्यादा चिंतित थे कि बुद्ध धर्म से जुड़े हुए प्रतिकों को कैसे दबाया जाए या उसके समांतर नऐ प्रतीक कैसे खड़े किए जाएं? लेकिन, वे बहुत सोचविचार करने के बाद इस नतीजे पर पहुंचे होंगे कि बौद्ध प्रतिकों को मिटाना असंभव है। तो क्यों ना ऐसा किया जाए कि समन्वय तंत्र द्वारा उनके ही प्रतिकों को अपनाकर, उन्हें ब्राह्मणवाद का अंग बनाकर बौद्ध धर्म के खिलाफ उनका इस्तेमाल किया जाए। सीता को स्वर्ण हिरण की लालसा होने से ही मानों रामायण में असली संघर्ष की शुरुवात हुई थी, ऐसा दिखता है। लेकिन, असली संघर्ष तो शूर्पणखा के विद्रुपीकरण के साथ शुरु हुआ था। वाल्मिकी रामायण में राम को एक वचनी और सत्यवादी दिखाया गया है। लेकिन, शूर्पणखा ने जब उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखा तो राम ने खुद को विवाहित बताया और लक्ष्मण को अविवाहित बताकर उसके पास भेजा और उसे धोखे में रखकर उसे विकृत बनाया। वास्तविक तौर पर वाल्मिकी रामायण में लक्ष्मण भी विवाहित रहता है और उसकी पत्नि का नाम उर्मिला रहता है। इस तरह झूठ बोलकर राम ने एक वचनी और सत्यनिष्ठ होने का धर्म नहीं निभाया।

सीता हरण की कथा से पहले रावण की बहन शूर्पणखा का राम और लक्ष्मण के द्वारा किया गया विद्रुपीकरण के कारण ही सीताहरण हुआ है। वैसे रामायण के पात्रों और कथानक का परिदृष्य देखते हुए लगता है कि रामायण का सिलोन से दूर-दूर का संबंध नहीं है। वेबर महोदय का मानना है कि आर्य ब्राह्मणों का दक्षिण के बौद्ध लोगों पर कब्जा कराने के लिए रामायण में श्रीलंका और रावण का वर्णन जोड़ दिया गया है।[73] शूर्पणखा का ज्यादा से जादा महाराष्ट्र के इलाके में जो शुर्पारक बौद्ध व्यापारी स्थल था उससे संबंध दिखता है। वेबर के अनुसार, राक्षस यानी बौद्ध है और शुर्पारक भी यक्षों का व्यापारी केंद्र है, इससे ये बातें मेल खाती है। राम जिस संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, वह महिलाओं का अपमान करने वाली संस्कृति थी। सीता के चरित्र पर शंका करना इसका उत्तम उदाहरण है। रावण के कब्जे में सीता के होने के बावजूद भी रावण ने बदले की भावना से प्रेरित होकर राम की तरह दुष्कृत्य नहीं किया। इसलिए, प्रसिद्ध शोधक वि.भी.कोलते महात्मा रावण इस किताब में राम-रावण संघर्ष वैदिक-बनाम बौद्धों के संघर्ष का प्रतीक बताया है।

स्वर्ण-हिरण की कल्पना का पात्र वाल्मिकी रामायण में चुल्ल-हंस जातक (533) और महाहंस जातक (534) से ली गई है। इन दो जातक कथाओं में बोधिसत्व को हंस बनाया गया है और वह स्वर्ण रंग का होता है। महाहंस जातक कथा में धृतराष्ट्र को बोधिसत्व बताया गया है और वह 10,000 हंसों का राजा रहता है। चुल्लवंस जातक में उसी धृतराष्ट्र को 96,000 हजार हंसों का राजा बताया गया है और वह स्वर्ण गुफा में रहता है। इन दो कथाओं में स्वर्ण खास शब्द है। दूसरी बात यह है कि इन कथाओं मे हिमालय तथा चित्रकूट का भी वर्णन आता है। इस कथा में बोधिसत्व को हंसो का राजा दिखाया गया है और सेनापति के तौर पर आनंद का ही प्रतीक दिखाया है। वे पांच हंस हैं।- 1) तृण हंस, 2) पांडुवर्ण हंस, 3) मनोशिला हंस, 4) श्वेत हंस, 5) पाक हंस। चित्रकूट के पास कंचन गुफा में पाक हंस रहते हैं, ऐसा कथा में बताया गया है। पाक हंस की लड़की स्वर्ण कन्या थी और वह धृतराष्ट्र हंस महाराज की प्रिय थी। कथा के अनुसार, वाराणसी नरेश की पत्नी खेमा ने एक दिन सपने में 10,000 हंसों सहित बोधिसत्व को चित्रकूट पर देखा और दूसरे दिन प्रातःकाल देखा कि स्वर्ण हंस आकर सिंहासन पर बैठकर मधुर वाणी में धम्मोपदेश कर रहे है। लेकिन, धम्म श्रवण से अतृप्त रहते हुए रात बीत चुकी और हंस धम्म कथा कहकर झरोखे से उड़ गए। रानी बेचैन हो गई। राजा को लगा रानी बिमार है। उसकी उदासिनता का कारण पूछने पर रानी ने कहा स्वर्ण हंस चाहिए और जिद करने लगी तब राजा ने कहा, स्वर्ग हंस नहीं होते हैं। लेकिन, अगर मिलेगा तो मैं लाकर दूंगा। ऐसा राजा ने रानी को वचन दिया। इस कहानी में राजा हंस पक्षियों के लिए खेमा सरोवर बनाता है और उसे अभयारण्य घोषित कर उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी एक यक्ष को देता है। इस कथा में क्रोंच पक्षी की कथा का भी संदर्भ है। शासक इसीलिए भी इस कथा को रामायण में सम्मिलित किये होगे। क्योंकि इस कथा में सरोवर पर स्वर्ण हंस को पकड़ा जाता है और वह दूसरों की रक्षा के लिए वहां रुक जाता है। स्वर्ण हंस के साथ-साथ उसका सेनापति भी खुश होकर उसके साथ आता है। उसका सेना समुख है। कथा में स्वर्ण हंस राज पंचशील का महत्त्व राजा-रानी को बताता है। वस्तुतः यह कथा स्थविर के जीवन के मोहमाया परित्याग के बारे में है। इस कथा से ही रामायण में स्वर्ण-हिरण की कल्पना ली गई है।

चुल्लहंस कथा में भी हंसो का जिक्र आया है। उसमें मृगजल को मृगतृष्णा कहा गया है। इस कहानी से सीता को भ्रमित करने वाले मारिच हिरण को रामायण में भी

मृगतृष्णा कहा गया है। सीता को उस हिरण से मृगतृष्णा हो जाती है। वास्तविक तौर पर उस जातक कथा में अप्रमादी रहकर राज्य करने का उपदेश किया है। साथ ही उसमें दान, शील, त्याग, अर्जन, मृदुता, तप, अक्रोध, अविहिंसा, क्षमा, अवरोध। इन दस शिलों का जिक्र आता है। रामायण में स्वर्ण हंस का जगह मृग मतलब स्वर्ण हिरण ने ली है और राजहंस जातक के उद्यान की रक्षा करने वाले यक्ष को मारिच दिखाया गया है। राम तथा लक्ष्मण के द्वारा हिरण की हत्या करना दिखाया है। मारिच शब्द मारा से भी लिया होगा। क्योंकि, मारा ऐसा पात्र है जो अपना स्वरुप बदलते रहा है और दिग्भ्रमित करता है।

जातक कथाओं में हंस को मारा नहीं जाता, बल्कि उनसे धम्म को सुना जाता है। लेकिन, वाल्मिकी रामायण में हिरण को मारा गया है। हिरण बौद्ध धर्म में भिक्खुओं का भी प्रतीक है। धम्मचक्र गतिशिल रहता है, उसी तरह हिरण भी गतिशिल रहता है। हिरण की आंखें कमलनयन के जैसी होती है और वे अहिंसक होते हैं। उनके बालों को स्वर्ण रंग भिक्खुओं के काषाय वस्त्र को दर्शाता है। अर्थात, स्वर्ण हिरण को मारना मतलब बौद्ध भिक्खुओं की हत्या करने जैसा है। इस तरह रामायण में हिरण की कथा बौद्ध धर्म के खिलाफ हिंसा को दर्शाता है।

स्वर्ण हंस की तीन जातक कथाएं आती हैं। तीनो में बोधिसत्व हंस रहता है। तीसरी जातक हंस, जातक (502) की तरह ही है। वाराणसी का राजा बहुपुत्तक होता है और उसकी पटरानी खेमा होती है। उसे स्वर्ण हंस का धम्मोपदेश सुनने की इच्छाएं हुई।

बोधिसत्व धृतराष्ट्र का सुमुख समर्थन करता है। बोधिसत्व धृतराष्ट्र राजा तथा रानी को धम्मोपदेश देता है, जिसमें वह उसे सात धम्मोपदेश देता है। जिसमे रानी की इच्छा शांत होती है। राजा को शीलों में प्रतिष्ठित कर अप्रमाद का उपदेश देकर बोधिसत्व सुमुख के साथ खिड़की से निकलकर चित्रकूट जाता है।[75]

स्वर्ण मृग की कथा रोहन्त मिग जातक (501) में आयी है, जिसमें बोधिसत्व रोहन्त मृग रहता है। भाई चित्तमृग और बहन सुतना रहती है। वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसकी खेमा नामक पटरानी होती है। उसे स्वप्न में स्वर्ण हिरण (मृग) धम्मोपदेश करते हुए दिखता है। आसन पर बैठकर सुनहरी घंटियाँ बजाने के शब्द के समान मधुर स्वर से देवी को धम्मोपदेश देता है और पूरा धम्मोपदेश बताये बगैर चला जाता है। रानी स्वर्ण मृग से धम्म का उपदेश सुनने की इच्छा जताई। राजा

ने निषाद ग्रामवासी को उसे ढूंढने को कहा और बड़ा धन मिलेगा, यह लालसा दी। उस निषाध के बूढ़े पिता ने ऐसे स्वर्ण मृग को देखा था, वह उसे बताया। बोधिसत्व रोहन्त मृग 80 हजार मृगों का राजा होता है। वह अचानक एक दिन पानी पीते समय निषाध के जाल में फंस गया। वह जाल में फंसकर जख्मी हो गया। लेकिन, वह अपने भाई, बहन तथा अन्य मृगों को कष्ट न हो और वे डरें नहीं, ऐसा व्यवहार किया। उसके भाई, बहन पास आते हैं। तीनों को एक साथ देखकर निषाध को आश्चर्य लगता है। बोधिसत्व के भाई और बहन की बात सुनकर निषाध में मैत्री भाव निर्माण होता है। बोधिसत्व मृग के माता-पिता को अंधे दिखाये गये हैं। उनकी सेवा के लिए मृग को छोड़ने की विनती की जाती है। आखिर में वह उन्हें छोड़ देता है। बोधिसत्व रोहन्त फिर भी राजा को हमारी क्या जरुरत है? यह पूछता है। तब उसकी रानी को धर्मोपदेश बताता है। अपनी पीठ पर निषाध को हाथ रखने को कहता है। उससे स्वर्ण बाल निकलते हैं और वह राजा को दिखा। मेरा धम्मोपदेश तुम ही उन्हें बताओ, ऐसा कहा। निषाध वही करता है, जिसमें वह राजा, रानी को पंचशील और दसधम्म का (दस पारमिता) का उपेदश करता है।[76] इस तरह से कथा समाप्त होती है। इन तीनों कथाओं के 'स्वर्ण' संकल्पना का उपयोग रामायण में किया गया है। जातक की ही रोहन्त मित्र (मृग) जातक से रामायण स्वर्ण हिरण कथा ली गयी है। स्वर्ण मृग रुपी या स्वर्ण हंस रुपी बोधिसत्व हिमालय चित्रकूट से संबंधित बतायें है यानी धम्म के सबसे ऊंचे और पवित्र केंद्र से बताये गए हैं। वैसे देखा जाए तो वह स्वर्ण हिरण पर हमला नहीं, बल्कि बुद्ध के प्रमुख केंद्र पर ही हमला है। इस अर्थ से वह स्वर्ण हिरण का पात्र रामायण में लाया गया है। सोना और हिरण का जातको में निकट संबंध बताया गया है।

रावण सीता का हरण करता है और वह उसपर आशक्त हो जाता है। यह कथा सूत्र वाल्मिकी रामायण का मुख्य सूत्र है। सीता का पुरुष के यहां रहना, इससे सीता के चरित्र पर सवाल खड़ा किया जाता है और उसकी परिणती सीता परीक्षा में हो जाती है। काकाती जातक (327), सुसन्धी जातक (360) और कुणाल जातक (536) इन कथाओं से कुछ कल्पनाएं रामायण के रचयिताओं ने ली है। गरुढ़ की कल्पना काकाती जातक से ली गई है। हनुमान पात्र को काकाती जातक के नटकुबेर नामक गंधर्व से ही बनाया लगता है। जैसे नटकुबेर काकाती रानी को ढूंढने के लिए एक वन में पहुंचता है। वैसे ही रामायण में हनुमान श्रीलंका के अशोक वन में सीता को ढूंढने के लिए पहुंचता है। उद्विग्न चित्त भिक्षुओं के लिए उपदेश पर यह अनेक जातक कथाएं

कही गई है। कुणाल जातक में अन्य जातक कथाएं भी सम्मिलित है जैसे की- 1) कदंन जातक (475), 2) वद्दभ जातक (332), उलेटुकिक जातक (357), 4) रुक्खधम्म जातक (74), 5) वट्टक जातक (35) महिला मार की ताकत होती है, ऐसा वर्णन पाली साहित्य में आया है। निर्वाण प्राप्त करने के लिए भिक्खुओं को स्त्रियों के प्रति अनाशक्त नहीं रहना चाहिए। यह उपदेश इन जातक कथाओं का निर्माण रामायण में किया गया। सीता हरण और बार की कथा भी जातक कथाओं के प्रतिक एवं पात्रों से प्रभावित है।

सीता स्वयंवर कथा की कल्पना भी महाजनक जातक से ली गई है। महाजनक जातक में सीवली देवी के विवाह के साथ-साथ राज्य का नेतृत्व की शर्त रखी गई थी जो हजार बल वाले धनुष को चढ़ा सकता है और जो सोलह महान निधियों को निकाल सके। इस जातक कथा में मिथिला का राजा महाजनक होता है। उसके दो पुत्र होते हैं अरिठ्ठजनक और पोलजनक। राजा ने दोनों पुत्रों को सम्मान दिया। राजा के मरने के पश्चात दोनों भाई राज करते हैं। पोलाजनक ने भ्रातृद्रोह किया। बाद में पोलजनक के योद्धाओं ने अरिठ्ठजनक को मार डाला। उसकी रानी ने गर्भ छुपाकर एक बच्चे को जन्म दिया, जिसका नाम महाजनक रखा गया। इधर शर्त को पूरा करने वाले बोधिसत्व महाजनक को सीवली देवी का पति एवं राजा बनाया जाता है। इस जातक कथा में महाजनक उपोसथ वृत का पालन करने वाला बताया गया है। महाजनक की जगह राम को वाल्मिकी रामायण में दिखाया है और सीवली देवी को सीता की जगह खड़ा किया है। वहीं सीता स्वयंवर है। महाजनक में से जनक शब्द उठाकर सीता का पिता बना दिया गया। जो भी हो सीता स्वयंवर की कल्पना महाजनक जातक से चुराई गई है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

रामायण में शम्बूक ऋषि की हत्या का वर्णन आया है। निश्चित तौर पर वह ब्राह्मणों के वर्चस्व को दर्शाता है। राम राज्य आने से ब्राह्मणों का वर्चस्व कायम रहेगा और ज्ञानी व्यक्तियों की हत्याएं की जाएगी। ब्राह्मणों के वर्चस्व को जो भी चुनौती देगा उसकी शम्बूक की भाँती हत्या की जाएगी। चित्तसम्भूत (498) जातक कथा से ही शम्बूक कथा की कल्पना की गई है। सम्भूत से शम्भूक शब्द बनाया गया है। चित्त बोधिसत्व है और उनके मौसेरे भाई सम्भूत है। दोनों चांडाल कुल में पैदा होते हैं। वे दोनों अवन्ति राष्ट्र में शिल्प दिखाने के लिए घुमते हैं। बाद में नगर में शेठ और पुरोहित की लड़की लोगों को खाद्य और मांस देने पहुंची तो उन्हें इन दोनों चांडालों का दर्शन

हुआ। पूछने पर पता चला कि वे दोनों चांडाल कुल के हैं। लोगों को भोजन न मिलने के कारण उन दोनों को लोगों ने पीटा। बाद में वे दोनों नाम छिपाकर तक्षशिला में ज्ञान लेने के लिए जाते हैं। उसका भी अंत दुःखद होता है। सम्भूत गर्म खीर सीधा मुँह में डालता है और मुँह में जलन होने के कारण वह अपने चांडालों की बोली भाषा में बोलता है। जाति की पहचान हो जाने के कारण उन दोनों को मारने के लिए ब्राह्मण दौड़ते हैं, लेकिन एक भिक्खु आकर उन्हें बचाते हैं और बौद्ध धम्म की प्रवज्जा (दीक्षा) देते हैं। बौद्ध धम्म में गैरबराबरी नहीं, ऊचनीचता नहीं, यह बताने के लिए जातक कथा है। इसका जनमानस पर बहुत गहरा प्रभाव था। इसे ध्यान में रखकर शम्बूक के हत्या की कथा रची गई है, ऐसा प्रतीत होता है। प्रतीक अर्थो में यह प्रतिक्रांति ही है। रामायण प्रतिक्रांति का एक नमूना है। दशरथ जातक कथा में कोई रावण नहीं है। बोधिसत्व राम ने किसी रावण या शम्बूक को नहीं मारा, दोनों पात्र रामायण में काल्पनिक मात्र हैं। वास्तविकता यहीं है कि बौद्धों के पात्रों को चुराकर लोगों के मन-मस्तिष्क में जो बोधिसत्व राम था उसी का ब्राह्मणीकरण किया गया। वाल्मिकी रामायण बौद्ध साहित्य चोरी करके बड़ी ही चालाकी से रचाया गया षड्यंत्रकारी काव्य है। राम के बहाने मूल बौद्धों का भी ब्राह्मणीकरण किया गया। इतना ही नहीं, मूल जातक कथाओं का जो जनमानस पर प्रभाव था और जातक कथाएं धम्म का संस्कार करने के लिए थी। ब्राह्मणों ने उनका प्रभाव कम करने के लिए उन्हीं पात्रों का इस्तेमाल किया ताकि मूल बौद्ध अनुयायियों का ब्राह्मणीकरण करना आसान हो सके।

अश्वमेध यज्ञ का रहस्य-

बौद्ध साहित्य में धम्म राजा का अत्यंत महत्त्व है। आदर्श राजा के बिना राज्य नहीं चल सकता, ऐसा बौद्धों का मानना था। अगर राजा नहीं होगा तो चारों तरफ अव्यवस्था होगी और अराजकता के कारण जन दुःखी होंगे। इसलिए समाज और राज्य को नियंत्रित करने के लिए राजा का होना बौद्ध साहित्य में अनिवार्य बताया गया है। इसके संदर्भ में एक प्राचीन जातक कथा - महाजनक जातक कथा उपलब्ध है, जिसमें यह कहा गया है कि राजा विहीन राज्य की रक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए पुष्प रथ को मंगल रथ कहा गया है, जिसके साथ चतुरंगिणी सेना होती है। सस्वामी

रथ में आगे-आगे बाजा बजाते हैं और अस्वामी रथ के पीछे-पीछे होते हैं। जिसके अनुसार बोधिसत्व महाजनक के पास वह पुष्प रथ युक्त घोड़े रुक जाते हैं। इस तरह से राजा को चिन्हित किया जाता है और बाद में उसकी परीक्षा ली जाती है।

जातक में आदर्श धम्म राजा की यह संकल्पना कहां से आयी? दीघनिकाय के चक्कवती-सिंहनाद सुत्त में यह संकल्पना स्पष्ट की गई है। जिसमें यह बताया गया है कि चक्कवती राजा धमचक्र को प्रवर्तित करते हुए अपना राज्य चलाता है। वह धम्म चक्र को गतिमान करता है। इसलिए उसे चक्रवर्ती (Wheel Turning) कहा जाता है।[77] एक बार धम्म राजा दल्लाह नेमी धम्म के अनुसार राज्य करने के बाद भिक्खु बनना चाहता हैं। लेकिन भिक्खु बनकर जैसे ही वह अपना राज छोड़ता है वैसे ही राज्य पर छाया हुआ धम्म चक्र गायब हो जाता है। नया-नया राजा बना उसका राजपुत्र सलाहगार भिक्खुओं से पूछता है कि यह धम्मचक्र क्यों गायब हुआ? तब भिक्खु उसे बताते हैं कि धम्म के अनुसार आपको राज्य के चारों दिशाओं में धम्मचक्र की स्थापना करनी चाहिए तब आपके राज्य में धम्मराज्य स्थापित होगा और तब आप धम्मराजा बनेंगे। इस तरह वह राजा और उसके साथ वंशज रथ पर धम्मचक्र रखकर चारों दिशाओं में स्थापित करते हैं और धम्मराज्य की स्थापना करते हैं। लेकिन, उसका 8 वाँ वंशज एक बड़ी गलती कर बैठता है। वह धम्मचक्र की स्थापना नहीं करता और धम्म के अनुसार राज्य नहीं करता है। भिक्खुओं का मार्गदर्शन करता है लेकिन अपने तरीके से राज्य चलाने की कोशिश करता है। इससे राज्य में अधर्म बढ़ता है, लोक नीति नियमों का पालन करने के बजाए अनितीमान बनते हैं, चोरी, डकैती, अनाचार बढ़ता है और इस तरह राज्य का पतन हो जाता है।

इतिहास में ऐतिहासिक धम्मराजा सम्राट अशोक हुए, जिनके पुरातात्विक सबूत आज भी स्तूपों और स्तम्भों के रुप में जीवित हैं। अशोक ने भी चक्कवती सिंहनाद सुत्त के अनुसार चारों दिशाओं में धम्मचक्र को गतिमान किया था। उसने चतुरंगिरी सेना लेकर, आगे सफेद घोड़े को छोड़कर और पीछे रथ पर धम्मचक्र रखकर चारों दिशाओं में धम्म को स्थापित किया था। इसमें आगे दौड़ता सफेद घोड़ा शुद्ध धम्म (सद्धम्म) का प्रतीक है। जिस तरह घोड़ा गतिमान करता है उस तरह आदर्श धम्म राजा को भी धम्मचक्र को उसके राज्य में हमेशा गतीमान रखना चाहिए। यह संदेश इस सुत्त में और उसपर आधारित महाजनक जातक कथा में दिया है। सम्राट अशोक ने भी इस संकल्पना का पालन किया था, जिससे इसकी प्राचीनता समझ में आती

है।

सम्राट अशोक और धम्मराजा संकल्पना को काउंटर करने के लिए ही ब्राह्मणों ने महाभारत और रामायण के माध्यम से इस संकल्पना अश्वमेध यज्ञ के नाम पर ब्राह्मणीकरण किया और बाद में उसे ऐतिहासिक दिखाने के लिए पुष्यमित्र शुंग के साथ जोड़ दिया। अश्वमेध यज्ञ में भी राजा पहले सफेद घोड़ा चारों दिशाओं में छोड़ता और उसके पीछे चतुरंगिनी सेना भेजता है। घोड़ा प्रदक्षिणा पूर्ण कर बोधिसत्व महाजनक के पास आ जाता है और फिर बोधिसत्व महाजनक के आदर्श धम्मराजा के रुप में जनता स्वीकार कर लेती है। इस संकल्पना का ब्राह्मणीकरण महाभारत और रामायण में ऐसा किया है कि सफेद घोड़ा एक साल की प्रदक्षिणा पूर्ण करने के बाद राजा ब्राह्मणवादी बन जाता है और घोड़े को ब्राह्मणों के इशारे पर यज्ञ में मार डालता है। मतलब मूल बौद्ध संकल्पना को ब्राह्मणी वर्चस्व के लिए घोड़ा विकृत किया गया है। ब्राह्मण केवल इतने से संतुष्ट नहीं हुए, बल्कि बौद्ध क्षत्रिय राजाओं को अंकित करने के लिए उन्होंने अश्वमेध यज्ञ को पूरी तरह से विकृत और अश्लील बना दिया। जातक कथा की तरह महाभारत (99, 40c-41b) में यह कहा गया है कि राजा के बगैर राज्य नहीं चल सकता।[78] राजा न होने पर अराजकता फैलेगी, इसलिए राज्य चलाने के लिए राजा होना जरुरी है। राजा बगैर राज्य दो समय पर ही बनता था। एक जब राजा युद्ध में जाता था और दूसरा जब राजा बूढ़ा हो जाता था। अश्वमेध यज्ञ का पहले राजाओं ने विरोध किया था, क्योंकि ब्राह्मण उसमें धर्म के नाम पर अश्लिलता फैला रहे थे। हरिवंश में यह बताया गया है कि ब्राह्मणों ने घोड़े के रुप में राजा जनमजेय की पत्नी के साथ संभोग करने का प्रयास किया था। इसलिए उसने अश्वमेध यज्ञ का विरोध किया था। लेकिन कुछ भी करके ब्राह्मण अपना वर्चस्व राजाओं पर बनाए रखने के लिए अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने नई कल्पना बनाई कि युद्ध के पाप से राजा को मुक्ति दिलाने का काम अश्वमेध यज्ञ करता है।[78] युद्ध में भयानक जीवित हानि होती थी, जिससे राजा दुःखी बन जाते थे, इसका उदाहरण खुद सम्राट अशोक है। युद्ध में होने वाली भयंकर जीवित हानि से राजा के मन में भयंकर बेचैनी और अस्वस्थता उत्पन्न होती थी। सम्राट अशोक के साथ भी ऐसा ही हुआ। इसलिए उसने मन शांत करने के लिए धम्म की शरण ली थी। मौर्योत्तर काल खंड में धम्म की जगह पर ब्राह्मण अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते थे। इसलिए युद्ध के बाद बेचैन होने वाले राजाओं को धम्म की बजाय उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने को कहा।

महाभारत में युधिष्ठिर बौद्ध धम्म की तरफ आकृष्ट हुआ दिखाई देता है। लेकिन ब्राह्मण व्यास उसे महाभारत युद्ध के बाद अश्वमेध यज्ञ करने को मजबूर करता है। इस प्रकार महाभारत में युद्ध के पाप से मुक्ति दिलाने वाला यज्ञ के रुप में अश्वमेध यज्ञ दिखाया गया है। लेकिन, उसे और पक्का स्थापित करने के लिए रामायण में दो अश्वमेध यज्ञ बताये गए हैं। महाभारत जैसा रामायण में भी एक अश्वमेध यज्ञ युद्ध के बाद मन शांति के लिए राम करते हैं। देखा जाए तो यह सम्राट अशोक को ध्यान में रखते हुए की गई लिखित प्रतिक्रिया है। अश्वमेध यज्ञ से पुत्र प्राप्ति भी हो सकती है। यह नई संकल्पना रामायण में दूसरे अश्वमेध यज्ञ के रुप में सामने लाई गई है। यह दूसरा यज्ञ बूढा दशरथ राजा पुत्र प्राप्ति के लिए करता है, जिसे रामायण में पुत्र कामेष्टी यज्ञ कहा गया है।[79] राम वास्तव में राजा बनाने वाला राजसूत्र यज्ञ करना चाहते हैं। लेकिन भरत उनको अश्वमेध यज्ञ करने की विनती करता है।[79] जबकि ब्राह्मण लेखक वाल्मिकी राम के हाथों से अश्वमेध यज्ञ करा लेना चाहता है। लेकिन, भरत को सामने लाकर वाल्मिकी अपनी मंशा भरत के माध्यम से जाहिर करते हैं। इस तरह राजाओं के हाथों से अश्वमेध यज्ञ कराना ब्राह्मणों की जबरदस्त मंशा जाहिर करता है।

अश्वमेध यज्ञ के लिए ब्राह्मण इतने आग्रही क्यों दिखाई देते है? वास्तव में राजाओं के वंशजों का ब्राह्मणीकरण करने तथा उन्हें ब्राह्मणी संतान बताने का ब्राह्मणों का यह दुष्ट उद्देश था। इसलिए अश्वमेध यज्ञ के नाम पर ब्राह्मण पुरोहित घोड़े के पीछे छिपते थे और दूसरे ब्राह्मण उनके ऊपर कपड़ा डालकर उनका कुकर्म छिपाते थे। रानी को उत्तेजित करने के लिए इकठ्ठा हुए ब्राह्मण जोर-जोर से अश्लिल मंत्र पढ़ते थे। जैसे की 'ओ अम्बा, अंबाली, अंबिका कोई मुझे ... नहीं कर रहा है।' (यक्षाती) और मरा हुआ घोड़ा मेरे साथ नग्न सोया हुआ है।[80] इस तरह यज्ञ के नाम पर ब्राह्मण रानी के साथ गर्भधारण करते थे, जिसमें आने वाली संतानें ब्राह्मण समझी जाती थी और राजा का ब्राह्मणीकरण हो जाता था। रामायण में भी बूढ़ा राजा दशरथ की पत्नियों के साथ श्रृंग ऋषि ब्राह्मण इसलिए दिखाया गया है ताकि राम को क्षत्रिय नही, ब्राह्मण की संतान दिखाया जाए। दशरथ जातक कथा में ऐसे किसी दूसरे पुरुष के द्वारा बच्चा पैदा करते हुए नहीं दिखाया गया है। राजा दशरथ को सुदृढ़ दिखाया गया है और उसके सारे पुत्र खुद के पुत्र रहते हैं। उल्टा वाल्मिकी ने रामायण में दशरथ को बूढ़ा दिखाकर एक तो उसके पौरुषत्व का अपमान किया है और राम को ब्राह्मण की अनौरस संतान बनाकर राम का भी अपमान किया है। इस तरह मौर्योत्तर कालखंड में बौद्ध राजाओं

के ब्राह्मणीकरण करने के लिए महाभारत में पहले चक्रवर्ती बौद्ध संकल्पना का रुपांतरण ब्राह्मणों ने अश्वमेध यज्ञ में महाभारत में किया और ब्राह्मणवादी बने राजाओं को बाद में ब्राह्मणों के अनौरस वंशज बताने के लिए ही ब्राह्मणों ने अश्वमेध यज्ञ को पुत्रकामेष्टी यज्ञ में परिवर्तित किया।[81] यही कारण है कि महाभारत में हमें सिर्फ एक अश्वमेध यज्ञ महाभारत युद्ध के बाद मिलता है, लेकिन रामायण में दो अश्वमेध है। एक महाभारत की तरह युद्ध के बाद और दूसरा पुत्र प्राप्ति हेतु दशरथ का किया हुआ अश्वमेध यज्ञ (पुत्रकामेष्टी यज्ञ)।

इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध राजा मौर्योत्तर काल में ब्राह्मणवादी राजा बने और पुत्रकामेष्ठी यज्ञ के कारण वे खुद को ब्राह्मणों का नाजायज क्षत्रिय वंशज समझने लगे। वाल्मिकी रामायण के द्वारा इसी तरह ब्राह्मणों ने अपना वर्चस्व स्थापित किया है।

●●●

संदर्भ :

1. Dr.Babasaheb Ambedkar Writting and Speeches Vol.3, P. 152.
2. On the Ramayana - By - Albrecht Weber, 1873,
3. The Bengali Ramayana, By-Dinesh Chandra Sen, P. I.
4. The Indian Antiquility, Lassen Part 3, (1874), P, 102-103
5. E. M. Hopkins - The Great Epic, P.63
6. Dus Ramayana By- H.Yokabi, P. 72
7. The Riddle of Ramayan, By- C.V.Vaidya P. 204
8. रामकथा – रेव्ह. फादर कामिल बुल्के, पृ. 33
9. प्राचीन भारत, –राधाकुमुद्र मुखर्जी पृ.156
10. The Stupa of Bharhut A Buddhist Munument, Buddhist Legend History in th 3 rd Century BC, By - Alexander Cunnigham P. 71, (Report Published in 1879)
11. The Dashratha Jatka being the buddhist story of king Rama, Edited by - V. Fousboll, P. 1
12. The Jatka Tales By - S. T. Francis & E. J. Thomas, PP.72
13. जातक (प्रथम खंड)

अनुवाद – भदंत आनंद कौशल्यायन, पृ. 24
14. Dashratha Jatka being king fo rama - B.V. Fousbo II, P. 13-20
15. जातक कथा, भाग–2, अनुवाद–भदंत आनंद कौशल्यायन, पृ.210–219
16. चीनी त्रिपिटक के संस्करण, पृ. 152
17. The Great epic - E. N. Hopkins, P. 63
    H. Yokobi, Dus Ramayana, P. 72
18. Hiltebeitel 2006 : 258; Johnston, 1984 : II X (-III)
19. Johnston ; 1982 : IIX (IX)
20. On the Ramayana, P. 46, 47, 44, 49
21. On the Ramayana by Weber, P. 6.
22. The Bangali Ramayana,
    by Rayasaheb DineshChandra Sen (1920), PP.7
23. The Bangali Ramayana- P. S. Indian Antiquiam P. 22, 1872
24. रामराज्य और मार्क्सवाद – राहुल सांस्कृत्यायन, पृ.10
25. आर्यशूर कृत जातव माला – एक अध्ययन
    लेखक –डॉ.कमलकांत मिश्र, पृ.36
26. Dr. Babasaheb Ambekar Writings and Speeches
    Vol. 3, P. 243 - 44
27. वाल्मिकी रामायण, 2/109/34
28. अध्योध्या कांड, सर्ग 109, श्लोक 135
29. वाल्मिकी रामायण 6.60.12, 15; 6.3.28
30. वाल्मिकी रामायण, 6.75.14
31. वाल्मिकी रामायण, 5.22.29.
32. Johnston 1928 : 142, 1, 6
33. महाकवि अश्वघोष (जीवन, व्यक्तित्व, और कृतित्व)
    लेखक – डॉ.हरिदत्त शास्त्री, पृ.115
34. The Dashrath Jatka Being the buddhist story of king rama,
    (The original pali text) translation by, v. fousboll, p. 5
35. वाल्मिकी रामायण – 2.105.17

36. The Dushrath Jatka Fousboll, P. 6
37. वाल्मिकी रामायण – 2.108.3
38. The Dushrath Jatka Fousboll, P. 11
39. वाल्मिकी रामायण – 6.131.116
(पंडित पुस्तकालय, काशी संस्करण)
40. Vaishnavism, Saivism and other Relisous Setion,
By - R.G. Bhendarkar, पृ. 66
41. ''अख्याानं ति आरत रामयणादि । तं यास्मि ठाने कययाति, ताध गन्तू न वड्डनि /– दीघानिकाय''
42. Buddhist Birth Stories, By- Rich Davids, P. 132
43. The Folk Literature of Bangali, By-Raisaheb Dineshchndra Sen, P. S. (1920)
44. St. John of Damaseus, By- Rev. J.H. Luptoom, P. 185 (1882)
45. जातक कथा खंड –
1 अनुवाद – भदंत आनंद कौशल्यायन, पृ.29 (प्रस्तावना)
46. On the Ramayana, By- A. Weber, P. 13
47. उत्तरकांड – 1.1.11
49. मज्झिम निकाय, अनुवाद तथा संपादन, भदंत राहुल सांस्कृत्यायन, पृ. 156–257
50. वाल्मिकी रामायण, 1.2.29–30
51. The Sacred anthill and the cult of the Primousdial mound, P. 340
52. The Jatka ED. By - E. B. Cowells, P. 350
53. John C. Irwin E.B. Cowell - 35
54. उपरोक्त, पृ. 359
55. संयुक्त निकाय III 120
56. R.V. X. 129, 1-3
57. संयुक्त निकाय III 140
58. Agni Purana, XI IX
59. ब्रह्म संहिताए VIII 44

60. महाभारत, III 272, 44, XII - 207, 13
61. The Elements of Buddhist Iconography by Anand Coomarswami P. 3, (1935)
62. सद्धर्म पुंडरिक सुत्र
63. वाल्मिकी रामायण
64. गुप्तो के काल के बाद बौद्ध धर्म एवं संस्कृती, लेखक–भिमप्रिय अशोक (बुंदेलखड विश्वविद्यालय के अंतर्गत इतिहास विषय में पी.एच.डी. हेतू सादर किया गया ग्रंथ, 1994–95)
65. Hiltebettel, Combris
66. जातक कथा, खंड–1, कथा क्र. 7,
अनुवाद – भदंत आनंद कौशल्यायन, पृ. 220–225
66. वाल्मिकी रामायण सार, लेखक– सोहनलाल पाटणी, और पंडित अभुंतराम ओझा (साहित्याचार्य) पृ. 58)
68. Yakobi Ramayana Condected in the poets our words by pundits A.M. Evinvasa Chamar, P. 74
69. उपरोक्त, पृ.30
70. उपरोक्त, पृ.30
71. 1.10.20
72. जातक खंड – 5 पृ. 241
अनुवाद – भदंत आनंद कौशल्यायन
73. उपरोक्त, पृ.532
74. On the Ramayana by Weber 8
75. जातक खंड – 5 पृ. 16
76. उपरोक्त, पृ. 1
77. Political theory in connical buddhism by teh J. Moore, p.
78. महाभारत – 14, 70, 15–16
79. रामायण – 1. 8–17, 10.5, 11.2, 14.2–3, 15.24
80. रामायण – 7. 75.2
81. Jaminson, 1996, 69

मनुस्मृती, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता मौर्योत्तरकालीन रचना है।

मनुस्मृती का मौर्योत्तर कालीन रचना

भारत के इतिहास में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को नियंत्रित करने के लिए तथागत बुद्ध ने पहली बार धम्म-नीति-नियमों का निर्माण किया था। जिसके आधार पर सम्राट अशोक के धम्मशासन का निर्माण हुआ था। बौद्ध धर्म के अगन्नसुत्त में आदर्श धम्म राजा कैसा होना चाहिए? इसकी जानकारी मिलती है।[1] इस सुत्त में राजा को जनता चुनती है। इसलिए उसे महासंमत कहा जाता है। इसमें राजा को भिक्खुओं के मार्गदर्शन में अपना धम्म राज्य चलाना चाहिए, ऐसा कहा गया है। अंगुत्तर निकाय में एक बार भिक्खु बुद्ध से पूछते हैं कि राजा को किस तरह अपना राज्य चलाना चाहिए?[2] इसपर बुद्ध कहते है कि राजा को धम्म के अनुसार अपना राज्य चलाना चाहिए। बुद्ध के इस आदेश पर चलकर सम्राट अशोक ने आदर्श धम्मराजा बनकर धम्म के अनुसार अपना राज्य निर्माण किया था। उसका राज्य एक आदर्श धम्मराज्य बन चुका था, जिसमें भिक्खु संघ उसके राज्य की आंतरिक और बाह्य व्यवस्था चलाते थे।[3] इतना ही नहीं, बल्कि बौद्ध धर्म में आदर्श राजा के लिए राजधर्म का भी निर्देश है, जिसे दसराज धर्म कहा जाता है।

सम्राट अशोक ने बौद्ध राजधर्म का पालन करते हुए अपने शासन में सबसे अधिक महत्त्व धम्म को दिया था। उसने अपना गुरु उपगुप्त महाथेरो को बनाया था और विश्व के चारों दिशाओं में धम्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए धम्म महामात्र भेजे थे। अपने राज्य की जनता में धम्म विस्तार बढ़ाने के लिए उन्होंने धम्मलिपि में शिलालेख सभी तरफ खुदवाये थे। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने ब्राह्मणों का वर्चस्व खत्म कर भिक्खु संघ का महत्त्व समाज और राज्य में बढ़ाया था। धम्म में घुसपैठ किए हुए 60 हजार ब्राह्मणों को उन्होंने बाहर निकाला था। ब्राह्मणों के यज्ञों पर उन्होंने पाबंदी लाकर ब्राह्मणों का वर्चस्व पूरी तरह से खत्म कर दिया था। इस प्रकार अशोक ने ब्राह्मण राज और ब्राह्मणों का वर्चस्व समाप्त कर आदर्श धम्मराज की स्थापना की थी। इससे ब्राह्मण बौखला गए और अपना खोया हुआ वर्चस्व दुबारा प्राप्त करने के लिए छटपटाने लगे। लेकिन प्रभावशाली सम्राट अशोक के सामने कुछ नहीं चला। तब अशोक के

मृत्युपरांत 50 साल बाद ब्राह्मणों ने पुष्यमित्र शुंग की सहायता से प्रतिक्रांति की। इसके लिए पतंजलि और शुंग ने योजना बनाई कि आमने-सामने लड़ने के बजाय घुसपैठ करके षड्यंत्र किया जा सकता है। यह योजना बनाकर शुंग ने मौर्य साम्राज्य में दाखिल हुआ और वह धीरे-धीरे सेनापति बन गया। अवसर पाकर अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या करके ब्राह्मणी वर्चस्व स्थापित कर दिया। डॉ.बाबासाहब आंबेडकर के अनुसार, भारत का इतिहास बौद्ध धर्म बनाम वैदिक धर्म के बीच में चल रहा संघर्ष है। ब्राह्मण वर्चस्व के लिए लड़ रहे थे और बौद्ध समानता, मानवता के लिए। ब्राह्मणों को जो विशेषाधिकार दिए हैं वह क्यों दिए है? मौर्य साम्राज्य के कारण ब्राह्मणों का वर्चस्व खत्म हुआ था, यह उसी की प्रतिक्रिया है।

डॉ.बाबासाहब आंबेडकर और अन्य इतिहासकार भी यह बात मान्य करते हैं कि पुष्यमित्र शुंग ने ही बृहद्रथ की हत्या की और हत्या करने के बाद ही मनुस्मृति इस काले कानून का निर्माण करवाया। मनुस्मृति ने क्रमिक, विषमतावादी, जाति व्यवस्था को जन्म दिया। बौद्ध धर्म के कारण वैदिक धर्म की जो वर्ण व्यवस्था कमजोर हो गई थी उसे प्रतिक्रांति करके पुर्नस्थापित किया गया।

वर्ण व्यवस्था को ब्राह्मणों ने जबरन स्थापित किया। इसलिए बार-बार मनु ने ब्राह्मण को सर्वपरी स्थान दिया है। मनु ने ब्राह्मण को श्रृष्टि का स्वामी तक कह दिया। ''1.93 ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने से पहले उत्पन्न होने के कारण श्रेष्ठ होने से और वेद के धारण करने से धर्मानुसार ब्राह्मण ही संपूर्ण श्रृष्टि का स्वामी है।''

''1.101 - ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है, अपना ही दान करता है तथा दूसरे व्यक्ति ब्राह्मण की दया से सभी पदार्थों का भोग करते हैं।''

आगे जाकर मनु ने यहाँ तक कह दिया कि- पृथ्वी पर जो कुछ भी है वह सब ब्राह्मणों का है। इसके विपरित मूल बौद्धों को मनुस्मृति ने शूद्र घोषित किया और उनको सभी अधिकारों से वंचित अर्थात ब्राह्मणों का गुलाम बनाया। शूद्र शब्द बौद्धों के लिए कोड वर्ड (सांकेतिक शब्द) के रुप में इस्तेमाल किया गया। ऐसा वैश्विक इतिहास शोध पॅट्रीक ओलीवेले ने बताया है।[4] ''डॉ.बाबासाहब आंबेडकर जी के निजी डायरी में एक कमेंट लिखी हुई मिली है, जिसमें यह कहा है कि, 'ब्राह्मण बौद्धों पर यह आरोप लगाते हैं कि बौद्ध धर्म यह शूद्रों का धर्म है।[5] हरिवंश पुराण में तो स्पष्टतः यही है कि ''शुक्लदनाजि ताशाश्च मुण्डाः काषायवायसः। शूद्रा धर्म चरिष्यानी शाक्य बुद्धोपजीविनः।।'' यानी शूद्रों का मूल धर्म बौद्ध धर्म ही है। मूल बौद्धों को ब्राह्मणों

ने भले ही शूद्र घोषित किया हो, लेकिन उनकी वास्तविक जड़े बौद्ध धम्म है।

सम्राट अशोक ने धर्म शब्द का अत्याधिक इस्तेमाल बौद्ध धम्म को राज्यधम्म के रुप में स्थापित किया था। उसे काउन्टर करने के लिए मनु कहता है कि, – ''राजाओं को ब्राह्मण धर्म का पालन करना चाहिए।''[6] सम्राट अशोक ने बौद्ध भिक्खुओं को अपना राज्य चलाने के लिए राजनीतिक सलाहकार बनाया था। इसका विरोध करने के लिए मनु कहता है कि–''शूद्र राजाओं को अपना राजनीतिक सलाहाकार नहीं बनाना चाहिए।[7] मनुस्मृति में यहाँ तक लिखा है कि जहां शूद्र राजा हो वहां ब्राह्मणों को रहना ही नहीं चाहिए। इसका संदर्भ मौर्य राजाओं से भी है। मनु को यह लिखने की जरुरत क्यों महसूस हुई? क्योंकि उसके दिमाग में बौद्ध राजा है। ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ प्रदान करने के लिए मनुस्मृति 10.1 – 4 में कहा गया है कि अन्य तीन वर्णों की तुलना में (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें सर्वश्रेष्ठ गुण हैं और वह ब्राह्मण धर्म को धारण करता है। (धरनात)। इसका मलतब यह है कि अन्य तीन वर्ण ब्राह्मण धर्म धारण नहीं करते या उसका पालन नहीं करते, इसलिए ब्राह्मण सभी से खुद को श्रेष्ठ समझते हैं। मनुस्मृति 7.35 में स्पष्टता राजा को ब्राह्मण प्रतिपालक कहा गया है। मनुस्मृति के 8.330 में कहा गया है कि– ब्राह्मण कितना भी अपराधी क्यों न हो राजा उसकी हत्या नहीं कर सकता।

बौद्धों को शूद्र के नाम से मनुस्मृति में इतना प्रताड़ित क्यों किया गया? क्योंकि सम्राट अशोक ने बौद्धों के आदर्शो पर चलकर ब्राह्मणों का वर्चस्व खत्म किया था। इसलिए बदले की भावनाओं में ब्राह्मणों ने मौर्योत्तर काल में मनुस्मृति की रचना की है, यह सिद्ध होता है। बौद्ध धम्म को फैलाने में महिलाओं का बड़ा योगदान था। बौद्ध धम्म के ही कारण महिलाओं को मान, सम्मान एंव आजादी मिली थी और उन्होंने ब्राह्मणी व्यवस्था को खत्म करने के लिए बहुत बड़ा योगदान दिया था। यहां तक पुरुषों की भांति गृहत्याग करके बौद्ध भिक्खुनी बनके जिंदगी लगाई थी। इसलिए बदले की भावनाओं से प्रेरित होकर ब्राह्मणों ने महिलाओं पर अत्यंत क्रूर नियम लगाये थे। महिलाओं की गिनती शूद्र से भी नीच मानी गई है। मनुस्मृति 8.371 में यह कहा है कि–''अगर कोई महिला स्वतंत्र रुप में रहते हुए अपने घरवालों की न सुनती हो तो उसे चौक में खड़ा कर कुत्तों की मदद से उसे फाड़कर मारना चाहिए।'' मनुस्मृति ने महिलाओं की पूर्ण आजादी छिनकर उन्हें गुलाम घोषित किया था– 'न स्त्रि स्वातंत्र्य मर्हति।' यानी स्त्री आजादी के लायक नहीं हैं। यह बौद्ध धर्म के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया

थी। क्योंकि बौद्ध धर्म ने ही महिलाओं को सम्मान एवं आजादी दी थी। मनुस्मृति रचयिताओं को यह डर था कि ब्राह्मण वर्चस्व के खिलाफ बौद्ध विद्रोह करेंगे, इसलिए मनुस्मृति 7.21 में उन्हें अधरोत्तम अर्थात विद्रोही कहा है और राजा को क्रूरता से दमन करना चाहिए, ऐसा निर्देश दिया है। इससे सिद्ध होता है कि मनुस्मृति प्रतिक्रांति के बाद की संहिता है।

Olivelle के अनुसार, मनुस्मृति का रचना काल सन् पहली और दूसरी सदी है और उसका लेखन तीसरी सदी तक चलता रहा।[8] कुषाण का पूर्व काल मनुस्मृति को शुंग का आखरी काल और कुषाण का पूर्व काल मनुस्मृति के लिए निश्चित किया है। (Witzel, 2006, pp-482) डॉ.राधाकुमुद मुखर्जी भी मनुस्मृति शुंगकालीन मानते हैं। ओलीवेले के अनुसार, मनुस्मृति में स्वर्ण मुद्राओं का जिक्र है और स्वर्ण मुद्राएं कुषाण काल में बड़े पैमाने पर प्रचलित हुई थी। इसलिए उनके अनुसार मनुस्मृति का काल दूसरी सदी है। वह आगे कहते हैं कि सम्राट अशोक ने ऐतिहासिक दृष्टि से धम्म के अनुसार शासन कर अनेक राजनीतिक सुधार किये थे, जिसका समाज पर बड़ा प्रभाव बन गया था। अप्रत्यक्ष रुप से सम्राट अशोक आदर्श धम्मराजा बन चुके थे। ब्राह्मणों के लिए आदर्श ब्राह्मण राजा भविष्य में निर्माण हो उस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ब्राह्मणों ने मनुस्मृति को लिखा था। (Colevelle, 2004 : 20-21) हिल्टबिटल भी कहते हैं कि महाभारत के बाद मनुस्मृति की रचना की गई थी। (Hiltebeitel, 2006 : 231) डॉ.बाबासाहब आंबेडकर अपनी विश्वविख्यात किताब ''क्रांति एवं प्रतिक्रांति'' में सप्रमाण सिद्ध किया है कि पुष्यमित्र शुंग के बाद ही मनुस्मृति का निर्माण किया गया। शुंग ने जो प्रतिक्रांति की उसे मान्यता देने के लिए और वैदिक धर्म की पुर्नस्थापना के लिए ही मनुस्मृति का निर्माण किया गया। ब्राह्मणों ने हिंसा के द्वारा प्रतिक्रांति की और अत्यंत क्रूरता से बौद्ध धर्म के प्रति बदले की भावना से व्यवहार किया, इसका प्रतिबिंब मनुस्मृति में छलकता है। इस काले कानून को राष्ट्रपिता महात्मा जोतिराव फुले जलाने की बात करते हैं। सन् 1854 में उन्होंने 'मनुस्मृति का धिक्कार' यह छोटी किताब लिखी थी और उसमें भविष्यवाणी की थी कि यह मनुस्मृति का काला कानून शूद्र लोग आगे आकर चौक में लाकर जलायेंगे। सन् 1927 में 25 दिसम्बर को डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर ने अपने गुरु की वाणी को सच करके दिखाया और वह साल छत्रपति शिवाजी महाराज जी का 300 वाँ जयंती वर्ष था!

रामायण मौर्योत्तरकालीन रचना :–

पिछले अध्याय में रामायण पर विस्तृत से लिखा गया है। इस बात पर अब कोई शंका नही है कि दशरथ जातक कथा की चोरी ही रामायण है। दशरथ जातक कथा में बस रावण और उसके भाई नहीं थे। ब्राह्मणों ने रामायण में उसे जोड़ दिया। रामायण की रचनाकाल बुद्धोत्तर, मौर्योत्तर है। अब नये शोध के अनुसार– ''संपूर्ण रामायण में बुद्ध शब्द का जिक्र 16 बार आया है।''[9] रामायण बुद्धोत्तरकालीन रचना है, इसलिए रामायण में बुद्ध का 16 बार जिक्र आता है। रामायण में बुद्ध का इतनी बार जिक्र आने का क्या अर्थ है? दशरथ जातक कथा में बोधिसत्व राम जो पिता की मृत्यु होने पर शोकमग्न भाईयों को 14 लोक धम्म उपदेश करते हैं, वह शब्द पूर्णतः जैसे के वैसे रामायण में भी राम अपने शोकमग्न भाईयों को बताते हैं। ऐसा क्यों? जातक कथा का राम बौद्ध धम्म का मूलतत्त्व अनित्यतावाद का समर्थन करता है और वाल्मिकी का राम भी उसी तत्त्व का समर्थन करता है। ऐसा क्यों? ऐतिहासिक बुद्ध पूरे विश्व के नायक बन चुके थे। बुद्ध के समान दूसरा व्यक्ति खड़ा करना ब्राह्मणों के लिए बहुत ही मुश्किल का काम था। लेकिन, उन्होंने दशरथ जातक कथा का बोधिसत्व राम के नाम का बखूबी इस्तेमाल किया ताकि ऐतिहासिक बुद्ध के खिलाफ उसका प्रयोग किया जा सके ब्राह्मणों ने यहां पर बहुत बड़ी चलाकी की। रामायण की काव्य शैली जातकों के काथाओं की शैली की नकल है। ब्राह्मणों ने पात्र, कथानक और शैली तक चुराई। दशरथ जातक की तरह अन्य विभिन्न जातकों पात्र एवं कल्पनाओं को उठाकर रामायण की खिचड़ी पकाई गई। साम जातक को ब्राह्मणों ने श्रवण बाल की कथा के रुप में समाज में प्रचलित कर दी। ऐसी ढेर सारी कथाएं रामायण–महाभारत में दिखाई देती है। वेसत्नर जातक का इस्तेमाल सीताहरण कथा को रंजित करने के लिए इस्तेमाल किया गया। प्रो. वेबर महोदय का कहना है कि रामायण दशरथ जातक कथा की चोरी है और यह बौद्ध धम्म के खिलाफ बड़ा षड्यंत्र भी है। जो लोग रामायण को बुद्ध पूर्व दिखाने का प्रयास करते हैं वे लोग ना ही रामायण का वास्तविक समय बताते हैं और न ही उसके रचयिता का कोई ऐतिहासिक प्रमाण। रामायण पूर्णतः बौद्धों के खिलाफ माहौल बनाने के लिए की गई रचना है। इसलिए रामायण में बुद्ध का नाम लेकर उन्हें गालियाँ तक दी गई है।

वाल्मिकी रामायण के सुंदर कांड में 43 चैत्यों को नष्ट करने का वर्णन आया

है। रामायण में चैत्यों का जिक्र आना बौद्ध धम्म से ही संबंधित है। इसलिए रामायण मौर्योत्तरकालीन रचना है। शक, कंबोज, कुषाण, पल्लव, हुण आदि का जिक्र रामायण में आने का अर्थ ही रामायण तीसरी सदी का लिखा हुआ है, यह मत वेबर महोदय का है।

चिंतामन वैद्य ने मान्य किया है कि प्रचलित रामायण दूसरी सदी के बाद लिखी गयी है।[10] पाणिनी में रामायण का जिक्र नहीं है। मूल वाल्मिकी रामायण में बालकांड और उत्तरकांड नहीं थे।[11] वेबर के अनुसार, रामायण का काल तीसरी–चौथी सदी है। भवभूति के उत्तर राम चरित 7.18 में पहली बार राम को रामचंद्र कहा गया है। सुविरा जेस्वाल का कहना है कि राम विष्णु का दैवतीकरण दूसरी सदी के बाद हुआ है।[12]

उसका यह भी कहना है कि रामायण दशरथ जातक के आधार पर बनाया गया है और रामायण काल ईसा दूसरी सदी का है। डॉ.बाबासाहब आंबेडकर जी का भी यही मानना है कि रामायण बुद्धोत्तर तथा मौर्योत्तरकालीन रचना है। इन सभी बातों से यही सिद्ध होता है कि रामायण प्राचीन नहीं है, बल्कि मौर्योत्तर रचना है।

महाभारत मौर्योत्तर कालीन रचना है।

रामायण की तरह महाभारत भी मौर्योत्तरकालीन रचना है। जिस तरह लगभग एक दर्जन जातक कथाओं को मिलाकर रामायण की रचना ब्राह्मणों ने मौर्योत्तर काल में की थी, ठीक उसी तरह लगभग दर्जनों जातक कथाओं को मिलाकर महाभारत की कथा अत्यंत रंजक रुप से बनाई है। हिल्टबिटला का कहना है कि ब्राह्मणों की कमिटी ने मिलकर सोच–समझकर बौद्ध कथाओं को बड़ी होशियारी से इस्तेमाल कर रामायण की तरह महाभारत की रचना की है। महाभारत में मनुस्मृति के अनेक श्लोक मिलते हैं। जैसे की मनुस्मृति 9.87 cd श्लोक मिलता है। इतना ही नहीं, बल्कि महाभारत के अनुशासन पर्व में मनुस्मृति का जिक्र 'मनुनाभीहिनाम सास्त्रम' किया है। दूसरा उदाहरण, महाभारत के राजधर्म पर्व से संबंधित है (महाभारत 12.56.24) जो मनुस्मृति के 9.321 में मिलता है। इसके आधार पर यह सिद्ध होता है कि महाभारत मनुस्मृति के बाद की रचना है।

सुविश जैसवाल के अनुसार, महाभारत में यवन, पल्लव, कुषाण, हुण, शक, रोमक का जिक्र आता है, इसलिए उसकी रचनाकाल दूसरी सदी के बाद का है।[13]

राम चौधरी के अनुसार, महाभारत की रचना दूसरी से चौथी सदी के बीच हुई। सर मेजर जनरल कनिंघम महोदय के अनुसार महाभारत दूसरी सदी के बाद लिखा गया है।[15] उन्होंने इस बात का भी आधार दिया है कि बौद्ध सिवी जातक कथा को महाभारत में जैसा का वैसा लिया है। कनिंघम महोदय पुरातात्विक प्रमाण के आधार पर महाभारत की रचना काल निश्चित करते हैं। महाभारत के शूद्र पतिव्रता उपाख्यान में यह कहा गया है कि शूद्रों को ऊपरी तीनों वर्णो की सुसृशा (सेवा) करनी चाहिए। क्योंकि परिचर्या करना यही शूद्र का मुख्य कर्म है। (महाभारत 3.149.36) यही बात मनुस्मृति में भी दोहराई गई है कि तीनों वर्णों की सेवा करना ही शूद्रों का मूख्य कर्तव्य है और खास बात सेवा को ही धर्म कहा गया है। ओलीवेले ने भी इसी प्रकार से सिद्ध किया है कि महाभारत मनुस्मृति के बाद लिखा गया था और उसकी रचना काल दूसरी से तीसरी सदी है। (2005a, 25) हॉपकिन्स ने भी कहा है कि महाभारत में मनुस्मृति के अनेक श्लोक मिलते हैं। इसके आधार पर हॉपकिन्स ने यह निष्कर्ष निकाला कि मनुस्मृति और महाभारत एक ही मूलभूत वैचारिक आधार पर बनाये गए थे, जिसे उन्होंने ''Same Stock of Floating Provotbirle Wisdom'' कहा है।[16] अब यह सर्वमान्य ज्ञान उस समय कहां से आया और किस स्वरुप का था? इसपर ऑलिवेले कहते हैं कि वह ज्ञान बौद्ध विचारधारा का था, जिसके प्रभाव में आकर ब्राह्मणवादी संस्कृत ग्रंथों की रचना की गई थी। (2004b, XXV-XXVI) ओलीवेले का यह कथन अत्यंत सत्य है।

महाभारत पर जातक कथाओं का प्रभाव : –

हॉपकिन्स और ओलीवेले महाशयों का कहना अत्यंत सत्य है कि महाभारत पर बौद्ध धर्म का प्रभाव है। क्योंकि महाभारत में लगभग 31 जातक कथाएं मिलती है। वह जातक कथाएं महाभारत के किन-किन अध्यायों मे मिलती है उसका तालिका इस तरह हैः-

1) सम्मोदमना जातक (33) महाभारत 5,62.6-15
2) मिताचिनी जातक (114) महा. 12.135
3) महासुक जातक (429) महा.13.5
4) बत्तक जातक (35) महा. 1.220 (श्रृंगोपाख्यान)
5) a. बिलारवत जातक (128) महा. 15, App. I, No.9

b. धम्मधज जातक (384) महा. 2.38.28-40
6) व्याघ्रजातक (272) महा. 5.37.40-42, 29.47-48
7) स्वर्ण हसं जातक (136) महा. 2.55.12-14
महा. 7.App: I. No.8
महा. 12.29-30
8) सैसा जातक (316) महा. 12.141.-145
9) संधी भेजा जातक (349) महा. 12.112
10) राजोवाद जातक (151) महा. 5.39-58
धम्मपद- 223
महा. 3, App-I No. 21.2
11) शिलविंस जातक - (330) - महा. 12.168.46-52
महा. 12.171.61, 475. 1-8
12) कुरणी जातक (343) - महा. 12.139
(पंजाबी संस्करण)
13) विधासा जातक (393) - महा. 12.11
14) अनानुसोचिय जातक (328) - महा.12.149.4-5
15) अरग जातक (354) - महा.13.1
16) सिवी जातक (499) - महा.3.131 App. I. No. 21.5
17) सुतासोम जातक (537) - महा.1.166 ते 168
महा.14.56-58
18) नकिनिका जातक (526)
19) घत जातक (454)
20) महावेसंतर जातक - (547) - दान की कथा राजा हरिश्चंद्र कथा
21) भूरिदत्त जातक - (543) - धृतराष्ट्र का पात्र
22) विधुर जातक - (543) - विधुर का पात्र
23) कुन्तिनी जातक - (34) - कुन्तिनी पात्र लिया
24) सम्भव जातक - (515) - युधिष्ठिर पात्र लिया
25) दस ब्राह्मण जातक - (495)
26) कुणाल जातक - (536) - अर्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिष्ठिर और सहदेव

इन पाँच राजाओं का अर्थात पांडवों का जिक्र

27) भीमसेन जातक (80) भीम के अहंकार का हरण

28) कन्ह जातक (29) कृष्ण

29) महाभस्सारोह जातक (302) कृष्ण-सुदामा

30) कटहरी जातक (07) - शंकुतला, दुष्यंत

31) सुतनु जातक (398) - भीमद्वारा बकासुर की हत्या।

बौद्ध जातक कथाओं की भरमार महाभारत में दिखाई पड़ती है। जातक कथा के माध्यम से बौद्ध धम्म का बहुत बड़े पैमान पर प्रचार-प्रसार हुआ था। ब्राह्मणों ने एक कमिटी बनाकर जातक कथाओं से क्या-क्या चुराया है, यह विचार-विनिमय किया होगा। उन्होंने यह बात भी ध्यान में रखी होगी की जनमानस पर किन-किन कथा, नायकों का प्रभाव है। बस उनको उठाकर ब्राह्मणीकरण करके नये सिरे से प्रस्तुत करना होगा। महाभारत के नायक के रुप में पांच पांडव और महानायक के रुप में कृष्ण को दिखाया गया है और विरोध में कौरवों को। यहां पर दोनों को स्व-बांधव दिखाये गए हैं। बल्कि रामायण में राम (क्षत्रिय) और विरोध में भिन्न वंश के असूर (रावण) को दिखाया है। रामायण यह मूलतः बौद्धों के खिलाफ लिखा गया है। बस उसमें चलाकी यह की गई कि नायक भी बौद्धों का बोधिसत्व राम को लिया और असूर की हत्या यानी मूल बौद्धों की हत्या से ही रामराज्य स्थापित होगा, यह संदेश ब्राह्मण देने में कामयाब हुए। महाभारत में कौरव और पांडव के संघर्ष का मुख्य उद्देश्य क्या है? जैसा कि बंधुओं पर हथियार उठाना है या नहीं? इस सवाल का जवाब महाभारत में दिया गया है और यही बात गीता में भी है। महाभारत तत्वज्ञान के आधार पर रचा गया है, क्योंकि बौद्ध तत्वज्ञान को काउन्टर करना ही उसका मकसद है। सही मायने में रामायण और महाभारत के माध्यम से ही ब्राह्मणों का वर्चस्व कायम हुआ है।

स्वकीयों के खिलाफ युद्ध लड़ना चाहिए की नहीं? यह सवाल ब्राह्मणों ने क्यों खड़ा किया? या इसकी कल्पना कहाँ से आयी? सम्मोदमान जातक (33) से यह कल्पना ली गई है। यह कथा तथागत बुद्ध ने कपिलवस्तु के समीप निग्रोधाराम में रहते समय चुम्बट कलह पर कही थी। यह कथा कुणाल जातक में भी है और खास बात की कुणाल जातक (536) में ही अर्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिष्ठिर और सहदेव का जिक्र आया है। उन पांचो की पत्नी को पर्णमुख कृष्णा कहा गया है, द्रोपदी नहीं।

सम्मोदमान जातक में बुद्ध अपने रिश्तेदारों को इकठ्ठा करके उपदेश करते हैं कि ''महाराजाओं! रिश्तेदारों को एक दूसरे से लड़ना-झगड़ना उचित नहीं'' एकमत रहने से ही शत्रुओं को पराजित कर सकते हो। यदि विनाश में पड़ोगे तो महाविनाश को प्राप्त हो जाओगे। संदर्भ के साथ देखा जाए तो यह जातक कथा कपिलवस्तु से संबंधित है। बुद्ध के ऐतिहासिक जीवन में शाक्य और कोलियों के बीच में पानी को लेकर विवाद हुआ था, जिसका परिणाम सिद्धार्थ ने गृहत्याग किया था। यह घटना तब भी और आज भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसी के कारण बाद में बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त भी हुआ और वह भी निरंजना नदी के किनारे। बुद्ध की ऐतिहासिक कथा विवाद को मिटाने के लिए है। ब्राह्मणों ने महाभारत की रचना करते समय वह याद रखी होगी। साथ ही सम्मामोदन जातक को भी याद रखा होगा और उसी से जुड़ी कथा कुणाल जातक के पाँच पुत्रों को महाभारत का नायक बनाया।

इस तरह से महाभारत का कौरव-पांडव घरेलु संघर्ष वास्तव में तथागत बुद्ध के शाक्य-कोलिय घरेलु संघर्ष से संबधित है। शाक्य और कोलिय एक दूसरे को पानी की बूंद तक देना नहीं चाहते थे और रोहिणी नदी पर बुद्ध के माध्यम से अपना वर्चस्व बनाना चाहते थे। इसी प्रकार, महाभारत में कौरव-पांडव जमीन के एक इंच का टुकड़ा भी एक दूसरे को नहीं देना चाहते थे, जिससे महाभारत युद्ध हुआ। राजपुत्र गौतम के गृहत्याग के बाद भी शाक्य-कोलिय संघर्ष नहीं मिटा और बुद्धत्व प्राप्ति के बाद गौतमबुद्ध युद्ध स्थल पर जाकर शाक्य-कोलियों को आपस में लड़कर नष्ट न होने का उपदेश देते हैं और संघर्ष मिट जाता है। तथागत बुद्ध के जीवन से जुड़ी इस संघर्ष गाथा का उस समय जनमानस पर काफी प्रभाव था। इसलिए इस शाक्य-कोलिय संघर्ष को ध्यान में रखकर उसपर आधारित पहली जातक कथा सम्मादमान कथा बुद्ध के जीवनकाल में ही बनाई गई थी। यह रंजक कथा भी बुद्ध के जीवन से संबंधित होने के कारण जनमानस में काफी प्रचलित हुई थी। जनमानस का ब्राह्मणीकरण करने के लिए इस कथा का ब्राह्मणीकरण करना ब्राह्मणों को महत्त्वपूर्ण लगा। इसलिए उन्होंने घरेलू संघर्ष पर आधारित कौरव-पांडव संघर्ष से युक्त महाभारत कथा की रचना मौर्योत्तर काल में शुरु कर दी थी। बुद्ध से संबंधित कथानक का ब्राह्मणीकरण किया गया है। यह बात किसी को समझ में न आए, इसके लिए चतुर ब्राह्मणों ने कथा का कथानक शाक्य-कोलिय संघर्ष और सम्मामोदन जातक की तरह ही रखा लेकिन, इसमें पात्रों के नाम और स्थल में बदलाव कर दिया। जैसे की सम्मोदवन जातक में

स्थल कपिलवस्तु है तो महाभारत में ब्राह्मणों ने कुरुक्षेत्र स्थल लिया। कुरुक्षेत्र भी बौद्धों से संबंधित है। क्योंकि, यह बौद्ध स्थल कुरुधम्मजातक में प्रसिद्ध स्थल था, जहां पर लोग धम्म सीखने के लिए जाते थे। ब्राह्मणों ने इस धम्म स्थल को महाभारत का युद्धस्थल बना दिया। इसी तरह पांच पांडव और धृतराष्ट्र, विदूर जैसे पात्र कुणाल जातक, विदुर जातक जैसे जातक कथाओं से लिए गए हैं। इस प्रकार सारा मसाला बौद्धों का इस्तेमाल कर ब्राह्मणों ने रामायण की तरह महाभारत की भी खिचड़ी पकाई और उन बौद्ध पात्रों का रामायण-महाभारत कथाओं के माध्यम से ब्राह्मणीकरण होने के कारण उन्हें मानने वाले बौद्धों का भी अपने आप ब्राह्मणीकरण हुआ। इन कथाओं के पात्र ब्राह्मण समर्थक बनने के कारण बौद्ध राजा और प्रजा भी गुप्तकाल में तथा उसके बाद ब्राह्मण समर्थक बने, जिससे ब्राह्मण वर्चस्व मध्ययुगीन भारत में स्थापित हुआ और बौद्ध धर्म लुप्त हो गया। ब्राह्मणी वर्चस्व खत्म करने के लिए और बौद्ध धर्म को भारत में पुनः स्थापित करने के लिए हमें रामायण-महाभारत कथाओं और उनके पात्रों का बड़े पैमाने पर अब्राह्मणीकरण करना होगा। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर यह किताब लिखी गई है।

महाभारत में सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र कृष्ण है। कृष्ण पात्र घत जातक (454) से आया है। कृष्ण को कान्हा भी कहा जाता है, यह शब्द कन्ह जातक से आया है। जैसे दशरथ जातक कथा में पिता की मृत्यु के बाद बोधिसत्व राम अपने भाईयों को अनित्यता का सिद्धांत बताते हैं, वहीं बात रामायण में दिखाई पड़ती है। घत जातक में भी पुत्र मृत्यु के कारण उत्पन्न हुए शोक को दूर करने के लिए अनित्यता का महत्त्व बताने वाली घत जातक कथा बनाई गई है। घत जातक कथा के अनुसार, उत्तरपक्ष के असितांजना नगर में महाकंस राजा राज्य करता था। उसके कंस और उपकंस नामक दो पुत्र और देवगर्भा नामक एक कन्या थी। एक ज्योतिष ने भविष्यवाणी कर दी थी की इस कन्या के गर्भ से जो पुत्र होगा, वह कंस का नाश करेगा। बहन से अत्यंत लगाव होने के कारण दोनों भाईयों ने यह फैसला लिया की उसकी हत्या करने के बजाए उसे एकांतवास में रखा जाए और किसी को भी उससे न मिलने दिया जाए। उन्होंने उसे अविवाहित रखने का ठान लिया। उसके ऊपर निगरानी रखने के लिए नंदगोपा (दासी) और उसके पति अंधकवेणु की जिम्मेदारी लगाई और सख्त आदेश दिया कि कोई भी पुरुष देवगर्भा के भवन में प्रवेश न करें।

उसी समय मथुरा के उत्तर में महासागर नामक राजा राज्य करता था। उसके दो

पुत्र थे सागर और उपसागर। दोनों भाईयों में किसी कारण झगड़े हुए। उपसागर की उपकंस के साथ दोस्ती थी, इसलिए वह उपकंस के पास आया। एक दिन उसने नंदगोपा और अंधकवेणु को लालच देकर देवगर्भा को मिलने गया और उससे मोहित हुआ। इससे देवगर्भा को गर्भ रह गया। दोनों भाईयों को इसकी जानकारी मिली। मगर वह गर्भ किससे रहा? इसकी उन्हें जानकारी नहीं थी। सोच विचार कर दोनों भाईयों ने उसकी शादी उपसागर से कर दी। लेकिन, शर्त रखी कि पुत्र होने के बाद वे उसकी हत्या कर देंगे और पुत्री हुई तो नहीं मारा जाएगा। देवगर्भा को पहली लड़की हुई, जिसका नाम अंजना रखा। दोनों भाई उसके भरण पोषण के लिए मिलने गए और खुशी से उन्होंने उपसागर को गोवरर्धमान (गोवर्धन) गांव भेंट दिया। आगे चलकर देवगर्भा को दस पुत्र होते हैं, उधर नंदगोपा को भी दस कन्याएं होती हैं। उन बच्चों की जान बचाने के लिए नंदगोपा के बच्चियों के साथ अदलाबदली कर उनको छुपाकर पालन किया जाता है। उन दस बच्चों के नाम ऐसे हैं -

1. वासुदेव, 2. बलदेव, 3. चंडदेव, 4. सूर्यदेव, 5. अग्निदेव, 6. वरुणदेव, 7. अर्जुन, 8. पर्जन्य, 9. घत, 10. अंकूर

ये दसों पुत्र अंधकवेणु के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे अत्यंत हृष्टपुष्ट थे और जीने के लिए चोरी व लुटमार करते थे। कंस-उपकंस राजाओं के प्रजा की तरफ से उन बच्चों के बारे में शिकायतें आने लगी। क्योंकि प्रजा उनसे त्रस्त होने लगी थी। राजा द्वारा अंधकवेणु को धमकाने के बाद उसने सारी सच्चाई बता दी की वह दसों पुत्र देवगर्भा के पुत्र हैं। इससे वे दोनों बहुत परेशान हुए। उन्हें मरवाने के लिए कंस-उपकंस ने एक दंगल का आयोजन किया। दसों पुत्रों ने सारे पहलवानों को मार गिराया। कंस राजा ने सैनिकों को उन युवकों को पकड़वाने का आदेश दिया। तब वासुदेव ने अपना चक्र फेंककर उपकंस का सिर काटकर जमीन पर गिरा दिए। इस तरह से कंस-उपकंस का अंत हो जाता है।

कथा में आगे मोड़ आ जाता है। सारा राज्य अपने माता-पिता को सौंपकर वे दसों भाई मथुरा चले जाते है। वहां पर वे कृष्ण द्वैपायन की सलाह लेते हैं और मथुरा के अद्भुत राज्य पर वे बड़ी चालाकी से कब्जा कर लेते हैं। दसो भाई राज्य का बंटवारा कर लेते हैं, लेकिन घत पंडित अपना हिस्सा बहन को देकर व्यापार के लिए निकल जाते हैं। समय के साथ वे सारे भाई बुढ़ापे की तरफ ढल जाते हैं। फिर एक दिन वासुदेव के पुत्र का देहांत होता है, जिससे वासुदेव अत्यंत शोकमग्न हो जाते हैं।

जीवन की अनित्यता तत्व को जानने वाले धत पंडित पागल होने का नाटक करके भाई वासुदेव से आकाश के चंद्रमा में स्थित काल्पनिक (खरगोश) की मांग करते हैं। वासुदेव भाई को उपदेश देते हैं कि जो असंभव है उसकी मांग मत कर। उसके प्रत्युत्तर में बोधिसत्व घत पंडित कहते हैं कि ''भैया आप भी बुद्धिमान हो। क्या आप यह नहीं जानते की मरा हुआ पुत्र पुनः नहीं जीवित किया जा सकता? फिर आप दुखी क्यों हो रहे हो? इस तरह से अनित्यता का बोध बोधिसत्व घत वासुदेव से कराते हैं। लेकिन, कथा का दूसरा हिस्सा दो समूहों के बीच आपसी झगड़े को लेकर है।

कृष्ण या वासुदेव से संबंधित लोक कथा जातक कथा से आयी है। घत जातक कथा से ब्राह्मणों ने कृष्ण, वासुदेव को उठाया है। थोड़े-अधिक बदलाव के साथ कहानी का विस्तारीकरण किया है। महाभारत में देवगर्भा को देवकी दिखाया है और उसके पति को वासुदेव दिखाया है। गीता के अनुसार, कंस उग्रसेन का पुत्र था। देवकी कंस की चचेरी बहन दिखाई गई है। भागवत के अनुसार, देवकी विवाह के बाद जब पति संग जा रही थी, तब कंस खुद देवकी का रथ हांक रहा था। तब अचानक आकाश से आकशवाणी होती है कि- देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला आठवाँ संतान ही कंस को मार देगा। अब जातक कथा से प्रेरित होकर पात्रों और कहानी को उसी फार्म में लिया। दस पुत्र जातक में थे, भागवत में पुत्र दिखाये हैं।

घत जातक कथा जो कि वैदिक ब्राह्मणों ने चुरा लिया है कि कृष्ण द्वीपायन और कृष्ण पात्र एक ही लगता है। कृष्ण द्वीपायन की दिव्य दृष्टि की परीक्षा दसों भाईयों ने ली। लड़कों ने एक पुरुष को स्त्री की तरह अलंकृत करके तथा पेट पर तकिया बांधकर द्वीपायन के सामने पेश किया। कृष्ण द्वीपायन ने कहा कि यह व्यक्ति आज के सातवें दिन एक लकड़ी का टुकड़ा (जन्म देगा) और उसी से वासुदेव-कुल का नाश हो जाएगा। तुम लकड़ी के टुकड़े को जलाकर राख समुद्र में फेंक दो। इस पर वे दस पुत्र नाराज हो गए, उसकी मजाक उड़ाई और कृष्ण द्वीपायन को तांत की रस्सी से बांधकर गला घोटकर मार डाला। ऋषि का अंत हुआ। ऋषि की भविष्यवाणी सच साबित हुई। सातवें दिन उस पुरुष के पेट से लकड़ी का टुकडा निकला और कंस वंश का यही चमदंड था। उसे जलाकर उसकी राख समुद्र में डाली। कथा के अंत में राजा सगे संबंधियों के साथ जलक्रिडा करने जाते हैं। रेत पर छावनी डाली जाती है। आनंद-आनंद में आपस में झगड़ा होता है और वे एरंड का डंडा तोड़-तोड़ कर आपस मे लड़ने लगते हैं। हाथ में आते ही डंडा भयानक मुसल बन जाता है। देखते-देखते सभी आपस

में लड़ पड़े और सारे वंश का नाश हुआ। जातक के इस कहानी का मेल ब्राह्मणों ने भागवत से किया, जिसमें यदुवंश का नाश हो जाता है। जैसा दुर्वासा ने समुद्र तटपर श्राप दिया था। भागवत में दुर्वासण दिखाए हैं, जो जातक के कृष्ण द्विपायन की जगह पर लाये हैं। जातक कथा और भागवत कथा में खास कोई अंतर नहीं है। यक्षों का यहां पर भी जिक्र आता है। यह दिखाया है कि बचे हुए यदुवंशियों को यक्ष खा जाते हैं। यादव मूलतः नागवंशीय ही हैं। उत्तर भारत में खासकर यूपी, बिहार में एक खास कहावत है कि- ''अही, अहीर, दोनों डंसे, पग-पग डंसे अहीर।'' साँप और नाग में अहीर रुपी नाग सबसे ज्यादा खतरनाक है, ऐसा ब्राह्मण बताते हैं। यानी अहिर/यादव ब्राह्मणों के लिए खतरनाक हैं।

मूल जातक कथा में वासुदेव को बड़ा सा सुअर समझकर जरा ने बाण से बांध दिया तो वासुदेव को मृत्यु के निकट देखकर एक पुरानी बात याद आयी। कभी पंडितों ने भविष्यवाणी की थी कि जरा नाम के किसी व्यक्ति के बाण से तुम मरोगे! यही कहानी भागवत पुराण में इस तरह आयी है। मूसल के बचे हुए टुकड़ों का फलक बनाकर 'जरा' वन में घूमता है। उसने श्रीकृष्ण के लाल-लाल चरणतल को देखकर मृग समझा। निशाना पर मारा और आर-पार हो गया। होनी होकर रही, वह टल न सकी। दोनों कथाओं में जरा को क्षमा किया गया। जातक का 'जरा' क्षमा पाकर प्राण लेकर भागा और किसी जंगल में छिप गया। भागवत का जरा क्षमा पाकर सीधे स्वर्ग चला गया। वैदिक साहित्य का कृष्ण यह जातक से ही लिया गया है। वैदिक साहित्य में कृष्ण को आर्य विरोधी बताया है। उसे तो असूर ही बताया गया है। यक्षों को ही असूर कहा है। वैदिक साहित्य यक्षों अर्थात नागों के विरोध में लिखे गए हैं। मगर उसके पात्र मात्र बौद्धों के प्राचीन जातक कथाओं से उसी अर्थ को ध्यान में रखकर चुराए हैं।

यह बात तो निर्विवाद है कि कृष्ण पात्र बुद्ध को ध्यान में रखकर बनाया गया है। उसका स्रोत जातक कथा ही है। पतंजलि के ग्रंथ में वासुदेव द्वारा कंस वध का नाटक दिखाया जाता था, ऐसा जिक्र आया है। इससे पता चलता है कि घत जातक बुद्ध और कृष्ण तुलनात्मक दशरथ जातक की तरह प्राचीन है।

कृष्ण को देखकर पुरातात्विक आधार को देखते हैं। एम.ए.मोनियार विलियम्स ने भी यह बात मान्य की है कि कृष्ण बुद्ध ही है। वे कहते हैं कि ''इसका प्रमाण ही है कि ओडिसा का जगन्नाथ मंदिर बुद्ध मंदिर है।

एक समय वहां बुद्ध का विशाल मंदिर था। बुद्ध की पवित्र अस्थियाँ वहाँ पर रखी गई थी, यह माना जाता है। आगे उसे जगन्नाथ का मंदिर बोला जाने लागा और वहाँ की अस्थियाँ जगन्नाथ अर्थात कृष्ण की माने जाने लगी। इस मंदिर में पका हुआ भोजन सभी ऊंच-नीच जाति के लोक इकट्ठा आकर खाते हैं।''[18] ह्युएनत्संग जब सदी में दंतपुरी यानी जगन्नाथ पुरी में गए थे तो वहां पर बुद्ध कें दांत की धातु पर बुद्ध स्तूप देखा था। कनिंघम महोदय पुरातात्विक आधार पर सप्रमाणित किया कि कृष्ण बुद्ध से बना हुआ पात्र है। वे कहते हैं- **''पुरी का वर्तमान नगर था, जिसके समीप जगन्नाथ का प्रसिद्ध मंदिर बना हुआ है। नगर के बाहर एक दूसरे के समीप ही पांच स्तूप थे जिनके बुर्ज अधिक ऊँचे थे। मेरा अनुमान है कि इनमें एक को जगन्नाथ को समर्पित किया गया है। इस देवता उसके भाई बलदेव तथा बहन सुभद्रा की तीन आकार रहित मूर्तियाँ बौद्ध धर्म की बुद्ध, धम्म एवं संघ की लाक्षणिक प्रतिमा की साधारण नकल है, जिनमें द्वितीय मूर्ति को सदैव स्त्री-पुरुष का प्रतिनिधि स्वीकार किया है, जिसमें इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जगन्नाथ मूर्ति बौद्ध मूर्तियों पर आधारित है।''**[19] कनिंघम महोदय का यह मत अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इसपर कोई विवाद ही बचा नहीं रहता। कर्नल टॉड भी विश्वमान्य व्यक्ति हैं। उन्होंने साफ शब्दों में कहा कि बुद्ध को ही कृष्ण के रुप में दिखाया गया है। -**''बौद्ध धर्म के संबंध में दो बातों में एक निश्चित रुप में मंजूर करनी पड़ती है। इसका या तो जन्म यहीं पर हुआ था अथवा एशिया तक पहुंचने के लिए इस धर्म की जड़ आरंभ में यही पर कायम की गयी थी। इस प्रश्न पर यह विवाद पैदा होता है कि यहां पर कृष्ण की उपासना प्रायः उतने ही उत्साह और भक्ति के साथ की जाती है। लेकिन, अगर हम परंपराओं पर विचार करें तो यह मानना पड़ेगा कि यह उपासना बुद्ध की पूजा का एक अंग है। पुरातत्व के अन्वेषकों और शिल्प शास्त्रियों को अपने अनुसंधानों के लिए यहाँ पर बहुत अच्छा अवसर है। इसलिए कि उन्हें यहाँ के लेखों, लिपियों को खोलकर पढ़ना और मंदिरों की रचना करने वाले मस्तिष्कों के आधार पर अनुमान करना होगा, जिनके द्वारा उनके संस्थापकों का धर्म स्थायी हो गया है।''**[20]

महाभारत में आये हुए अन्य पात्र और कुछ प्रसिद्ध कथा कल्पनाओं के बारे में

अब देखते हैं। कुंतिनी जातक (343) से कुन्ती पात्र लिया गया है और विदुर पात्र विधुर जातक (545) से। इसके अनुसार कुरु राष्ट्र के इंद्रप्रस्थ नगर में धनंजय नामक कौरव्य राजा राज्य करता था और विदुर पंडित मेधावी धर्मानुशासक था। इस कथा में जुआ खेलने का वर्णन किया गया है और विदुर को तत्वज्ञानी (दार्शनिक) दिखाया है। इस जातक कथा की तरह महाभारत में भी विदुर को तत्त्वज्ञानी दिखाया गया है। कौरव्य शब्द से महाभारत का कौरव शब्द बनाया गया। विधुर पंडित (बोधिसत्व) की जातक कथा (545) यह ''विट्टुर-पुनकिय जातकम'' के शिर्षक से भरहुत के शिलालेख में ईसा पूर्व दूसरी सदी में ही उल्लेख आया है। इससे पता चलता है कि विदुर कितना महत्त्वपूर्ण पात्र था। विदुर कुरुराज धनंजय का एक मंत्री है और धनंजय को महाभारत के युधिष्ठिर की तरह जुआ खेलने का शौकिन दिखाया गया है। विदुर भिक्खु के रुप में थेरी गाथा में भी पाए जाते हैं और मक्झिम निकाय में भी उनका जिक्र मिलता है। धृतराष्ट्र पात्र भी कथा में धृतराष्ट्र बोधिसत्व के रुप में दिखाया गया है। संभव जातक (315) में धृतराष्ट्र कौरव्य राजा के रुप में दिखाया गया है। संभव जातक में अर्थ और धर्म पर चर्चा दिखाई देती है और महाभारत में भी धृतराष्ट्र कौरव राजा दिखाया गया है और उसमें भी अर्थ और धर्म पर विस्तृत चर्चा है। खास बात यह कि संभव जातक में संजय पात्र का भी जिक्र आया है और संभव कुमार संजय का छोटा भाई दिखाया गया है। संभव जातक में धम्म का महत्त्व बताया गया है, इसी तरह महाभारत में भी धर्म का महत्त्व बताया गया है।

संबुल जातक (519) में संबुलांश्री ने अपने शील के तेज से अपने पति का कोढ़ दूर किया था, ऐसा जिक्र आता है। महाभारत में भी पंडु राजा को कोढ़ दिखाया गया है और उसकी दूसरी पत्नी माद्री उसको सहयोग करती दिखाई गई है। शकुंतला-दुष्यंत पात्र महाभारत में प्रसिद्ध है। वह कटहरी जातक (7) कथा से लिए गए हैं। सिर्फ इसमें पात्रों के नाम बदले हुए हैं। भीम द्वारा बकासुर की हत्या, यह कल्पना सुतनु जातक (398) से ली गई है। इस जातक कथा में सुतनु यक्ष को धम्मवान बना देता है, लेकिन भीम बकासुर को मार देता है, यही बदला है। घत जातक का एक पात्र कृष्ण द्वैवपायन को ही महाभारत में व्यास के रुप में दिखाया गया है। कृष्ण दैव्यपायन धत जातक का प्रमुख मार्गदर्शक किरदार है। कृष्ण का ब्राह्मणीकरण करने के लिए या कृष्ण बौद्धों का प्रतीत न हो इसके लिए कृष्ण के साथ सुदामा नामक ब्राह्मण का पात्र महाभारत रचयिताओं ने जोड़ दिया है। मूलतः महाअस्सारोह जातक (302) में दिखाया गया है

कि बोधिसत्व राजा धर्मपूर्वक व न्यायपूर्वक राज्य करता था और धम्म व शील का पालनकर्ता है। प्रत्यंत देश में विद्रोह को शांत करने के लिए बोधिसत्व राजा जाते है। वहां पर महाश्वारोह नामक एक व्यक्ति राजा को अपने घर में बुलाकर उनका आतिथ्य (स्वागत) करता है। तीन चार दिन साथ रहने के बाद उन दोनों की मित्रता हो जाती है। राजा उसके अच्छे व्यवहार से प्रभावित होते हैं। राजधानी लौटने पर राजा को उसकी याद आती है और राजा उसको बुलावा भेजते हैं। उसके आते ही, राजा उसका हाथ पकड़कर और गले लगाकर उसका स्वागत करते हैं। उसे छत्र के निचे बिठाते हैं। अपनी पट्टरानी को बुलाकर राजा उसके पैर धुलवाता है और रानी सुगंधित तेल से उसकी मालिश भी करती है। राजा को उसके घर में खाए अन्न हमेशा याद आती रहती थी। इसलिए, राजा उससे पूछते हैं की खाने के लिए क्या लाए हो? उसने थैली में से पुए (पोहे) निकालकर राजा को देकर उसका आदर करता है। राजा कहते हैं कि ''मेरे मित्र का लाया हुआ खाओ'' यह कहकर राजा ने रानी और अमात्यों को वे पोहे दिए और स्वयं भी बडे चांव से खाए। इस कथा में राजा ने काशी के बने उच्च वस्त्र उतारकर उस गरीब मित्र के कपड़े पहने और उसे उच्च अलंकरण से युक्त काशी के वस्त्र पहनाए और मित्रता की याद में उसे पराजित होने के बाद उस व्यक्ति के घर में राजा सुरक्षित छिप सकता था, इसकी याद में राजा ने यह कार्य किया था। अब इस जातक कथा का मेल बिठाकर बुद्ध कहते हैं कि उस समय प्रत्यंतवासी गरीब व्यक्ति आनंद था और वाराणसी का राजा मैं खुद था। अब इस सुप्रसिद्ध कथा का ब्राह्मणीकरण महाभारत में सुनियोजित तरीके से किया गया है। महाभारत में कथा का आशय वहीं रखा, केवल पात्रों के नाम बदले। बुद्ध की जगह पर कृष्ण को रखा और आनंद की जगह पर ब्राह्मण सुदामा को दिखाया। इस प्रकार के ब्राह्मणीकरण के माध्यम से ब्राह्मणों ने जातक कथा की मूल भावना का विकृतीकरण किया और ब्राह्मणों का वर्चस्व राजा और समाज पर थोप दिया।

दस ब्राह्मण जातक (495) कथाओं में इंद्रप्रस्थ नगरी का राजा युधिष्ठिर को दिखाया गया है। इस जातक कथा में युधिष्ठिर को धम्मराज कहा है तो महाभारत में भी युधिष्ठिर को धर्मराज कहा गया है, यह कितनी साम्यता है। दस ब्राह्मण जातक के माध्यम से दान व पंचशील का महत्त्व बताया गया है। राजा युधिष्ठिर का विदुर आमात्य दिखाया गया है जो उसे धर्म और अर्थ पर सलाह देता है। राजा युधिष्ठिर पंचशील का पालनकर्ता है। उसे संपूर्ण जम्बूद्विप में सर्वश्रेष्ठ दानी बताया गया है। इस

जातक कथा में 10 प्रकार के अयोग्य ब्राह्मण बताए गये हैं। इस कथा में विदुर ने ब्राह्मणों के पाखंड पर जबरदस्त हमला किया है। विदुर ने उत्तर हिमालय में नंदमूलक पर्वत पर 500 प्रत्येक बुद्ध रहते हैं, ऐसा जिक्र इस जातक में किया गया है और विदुर को बुद्धांकूर भी कहा गया है। इस कथा से यह स्पष्ट होता है कि हिमालय बौद्धों का प्राचीनकाल में महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था, जहाँ राजा लोग (क्षत्रिय) धम्म का अनुसरण करने के लिए हिमालय पर जाते थे। इसलिए, महाभारत युद्ध जीतने के बाद राजा युधिष्ठिर को भी अपने चार भाईयों के साथ धम्म आचरण करने के लिए हिमालय पर जाते हुए महाभारत के अंत में दिखाया गया है। इस जातक कथा में आनंद को राजा युधिष्ठिर के रुप में और बुद्ध को बोधिसत्व विदुर के रुप में दिखाया गया है।

जातकों के युधिष्ठिर और विदुर का धर्म बौद्ध धर्म है। कुरुधम्मजातक (276) में कौरवों का धर्म भी बौद्ध धर्म ही दिखाया है। कौरव पंचशील का पालन करने वाले बताए गये हैं। इस कथा में बुद्ध शासन की महत्ता बताई गई है। कुरु राजा धनंजय को बोधिसत्व दिखाया है और कलिंग नरेश के तौर पर उसकी महत्ता दिखाई है। अलग–अलग जातक कथाओं के महाभारत में आए हुए सभी पात्र बौद्ध हैं। ब्राह्मणों ने महाभारत लिखते वक्त इन बौद्ध पात्रों को एक दूसरे के विरोध में खड़ा किया और अंत में उनके बीच आपसी झगड़ा लगाकर उनको खत्म किया। महाभारत के अंत में कृष्ण भी तीर के आघात से मरते हैं। यादव भी आपसी संघर्ष (यादवी) में मरते हैं और कौरव–पांडव भी घनघोर युद्ध कर खत्म हो जाते हैं। बचे हुए पांच पांडव द्रोपदी के साथ हिमालय पर जाकर आत्महत्या करते हैं। फिर आखिर में बचता कौन है? तो अंत में न्याय और उसके ब्राह्मण वृंद बचते हैं। बौद्ध क्षत्रियों को आपस में लड़ाकर ब्राह्मणों ने उन्हें खत्म किया और उनके धम्म राज्य को ब्राह्मण राज्य में परिवर्तित किया। यही बोध महाभारत देता है। बौद्ध राजाओं का 21 बार संहार किया, ऐसी मिथ्या कथा बनाकर बौद्ध राजाओं का बाद में मनोबल गिराया। अर्थात, परशुराम कथा बौद्ध क्षत्रियों का अपमान करने के लिए ब्राह्मणों ने बताई, जो मनगढ़त कथा है। इस कथा की वजह से बाद में क्षत्रिय खुद को ब्राह्मणों के अनौरस वंशज समझने लगे और ब्राह्मण गोत्र अपने साथ लगाने लगे। इसलिए, क्षत्रियों को इस मिथ्यावाद से बाहर आकर स्वाभिमानी बौद्ध क्षत्रिय बनना जरुरी है, जिनके लिए सम्राट अशोक एक अच्छा प्रेरणा स्रोत है।

महाभारत में जो यक्ष प्रश्न के नाम पर अख्यान आया है, वह बौद्ध साहित्य की

नकल मात्र है। जैसे की संयुक्त निकाय में आलवक सुत्त (संयुक्त निकाय 10.12) है, जिसमें तथागत बुद्ध से आलवक यक्ष सवाल पूछता है और उत्तर न देने पर मारने की धमकी भी देता है। तथागत बुद्ध उस यक्ष का समाधान कर देते हैं। उसी तरह देवधर्म जातक (6) में भी यक्ष बोधिसत्व और उसके भाईयों को सवाल पूछता है और सही उत्तर न देने पर मारने की धमकी देता है। इन्ही बातों को ध्यान में रखकर महाभारत में यक्ष प्रश्न नामक विवरण आया है, जहां पर युद्धिष्ठिर को यक्ष प्रश्न पूछता है। अब कौन नहीं मानेगा की बौद्ध साहित्य और जातक कथा के आधार पर चोरी करके महाभारत की खिचड़ी पकाई गई है?

महावेसंतर जातक (547) के शिवि राजा की कहानी को जैसे के वैसे महाभारत में लिया गया है। दानशिलता का उत्तम उदाहरण इस कथा में वर्णित है। इस कथा में बुद्ध से जुड़े हुए ऐतिहासिक पात्र का भी जिक्र आया है। जैसे की खेमा, उचलवर्णा, पटाचारा, गोतमी, धम्मदिन्ना, महामाया और विशाखा। दान का महत्त्व बताने के लिए इस कथा का उस समय बहुत बड़े पैमाने पर प्रचार हुआ था।

महाभारत में इसी कथा को राजा हरिश्चंद्र के रुप में चित्रित किया है और जो प्रसंग व संकट वेसंतर जातक कथा में बोधिसत्व वेसंतर को झेलने पड़ते हैं, वहीं प्रसंग और संकट महाभारत में हरिश्चंद्र को झेलने पड़ते हैं। महाभारत बुद्धोत्तरकालिन होने के सैकड़ों लिखित प्रमाण हैं।

शिवि जातक (499) इस जातक कथा की सर्वश्रेष्ठ कथाओं में गिनती की जाती है। इसमे अपनी शिवि राजा जो बोधिसत्व के रुप में पैदा हुए दिखाए गए हैं, वे श्रेष्ठ दानकर्ता भी थे। शत्रु ने अंधे ब्राह्मण की शक्ल बनाकर शिवि राजा के पास एक आँखे मांगी। शिवि राजा इतना दानशूर था की एक आँख मांगने पर उसने दोनों आंखे दान में दे दी। बाद में शिवि राजा की आँखे दूबारा प्राप्त हो जाती है। शिवि राजा की आँखों को सत्य-पारमिता चक्षु कहा गया है। वैसे बौद्ध साहित्य में चक्षुदान का एक अर्थ धम्म की देशना देना है। सम्राट अशोक के शिलालेख में भी चक्षुदान का अनेक बार जिक्र है। इस तरह से इस जातक कथा की चोरी महाभारत में की गई है, लेकिन वहां शिवि राजा को आंख के बजाए मांस का दान देते हुए दिखाया गया है। जो भी हो, चोरी तो बखूबी किया और नाम भी चुरा लिया।

महाभारत में इस तरह की असंख्य जातक कथाओं की नकल की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत का मूल कथा सूत्र ही पक्षी और प्राणियों के रुप में ली

गई है। भारतीय इतिहासकारों ने बौद्ध साहित्य की चोरी करके रामायण-महाभारत की रचना की है। इस ऐतिहासिक सत्य पर क्यों चुप्पी साध रखी है? उन्होंने इस सत्य पर जो पर्दा डालकर रखा है, उसे उजागर करने का यह एक प्रामाणिक प्रयत्न इस किताब के माध्यम से किया गया है।

महाभारत के संदर्भ में अब नया शोध सामने आ गया है, जिसमें यह साफ तौर पर सिद्ध किया गया है कि महाभारत में बौद्ध तत्त्वज्ञान ही भरा पड़ा है। महाभारत में बुद्ध का 131 बार जिक्र आया है। ग्रेगवेली शोध ने 'महाभारत में बुद्ध का जिक्र' इस शोधनिबंध में पूर्णतः सिद्ध किया है कि बुद्ध को ही ध्यान में रखकर महाभारत की रचना की गई।[21] बौद्ध तत्वज्ञान को बड़ी ही होशियारी से काउन्टर किया गया है। महाभारत में बुद्ध शब्द इतनी भारी मात्रा में आने का क्या मतलब है? महाभारत बुद्धोत्तर कालीन रचना है। यह इस बात का प्रमाण ही है। ग्रेग महोदय का कहना है कि,- ''बौद्धों के साहित्य की महाभारत में पूर्णतः नकल की गई है। बुद्ध के साथ-साथ बौद्ध तत्वज्ञान को भी ब्राह्मणों ने बड़ी चलाकी से चुरा लिया। ब्राह्मणवाद जिंदा रहने की यही वजह रही है कि जो भी स्थापित महान व्यक्ति या सिद्धांत है वे उनको स्वीकार करते हैं और बाद में उसे ब्राह्मणवाद के ढांचे में ढाल देते हैं।'' इसे ही 'ॲसिमलेशन' समन्ययवाद कहा जाता है। ब्राह्मणवाद हमेशा इसी तंत्र से जिंदा रहा और ब्राह्मण विरोधी विद्रोही विचारधारा को हमेशा निगलते रहे। महाभारत में बुद्ध को पचाना ब्राह्मणों को बहुत महंगा पड़ा। महाभारत में 'बुद्ध लक्ष्मणम्' ऐसा बार-बार जिक्र आया है। इस संबंध में ग्रेग महोदय ने बहुत ही चौंकाने वाला रहस्य दुनिया के सामने लाया है। वे कहते हैं कि,-

''बुद्ध के 32 लक्षणों संबंधी का सिद्धांत उस समय हिंदू और बौद्ध इन दोनों प्रदेशों में ज्ञात होगा। इसलिए संस्कृत और पाली साहित्य में बुद्ध को विलोभनिय पुरुष दिखाने के लिए उसे 32 लक्षणों से युक्त दिखाया गया है। सुप्रसिद्ध लखणसुत्त (दीघनिकाय का 30 वाँ सुत्त) में बुद्ध के सभी 32 लक्षण बताए गए हैं जो हमें पाली और संस्कृत साहित्य में सभी तरफ जिक्र मिलता है, जो यह दर्शाता है कि बुद्ध लक्षणों की संकल्पना उस समय बड़े पैमाने पर समाज में फैली हुई थी। इसके साथ ही ईसवी सन् के आरंभ में बुद्ध मुर्तियों का निर्माण भी बड़े पैमाने पर बढ़ गया था। इसलिए उष्णीशा और लंबे कान जैसे बुद्ध लक्षणों का वर्णन हमें महाभारत में मिलता है।''[22] इसका सीधा अर्थ यह होता है कि बुद्ध की मूर्तिकला कुषाण काल में आरंभ हुई और बुद्ध के 32

लक्षणों को ध्यान में रखकर बनाई जाने लगी। उन मूर्तियों का फैलाव बड़े पैमाने पर बढ़ गया। उसके बाद ही महाभारत की रचना की गई। यानी ईसा दूसरी या तीसरी सदी में भी एडिशन का कार्य चलता रहा। ब्रिटिश काल में महाभारत की प्रमाणित कॉपी बनाने को कहा गया। जो भी हो महाभारत बुद्धोत्तर, मौर्योत्तरकालीन रचना है। प्रतिक्रांति को मान्यता देने के लिए ही रामायण, महाभारत का निर्माण किया गया।

भगवद्गीता बुद्धोत्तरकालीन रचना है।

डॉ.बाबासाहब आंबेडकर ने एक सभा में यह जाहिर किया था कि गीता धम्मपद की नकल है। ''रिवोल्यूशन एण्ड काउन्टर रिवोल्यूशन'' इस ऐतिहासिक ग्रंथ में गीता प्रतिक्रांति को मजबूत करने के लिए लिखा गया ग्रंथ है, यह प्रमाणित किया है। लेकिन, गीता पर लिखा गया पेज संपादक को अधूरा प्राप्त हुआ है। इसलिए वास्तविक बहुत महत्त्वपूर्ण बातें सामने नहीं आयी। गीता के माध्यम से युद्ध और युद्ध में की गई हत्याओं को दार्शनिक आधार पर पुष्टि की गई है। युद्ध की दार्शनिक पुष्टि का तर्क- संसार नश्वर है और मनुष्य मृत्युधर्मी है। हिंसा के लिए बौद्धों के ही अनित्यता के सिद्धांत को तोड़मरोड़कर इस्तेमाल किया गया है। गीता के द्वारा चार्तुवर्ण्य व्यवस्था को दार्शनिक पुष्टि दी गई और उसे जन्म के साथ कर्म विपाफ के द्वारा जोड़ दिया गया। गीता में कर्म, भक्ति, ज्ञान इन तीन तत्त्वों पर विभाजन किया गया है। डॉ.बाबासाहब आंबेडकर के अनुसार, गीता में पूर्णतः बौद्ध तत्त्वज्ञान भरा पड़ा है। सांख्य तत्त्वज्ञान भी बौद्धों के तत्त्वज्ञान से ही बनाया गया है। कपिल मुनि नामक व्यक्ति पैदा ही नहीं हुआ। बौद्धों के तत्त्वज्ञान को चुराने के लिए वह काल्पनिक पात्र खड़ा किया गया। यह बात अब नये शोध से ग्रेगवेली ने सप्रमाणित किया है। डॉ.बाबासाहब आंबेडकर भी यही मुद्दा उठाये थे कि गीता में बौद्धों के तत्त्वज्ञान को चुराया है। यह बात जैसे ही सामने आ जाती है वैसे ही ब्राह्मण विद्वान बड़ी चालाकी से उसका संबंध उपनिषिध से जोड़ देते हैं। गीता में निर्वाण का स्पष्टतः जिक्र आया है। साथ ही प्रज्ञा का भी जिक्र आया है। कृष्ण गीता में सच्चे भक्त के गुण इस तरह बताते हैं - 1) मैत्री (निश्चल सहानुभूति), 2) करुणा (दया), 3) मुदिता (सहानुभूतिपूर्ण आनंद) और 4) उपेक्षा (अंतबंधता) । डॉ.बाबासाहब आंबेडकर ने महापदान सुत्त और तेविज्जा सुत्त का हवाला देकर बताया है कि गीता में संपूर्ण विचारधारा बौद्ध धर्म से

ली गई है और वह शब्दशः चुराई गई है।[23] साथ यह भी प्रमाण प्रस्तुत किया है कि ''बौद्ध धर्म ने महिलाओं और शूद्रों के उद्धार का आश्वासन दिया था। इसी प्रकार कृष्ण ने भी महिलाओं और शूद्रों को उद्धार का आश्वासन दिया है। बौद्धों का कहना है कि मैं बुद्ध धम्म, संघ की शरण जाता हूँ। ठीक उसी प्रकार कृष्ण भी कहते हैं कि ''सभी धर्मों को त्याग दो और स्वयं को मुझे समर्पित कर दो।'' जितनी समानता बौद्ध धर्म और भगवद्गीता में मिलती है, उतनी अन्यत्र कही नहीं मिलती।''[24] साथ ही डॉ.बाबासाहब आंबेडकर दावे से यह कहते हैं कि ''गीता बुद्धोत्तर एवं मौर्योत्तर कालीन रचना है और गीता की रचना प्रतिक्रांति को मजबूती प्रदान करने के लिए ही की गई है।

गीता मौर्योत्तर रचना है, इसकी पृष्टि अनेक विश्वमान्य शोधकों ने भी की है। डॉ.लोरिन्ससेर कहते हैं कि गीता का निर्माण सन् 500 के आस पास हुआ है।[25] टेलबॉय व्हिलर भी माना है कि भगवद्गीता की रचना मौर्यो के बहुत शतकों बाद हुई है।[26] गार्बे के अनुसार, वर्तमान गीता का समय सन् 200 के आस-पास का है।[27] जॉन डेव्हिस के मतानुसार, वर्तमान भगवद्गीता का समय 3 तीसरी सदी के पहले नहीं हो सकता। तिलक, भांडारकर और राधाकृष्णन ने बदमाशी के साथ यह बताने की कोशिश की है कि गीता की रचना ईसा पूर्व तीसरी सदी में हुई थी। यानी मौर्य काल में हुई थी। उनका यह कहना सरासर झूठ साबित हुआ है। इन बदमाश ब्राह्मणों की झूठी और बेतूकी बातों को विश्वस्तरीय इतिहास शोधकर्ताओं ने सिरे से खारिज किया है। प्रसिद्ध इतिहास संशोधक प्रो.होल्डसमॅन ने तो महाभारत और गीता को सन् 900 के समय के ग्रंथ बताये हैं।[28] के. टी. तेलंग ने भी मान्य किया है कि भगवद्गीता महाभारत का एक हिस्सा था और उसने मि. व्हिलर के मत को मान्यता दी है।[29] व्हिलर का कहना था कि भगवद्गीता की रचना दूसरी-तीसरी सदी में हुई। दाहलमन ने तो यह कह दिया है कि महाभारत के साथ भगवद्गीता की रचना भी ब्राह्मणों के साथ एक झुंड ने मिलकर की है।[30]

बौद्ध धर्म और गीता में साम्यता :

जर्मन दार्शनिक गार्बे ने अनेक प्रमाणों के साथ यह सिद्ध किया है कि भगवद्गीता की रचना सन् 200 के बाद की गई है और उसपर पूर्णतः बौद्ध धर्म का प्रभाव है।

खास बात यह है कि भगवद्गीता के महत्त्वपूर्ण पात्र बलदेव और वासुदेव घत जातक से लिये गए है। उनका संदर्भ पाली बौद्ध निकायों में भी मिलता है। इससे घत जातक कितना प्राचीन होगा? यह हम समझ सकते हैं। बौद्ध धर्म की महत्त्वपूर्ण संकल्पना ''निर्वाण'' है और इसका जिक्र भगवद्गीता, XI में आया है। इसी तरह बौद्ध धर्म की करुणा और मैत्री महत्त्वपूर्ण संकल्पना भगवद्गीता, अध्याय 12 के श्लोक 13 में आयी है। इसी तरह राग और मत्सर (द्वेष) बौद्ध शब्दावली भगवद्गीता के अध्याय 3 के 31 वें श्लोक और अध्याय 18 के 51 वें श्लोक में आया है। धम्मपद ''रागं चा दोषं चा विप्प मुनचेथा'' यह गाथा भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 64 श्लोक में - ''राग-द्वेसाउ व्यूहास्य चा'' इस तरह आया हैं। बौद्ध पाली साहित्य के अनिकेत, निर्गम, निरसी, निरसरय, निरहर, नैष्कर्म्य, समदुःख- सुख, तुल्य-निंद्य-स्तुति, तुल्य मानापंमान यह शब्द भगवद्गीता में क्रमशः 2, 19, 2.71, 3.30, 4.2, 2.59, 3.4, 2.15, 12.19, 11.25, में आये हुए है। खास बात यह है कि ये शब्द उपनिषदों में नहीं मिलते, बल्कि पाली-बौद्ध साहित्य में ही मिलते हैं। इसी तरह सुत्त-निप्पात 44 के अमागंधा सुत्त में कोधो, मदो, धम्भो, उसूय्या, माना-तिमानो यह शब्द भगवद्गीता के 16.3, 4, 10 और 18 इन श्लोकों में क्रोध, मद, दम्भ, अतिमानिता और असूया इन संस्कृत शब्दों के रुप में जैसे के वैसे आये हैं। कुटदंत सूत्त और दीघनिकाय के 5.147 में बुद्ध को नारायण कहा है और इसी तरह भगवद्गीता 4.33 में कृष्ण को नारायण कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि बुद्ध के नारायण शब्द से ही कृष्ण को नारायण कहा है। दीघनिकाय के I.3 और मज्झिम निकाय के 125-29 और 423-24 में ''समचर्या'' शब्द आया है, जिसे भगवद्गीता 2.38 और 14.24.25 में 'समय' कहा गया है। इसी तरह बौद्ध धम्म का महत्त्वपूर्ण तत्त्वज्ञान 'मध्यम मार्ग' को भगवद्गीता 7.11, 16 और 17 में 'योु तत्त्व' के नाम से गीता में लिया है। बौद्ध धर्म में ध्यान साधना की चढ़ती निकाय के 1.37 में 'पामुज्जाम, पिती, पस्साद्धी और सुख इन ध्यान अवस्थाओं को भगवद्गीता 2.64-66 में जैसे जीवन को ''जन्म-मृत्यु-जर-व्याधी-दुःख'' ऐसा कहा है तो भगवद्गीता 1.8 में भी जीवन को ''जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधी-दुख दोषानुदर्शनम'' कहा गया है। इसके अलावा भगवद्गीता और निकायों में अनेक श्लोकों में समानता है जो नीचे इस तरह है :-

उदान - 79

''किम करिया उदापानेना आपा चे सब्बदा सियूमा''

इसी तरह भगवद्गीता 2.46 में -

''यावान अर्था उदपाने सर्वधाह सम्पलूतोदकें।''

सुत्तनिपात 113 -

''यस्सा मग्गम ना जानासी अगातस्सा गतस्सा वा, उभो अंते असमपस्साम निरथ्थम परिदेवसि।''

इसी तरह से भगवद्गीता 2.16 और 28 श्लोक-

''अव्यक्ता दिनी भूतानी : अव्यक्ता निधनानी इव तत्र का परिदेवना उभा-योर अपीदृष्टोताह।''

मज्झिम निकाय 249, 2.80 का सुत्त -

''कतंम करनियम नापरम इत्थात्तायति।'' इसके जैसा भगवद्गीता 3.17 और 6.22 का श्लोक -

''तस्य कार्यम ना विद्यते, याम लब्धवाचा परम लाभम मान्यते निधिकाम ततह।''

धम्मपद - 379 गाथा -

''अत्तना कौदया तानम''

इसकी तरह भगवद्गीता 6.5 का श्लोक-

''उद्धारेद आत्मनात्मानाम''

धम्मपद 42 और 43 की गाथा -

'दिसो दिसाम याम ताम करिरा वेरि वा पाना वेरिनाम : ना वाताम वेरि माता-पिता करीरा'

इसी तरह भगवद्गीता 6.5 और का श्लोक -

''आत्मेव हय आत्मनो बंधुरआत्मयेव रिपुर आत्मनाह।
बंधुर आत्ममानास तरच वर्तेतत्मैय वा सत्रूवातं।''

धम्मपद 12.9-130 और सुन्ननिपात 137 की गाथा -

''आत्मनाम उपमम कत्वा ना हनेय्या ना घातये''

इसकी तरह भगवद्गीता 6.32 का श्लोक है -

''आत्मौपाम्येन सर्वत्र ...

संयुत्त निकाय, I. 7 का सुत्त –

''कुम्मो व अंगानि सके कपाले''

इसकी तरह भगवद्गीता 2.58 का श्लोक है–

''यदा संहारते चायम कुर्मी अंगानि व सर्वसाह''

धम्मपद 33 की गाथा –

''फंदानम कपालम चित्तम''

इसकी तरह संयुक्तनिक 1.27 का सुत्त– ''ये केचि बुद्धम सरनाम गतासे, ना ते गभिस्सानि अपायभूमिया'' इसकी तरह ही गीता के 7.34 में कहा है– चंचलम हिमनम कृष्ण।''

''ना हि कल्याणकृत कस्चिद दुर्गतम तात गच्छति,'' और श्लोक 9.31 मे –

''ना मे भक्ताह प्रनस्थति''

संयुत्त निकाय, I.5 मे सुत्त है –

''अतिताम नानुसोचंति नप्पजप्पन्ति नागतम, अनागतप्पाजप्पाय अतितस्सानुसोचना इतना बाला सुस्सान्ति...''

इसी तरह भगवद्गीता, 2.11 में श्लोक है –

''असोच्यान अन्वासोचास त्वाम गतासुनागता–सुंरचा ना 'नुसोचांति पंडिताह'

संयुत्त निकाय, 4.71 में सुत्त है –

''फस्सेना फुत्थो ना सुखेना मज्जे दुखेन फुत्थो पि ना सम्पवेधा''

इसी की तरह भगवद्गीता, 2.56 का श्लोक है –

''दिखेस्वानुद्विग्नमानाह सुखेसु विगनस्प्रहाह''

दिघ निकाय, 2.83–89 में सुत्त है –

''या तत्था देवता आस्सुम तासम दाख्खिनामादिसे, ना पुजिता पुजयान्नि मानिना मानयांति नाम ; देवतानुकाम्पिनो पोसो सदा भद्रानि पस्सति ति''

इसकी तरह भ.गिता, 3.11 और 3.12 का श्लोक है –

''देवान भावयतानेन श्रेयाह परमवाप्स्याथा,

इस्टान भोजन हि वो देवा दास्यन्ति यज्न भविताह''

धम्मपद, 271–272 में गाया है –

''ना सिलाम्भातमत्तेना विवित्ता, सयनेना बा, फुसामि नेक्खामा सुखम्...''

इसकी तरह भगवद्गीता, 3.4 चा श्लोक है –

''ना कर्मनाम अनारम्भन नैस्त्रुम्यम पुरुसो स्नुते''

दिघ निकाय, 2.37 का सुत्त है –

''नस्सति वत भो लोको निवस्सति वत भो लोको...''

उसकी तरह भगवद्गीता, 3.24 का श्लोक है –

''उत्सिदेयुर इमे लोका...''

मज्झिम निकाय, 421 सुत्त है –

''अरन्ना गातो वा रुक्खमुला गातो वा, सुन्नगारा गातो वा, निसिदती पालकम अभुजितवा उजुमकयाम पनिधया...

इसी तरह गीता के अध्याय 10 में कहा है –

आत्मानाम रहसिस्थिह इकाकी... स्थिरमासानाम... समन काया सिरोगरिवम घरयान... संयुक्तनिकाय ४.२४ में कहा है कि,

''अपक्का ते मनुस्सेसु ये जाना परागमिनो।'' इसी तरह गीता के 7 वे अध्याय के 3 श्लोक में ''मनुस्यानम साहसरेसु कश्चिद यात्री सिद्धये।''

दीघानिकाय II. 36 में कहा है कि – ''रागारठ्ठा न दक्खिनी तमोखंदेना अऊतति।।''

उसी तरह गीता के 7.3 में श्लोक है –

''मनुष्यनाम सहश्रेसु कश्चिद यतति सिद्धये''

दिघ निकाय, 2, 36 में सुत्त है –

''रागरत्था ना दक्खिन्ति तमोखान्धेन अखुताति''

इसके जैसा भगवद्गीता 7.25 का श्लोक है –

''नहाम प्रकासह सर्वस्य योगमाया अमावृताह''

दिघ निकाय, 2.329 का सुत्त है –

''न खो राजन्न इवम परो लोको दत्थाभ्भो यथा त्वम मन्वासि मांसचख्खुना... ने दिव्वेना चक्खुना... पस्सान्ति...''

इसपर भगवद्गीता 6.8 में श्लोक है –

''न तु माम स्वचक्षुसा दिव्यम ददामि ते चक्षुह''

सुत्तनिपात, 37 में सुत्त है –

''अरोसनेय्यो सो न रोक्षेनि कंचि...''

इसपर भगवद्गीता 7.15 में श्लोक है–

''यस्मान नो द्विजने लोको लोकान नो द्विजने च
यह सुत्तनिपात, 44 में सुत्त है -
कोधो मदो धम्भो...''
इसके जैसा भगवद्गीता 14.4 और 14.18 में श्लोक है -
''दंभो दर्पो निमनस्य क्रोधाह पारुस्याम इवच''
सुत्तनिवात, 43 में सुत्त है-
''नराधर्मा येद्धा करोंति किक्विसाम...
पतन्ति सत्ता निरायाम अवामसिरा''
इसके जैसा भगवद्गीता 16.19 और 16.16 में श्लोक है -
''तन अहम द्विसतह... नराधर्मन, प्रसक्ताह कामभोगेसु पतन्ति नरकेसुचार''

इतने सारे बौद्ध सुत्तों और गाथाओं की भगवद्गीता के श्लोकों के साथ समानता देखकर यह पूर्णतः सिद्ध हो जाता है कि बौद्ध साहित्य को आधार बनाकर ही ब्राह्मणों ने भगवद्गीता का निर्माण किया है। भगवद्गीता में अर्जुन और कृष्ण का संवाद भी संयुक्त निकाय के असुरेंद्र वेपाचित्ती और सुरेंद्र सक्र के संवाद के जैसा है। असुरेंद्र वेपाचित्ती (उसे माताली भी कहा गया है।) ने शक्र के साथ जिस प्रकार का ज्ञान साझा किया है उसी तरह का ज्ञान भगवद्गीता में कृष्ण अर्जुन को देते हैं। संयुक्त निकाय में वाचस्पती सक्र को गालियाँ देता है और उसका अपमान करता है। तब माजाली शक्र से कहता है कि ऐसी किसी की गालियाँ सुनना अच्छा नही है। तब शक्र कहता है कि मूर्ख लोगों की बकवास पर ज्ञानी लोगों को ध्यान नहीं देना चाहिए। वह कहता है गुस्से को गुस्से से जवाब देना ज्ञानी लोगों को शोभा नहीं देता। क्षमा और शांति ही ज्ञानी व्यक्ति (प्रबुद्ध व्यक्ति) का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। लेकिन, अत्याधिक सहनशिलता का भी बुद्ध ने विरोध किया था। एक बार नाग राजा, बुद्ध का अनुयायी बनने पर अत्यंतिक सहनशील बना। पहले वह अत्याधिक क्रूर और आक्रामक था, जिससे सभी लोग डरते थे और उसका सम्मान करते थे। लेकिन, बुद्ध का अनुयायी बनने के बाद उसकी यह गलतफहमी बनी की अहिंसा का पालन किसी भी परिस्थिती में करना जरुरी है। उसका अहिंसक देखकर लोग उसे परेशान करने लगे, बच्चे पत्थर मारने लगे और उसकी स्थिति दयनीय बन गई। दो-तीन सालों के बाद उसी रास्ते पर गुजरते समय बुद्ध को उस नाग राजा की याद आयी और वे उसे मिलने गए। लेकिन,

उसकी दयनीय स्थिति देखकर अचंभित हो गए और उसका कारण पूछा। तब नागराजा ने कहा कि आपके अहिंसा का पालन करने की वजह से मैने विरोध करना छोड़ दिया है, जिससे कमजोर समझकर लोग मुझे मार रहे हैं। तब बुद्ध ने उसे उपदेश दिया कि किसी को बेवजह न मारने की सलाह मेरा अहिंसा देता है। लेकिन, अगर कोई बेवजह आपको परेशान करे या आपके साथ हिंसा करे तो उसको भी उसी की भाषा में जवाब देना चाहिए। बुद्ध का यह संदेश भगवद्गीता के 2.33 श्लोक के संदेश से मिलता जुलता है, जहां पर कृष्ण भी अर्जुन को यही उपदेश देते हैं। इसी तरह भगवद्गीता में भक्ति और ज्ञान को जो अत्याधिक महत्त्व दिया गया है वह भी बौद्ध धम्म से प्रेरित है।

सम्राट अशोक का धम्म और भगवद्गीता का धर्म :-

अनेक इतिहास विद्वानों ने सम्राट अशोक को दुनिया का पहला धर्मराजा कहा है, जिसने सत्य और धम्म के अनुसार अपना राज्य चलाया है। सम्राट अशोक ने अपने शिलालेखो में 111 बार धम्म शब्द का इस्तेमाल किया है। इससे पता चलता है कि वह कितना धम्मवान राजा था। सम्राट अशोक अपने युद्ध विजय के लिए इतना ख्यातनाम था कि अशोकवदन में उनके युद्ध विजय की गौरवगाथा वर्णित है। उनके कलिंग विजय के कारण ही बाद में युद्ध विजय की संकल्पना विस्तृत हुई और उसके साथ सम्राट अशोक के धम्मविजय संकल्पना जोड़ने से वह समाज में प्रस्थापित हुई। अशोक विजयादशमी को अशोक के धम्म और युद्ध विजय के रुप में देखा जाता था और जम्बूद्विप में उसे उत्सव के रुप में मनाया जाता था। भगवद्गीता में सम्राट अशोक के धम्मविजय और युद्ध विजय को एक साथ जोड़कर धर्म और अर्थ के रुप में प्रस्तुत किया है। महाभारत में भी धर्म और अर्थ तत्वज्ञान के पीछे सम्राट अशोक ही है। यह बात अब प्रमाणित हुई है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र मौर्यो के समय का नहीं है। कौटिल्य नामक कोई व्यक्ति पैदा ही नहीं हुआ! सम्राट अशोक ने आपके अभिलेखों में जो लिपि लिखी थी उसे धम्मलिपी कहा जाता था। 13 वें अभिलेख में (RE.13) सम्राट अशोक ने अपने धम्म अभियान को 'धम्मविजय' कहा था, जिसके अंतर्गत उसने बौद्ध स्थलों को यात्रा के रुप में भेट देना, 84 हजार स्तूप एवं महाविहारों की संपूर्ण जम्बूद्विप में निर्मित करना और धम्म प्रचारक देश-विदेशों में भेजना जैसे महत्त्वपूर्ण

उपक्रम शुरु किये थे। सम्राट अशोक कहते हैं कि मेरा यह धम्मानुशासनम भविष्य में भी मेरे वंशज जारी रखेंगे और उसे पतन नहीं होने दंगे। इसी तरह कृष्ण भी भगवद्गीता में कहते कि धर्म का पतन रोकने के लिए मेरे अवतार भविष्य में धर्म को बचाए रखेंगे।[34]

महाभारत की राजधर्म संकल्पना वास्तव में बौद्ध धम्म की दसराज धम्म संकल्पना से विकसित हुई है और उसके पीछे सम्राट अशोक की प्रेरणा है। कलिंग युद्ध के बाद सम्राट अशोक शोक से पीड़ित होते हैं। उसी तरह अर्जुन महाभारत युद्ध के पहले अपने परिजनों की मृत्यु होने वाली है, यह देखकर शोक से पीड़ित हो जाते हैं। सम्राट अशोक ने 13 वें अभिलेख में यह भी इशारा दिया है कि दुष्ट लोगों को दंड दिया जाएगा। अशोक से प्रेरित होकर ही भगवद्गीता 1.31cd में यह कहा गया है कि - एक आदर्श क्षत्रिय राजा को दुष्टों को दंड देना चाहिए। (धर्माद्धि युद्धात क्षेत्रोन्यत क्षत्रियस्य न विध्यते।) सम्राट अशोक ने लोगों को कहा है कि उसके धर्म और कर्म के अनुसार सभी को अपने धर्म और कर्म का पालन करना चाहिए। यह उसने कलिंग के छोटे शिलालेख में कहा है। उसी का अनुसरण करते हुए भगवद्गीता 3.21 में यह कहा गया है कि लोगों को राजा का अनुसरण करते हुए धर्म और कर्म का पालन करना चाहिए। सम्राट अशोक ने अपने नवें अभिलेख में यह कहा है कि धम्म का पालन करने से यदि इस जन्म में फल नहीं मिला तो भी अगले जन्म में उसका जरुर फायदा होगा और भविष्य में आपको सद्गति मिलेगी। अर्थात अशोक यह कहना चाहते हैं कि धम्म का कर्म करो लेकिन, फल की अपेक्षा मत करो। यही संदेश गीता में दिया है कि कर्म करो और फल की अपेक्षा मत करो। (गीता- 3.25.27) यहां सम्राट अशोक का कहना है कि स्वार्थ रहित होकर धर्म का काम करो। अशोक ने तीन ऋणों का जिक्र अपने शिलालेख 6 में किया है, जिसमें वे कहते हैं कि मैनें मातृ ऋण, गुरु ऋण और धम्म ऋण पूरा किया है। इसी को ही वर्तमान में ''Pay back to Society'' कहते हैं। इन तीन ऋणों का वर्णन मनुस्मृति, भगवद्गीता और महाभारत में बढ़चढकर किया गया है, जो यह दर्शाता है कि यह तीनों ग्रंथ सम्राट अशोक से प्रभावित हैं और वे मौर्योत्तर हैं।

बौद्ध धम्म और गीता ज्ञान और भक्ति संकल्पना -

बौद्ध धम्म में सभी बातें अनित्य समझी गई है। उसी तरह भगवद्गीता 2.14 में

कृष्ण कहते हैं कि सभी अनित्य है। इसलिए बोधिधर्म कहता है कि इन सभी परिवर्तनकारी सुख-दुःखों को छोडकर व्यक्ति को अपना मन धम्म के साथ जोडना चाहिए, जिसे ''युक्त'' कहा गया है।[36] इसी तरह कृष्ण भी अर्जुन को कहते हैं कि सभी बातें अनित्य होने के कारण तुम अपना मन धर्म के साथ जोड़ दो, इसमें जोड़ने को योग कहा गया है। अर्थात बौद्ध धम्म के युक्त से ही योग शब्द बना।[37]

भक्ति संकल्पना वेद या उपनिषदों में नहीं मिलती है। सर्व प्रथम भक्ति का उगम बौद्ध परंपरा में हुआ है। भक्ति की शुरुआत बौद्ध धम्म में सभी जीवों के प्रति करुणा के रुप में हुई। बुद्ध के महापरिनिर्वाण सुत्त में बुद्ध कहते हैं कि-

''भिक्खुओं, भविष्य में बुद्ध पैदा हो या न हो, लेकिन जगत की सभी बातें अनित्य, दुःखद और अनात्म है। इसलिए धम्म को ही आधार बनाकर अपना कार्य करो।''

यहां पर तथागत बुद्ध धम्म के अनुसार कार्य करने का निर्देश देते हैं। बुद्ध ने धम्म को सर्वाधिक महत्त्व देने के कारण बौद्धों में धम्म के प्रति आस्था और विश्वास बढ़ गया, जो अभी भक्ति में परिवर्तित हुआ और लोग धम्म की धम्मकाया के रुप में बुद्ध की पूजा करने लगे। इसी धम्मकाया बुद्ध भक्ति से प्रेरित होकर सम्राट अशोक ने बुद्ध की अस्थियों पर (शरीर धातु) संपूर्ण जम्बूद्विप में 84 हजार स्तूप बनवाये, जिसने स्तूप पूजा का महत्व बढ़ाया। इसी स्तूप पूजा से प्रेरित होकर बुद्ध धातु की पूजा भक्तिभाव से करने की ऊर्जा बौद्धो में उत्पन्न हुई, जिसने बौद्ध भक्तिवाद को जन्म दिया।[38] सामान्य लोगों के मन में बौद्ध धम्म के प्रति आस्था और श्रद्धा निर्माण करने के लिए सम्राट अशोक ने खुद धम्म यात्रा निकाली और जगह-जगह पर बुद्ध स्तूपों का निर्माण किया। बुद्ध धम्म, संघ की रथ यात्रा का आरंभ भी सम्राट अशोक ने किया था। चौथी सदी में भारत आये फाहियान ने पाटलीपुत्र में वह रथयात्रा देखी थी। यह रथयात्रा आज भी ओड़िसा, केरल में दिखाई पड़ती है। उसका स्वरुप बौद्ध ही है। एरवड थॉमस नाम के इतिहास शोधक ने यह कहा है कि सम्राट अशोक ने इस प्रकार बौद्ध धर्म में एकदम नया किस्म का भक्ति मार्ग शुरु कर दिया था, जिससे प्रेरित होकर लोग स्तूपों की भक्तिभाव से पूजा करने लगे और स्तूप पंथ (Stupa Cult) का निर्माण हुआ और इसमें बुद्ध के साथ-साथ बोधिसत्व की भी पूजा होने लगी। सम्राट अशोक ने खुद शाक्य मुनि बुद्ध के साथ अन्य 5 बुद्ध की पूजा की है, ऐसा जिक्र मिलता है। लोग बोधिसत्व की पूजा तो करने लगे, लेकिन उसमें कई अधिक बढ़कर शाक्य मूनि बुद्ध

की महाअवलौकितेश्वर के रुप में लोग पूजा करने लगे और भक्तिवाद अत्यधिक बढ गया।[39] इतना बढ़ा कि बुद्ध की भक्ति करने वाले भक्ति गीत लिखने लगे और पूजा करने लगे। पहली सदी में कवि मातृचेट ने बुद्ध पर भक्तिवादी काव्य लिखा, तो अश्वघोष ने 'बुद्धचरित्र' लिखा। कवि अश्वघोष ने बुद्धचरित्र गाकर लोगों को सुनाते थे तब लोग बुद्ध भक्ति में तल्लीन होकर बुद्ध के गृहत्याग का वर्णन सुनकर सचमूच रोते थे।

दूसरी सदी में बौद्धों में भक्तिवाद इतना बढ़ गया कि बुद्ध के लिए प्रार्थना गीत (भगवद्गीता) बनाए जाने लगे और लोग उसे गाते हुए नाचते थे। बाद में ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म का यह भक्तिवाद चुराया उसे वैष्णवाद में घुसेड़ दिया। उदाहरण के लिए बौद्धों के भक्तिवादी चर्चा गीतों को आसामी वैष्णवाद में अपना लिया। इसी तरह सहजा बौद्धों का भक्तिवाद कृष्ण भक्ति के नाम से प्रसारित की गई।[40] सातवीं से 11 वीं सदी में तांत्रिक बौद्ध धर्म में गुरु भक्ति विकसित हुई थी। 8 वीं सदी के बौद्ध शांति देव ने बोधिसत्व बनने के लिए बुद्ध भक्ति कितनी आवश्यक है, यह बताने के लिए बोधि चर्चावतार ग्रंथ लिखा था। बौद्धों में भक्तिवाद निर्माण करने के लिए अश्वघोष ने ''भक्ति उद्बोदन'' नामक ग्रंथ ही लिख दिया था। इस ग्रंथ का जिक्र Dr. Richard ने किया है। वे एक क्रिश्चन मिशनरी थे। वे चीन में रहते थे। एक बार किताब मांगी जो बौद्ध धम्म का सार अर्थ बता देगी तब उनके कन्फ्युशीयन मिशनरी मि. हुई ने उनको अश्वघोष लिखित 'भक्ति उद्बोदन' किताब भेंट दी। उसे पढ़कर डॉ.रिचार्ड के मन में बुद्ध के प्रति इतनी भक्ति और आस्था निर्माण हुई कि वह कट्टर बुद्ध भक्त बन गए।

संतों में भक्तिभावना मुख्य प्रेरणास्रोत भी बौद्धों का भक्तिवाद ही है। इस बात को खुद रविंद्रनाथ टागोर ने स्वीकार करते हुए कहा है कि ''वह बौद्ध धर्म ही था, जिसने ऊँच-नीच का भेद न मानते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए अंत्यतिक सम्मान की भावना समाज में विकसित की थी।... इस संकल्पना के कारण ही वैष्णव धर्म में अवतारवाद की संकल्पना विकसित हुई। वैष्णववाद ने बौद्धों का केवल भक्तिवाद ही नहीं चुराया, बल्कि बौद्धों की मुर्तियों को हिंदू-देवी-देवताओं के रुप में, बौद्ध-विहारों को मंदिरों और बुद्ध पद को विष्णु पद में परिवर्तित किया। इतना ही नहीं, बल्कि वैष्णवों ने बौद्धों की रथयात्रा भी चुराई।''[41]

इतना सारा बौद्ध भक्ति का विस्तार सामने आने से यह अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि दूसरी-तीसरी सदी में लिखी गई भगवद्गीता में भक्तिवाद कहा से आया है। उपरोक्त सबूतों एवं प्रमाणों से सिद्ध हुआ है कि बौद्ध धम्म में भक्ति की शुरुआत सम्राट अशोक ने की है। उन्होंने बुद्ध, धम्म और संघ में लोगों की श्रद्धा और विश्वास बढ़ाकर उनके मन में भक्तिवाद का निर्माण किया।[42] लेकिन, भक्ति के नाम पर ब्राह्मणों ने जो लूटपाट शुरु की है वैसी सम्राट अशोक प्रणित बौद्ध धम्म में नहीं थी, वह एक निरपेक्ष भक्ति थी। इसलिए गीता में उसे ''कर्म कर और फल की आशा मत कर'' इस रुप में रखा है। बौद्धों की वास्तविक भक्ति क्या थी? इसका प्रमाण 7 वीं सदी के बौद्ध भिक्खु शांतिदेव 'शिक्षा समुच्चय' में मिलता है। उन्होंने सच्च बौद्ध भक्ति (True Buddhist Devotion) के दस मार्ग बताए हैं।

1) बुद्ध की मूर्ति तैयार करना

2) जीर्ण अवस्था में पहुंचे पवित्र विहारों, स्तूपों और गुफाओ का रखरखाव और पुनर्निर्माण करना।

3) बुद्ध के विहार में सुगंधित द्रव्य दान देना।

4) बुद्ध की मूर्ति को सुगंधित पानी से धोकर स्वच्छ करना।

5) बुद्ध विहार को झाडू से साफ-सुथरा करना और ठीक से सजाना।

6) माता-पिता का व्यक्तिशः अच्छा खयाल रखना

7) भिक्खुओं धम्मगुरुओं और आचार्यो का सम्मान करना और उनकी निगा रखना।

8) श्रामणेर जीवन में अपने साथियों का व्यक्तिशः खयाल रखना।

9) निरपेक्ष भावना से धम्म कार्य करना।

10) पुण्य भावना मन में रखते हुए दान देना। यह मन में रखते हुए कि ''इस पुण्यदान की प्रक्रिया से सभी जीवों को दुःखों से मुक्ति मिले।''[43]

4 थी सदी का दिग्नाग उसके प्रमाण समुच्चय में कहता है कि ''मैं बुद्ध को प्रणाम करता हूँ, जो तर्कवादी ज्ञान का मुख्य स्रोत है। जो सभी जीवों का कल्याण करता है। (शिव) जो गुरु है, सुगत और संरक्षक है।''[44] बुद्ध भक्ति का अत्याधिक प्रमाण सद्धर्म पुण्डरिक सुत्त में दूसरी सदी में बढ़ा। जिसमें बुद्ध को विश्व का पितामह, कुशल भैसज्य गुरु (वैद्य) और धम्मराजा कहा है। सद्धर्म पुण्डरिक में यह बताया गया है कि बुद्ध कभी शांत नहीं बैठते, बल्कि हमेशा कार्यरत रहते हैं और विश्व को पतित

अवस्था से ऊपर उठाने के लिए बार-बार अवतार लेते हैं और अलग-अलग तरिके से धम्म को दुनिया के सामने रखते हैं।[45]

बौद्ध श्रद्धा और ब्राह्मणों की श्रद्धा में क्या अंतर है? ब्राह्मणों की श्रद्धा लोगों को मुर्ख बनाकर अपना उल्लू साधने वाली है जो तर्कहीन होकर काल्पनिक बातों को महत्त्व देती है। इसके विपरित बौद्धों की श्रद्धा तर्कवादी और मानवता स्थापित करने वाली है। बौद्धों के अभिसमय अलंकार ग्रंथ में श्रद्धा का अर्थ यह दिया गया है कि प्रज्ञा पारमिता का पालन कर अच्छा व्यक्ति बनना। खुद पर भरोसा रखना, एक निश्चयी रहना, विश्वास के साथ कार्य करना, अच्छे बुरे को नापकर अच्छा इंसान बनने की भावना मन में रखना।[46]

बौद्ध धम्म में प्रसाद मतलब मन की शुद्धता है और वह सद्धम्म पर आधारित हो तो उसे अवेत्य प्रसाद अर्थात सच्चे धम्म पर आधारित शुद्ध मन। शांती देव ने सागरमति-परिप्रच्चा सूत्र में कहा है कि बुद्ध भक्ति सबसे श्रेष्ठ है।[47] नागार्जुन ने महाप्रज्ञा पारमिता शास्त्र में यह कहा है कि अथांग समुद्र की तरह बुद्ध का धम्म विशाल है, जिसमें अंदर घुसना भी कठिन है और अंदर जाने के बाद तट पर आना भी कठिन है। इसलिए श्रद्धा और प्रज्ञा दो बातें गरुढ़ के दो पंखों की तरह है जो हमें ऊपर उठाती है।[48] वसुबंधु ने उसके त्रिमासिका और महायान सद्धर्म प्रकाश मुखशास्त्र में कुशल गुण बताये हैं। उनमें श्रद्धा पहले स्थान पर है। वे सद्गुण इस तरह है- 1) श्रद्धा, 2) लज्जा, 3) अपत्रपा, 4) अलोभ, 5) अद्वेष, 6) अमोह, 7) वीर्य, 8) प्रसब्धी, 9) अप्रमाद, 10) उपेक्षा, 11) अहिंसा। इन्ही गुणों को ध्यान में रखकर भगवद्गीता में गुण-कर्म पर आधारित वर्णाश्रम सिद्धांत निर्माण किया गया है। बौद्धों ने अच्छा सिद्धांत निर्माण किया है। सही मायने में बौद्धों के अच्छे सिद्धांतों पर हमला एवं विकृतीकरण है। श्रद्धाशील होने का मतलब शांति देव ने उसके शिक्षा समुच्चय में बताया है। वासनाओं की वजह से श्रद्धा नष्ट नहीं होती, क्योंकि उसमें स्थिरता की शक्ति (श्रद्धबल) होती है। श्रद्धा नष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें बुद्ध, धम्म और संघ के प्रति कभी नष्ट न होने वाला आत्मविश्वास होता है।[49] श्रद्धा में पूर्णज्ञान जागृत करने की क्षमता होती है और श्रद्धा ही व्यक्ति के दस दिशाओं के दस बुद्ध का दर्शन कराती है।[50] शांति देव ने शिक्षा-समुच्चय के दस धम्म सुत्र में बुद्ध धम्म और संघ के प्रति श्रद्धा और विश्वास नहीं है, उनमें बौद्ध धम्म बढ़ नहीं सकता।[51] शांति देव ने आगे अक्षयमति सूत्र में श्रद्धा का महत्त्व बताते हुए यह कहा है कि केवल श्रद्धा ही पाँच

बातों को नियंत्रित कर सकती है- श्रद्धा, विर्य (क्रियाशीलता), स्मृति एकाग्रता, समाधान (ध्यान साधना), प्रज्ञा।

महापरिनिर्वाण सूत्र में भी दस अवस्था पूर्ण करके निर्वाण प्राप्ति तक जाने के लिए बोधिसत्व को सबसे पहले बुद्ध, धम्म, संघ में श्रद्धा होना सबसे पहली शर्त बनाई गई है। सद्धर्म पुण्डरिक सूत्र में कहा गया है कि सामान्य श्रावक जनों को तथागत का ज्ञान समझ में नहीं आता है। इसलिए कम से कम धम्म के प्रति श्रद्धा और आस्था उनमें होना आवश्यक है। श्रद्धा के बिना धम्म की तरफ देखना अंधेरे में अंधेरे की तरफ देखना है।[52]

अवतंम सक सूत्र में भी कहा गया है कि बुद्ध, धम्म और संघ में श्रद्धा रखने से ''बोधिचित्त'' उत्पन्न होता है, जिससे चार प्रकार की गुणपारमिता (चार ब्रह्मविहार) प्राप्त होते हैं। बोधिसत्व मंजुश्री ने सभी जीवों को दुःखों से मुक्ति दिलाने और बुद्धत्व की ओर से जाने की प्रतिज्ञा की है। इसी तरह भगवद्गीता में कृष्ण भी कहते है कि लोगों को दुःख मुक्ति दिलाने के लिए मैं बार-बार अवतार लूंगा।

लंकावतार सूत्र में बुद्ध काया या धम्मता बुद्ध को सर्वव्यापी समझा गया है, जो सभी विश्व को व्यापता है।[53] इसी तरह का विश्व रुप कृष्ण अर्जुन को भगवद्गीता दिखाते हैं। तथागत बुद्ध को परम पुरुष या उत्तम पुरुष कहा गया है, क्योंकि उसने सभी क्लेशो को नष्ट किया है। इसलिए उसके पैर हम पहचान नहीं पाते।[54] इसी तरह महाभारत में भी कृष्ण के बारे में ऐसा ही कहा है कि वह परम पुरुष या उत्तम पुरुष है, जिसके पैर आकाश के पंक्षियों की तरह और पानी में मछली की तरह पकड़ में नहीं आते।[55] इस तरह के अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि भक्ति की शुरुआत सम्राट अशोक के ही काल में शुरु हो चुकी थी और उत्तरोत्तर बौद्ध धम्म में भक्तिवाद बढ़ते गया। बाद में चर्यागीता के रुप में संत भक्तिभाव में रुपांतरित हुआ।[56] संत शब्द भी पाली साहित्य के बोधिसत्व शब्द से बना है। बोधिसत्व शब्द बोधिसत्त और बोधिसंत ऐसा बना। भगवद्गीता में भी श्रद्धा और भक्ति से ही चुराया गया है।

भगवद्गीता बौद्ध साहित्य की नकल है।

भदंत आनंद कौशल्यायन ने सिद्ध किया है कि भगवद्गीता 'स्थितपज्ञ' संज्ञा बौद्ध धर्म के 'अर्हत' या 'निर्वाण' से मेल खाती है। उपरोक्त चर्चा में हमने उदाहरण

लिया है किस तरह बुद्ध के अनित्यता, दुःख और अनात्मवाद को भगवद्गीता में कृष्ण व्यक्त करते हैं। (भगवद्गीता–2.48, 2.65, 5.29, 6.17, 6.22–23 और 14.20) भिक्खु आनंद ने त्रिपिटक लेखन के समय धम्म का बखान करते वक्त प्रत्येक सुत्त के पहले ''इवं मय सुत्तम'' अर्थात यह सुत्त मैने बुद्ध के मुँह से सुना, ऐसी शुरुआत करते हुए प्रत्येक सुत्त बताया था। इसी तरह भगवद्गीता में भी संजय कहता है कि कृष्ण को उपदेश देते हुए ''इवं मय सुत्रम'' अर्थात मैने यह सुत्र सुने हैं। (भगवद्गीता–18.74)

बुद्ध को उसके अनुयायी बौद्ध साहित्य में ''पुरिस धम्म सारथी'' अर्थात– लोगों का रथ सारथी, संबोधित किया है। उसी तरह कृष्ण को गीता में अर्जुन का सारथी (पुरुष धर्म सारथी) कहा गया है। बौद्ध धर्म में आर्य अष्टांगिक मार्ग को ''दैवी रथ'' कहा गया है जो युद्ध में मारा के खिलाफ लड़ते वक्त विजय प्राप्त करा देता है। इस सुत्त में बुद्ध आनंद को कहते हैं कि आष्टांगिक मार्ग को धम्मयान भी कहते हैं। क्योंकि यह ऐसा वाहन अर्थात यान है जो युद्ध में मारा पर अनुपम विजय प्राप्त करवा देता है। (अनुत्तरो सघं विजय) इसी तरह भगवद्गीता 1.24 में कृष्ण के रथ को दिखाया गया है जो दुष्टों पर विजय प्राप्त करवा देता है। बुद्ध का धम्मरथ सफेद घोड़े चलाते हैं इसी तरह कृष्ण का धर्मरथ सफेद घोड़े ही चलाते हैं। (भगवद्गीता 1.14) बुद्ध के धम्मरथ को 'रथ उथ्थम' अर्थात सर्वोत्कृष्ट धम्मरथ कहा गया है। इसी तरह गीता में भी कृष्ण के धर्मरथ को ''रथोत्तम'' अर्थात सर्वोत्कृष्ठ धर्मरथ कहा गया है। बौद्ध धर्म में बुद्धं की शरण में जाना ही उत्तम शरण गमन समझा गया है। इसलिए बौद्ध अनुयायी बुद्ध, शरणम, गच्छामी कहते हैं। इसी तरह गीता में भी बार–बार बुद्धि शरण में न जाने का जिक्र आया है। भगवद्गीता 2.49, 14.2, 18.57, 18.06 में एक ही शरण श्लोक बार–बार आया है, वह है – ''बुद्धाउ शरणम अन्विच्छा'' अर्थात सभी बातों को छोड़कर मैं केवल बुद्धि में ही शरण लेता हूँ। ग्रेग वेली महोदय ने 'The Buddhist word in mahabharata' शोध निबंध में सप्रमाणित किया है कि बुद्धा, बुद्धि शब्द बुद्ध के लिए ही आया है। उन्होंने उदाहरण के लिए महाभारत 3.76, 12, 12.292.48, 12, 293.3 में जो ''बुद्धि या बुद्धिमतः'' शब्द आया है, वह बुद्ध को संबोधन के रुप में आया, यह सिद्ध किया है। इससे सिद्ध होता है कि भगवद्गीता में उपरोक्त श्लोक में बुद्धि को शरण जाना मतलब बुद्ध को ही शरण जाना है। अर्थात बुद्ध की शरण में जाओ, ऐसा खुद कृष्ण उपरोक्त श्लोक में कहते हैं।

कुरुधम्म जातक में कुरु लोग बौद्ध धम्म के कट्टर अनुयायी बताये गए हैं। इस जातक कथा में कुरुराज धनंजय इंद्रप्रस्थ का राजा है। वह धम्म के अनुसार आचरण करता है और स्वर्ण पात्रों पर पंचशील को लिखकर रखता है। कृष्ण भी गीता के प्राथमिक श्लोक में 'बुद्धाउ शरणम अविच्छे' कहने के बाद कुरुओं को बौद्ध धम्म का ज्ञान कुरुक्षेत्र में बताते हैं। पांडवों में अर्जुन जातक कथा के धनंजय की तरह राजा धनंजय कहलाता है और गीता में कृष्ण के मुँह में अर्जुन को धनंजय संबोधा गया है। इस तरह बौद्ध साहित्य और भगवद्गीता में इतनी समानता है कि भगवद्गीता वास्तव में बौद्धों की ही भगवद् गाथा है। इसका और एक प्रमाण हमारे पास उपलब्ध है – बौद्ध धर्मीय जाट सम्राट कनिष्क के राजनीतिक सलाहकार ''मातारा'' नामक बौद्ध भिक्खु थे। सन् 119 के आसपास भिक्खु सातारा सम्राट कनिष्क के सलाहाकार थे और वे नागार्जुन, अश्वघोष के समकालीन थे। उस समय बौद्ध भिक्खु राजाओं और सम्राटों के लिए राजनीतिक सलाहाकार और तत्त्वज्ञ का काम करते थे। जिससे प्रभावित होकर राजा धम्म के अनुसार अपना राज चलाते थे। जिससे राजा और प्रजा दोनो सुखी और संपन्न रहते थे। महाराष्ट्र के प्राचीन बौद्ध सम्राट गोतमी पुत्र सातकर्णी या सातवाहन को भी आदर्श राज्य कैसे चलाना चाहिए? इसके लिए भिक्खु नागार्जुन से सलाह मांगी थी और इसपर लिखित रुप से उन्हें सलाह–मशवरा दिया था। राजा और सम्राटों के राजनीतिक सलाहाकर होने की वजह से धम्म का राजनीतिक तत्वज्ञान विकसित करना भिक्खुओं के लिए जरुरी बन गया था। इस बात को ध्यान में रखकर भिक्खु मानारा ने एक राजनीतिक ग्रंथ की रचना सम्राट कनिष्क के लिए की थी। उसकी इस अभिनव रचना को दूसरी सदी के भिक्खु आर्यदेव ने अपने लेखन में – ''The Doctrine of Matara'' के नाम से अपना लेखन संग्रह सुरक्षित रखा है। खास बात यह है कि भिक्खु मातारा के सभी श्लोक वर्तमान भगवद्गीता के श्लोक से मिलते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि भगवद्गीता का मूल निर्माता भिक्खु मातारा है, जिसने राजनीतिक उपदेश से भगवद्गीता का निर्माण किया था।[57] उसीका ब्राह्मणीकरण करके ब्राह्मणों ने वर्तमान गीता सामने लायी है। इस गीता में ब्राह्मणों ने वर्णाश्रम धर्म और ब्राह्मणी वर्चस्व के कुछ श्लोक कृष्ण के मुँह में डाले हैं। इसके कारण हमें वर्तमान गीता ब्राह्मणवादी लगती है। लेकिन, उसका मूल स्वरुप बौद्ध ही है। कृष्ण खुद धत जातक का बोधिसत्व है। कुरुक्षेत्र बौद्धों की धम्म–भूमि है। कुरुक्षेत्र पर कृष्ण को धम्म का ज्ञान कुरुओं को अर्थात धम्म भूमि पर कौरव और पांडवों को देता है। स्पष्ट रुप

में कहें तो वर्तमान भगवद्गीता का हमें डीब्राह्मणाइजेशन करना होगा। उसमें घुसेड़े गए ब्राह्मणवादी श्लोकों को हटाकर उसका मूल बौद्ध स्वरुप दुनिया के सामने लाना होगा। इसी मूल उद्देश्य को सामने रखकर यह शोध पर लिखी गई किताब है।

●●●

संदर्भ

1. Jones 1949.293, अगन्न सुत्त, दीघनिकाय III, पृ. 80–98
2. अंगुत्तरनिकाय III. CXXX II
3. Comparative Reflections on Buddhist Political Tought Ashoka, Shambhula and the genral will by David Cummiskey, pp. 1
4. Patrick olivelle, 2005a, pp-39-40
5. डॉ.बाबासाहब आंबेडकरांच्या 19 अप्रकाशित डायऱ्या, संपादक–प्रो.विलास खरात, पु.श्री.सादर पृ.
6. The Power of words, 2005 b, pp.121-35
7. Manusmruti - 4.61, 4.199, 4.218
8. Olivelle, 2005 a pp. 25
9. Proceeding of the Epics and Puranas Section of the 15 th world sunskrit conference-
   The churnning of the epics and the puranas
   Edited by - Simon Brodbeck, Adam Bowles, Aif Hiltbeitel pp.241.
10. The Riddle of Ramayana, By-C.V.Vaidya, pp. 204
11. महाभारत – 13.47.35
12. Origin and devlopment of vaishnaivism, by- suviara jaiswal, p.9
13. उपरोक्त 74
14. Ray Chaudharm, EHVS, pp. 69
15. Ancient Buddhist Geography, By- Cunnigham, PP. 75
16. History of Sanskrit Literature, By- Hopkins pp.250
17. जातक प्रथम खंड, अनुवाद – भदंत आनंद कौशल्यायन, पृ. 272
18. एम.ए.मोनियार द्वारा लिखित बौद्ध धर्म इस ग्रंथ का मराठी अनुवाद, पृ.107, प्रकाशक– महाराष्ट्र राज्य साहित्स संस्कृति मंडलए 2017

19. कनिंघम द्वारा लिखित – प्राचीन भारत का भूगोल अर्थात बौद्ध भारत– संपादन– प्रो.विलास खरात, डॉ.प्रताप चाटसे, पृ.398
20. कर्नल टॉडकृत – राजस्थान का इतिहास, पृ.276
21. Proceeding of the epics and purans section of the 15 th world sanskrit conference - the churning of the epics and puranas. Edited by - Simon Brodbeck, Adam Bowles, AIF Hiltbeitel, pp. 240
22. उपरोक्त, पृ.245
23. Dr.Babasaheb ambedkar writing and speeches vol.3, pp.370
24. उपरोक्त, पृ.371
24. Indian Antiquary, vol. II, 1873, pp.283
25. History of India - vol. I, By- Talboys Wheelers, pp.288
26. Die Bhagavatgita, By- Garbe, pp. 64.
27. Das Mahabharata vol. I, By-Prof. Holzmann, pp.194
28. Sacred Books of the east vol. VIII, pp. 5-6
29. Das Mahabharata als epos and rechtsbuch, by- dahlmann pp.302
30. Indian Antiquary, vol. 47, pp.302
31. Early Buddhism and bashavatisita by- Kashinath v padhayay pp. 127, pub - motilal banarasi das, patana, 197,
32. संयुक्तनिकाय I, pp.221-24
33. Dharma, By- AIF Hiltbeitel, pp. 43-44
34. अशोक के अभिलेख, अनुवाद – डॉ.राजबली पांडये, पृ.58
35. शांकर भाष्य गीता – 1–10
36. Boddhidharma's "Foure, Entances" and the bhagavatgita 'An exploration of chain buddhism though viashnava hinduism by- kenneth R. Valpem oxford centre for hindu studies, pp.3
37. The Buddha, by-Trevorling pp.166
38. History of buddhist thought, by edward thoms pp.199
39. Buddhism and Bhakti, by-Dr.Rajan Barua, pp.8
40. Charya pod (Assames) By-Dr. Parikshit Sastri, pp.89.

41.Boudha dhamm dhakibad, by- ravindranath tagore, p.40
42.Bhakti in early buddhism, by- B.G. Gokhle, pp.16
43.Siksasamuccaya A Compodium of Buddhist Doctrine Complited by Santidera (Motila Banarasidas, Delhi, 1981) pp.279-80
44.Dignaga, on perception : Being the pratyaksa puriccheda of pigangas bramanasamucerry from the sanskrit foragments the Tibetian Version (Combridge mass : Harvannd Univercity press, 1988) pp.23
45.The louts sutra, Burton Watson, (Sri Satyaguru Publication, Delhi, 1999) p. 60-61
46.The Large sutra on prepect wisdom, edward conze, pans (Motilal Banarasidas, 1990) pp. 101
47. Sikasamucchya : A compodium of Buddhist doctrim Complited by- Shantideva, (Motilal Banarasidas, Delhi, 198) pp.279.
48.महाप्रज्ञा पारमिता शास्त्र, T-25, No. 1509, Fol. 63a - 1-2
49. See T. 31, No.1586, Fol. 60b 24-26
T. 31, No. 1614, Fo. 855b, 28-29
50.Siksasmucchaya : A Compodium of Buddhist Doctirim Complited by Santiduta, p. 3
51. उपरोक्त पृ.100
52.Buddhavachana and del verbum, michkel fuss, pp.350, (Netherland E.J. Brill, 1991)
53.Lankavatra Sutta, (Motilal Bansrasidas Delhi, 1973) D.J.Suzuki, P.52
54.The Concept of Buddhist Hirvana, By- Th.Stehervatsky, part-I (Motilal Banasaridas, 1999) pp.5)
55.महाभारत, शांतिपर्व- 181-127
56.जानुस्सोनी ब्राह्मण सुत्त
57. The Orisin and development of Vaishnavism, by-Suvira Jaishwal, Appendix B.

रामायण-महाभारत धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि राजनीतिक ग्रंथ हैं!

धम्मराजा बुद्ध :

इसके पहले के प्रकरणों में रामायण और महाभारत मौर्योत्तर ग्रंथ कैसे है? इसपर विस्तृत चर्चा की गई है। अब उन्हीं दो मौर्योत्तर ग्रंथों में राजनीतिक विचारधारा कहां से आ गई? क्या वह ब्राह्मणों ने अपने आप निर्माण की या उसके पीछे कुछ खास संदर्भ है? शोध करने पर पता चलता है कि रामायण-महाभारत की राजनीतिक विचारधारा के पीछे भी बौद्धों की राजनीतिक विचारधारा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो पता चलता है तथागत बुद्ध के समय ईसा पूर्व सदी में 16 महा महाजन पद थे और उनकी व्यवस्था गण व्यवस्था थी। गण व्यवस्था में सभी सदस्य समान समझे जाते थे। उनके वरिष्ठ प्रतिनिधि आपस में मिलकर सलाह मशवरा करते थे और उचित फैसला सुनाते थे। बुद्ध ने उनका जो भिक्खु संघ बनाया था, वह इसी गण व्यवस्था की पृथ्वी पर बनवाया था। इसका मतलब यह है कि बुद्ध के समय जो गण व्यवस्था थी वहां कोई राजा नहीं था, बल्कि लोक प्रतिनिधि चुने जाते थे और वे मिलकर गण व्यवस्था चलाते थे। इसका उदाहरण बौद्ध साहित्य के अगन्न सुत्त में मिलता है। इसमें यह कहा गया है कि सबसे पहले कोई राज्य व्यवस्था अस्तित्व में नहीं थी। राज्य व्यवस्था कैसे निर्माण हुई? इसका वर्णन भी बुद्ध ने अनन्न सुत्त में स्पष्ट किया है। सबसे पहले लोग सामान्य तौर-तरिकों से जीते थे, उनमें कोई भी लोभ या आकांक्षाएं नहीं थी। इसलिए जो है उसमें संतुष्टी मानते हुए लोग खुशी से जीवनयापन करते थे। लेकिन, वक्त के साथ धीरे-धीरे लोगों के मन में आकांक्षा और स्वार्थ बढ़ने लगा और वे धन संचय करने लगे। इससे असमानता उत्पन्न हुई। किसी के पास ज्यादा संचय तो किसी के पास कम संचय होने लगा। इससे समाज में असंतोष और ईर्ष्या पैदा हुई और लोग आपस में झगड़ने लगे और अराजकता का माहौल उत्पन्न हुआ। तब लोगों ने सोच-विचार कर इस अराजकता को रोकने के लिए सर्व सम्मत्ति से एक नायक चुना, जिसे ''महासम्मत'' कहा जाने लगा। महासम्मत का काम समाज में स्थिरता बनाये रखने के लिए दुष्टों को दंड देना और इससे समाज में सुव्यवस्था बनाये रखना था। इसके बदले में 'महासम्मत' को सभी लोगों के उत्पन्न का छठां हिस्सा दिया जो प्राथमिक अवस्था थी। बुद्ध का समकालीन मगधराज बिंबिसार पहले इसी तरह

महासम्मत ही थे, लेकिन उसने बड़ी सेना बनाकर खुद को राजा घोषित किया और नजदीकी अंग गणराज्य को जीत लिया। उससे प्रेरणा पाकर कौशल नरेश महाकोशल ने भी खुद को राजा घोषित किया। शाक्य, कोलिय, मल्ल जैसे छोटे-छोटे गणराज्य अपने अधीन कर लिया। इन राजाओं ने अपनी राज व्यवस्था चलाने के लिए ब्राह्मणों को मंत्री बनाकर उनके मतानुसार राज्य करने लगे। कोशल नरेश प्रसेनजीत के पाँच मुख्य ब्राह्मण महामंत्री थे, जिन्हे बौद्ध साहित्य में सहासाल ब्राह्मण कहा गया है। उनमें से जानोस्सानी, पोकर साती, चंकी, सोमदंड, अम्बठ्ठ और अस्सलायन थे। बुद्ध का इन पांचों के साथ कड़ा वैचारिक संघर्ष हुआ है। सोनदंड अपनी ब्राह्मण श्रेष्ठता दिखाने के लिए हाथ में सोने का डंडा लेकर घूमता था। इसलिए बुद्ध के सामने सोने के रथ से उतरना उसे लज्जास्पद महसूस हो रही थी। लेकिन लोगों के दबाव के कारण वह रथ से उतरा और उसने बुद्ध को झुककर प्रणाम किया। प्रसेनजीत के ब्राह्मण सभा में जमे ब्राह्मणों ने इस कृत्य के लिए उसको बहुत गालियाँ दी। (दीघनिकाय 4.26)

छंदोग्य उपनिषद 5.11.11 में भी इन पाँच महासाल ब्राह्मणों का जिक्र है, लेकिन उनका राजा अश्वपति कैकेय दिखाया है। इससे सिद्ध होता है कि उपनिषद भी बुद्ध के बाद लिखे गए हैं। अम्मठ्ठ खुद बुद्ध के पास चलकर आया और बुद्ध से विवाद करते हुए कहने लगा कि हम ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए हैं और बाकी लोग ब्रह्मा के पैर के अंगुठे से पैदा हुए हैं। तब बुद्ध उसे उपदेश देते हैं कि सभी लोगों का जन्म माँ की कोख से ही होता है। इसलिए ब्राह्मण भी अन्य लोगों की तरह सामान्य जन है। तीन बार समझाने के बाद भी अम्बठ्ठ नही सुना, तब बुद्ध के साथ यक्ष वज्रपाणी हाथ में लोहे की गदा अम्बठ्ठ के सिर पर मारते हुए उसे धमकाता है कि अगर तुमने अपना मुँह बंद नहीं किया तो तेरे सिर के मैं सात टुकड़े कर दूंगा। तब अम्बठ्ठ सहम जाता है और अपने इस व्यवहार के लिए बुद्ध से क्षमा मांगते हुए इस व्यवहार के पीछे का कारण बताता है। अम्बठ्ठ कहता है कि एक बार महास्साल पौक्करसाती का कुछ काम करने के लिए वह कपिलवस्तु गया था। लेकिन उस समय शाक्य ऊँचे-ऊँचे आसनों पर बैठकर मिष्ठान का स्वाद ले रहे थे और मुझे देखकर मेरा मजाक उड़ाकर हंस रहे थे। शाक्य तुच्छ प्रवृत्ति के लोग हैं जो ब्राह्मणों को मान-सम्मान नहीं देते। तब बुद्ध उसे समझाते हैं कि अम्बठ्ठ का ब्राह्मणी अहंकार कम नहीं होता। तब बुद्ध कहते हैं कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति वेश्या महिलाओं के गर्भ से हुई है। इसलिए उन्हें खुद को श्रेष्ठ मानने की जरुरत नहीं है।[2] अम्बठ्ठ को समझाते हुए बुद्ध कहते हैं कि, खत्तिय

(नाग क्षत्रिय) श्रेष्ठ है, क्योंकि वे धम्म के अनुसार व्यवहार करते है। ब्राह्मण सनत कुमार भी बुद्ध के इस कथन को स्वीकारते हुए कहता है कि खत्तिय ही मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि वे कुल के मूल्यों को महत्त्व देते हैं और सच्चे धम्म अनुयायी हैं। (अम्बठ्ठ सूत्त-3.1.24-28)

चांकी सुत्त में ब्राह्मण कपधिका कहता है कि मुण्डक शूद्र हैं और ब्रह्मा के पैरों से पैदा हुए है। लेकिन भवदीय गौतम उत्तम खत्तिय है वह बेवजह इन तुच्छ मुण्डकों के जाल में फंस गया है।[3]

इस तरह बुद्ध के समय में राज व्यवस्था निर्माण हो चुकी थी और राजा के आसपास ब्राह्मणों का वर्चस्व भी बढ़ चुका था। ब्राह्मण मंत्री राजाओं को गलत-सलत जानकारी देकर लोगों का शोषण करते थे और खुद मजे में रहते थे। सोन दंड जैसा ब्राह्मण मंत्री सोने के रथ में गुजरता था और हाथ में सोने की लाठी रखता था। इससे पता चलता है कि ब्राह्मण उस समय राजा के साथ मिलकर जनता का कितना शोषण करते थे। उनमें जन्म आधारित अहंकार भी बढ़ गया था और बाकी लोगों को वे तुच्छ समझते थे। राजा प्रसेनजीत ने पोकरसाती को अनेक महिलाएं और कई गावों के साथ बड़ी जमीनें भी दान में दी थी। (ब्रह्मदेयदान) लेकिन इतना करने के बावजूद भी पोकरसाती राजा प्रसेनजीत को मान-सम्मान नहीं देता था। चर्चा करते समय भी परदे के अंदर रहकर राजा से बातचीत करता था। (दीघनिकाय 3.2.6) इससे पता चलता है कि यह लोग राजाओं को भी सम्मान नहीं देते थे, सामान्य लोगों की बात करने की जरुरत ही नहीं है।

ब्राह्मणों के इस वर्चस्व के खिलाफ खत्तिय वर्ग असंतुष्ट था और उनका वर्चस्व खत्म करना चाहते थे। इसलिए राजपुत्र सिद्धार्थ ने जब ज्ञान प्राप्ति के लिए गृहत्याग का फैसला लिया तो उसके सभी परिजनों ने इस फैसले का स्वागत किया। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद जब जानस्सोनी ब्राह्मण प्रसेनजीत को बताता है कि ज्ञान प्राप्त करके राजपुत्र सिद्धार्थ अब शाक्य मुनि बुद्ध बन चुके हैं तो यह सुनते ही राजा प्रसेनजीत झट से बुद्ध से मिलने के लिए जाते हैं और उनकों प्रणाम कर उनका सत्कार करते हैं।[4]

खत्तियों को ज्ञानी लोग राजकाज चलाने के लिए लगाते हैं यह उनकी मजबूरी है। उनके इस मजबूरी का फायदा उठाकर ब्राह्मण खत्तिय राजाओं को चूना लगा रहे थे, जिससे राजा और प्रजा दोनों ब्राह्मणों के विरोध में जा रहे थे।

राजा उनके ही खत्तियों में से ज्ञानी खत्तियों की अपेक्षा कर रहे थे। इसलिए

ब्राह्मणों का वैचारिक वर्चस्व नष्ट करने के लिए बुद्ध के नेतृत्व में सभी खत्तिय ब्राह्मणों के विरोध में एकजुट होने लगे। यही कारण है कि बुद्ध को मगधराज बिंबिसार, कोशलराज, प्रसेजनजीत जैसे राजाओं ने अत्याधिक धम्म प्रसार में सहयोग किया। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने अपने राज्य में बुद्ध के धम्म को राजनीतिक मान्यता देकर राजधर्म बनाने की कोशिश की। लेकिन, ब्राह्मणों का वर्चस्व होने के कारण राजा बिंबिसार और राजा प्रसेनजीत के राज्यों को धम्मराज्य नहीं बना सके। उनका यह अधूरा कार्य सम्राट अशोक ने पूरा किया।

बुद्ध बनने के पीछे राजपुत्र गौतम और अन्य खत्तियों का उद्देश्य धम्म पर आधारित आदर्श राज्य निर्माण करना था। सिंधु सभ्यता में जिस तरह आदर्श व्यवस्था थी, उस प्रकार की आदर्श व्यवस्था राजपुत्र गौतम निर्माण करना चाहते थे। इसलिए नगरसूत्त में उन्होंने कहा है कि तक्षशिला पढ़ाई में उन्हें विकसित प्राचीन नगर और प्राचीन मार्ग दिखाई दिया और मैं उसको पुर्नजीवित करना चाहता हूँ। अर्थात, सिंधु सभ्यता की तरह धम्म पर आधारित आदर्श सभ्यता और संस्कृति का पुनर्निर्माण करना तथागत बुद्ध का मुख्य उद्देश्य था। यह उद्देश्य राजाओं के सहयोग के बगैर पूरा होने वाला नहीं था। इसलिए बुद्ध ने सबसे पहले राजाओं को अपना अनुयायी बनाया और श्रावस्ती, राजगृह जैसे राजधानी को नगर धम्म क्रांति को प्रमुख केंद्र बनाया। अगर राजा अच्छा रहेगा तो उसके मंत्री अच्छे रहेंगे। अगर मंत्री अच्छे रहेंगे तो उसकी जनता भी अच्छी रहेगी तो ही आदर्श राज्य का निर्माण होगा, ऐसी बौद्ध संकल्पना थी। राजा को धम्म राजा बनाने पर बौद्ध साहित्य में अत्याधिक जोर दिया गया है।

मज्झिम निकाय में तथागत बुद्ध को ही धम्म राजा कहा गया है, ताकि वे अन्य राजाओं के आदर्श बने।-

''सा वन्दीनम अनाधिक वरम उपागानिम।
पसादिके कुसलरथेच भिक्खवो।।
नमास्सितम समनसमागमम सिवमम।
सागरवा सिरीमतो धम्मराजिलो।।''[5]

अर्थात-''बड़े आदरभाव से मैं धम्म राजा बुद्ध को प्रणाम करने आया हूँ और झुककर मैं उनके लोगों को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने इतने त्यागी और कुशल प्रचारक तैयार किये हैं।''

राजा प्रसेनजीत उद्‌गार तथागत बुद्ध का आदर करते हुए कहते हैं। तथागत बुद्ध

कुशल धम्मराजा ही नहीं हैं, बल्कि वे एक चक्रवर्ती राजा हैं जो धम्मचक्र के माध्यम से संसार को जीत लेते हैं।[6] इसी बात को ध्यान में रखकर राजा बिंबिसार अपने पुत्र को 'धाम्मिक धम्मराजनाम' कहते हैं।[7] इसका मतलब यह है कि बुद्ध की धम्मराजा संकल्पना बुद्ध के ही जीवन में ही राजाओं ने खुद के लिए लगाना शुरु कर दी थी। धम्म राजा का कार्य क्या है? यह बताने के लिए तथागत बुद्ध सेला सुत्त में कहते हैं।

''राजाहाम अस्मि सेलाती धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेना चक्कम वत्तेमी चक्कम अप्पनीवत्तीयाम।।
सम्बुद्धो पतिजानासी धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेना चक्कम वात्तेमि इति भासासि गोतमा।।
कोनु सेनापती भोतो सावको साधुदान्वा यो।
को ते इमाम अनुवत्तेति धम्मचक्कम पवात्तिम।।
माया पवत्तीतम चक्कम धम्मचक्कम अनुत्तरम।
सारिपुत्तो अनुवत्तेती अनुजाती तथागतम।।''[8]

अर्थात- ''सेला, मैं सचमुच धम्म राजा हूँ। मैं नीति नियम का चक्र गतीमान रखता हूँ, जिसे कभी रोका नहीं जा सकता। मेरा सेनापति सारीपुत्त भी इसी तरह धम्मचक्र को हमेशा गतिमान बनाए रखता है।''

इस सुत्त का अर्थ यह है कि राजा और सेनापति को बुद्ध की तरह खुद को धम्म राजा समझकर धम्मचक्र को अपने राज्य में हमेशा गतिमान बनाये रखना चाहिए। बुद्ध को धम्म राजा इसलिए भी कहा जाता है, क्योंकि वह धम्म का हमेशा प्रचार करते रहते हैं। (अपादान 1230) इसलिए आदर्श धम्मराजा को भी अपने राज्य और राज्य के बाहर धम्म का प्रचार इसी तरह करते रहना चाहिए। तथागत बुद्ध को इसलिए भी धम्मराजा कहा जाता है, क्योंकि वह अपने राज्य और राज्य के बाहर धम्म को स्थापित करता है और धम्म के अनुसार शासन करते हैं, वह हमेशा धम्म का लोगों में प्रचार करते हैं। (धम्मेना लोकम अनुसासनो) ... अपने सत्ता शक्ति के बल पर धम्मराजा लंबे समय तक धम्म को जीवित रखता है। इसलिए तथागत को धम्मराजा कहा जाता है। इसी प्रकार का संदेश राजा मिलिंद को भिक्खु नागसेन ने दिया था, ताकि वह धम्म राजा बन सके।[9]अंगुत्तर निकाय के 'धम्म राजा सूत्त' में इसी प्रकार का संदेश राजाओं को दिया है ताकि आदर्श धम्म राजा और चक्रवर्ती सम्राट बने।[10]

इस सुत्त में एक भिक्खु बुद्ध से पूछता है, ''तथागत धम्म राजा को चलाने वाला राजा कौन है?'' इस पर बुद्ध जवाब देते हैं। ''धम्म राजा का राजा खुद धम्म ही है।''

अंगुत्तर निकाय में बुद्ध कहते हैं कि जिस तरह बुद्ध धम्म का संरक्षण करते है, उसी तरह राजा को भी धम्म का संरक्षण करना चाहिए-

''भिक्खुओं, तथागत पूर्ण ज्ञानी है, धम्मराजा है। धम्म नियमों का पालन करने वाला और सम्मान करने वाला है, जिसका ध्वज ही धम्म हो, जिसका आदर्श धम्म है। जो धम्म राज्य का चक्रवर्ती सम्राट है। वह भिक्खु संघ को अच्छी तरह से दान देता है, संरक्षित करता है और उनपर आने वाली विपदाओं का निवारण करता है। इसी तरह वह धम्म अनुयायी पुरुष और महिलाओं को भी संरक्षित करता है। इस तरह हमेशा गतिमान रहने वाले धम्मचक्र को गतिमान रखता है। गतिमान धम्मचक्र को दुनिया में कोई नहीं रोक सकता।''[11] संन्यासी, ब्राह्मण देवता, मारा या ब्रह्मा भी उसे नहीं रोक सकते। यह संदेश राजाओं के लिए दिया हुआ है, ताकि उन्होंने भिक्खु संघ और उपासक को सुरक्षित तथा सुव्यवस्था प्रदान करनी चाहिए। सम्राट अशोक ने इन्ही बुद्ध संदेशों को व्यवहार में लाकर आदर्श धम्म राज्य की स्थापना की थी।

सद्धर्म पुण्डरिक सूत्र 15.47 में बुद्ध कहते हैं कि ''मै सर्व भिषु हूँ, सभी धर्मो का शास्ता (Lord) हूँ और धम्म राजा हूँ।'' शक्र के नेतृत्व में सभी देवता बुद्ध की शरण में आते हुए कहते हैं, ''हे शाक्यमुनि, हम आपकी शरण में आ रहे हैं। क्योंकि आप विश्व (संसार) के धम्मराजा हो।''[12] उसपर ब्रह्मा भी बुद्ध से कहते हैं-

''हे धम्म राजा बुद्ध मैं आपसे धर्म के बारे में मार्गदर्शन सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर मैं धम्मचक्र को अच्छी तरीके से गतिमान कर सकूँ।'' इंद्र (शक्र) और ब्रह्म को बुद्ध के सामने सामान्य देवता के रुप को दिखाए हैं। जिससे यह पता चलता है कि उस समय बुद्ध का महत्त्व कितना बढ़ चुका था। यही कारण है कि बुद्ध को दिव्यावदन में 'देवा दी देव' (देवताओं के देवता) कहा गया है। तथागत बुद्ध धम्मराजा होने के कारण उन्हे सद्धर्म पुण्डरिक में सभी विश्व के पितामह भी कहा गया है। इसलिए सम्राट अशोक भी एक पिता की तरह अपनी प्रजा की तरफ देखते हैं। सम्राट अशोक ने अभिलेखों में अपने नाम के साथ जो पियदस्सी नाम धारण किया है वह एक धर्म राजा बुद्ध का ही एक विशेषण है। क्योंकि उसका दर्शन (धम्म) सभी जीवों के लिए प्रिय है। सद्धर्म पिछले जन्मों में धम्म राजा था, तब मैने अपनी इच्छा, आकांक्षाओं के अनुसार धम्म राज्य नहीं चलाया था, बल्कि धम्म के अनुसार अपना

राज्य चलाया था।'' इसी संदर्भ को ध्यान में रखकर महाभारत में युधिष्ठिर कहते हैं कि ''धर्म राजा को अपनी इच्छा-आकांक्षाओं के अनुसार अर्थात कर्म और अर्थ के अनुसार राज्य नहीं चलाना चाहिए, बल्कि धर्म के अनुसार राज्य चलाना चाहिए।'' (महाभारत D 12.91.3) इसी तरह महाभारत के 5.27.5 में भी संजय ने पांडवों का दूत बनकर युद्ध टालने के लिए उन्हे संदेश देते हुए आखिरी प्रयास किया और वह युद्धिष्ठिर से विनती करता है कि केवल अपने आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए धर्म को छोड़कर युद्ध के मैदान में उतरना ठीक नहीं है। साथ ही उसने यहाँ तक कह दिया कि -'जो धर्म को चूनता है वह बुद्ध बन जाता है।' महाभारत में बुद्ध का 137 बार जिक्र आया है। साथ ही धर्म धम्म से ही आया है। सद्धर्म-पुण्डरिक सूत्र के पृ.275 पर आगे बुद्ध कहते हैं कि-

''धम्मराजा मंजुश्री तीनों लोको में धम्म के अनुसार अपना राज्य चलाता है, अपने सैन्य शक्ति और शस्त्रों के बल पर वह अपना पुण्य बढ़ाता है। जब मारा उसके त्रिलोक्य धम्म राज पर आक्रमण करता है तब धम्म राजा मंजूश्री तथागत के सैन्य को साथ लेकर मारा के साथ युद्ध करता है। जब दोनों सेनाएं आपस में युद्ध करती है तब धम्म राजा मंजूश्री बोधिसत्व को हजारों सूत्रों का मार्गदर्शन करते हुए सभी वर्गो के लोगों को दुष्ट मारा के विरुद्ध युद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करता है।''

इसी वर्णन से प्रेरित होकर महाभारत में युद्ध के समय कृष्ण अर्जुन को युद्ध भूमि पर इसी तरह उपदेश करते है। यह अपने आप घटीत नहीं हुआ। बौद्धों की संकल्पना के धम्म राज्य को काउन्टर करने के लिए ही किया गया है।

बौद्ध धर्म में जो आद्यराजा (महासम्मत) बताया गया है उसे बुद्धघोष ने उसके विसुद्धीमग्ग में खेतों का अधिपति अर्थात खत्तीय कहा है।[13] खत्तीय शब्द ही आगे चलकर क्षत्रिय अर्थात लड़ाकू योद्धा बना। खत्तियों को लड़ने की प्रेरणा क्षत्रिय बनने की प्रेरणा सद्धर्म पुण्डरिक के बुद्ध उपदेश से मिलती है। दुष्ट मारा के साथ धर्मराज बुद्ध युद्ध लड़ते हैं। इसी तरह राजाओं को धम्म राजा बनकर धम्म विरोधी दुष्ट लोगों के खिलाफ यद्ध लड़ने की प्रेरणा बौद्ध साहित्य देता है। इसी से प्रेरित होकर सम्राट अशोक ने कलिंग के खिलाफ महायुद्ध किया था, क्योंकि कलिंग में ब्राह्मण छुपकर अशोक के धम्म राज्य के खिलाफ षड्यंत्र कर रहे थे। इन्ही प्रेरणाओं को ध्यान में रखकर महाभारत युद्ध में दुष्टों का संहार करने के लिए भगवद्गीता की रचना की गई है। बौद्ध साहित्य में धम्म राजा के युद्ध का वर्णन बार-बार क्यों आता है? क्योंकि

आदर्श सभ्यता स्थापित करने के लिए तथागत बुद्ध खुद अपने जीवन में बुद्ध प्राप्ति के समय दुष्ट मारा और उसके मार सेना के खिलाफ घनघोर युद्ध किया था। बुद्ध के जीवन का यह प्रसंग उनके गृहत्याग के जैसा इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि जनमानस में बुद्ध मारा संघर्ष मनपसंद तथा चर्चा का विषय बन चुका था। बौद्ध कवि उसका वर्णन अत्यंत विलोभनिय तरिके से करते थे। जनता के सामने जब यह प्रसंग प्रस्तुत करते थे तब राजा और प्रजा पर इसका गहरा असर होता था। वह अचंभित होकर प्रभावित होते थे। इसलिए आगे चलकर अनेक कवियों ने अपने-अपने तरिके से बुद्ध मारा संघर्ष के काव्य-नाटकों को अलग-अलग स्वरुपों में प्रदर्शित किया। सम्राट हर्षवर्धन खुद कवि एवं नाटककार थे। उन्होंने अपनी रचना 'नागानंद' का आरंभ ही बुद्ध मारा संघर्ष से किया है, जिसमें बुद्ध को मार तथा मार सेना के साथ युद्ध का वर्णन इन शब्दों से किया है-

''बोधि (पर्व ज्ञान) की प्राप्ति के लिए ध्यान करते हुए मुनीन्द्र (बुद्ध) जो धनुष तानकर (खड़े हुए) कामदेव के द्वारा देखे जा रहे थे, बड़े-बड़े ढोल बजाकर ''अब जीत लिया'' (और) वल्गना करने वाले कामदेव के सैनिक जिन्हें ताक रहे थे, भ्रुभग, कम्पन, जॅभाई, मुसकुराती हुई तथा आँखें मटकाती हुई अप्सराएँ जिन्हे देख रही थी, सिर झुकाकर खड़े मुनि एवं सिद्ध गण जिनका दर्शन कर रहे थे तथा आश्चर्य से रोमांचित देवराज इन्द्र देव जिनकी ओर देख रहे थे (और) जो इतनी विघ्न बाधाएँ होने पर भी (समाधि से) टस से मस नहीं हुए, आपकी रक्षा करे।''[14]

उपरोक्त नाटक में वर्णित बुद्ध मारा संघर्ष यही सिद्ध करता है कि बुद्ध काल से हर्षवर्धन के काल तक (ईसा पूर्व 6 सदी से सन् 600 तक) बुद्ध - मारा संघर्ष का जनमानस पर कितना गहरा प्रभाव था। बुद्ध मारा संघर्ष में बुद्ध अकेला मार सेना के खिलाफ युद्ध लड़कर उन्हे पराजित करते है। आगे चलकर सद्धर्म पुण्डरिक सूत्र जैसे ग्रंथों में बुद्ध के साथ बुद्ध सेना भी जोड़ी जाती है और युद्ध का रुपांतर महायुद्ध में हो जाता है। मार सेना तीरों से हमला करती है तो बुद्ध सेना भी तीरों से प्रत्युत्तर देती है। इस बुद्ध बनाम मार महायुद्ध के वर्णन से प्रभावित होकर ही रामायण तथा महाभारत में वर्णित युद्ध की कल्पना अवतरित हुई है। इधर बुद्ध मारा को पराजित करते है तो उधर राम मारावन (रावन) को पराजित करते हैं। महाभारत में पाँच पाण्डव (पाँच ध्यानी बुद्ध) कौरव सेना को पराजित करते हैं। सम्राट अशोक ने अपने 100 बुंधओं को युद्ध में पराजित कर मार डाला था। यह भी संकल्पना महाभारत में 100 कौरवों

के रुप ली गई है। इससे यही सिद्ध होता है कि बुद्ध बनाम मार संघर्ष की कल्पना ही रामायण-महाभारत के युद्ध कथाओं की जन्मदाता है!

मौर्य काल से लेकर हर्षवर्धन के काल तक बुद्ध के जीवन की दो महत्त्वपूर्ण घटनाएं जनमानस पर अत्यंत प्रभावकारी रही। वह घटनाएं हैं बुद्ध का गृहत्याग और बुद्ध के मारा के साथ संघर्ष। भारत के इतिहास में इन दो घटनाओं को युगांतकारी घटनाएं समझी गयी है। एक राजपुत्र को समाज के कल्याण के लिए गृहत्याग करना बहुत ही महानतम घटना थी। इसलिए पाली साहित्य में उसे 'महाभिणीष्क्रमण' कहा गया। इस घटना के महत्त्वपूर्ण होने की वजह से ही इसी घटना पर आधारित दशरथ जातक, वेसन्तर जातक जैसी अनेक जातक कथाएं बौद्ध साहित्य में प्रसिद्ध जातक कथाएं बनीं। किसी ना किसी कारणवश बोधिसत्व गृहत्याग करते हैं। यह इन कथाओं का मुख्य आशय है। इस आशय को ध्यान में रखकर ही मौर्योत्तरकाल में ब्राह्मणों ने रामायण और महाभारत जैसे काव्यों में भी गृहत्याग के आशय को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया है। क्योंकि जनमानस बुद्ध एवं बोधिसत्व के गृहत्याग को आदर्श मानते थे। रामायण में राम गृहत्याग करते हुए जातको में ऐसा दिखाया है कि उस समय राजा रानियाँ और सभी प्रजा बोधिसत्व राम के पीछे वन तक उन्हें छोड़ने रोते-बिलखाते हुए आते हैं और जब तक राम दृष्टि से ओझल नहीं होते तब तक घर वापस नहीं जाते। वेसन्तर जातक में तो बोधिसतव वेसन्तर के गृहत्याग का वर्णन अत्यंत करुणामय शब्दों में किया गया है। इसी आशय को ध्यान में रखकर रामायण में राजा के गृहत्याग का वर्णन अत्यंत करुणामय शब्दों में किया गया है। यही वर्णन महाभारत में पांडवों के गृहत्याग के समय आया है और इसी प्रकार का वर्णन राजा हरिश्चंद्र के गृहत्याग के समय आया है। मतलब आशय सभी जगह पर एक ही है और बुद्ध के गृहत्याग की महानतम घटना को ध्यान में रखकर जातक कथाओं और उसके बाद लिखे रामायण-महाभारत जैसी कथाओं में दोहराया गया है।

इसी तरह बुद्ध के जीवन की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना है। ''बुद्धत्व प्राप्ति'' जिसमें बुद्ध का मारा के साथ घनघोर युद्ध होता है। यह घटना भी जनमानस में छाई हुई थी। अनेक जातक कथाओं में देवदत्त को मारा के रुप में दिखाया गया है। बुद्ध का मार विजय विश्वविख्यात जयमंगल अट्ठगाथा आशय में ही दो गाथाएं हैं। मार विजय बौद्ध साहित्य में अत्यंत प्रसिद्ध और भावनात्मक तरिके से प्रस्तुत किया है। इस मार विजय में कृष्ण वासुदेव की कंस पर विजय विलोभनीय तरिके से दिखाई गई है। सम्राट

अशोक कलिंग विजय को भी बुद्ध के मार विजय की तरह ही बौद्ध साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। क्योंकि, जिस तरह मार विजय के बाद तथागत बुद्ध अपना ''धम्म विजय'' अभियान शुरु कर देते हैं, उसी तरह सम्राट अशोक भी कलिंग विजय के बाद अपना धम्म विजय अभियान शुरु कर देते हैं। इससे हम समझ सकते है कि बुद्ध के मार विजय को राजाओं और प्रजा के जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान था। इतना ही नहीं, बल्कि सम्राट हर्षवर्धन ने तो अपने नागानंद नाटक में बुद्ध के मार विजय प्रसंग से शुरुआत की है। इस तरह हम देखते हैं कि गृहत्याग की तरह बुद्ध से जुड़ी युद्ध परिकल्पना का आशय भी जनमानस में अत्यंत प्रचलित हो चुका था। इसलिए इस आशय तथा जनमानस की भावनाओं को ध्यान में रखकर रामायण और महाभारत के रचयिताओं ने भी युद्ध को प्राथमिकता दी है। सद्धर्म पुण्डरिक सूत्र में बुद्ध बनाम मार संघर्ष से प्रेरित होकर बुद्ध सेना बनाम मार सेना अत्यंत विलोभनीय वर्णन प्रस्तुत किया गया। इसी तर्ज पर रामायण में भी वानर सेना बनाम रावण सेना युद्ध का विलोभनीय वर्णन आया है। दूसरी तरफ महाभारत में भी पांडव सेना बनाम कौरव सेना युद्ध का विलोभनीय वर्णन आता है। पुरातात्विक शोध में भी बुद्धगया में बुद्ध की ऐसी प्रतिमा सामने आयी है, जिसमें सात घोड़ों के रथ पर बुद्ध सवार हैं। उसी तरह का चित्रण महाभारत में कृष्ण का किया गया है। इस तरह बौद्ध साहित्य के प्रभाव में आकर रामायण, महाभारत, भगवद्गीता जैसे राजनीतिक ग्रंथों की रचना मौर्योत्तर काल में ब्राह्मणों ने की है।

धम्म राजा अशोक

धम्म राजा बुद्ध की संकल्पनाा बौद्ध साहित्य में इसलिए ली गई थी, ताकि भविष्य में आने वाले राजा उससे प्रेरित होकर खुद को धम्म राजा घोषित करें और एक आदर्श धम्म राज्य का निर्माण करें। पिछले वर्णित सूत्तों में धम्म राजा बुद्ध इसी उद्देश्य से आदर्श धम्म राजा का उदाहरण देकर भिक्खुओं को बताते है कि आदर्श धम्म राज्य बनाने के लिए उस राजा को कैसा बर्ताव करना चाहिए। इस प्रकार का वर्णन जातक कथाओं में भी है।

राजोवाद जातक (334 3 में अच्छा धम्म राजा और बुरा अधर्मी राजा का वर्णन है। राजा अगर धम्म के अनुसार राज्य चलाएगा तो उसके राज्य में समय पर बारिश

होगी, धन–धान्य विपुल (अधिक) मात्रा में होंगे। सभी तरफ खुशहाली होगी। किसी को कोई कमी महसूस नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का सम्मान करेगा और इस तरह गृहराज्य सुखी समाधानी और समृद्ध बनेगा। लेकिन राजा अगर अधर्मी होगा तो सभी बातें इसके विपरित होगी। सभी तरफ अराजकता, असंतोष बढ़ेगा और राज्य का पतन होगा। भरु जातक (213) में भरु राजा ऋषियों (भिक्खुओं) में भेद करता है और अपने राष्ट्र सहित खुद का विनाश करता है। इसलिए पंडित लोग पक्षपात की प्रशंसा नही करते। द्वेषरहित चित्त से सच्ची बात कह देते हैं। यानी राजा को कैसे आचरण करना चाहिए इसमें इसका बोध है। नन्द जातक (39), लोसक जातक (41), दुम्मेध जातक (50), कुरुधम्म जातक (276), अवारिय जातक (376), सूची जातक (387), सरभमिग जातक (483), साधीन जातक (498), महाबोधि जातक (528) इन जातको में आदर्श धम्म राजा कैसा होना चाहिए? इसके बारे में बताया गया है। इतनी सारी जातक कथाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धम्म राजा की संकल्पना सम्राट अशोक के पहले बड़े पैमाने पर विकसित हो चुकी थी। स्वंय सम्राट अशोक आदर्श धम्म राज्य की धारणा लोगों में हो इसलिए ढेर सारी जातक कथाओं को भव्य स्तूपों के सामने शिल्पांकित किया था।

मंजुश्री मूलकल्प में यह कहा गया है कि राजा को खुद को मंजुश्री बुद्ध का अवतार समझकर राज्य करना चाहिए और मंजुश्री जिस तरह अपने ज्ञान की तलवार से अंधकार के मारा को चिरता है, उसी तरह चक्रवर्ती धम्म राजा को दुष्टों का संहार कर धम्म अनुयाईयों को संरक्षित करना चाहिए।[15] बौद्ध धर्म की राजनीतिक विचारधारा के अनुसार दो चक्र अविरत घुमते हैं। एक धम्मचक्र और दूसरा राजा को धम्मचक्र के अनुसार चलाना चाहिए। जातक कथाओं में धम्म राजा को इन दोनों चक्रों को चलाते हुए दिखाया गया है। वह बुद्ध की तरह गृहत्याग की भावना मन में रखते हुए बोधिसतव है और उसके साथ ही, धम्मचक्र को बुद्ध की तरह गतिमान करने वाला आदर्श राजा भी है। इस तरह बौद्ध राजा राजमहर्षि है। वह कोई व्यक्तिगत आशा–आकांक्षाएं न रखते हुए सभी के कल्याण के लिए अपना राजकाज चलता है।[16] यह राजनीतिक तत्व शाक्य मुनि बुद्ध के जीवन को ध्यान में रखकर ही बनाए गए थे और उसके अनुसार सम्राट अशोक, सम्राट राजा कनिष्क, सम्राट हर्षवर्धन जैसे अनेक राजाओं ने कार्य किया है।[17]

बौद्ध राजनीति में राजनीतिक संरचना त्रिस्तरित है। इस संरचना में सबसे ऊपर बुद्ध

के निर्देश में उसके नीचे काम करता हुआ राजा और राजा के निर्देश में काम करते हुए भिक्खु गण और गृहस्थी जन इस व्यवस्था में राजा से लेकर नीचले तक सभी लोगों के लिए बुद्ध ही आदर्श हैं। बुद्ध के अनुसार धम्म शासन चलाने की जिम्मेदारी राजा की है। लेकिन वह अकेला राजकाज नहीं चला सकता। इसलिए उसने भिक्खु संघ को राज दरबार में साथ लेकर उनके सलाह-मश्वरों से धम्म राज्य चलाना चाहिए। भिक्खु संघ और राजा इन दोनों को मिलकर गृहस्थी प्रजा को धम्म से नियंत्रित करना चाहिए। सज्जनों को गौरवान्वित करना चाहिए और दुष्टों को दंड देना चाहिए। इस व्यवस्था में भिक्खु संघ की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भिक्खुओं को राजा और प्रजा दोनों के संपर्क मे हमेशा से रहना चाहिए और उनके बीच जोड़ने वाली कड़ी के रुप में काम करना चाहिए। अगर जनता धम्माचरण न करती हो तो भिक्खुओं को उन्हें धम्म का मार्गदर्शन करना चाहिए और धम्म विरोधी दुष्टों की जानकारी राजा को देनी चाहिए। इसी तरह भिक्खु संघ को दिन-प्रतिदिन राजा और उसके परिवार को भी धम्म का मार्गदर्शन करते रहना चाहिए। इसमें प्रजा का कर्तव्य यह है कि उन्हें धम्म के अनुसार आचरण करते हुए भिक्खु संघ को मान-सम्मान और दान देना चाहिए। बौद्ध भिक्खुओं की इस महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण अंगुत्तर निकाय में उन्हें राजा का सैनिक कहा गया है।[18] अगर राजा दुष्ट होकर धम्म विरोधी कार्य करता हो तो भिक्खु संघ और जनता ने उसको राजगद्दी से हटाना चाहिए, ऐसा भी बौद्ध साहित्य में कहा गया है।[19]

इस तरह जातक सहित संपूर्ण बौद्ध साहित्य में आदर्श धम्म राजा की संकल्पना कूट-कूटकर भरी पड़ी है। उसी के प्रभाव में आकर सम्राट अशोक ने अपने राज्य को धम्म राज्य बनाया और उसके लिए उन्होंने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया। उन्होंने ब्राह्मण मंत्रियों को निकालकर उनकी जगह बौद्ध भिक्खुओं को अपना राजनीतिक सलाहकार बनाया। सम्राट अशोक के साम्राज्य में बौद्ध भिक्खु प्रशासनिक अधिकारी (रज्जुक), मंत्री, आचार्य, धम्म महामात्र ऐसे विभिन्न राजनीतिक स्तर पर काम कर रहे थे।[20] सम्राट अशोक ने अपने मार्गदर्शक तथा गुरु के रुप में उपगुपत महाथेरो को नियुक्त किया था। लोगों को धम्म की तरफ आकर्षित करने के लिए अशोक हर पाँच साल के बाद पंचवर्षिका उत्सव मनाते थे, जिसमें भिक्खुओं को राजनीतिक मान-सम्मान देकर बड़े पैमाने पर दान दिया जाता था। जन-मानस में धम्म और आदरभाव उत्पन्न करना अशोक का मुख्य उद्देश्य था। इस उत्सव का वर्णन खुद ह्यूएनत्संग ने

किया है। सम्राट अशोक ने धम्म यात्राएं की और पुराने समय (उत्सव) की जगह पर धम्म यात्रा उत्सव आरंभ किये।[21] सम्राट अशोक ने राज्याभिषेक के 13 वें वर्ष में धर्म महाशय नियुक्त किये, जिसका उद्देश्य धम्म राज्य की स्थापना करना ही था। ऐसा पाँचवें अभिलेखों में लिखा है। जब सम्राट अशोक धम्म यात्रा के लिए निकलते थे तब उनका उद्देश्य क्या होता था? यह बात उन्होंने आठवें अभिलेख में बताया है- ''इन धम्मयात्रों के माध्यम से श्रमणों एवं उपासकों का दर्शन करना, उन्हे दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और स्वर्णदान देना, जनपद के लोगों का दर्शन, धर्म का उपदेश देना और धर्मविषयक प्रश्नोत्तर होता है। इससे देवानां प्रियदर्शी राजा को अत्यंत हर्ष होता है।''[22]

तथागत बुद्ध के सपनों का आदर्श धम्म राजा बनते हुए सम्राट अशोक ने बौद्ध धम्म के लिए अनेक उल्लेखनीय कार्य किया, जैसे 84 हजार बौद्ध स्तूपों-विहारों का निर्माण करना। साम्राज्य और साम्राज्य के बाहर धम्म प्रचारक भिक्खुओं को भेजना, जनता में धम्म स्थापित हो, इसके लिए धम्म यात्राओं की निर्मिती करना। धम्म विरोधी दुष्टों को दंडित करना, ऐसे अनेक कार्य किए। सम्राट अशोक कितने कट्टर धम्म राजा थे और उनका धम्म के विषय में कितना प्रगाढ़ ज्ञान था और भिक्खु संघ पर उनका कितना नियंत्रण था, इसकी जानकारी हमें उनके ही बैराट शिलालेख से प्राप्त होती है, जिसमें उन्होंने यह कहा-

1. ''प्रियदर्शी राजा ने मगध संघ को अभिवादन करके (उसमें रहने वाले भिक्खुओं को) निर्विघ्नता और सुख विहार (आराम) के बारे में कहा (पूछा)।

2. यह आप लोगों को विदित है कि बुद्ध, धम्म और संघ में मेरी कितनी प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास है। भदन्त, जो कुछ भी

3. भगवान बुद्ध द्वारा भाषित है वह सब अच्छी तरह सुभाषित है। किन्तु, भदन्त, जो कुछ निश्चित रुप से लगता है (और धर्मग्रंथों में जिसका संकेत है कि) ''धम्म

4. चिरस्थाई होगा'' इसकी घोषणा करना मेरा कर्तव्य है। भदन्त! ये धम्मपर्याय है - विनयसकस,

5. (सिगालोवाद - सुतान्त - दीघनिकाय), अलियवस (आर्यवंशा) (अंगुत्तर निकाय, भाग-2) अनागतभय (अंगुत्तरनिकाय), मुनिगाथा (सुत्तनिपात-मुनिसुत्त), मोनेयसुत्त (सुत्तनियात नालकसुत्त) उपतिस - पसिन (सुत्तनिपात, भाग-4, सारिपुत्त सुत्त) ऐसे ही राहुलोबाद-

6. वाद में मृषावादका विवेचन करते हुए भगवान बुद्ध द्वारा जो कहा गया है। (राहुलवाद-मज्झिमनिकाय, भाग-1- राहुलोवाद सुत्त) भदन्त! मैं चाहता हूँ कि इन धम्म पर्यायो को

7. क्या कि - बहुसंख्यक भिक्षुपाद और भिक्षुणियां प्रतिक्षण सुने और उनका मनन करें।

8. इस प्रकार उपासक और उपासिका भी भदन्त! इसी प्रयोजन के लिए इसे लिखता हूँ कि (लोग) मेरे उद्देश्य को जानें।''[23]

इस अभिलेख से पता चलता है कि बुद्ध धम्म के प्रति सम्राट अशोक कितना प्रभावित थे, उन्होंने उसी के लिए जिंदगी लगा दी। बौद्ध धम्म तत्वज्ञान के प्रति वह कितना ज्ञाता थे, यह इस अभिलेख से पता चलता है। बौद्ध भिक्खु तथा भिक्खुनियों पर भी उसका अनुशासन था। साथ ही प्रजा (उपासक-उपासिकाओं) पर भी उसके धम्म राज्य का पूर्णतः नियंत्रण था। रोमिला थापर जैसे इतिहासकार ''मौर्य साम्राज्य का ऱ्हास और पतन'' ग्रंथ में सम्राट अशोक बौद्ध धर्मीय ही नहीं थे। उन्होंने अलग ही धर्म की स्थापना की थी, ऐसा भद्दा आरोप लगाया था। रोमिला थापर विद्वान जरुर हैं, मगर अपनी विद्वता मृत ब्राह्मणवाद को बचाने के लिए इस्तेमाल की है। सम्राट अशोक कट्टर बौद्ध धर्मीय राजा थे। धम्म राज की स्थापना करना ही उनका मकसद, उद्देश्य था। ब्राह्मणवादी इतिहासकार सम्राट अशोक के धम्म राज्य से अत्यंत डरते है और प्रतिक्रिया में वे बरगलाने लगते हैं। यही हाल काणे का भी हुआ था।

सुत्तनिपात के वसलसुत्त में तथागत बुद्ध कहते हैं कि जन्म से कोई श्रेष्ठ या कनिष्क नहीं होता, बल्कि गुणों से उसकी गुणवत्ता निश्चित होती है। उसी तरह धम्म राजा या चक्रवर्ती राजपद भी जन्माधारित न होकर गुण आधारित है। राजा को धम्म के अनुसार आचरण करने पर ही वह धम्म राजा बनता है।[24] धम्म राजा के दस महत्त्वपूर्ण गुण माने जाते हैं, जिसे दसराज धम्म कहा गया है। उसपर एक जातक कथा भी 'दरीमुख जातक' (378) आयी है। दरीमुख यानी दसमुख से ही ब्राह्मणों ने रामायण में दस मुखवाला रावण विकसित किया है। सम्राट अशोक खुद उस दस धम्म को पालन करने वाले दस धम्मराजा बने थे। उदाहरण के लिए पहला गुण है- 1) दान जिसका वर्णन स्तम्भ लेख दो में आया है। सम्राट अशोक ने अपना पूरा राज्य भिक्खु संघ को दान दिया था। उसके जैसा दानशूर राजा भारत एवं दुनिया के इतिहास में कोई नहीं हो सकता। 2) शील - सम्राट अशोक खुद शीलवान राजा थे और समाज को

भी शीलवान बनने का आदेश उन्होंने अपने स्तम्भलेख दो में दिया है। 3) परित्याग- इसका मतलब दूसरों के कल्याण के लिए त्याग की भावना विकसित करना। सम्राट अशोक जनकल्याण के लिए कितने त्यागी हैं, इसका वर्णन शिलालेख एक में किया है।

4) अज्जव - अर्थात एकनिष्ठता। स्तम्भलेख दो में धम्म के प्रति भिक्खुओं और अनुयायियों को धम्म के प्रति एकनिष्ठ रहने का आदेश सम्राट अशोक ने दिया है।

5) मद्दव - दयाशीलता। सभी प्राणियों के प्रति दयाशीलता रखने का आदेश सम्राट अशोक अपने शीलास्तम्भ दो में देते हैं।

6) तप - मतलब संयम। जिसका वर्णन सम्राट अशोक ने शिलालेख सात में किया है।

7) अक्कादे - मतलब द्वेष न करना। शिलालेख सात में सम्राट अशोक अन्य पंथों का भी द्वेष न करने का संदेश देते हैं।

8) अहिंसा - शिलालेख 13 में रणश्रेरी (युद्धघोष) के बजाए धम्मभेरी धम्मघोष या धम्मविजय में अशोक कहते हैं कि जोर-जबरदस्ती के बजाए, समझाने से लोग धम्म को ज्यादा स्वीकार करते हैं।

9) खान्ति - अर्थात क्षमाशीलता। शीलालेख 13 में सम्राट अशोक अपने युद्ध की वजह से दुःखी जनो से क्षमाशीलता की अपेक्षा व्यक्त करते हैं।

10)अविरोधन - मन की शुद्धता। शीलालेख 7 में मन की शुद्धता पर सम्राट अशोक ने सबसे ज्यादा जोर दिया है। इस तरह सम्राट अशोक एक आदर्श धम्म राजा है, जिन्होंने दस धम्म का पालन किया था। इस तरह सम्राट अशोक ने धम्म राज्य का निर्माण कर वह बौद्ध राजनीति के लिए आदर्श राजा बने।[25]

बौद्ध धम्म में राजनीति के साथ धम्म को जोड़ा है और उसके लिए धम्म राजा, धम्म चक्रवर्ती और दसधम्म राजा जैसे संकल्पना विकसित की गई थी। इन संकल्पनाओं के माध्यम से राजा अप्रत्यक्ष रुप में बुद्ध का प्रतिनिधि बनकर राजनीति को धम्म के आधार पर चलाने वाला एक माध्यम समझा गया है। वह अपने आपको बुद्ध की तरह लेकिन बुद्ध से थोड़ा कम अर्थात बोधिसत्व के रुप में समझता है। इसलिए सभी जनता राजा को बुद्ध के रुप में देखती थी और इसलिए सम्राट अशोक सभी के लिए पूजनीय थे और आज भी है।[26] धम्म राजा को इसलिए बौद्ध साहित्य में ''बोधिसत्व राजा'' या ''बोधिसत्व अवतार'' समझा गया है। क्योंकि वह बोधिसत्व का अवतार लेकर

ही बुद्ध का काम आगे बढ़ाते हैं। बोधिसत्व राजा को प्रियदस्सी (प्रियदर्शी) भी कहा जाता था, क्योंकि वह धम्म के माध्यम से सभी का कल्याण करते थे। इसलिए सम्राट अशोक और सिलोन का राजा तिस्स ने खुद को 'पियदस्सी' कहा था। बोधिसत्व राजा भविष्यकालीन बुद्ध मैत्रेय का अवतार समझे जाते थे।[27]

बौद्धों के राजनीतिक तत्वज्ञान में सबसे अधिक महत्त्व धम्म को दिया गया है। धम्म के बगैर राजनीति नहीं चल सकती। जो राजा धम्म के बगैर राजनीति करेगा उसका पतन निश्चित है। क्योंकि धम्म राजा को केवल एक सामान्य राजा नहीं रखता, बल्कि वह उसे दैवी शक्तिमान बना देता है। धम्म उसे बुद्ध का प्रतिनिधि बोधिसत्व अवतार बना देता है। जिसकी वजह से राजा अपने राज्य को अधिक सुनियोजित तरिके से नियंत्रण में ला सकता है। बौद्ध राजनीति या धम्मनीति में एक दूसरे से इतने अभिन्न तरिके से जुड़े हुए हैं कि नीतिमान राज्य की अवधारणा नीति पर धम्म के बगैर पूरी नहीं हो सकती। अगर राजा धम्म के अनुसार बर्ताव नहीं करेगा तो लोगों की नजरों में जो महत्तम प्रतिमा बनी होती है वह खत्म हो जाती है और राजा एक सामान्य व्यक्ति बन जाता है। इसलिए प्राचीन राजाओं ने हमेशा धम्म का सहारा लिया है।[28]

सम्राट अशोक संपूर्ण जम्बूद्विप को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। लेकिन केवल तलवार के बल पर जीतकर लोगों को एकजुट नहीं रखा जा सकता था। इसके लिए उन्हें जोड़ने वाली विचारधारा आवश्यक होती है। वह विचारधारा धम्म की ही है। तथागत बुद्ध ने कुटदंत सुत्त में भी यही कहा है कि ''लोगों को केवल शक्ति और दंड के आधार पर एकजुट नहीं रखा जा सकता। उन्हें धम्म विचारों से एकजुट रखना होगा।''[29] इसी तरहह चक्कवत्ती सिंहनाद सुत्त में बुद्ध कहते है कि 'अपराधिक प्रविर्त्ति केवल दंड से नहीं सुधारा जा सकता, उसके लिए राजा को सामाजिक सुधारों पर जोर देना चाहिए। बुद्ध कहते हैं कि ''गरीबी अपराधों का मूल कारण है। इसलिए राजा को अपने राज्य में गरीबी मिटाने का कार्य करना चाहिए।'' इसी तरह बुद्ध कहते है कि ''धन संपदा अच्छे कर्म को बढ़ावा देती है और व्यक्ति को अच्छा बना सकती है। लेकिन धनसंपदा का उपयोग योग्य तरिके से करना चाहिए और उसे गलत तरिके से हासिल नहीं करना चाहिए। अन्यथा अपराध बढ़ेंगे और लोग दुःखी होंगे।''[30]सम्राट अशोक ने भी इसी बुद्ध संदेश पर कार्य करते हुए बल प्रयोग से नहीं, बल्कि धम्म के प्रयोग से संपूर्ण जम्बूद्विप को अखंड भारत में एकजुट किया था। एक शक्तिशाली साम्राज्य का निर्माण किया था। उन्होंने लोगों के कल्याण के लिए खास महामात्र,

रज्जूक नियुक्त किये थे। प्रजा की कल्याण के लिए उन्होंने जगह–जगह पर अस्पताल बनाये थे, कुएँ खुदवाये थे और व्यापार उद्योग के लिए रास्ते बनवाये थे। देश–विदेशों में व्यापारिक वृद्धि होने के कारण लोगों की आर्थिक परिस्थिति में सुधार आया। उस समय भारत का जीडीपी 31% था। जो आज केवल माइनस 23% है। इससे हम समझ सकते हैं कि धम्म राज्य की वजह से भारत का कितना विकास हुआ था। आज भी चीन, जापान, कोरिया जैसे बौद्ध राष्ट्र बौद्ध धम्म की वजह से ही विज्ञानवादी, तर्कवादी और विकासशील बन चुके हैं और अपने भारत देश ने बुद्ध और सम्राट अशोक को छोड़ने के कारण गर्त में धंस गया है।

रामायण–महाभारत और भगवद्गीता की धर्म संकल्पना पर बौद्ध धम्म का प्रभाव :–

सम्राट अशोक संपूर्ण जम्बूद्विप और दुनिया के लिए एक आदर्श धम्म राजा बन चुके थे। संपूर्ण जम्बूद्विप और ग्रीक, यूरोप तक उनके शिलालेख धम्म प्रचार के माध्यम बन चुके थे। उनके धम्म प्रचारक महामात्र जम्बूद्विप और दुनिया में धम्म का प्रचार कर रहे थे। सम्राट अशोक ने 84 हजार स्तूपों का निर्माण भारत के साथ पूरे एशिया में किया था। इतना विशालकाय कार्य करने के पीछे सम्राट अशोक की क्या मंशा थी? सम्राट अशोक शिलालेख में एक ही शब्द बार–बार आता है और वह 'धम्म' उनके स्तम्भलेख मतलब पहले ही शीलास्तम्भ पर सम्राट अशोक चर्चा करते हैं कि धम्म क्या है? धम्म की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि धम्म मतलब कम से कम बुरा बर्ताव और अधिक से अधिक अच्छे कर्म करना, जिसमें करुणा, स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, न्याय, सतत्या और शुद्धता है।[31] ये सभी तत्व आदर्श धम्म राजा के दस राजधम्म तत्व हैं। उसके अनुसार मेरा राज्य चल रहा है यह बताने के लिए सम्राट अशोक आगे कहते हैं कि मैने अपने मंत्रियों को धम्म के अनुसार शासन करने को कहा है। उन्होंने धम्म के अनुसार न्याय करने को आदेशित किया है, जिससे लोगों के जीवन में धम्म की अपेक्षाओं के अनुसार खुशियाँ पैदा हो जाएगी और धम्म के अनुसार उनका संरक्षण भी हो जाएगा। उपगुप्त महाथेरो जो सम्राट के धम्म गुरु थे, वे एक बार अशोक से पूछते है कि ''आपने सद्धम्म का पालन करते हुए धम्म'' की स्थापना चारों दिशाओं में की है और आप सचमूच एक आदर्श धम्म राजा बन चुके

हो। तथागत बुद्ध जो सभी जीवों के उत्तम धम्म सारथी हैं उन्होंने उनके धम्मरथ को आपके और मेरे हवाले छोड़ दिया है। इस पर आपका क्या कहना है?'' इस पर सम्राट अशोक कहते है कि- ''मैने संपूर्ण पृथ्वी को पहाड़ों जैसे अलग-अलग रंगों के स्तूपों से सजाया है। उसपर आकर्षक धम्म ध्वज और धम्म छत्र लगाये हैं। धम्म के लिए मैने, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, मेरा घरबार, मेरा संपूर्ण साम्राज्य और संपूर्ण पृथ्वी धम्मदान में भिक्खु संघ को दी है। बुद्ध के सपनों के आदर्श धम्म राजा को जो कुछ करना चाहिए वह सबकुछ मैने किया है।''[32]

सम्राट अशोक को इतना महान सम्राट भारत के ही नहीं, बल्कि संपूर्ण दुनिया के इतिहास में समझा गया है। **एच.जी.वेल्स ने ग्रंथ में कहा है कि दुनिया के इतिहास में अनेक राजा-महाराजा हुए, लेकिन उन सभी में अशोक एक चमकते सितारों की तरह है।** सम्राट अशोक से प्रेरित होकर शक, कुषाण और गुप्त राजाओं ने धम्म के अनुसार ही अपना राज्य चलाया। इतना ही नहीं, बल्कि दुनिया के अनेक राजाओं ने खुद को सम्राट अशोक की उपाधि लगाकर अपने-अपने देश में धम्म राज्य स्थापित किया। सम्राट अशोक से प्रभावित होकर कुषाण सम्राट कनिष्क ने दूसरा अशोक बनकर धम्म का काम किया। उसी तरह हर्षवर्धन ने भी मौर्य सम्राट अशोक की राह पर चलते हुए धम्म का कार्य किया।[33] इसी तरह चीन में लियांग वूडी ने सन् 519 में खुद को अशोक घोषित किया।

सम्राट अशोक के धम्म राज्य में संपूर्ण समानता स्थापित हो चुकी थी और प्रत्येक व्यक्ति को कोई भी कार्य करने के लिए स्वतंत्रता थी। तथागत बुद्ध ने ब्राह्मणों का वर्चस्व खत्म करने के लिए धम्म का निर्माण किया था। राजपुत्र सिद्धार्थ और उनके जैसे अनेक खत्तिय राजपुत्र, ब्राह्मणों की राजनीतिक वर्चस्व खत्म करना चाहते थे। उस समय ब्राह्मणों ने कर्मकांडी वैदिक धर्म के माध्यम से राजाओं को नियंत्रित किया था और उन राजाओं के माध्यम से वे जनता का शोषण कर रहे थे। सम्राट अशोक ने बुद्ध के समतावादी धम्म को स्वीकार कर ब्राह्मणों का संपूर्ण वर्चस्व खत्म किया। इसके लिए उसने यज्ञों पर पाबंदी लाकर प्राणियों की हत्या रुकवाई, जिससे खेतीहर समाज को राहत मिली। उन्होंने सभी महत्त्वपूर्ण पदों से ब्राह्मणों को हटाया और उसपर भिक्खु संघ को नियुक्त किया। भिक्खु संघ में घुसे 60 हजार ब्राह्मणों को भी अशोक ने बाहर निकाला। ये सभी बदलाव ब्राह्मणों के लिए पीड़ादायक बनी। ब्राह्मणों का वर्चस्व खत्म होने के कारण वे गुस्से में तिलमिलाने लगे। किसी भी तरह से सम्राट अशोक

के मौर्य साम्राज्य का अंत करना चाहते थे। इसलिए अशोक और उनके कुछ वंशजों के शक्तिशाली होने की वजह से ब्राह्मण विद्रोह करने में सफल नहीं हो पाये। लेकिन ब्राह्मणों ने जमीनी स्तर पर बड़ी संगठित तैयारी कर ली थी। उस संगठन शक्ति का इस्तेमाल कर ब्राह्मणों ने मौर्य सेनापति पुष्यमित्र शुंग (ब्राह्मण) को अपने काबू में कर लिया। राजनीतिक परिवर्तन किये बगैर ब्राह्मणों का पुनः वर्चस्व प्राप्त नहीं होगा, यह ध्यान में रखकर ब्राह्मणों ने ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग के हाथों से अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की ईसा पूर्व 185 में हत्या की और सत्ता को अपने हाथों में लिया। शुंग ने घुसपैठ तंत्र के माध्यम से मौर्य साम्राज्य में घुसा और वहां पर षड्यंत्र करके मौर्य राजा की हत्या कर दी। उसके बाद ब्राह्मण शुंग ने बड़े पैमाने पर बौद्ध विरोधी अभियान चलाया। उसको डर था कि अगर बौद्ध भिक्खुओं को जिंदा रखा गया तो वे फिर से धम्म राज्य स्थापित कर सकते हैं और ब्राह्मणों को सत्ता से हाथ धोना पड़ सकता है। समाज पर बौद्ध भिक्खुओं का गहरा प्रभाव एवं नियंत्रण था। इसलिए धम्मराज्य की नींव जिन भिक्खुओं पर आधारित थी, उनको सबसे पहले खत्म करना पुष्यमित्र शुंग को महत्त्वपूर्ण लगा। इसलिए पाटलीपुत्र के कुकुट्टाराम को नष्ट करने के उद्देश्य से जब शुंग गया तो उसने संघाराम को छोड़ा और सबसे पहले वहाँ के भिक्खुओं का कत्लेआम किया।[34] उसके बाद भिक्खुओं का कत्लेआम करते हुए वह सियालकोट तक पहुंचा। बाद में उसने बौद्ध प्रजा को शिकार बनाया। शुंग कितना बड़ा बौद्ध धम्म का विरोधी था, यह इसका प्रमाण है। उसने आदेश निकाला था कि जो कोई मुझे बौद्ध भिक्खुओं का कटा सिर लेकर आयेगा उसे सौ सोने की मुद्राएं बख्शिश के रुप में दी जाएगी।[35] इसी आशय का संदर्भ बौद्ध ग्रंथ मंजुश्री मूलकल्प में भी मिलता है।

बौद्ध स्तूप एवं विहारों को उसने लक्ष्य बनाया। क्योंकि 84 हजार स्तूप सम्राट अशोक ने बनाए थे और वे धम्म राज्य के प्रेरणा स्रोत थे। शुंग उन प्रेरणास्रोतों को नष्ट करना चाहता था और सम्राट अशोक की छवि भी जनमानस से मिटाना चाहता था।

इस प्रकार पुष्यमित्र शुंग ने हिंसा के द्वारा बौद्धों के खिलाफ राजनीतिक प्रतिक्रांति करके ब्राह्मण राज की स्थापना की। लेकिन ब्राह्मणों को डर था कि उनकी सत्ता के खिलाफ बौद्ध जनमानस विद्रोह कर सकते हैं। इस प्रकार का विद्रोह भविष्य में न हो, इसके लिए बौद्ध जनता का ब्राह्मणीकरण करना उन्हें जरुरी लगा।

ब्राह्मणीकरण करने के लिए विचारधारा और प्रतिकों का ब्राह्मणीकरण आवश्यक

होता है। बौद्ध धम्म, स्तूपों, विहारों, बुद्धपद जैसे प्रतिकों के माध्यम से समाज में स्थापित हो गया था। इन प्रतिकों के साथ बौद्ध लोक कथाएं (जातककथा) जुड़ी हुई थी। इन कथाओं को चुराकर नया कथा सूत्र बनाकर लोगों को गुमराह करके ब्राह्मणवादी बनाया जा सकता है। यह बात ध्यान में रखकर ब्राह्मणों ने कई शताब्दियों तक योजना बनाई होगी, उसपर काम किया होगा और राजनीतिक सत्ता के कारण वे सफल हुए। जातक कथाओं के कुछ पात्र, कथानक और कुछ प्रसंग लेकर ब्राह्मणवादी तरिके से उन्हें पेश किया गया । रामायण और महाभारत का प्रभाव बौद्ध जनता पर बनाया जा सके इसके लिए उन्हें और अधिक आकर्षक, श्रृंगार युक्त, युद्ध से अतिरंजित किया। इस प्रकार की आकर्षक कथाओं में बौद्ध उलझते गए और उन्हें ही वे अपनी कथा समझने लगे।

बौद्ध धम्म का जनमानस पर गहरा प्रभाव था, उसे मिटाया नहीं जा सकता था। इसलिए ब्राह्मणों ने बड़ी चालाकी से योजना बनाई कि धम्म संकल्पना को ही अपनाकर उसे नये तरिके से पेश किया जाए। इसलिए धम्म का संस्कृत भाषा में रुपांतर 'धर्म' किया। रामायण, महाभारत और गीता में वर्णित युद्ध किस लिए हुआ? तो वह धर्म के लिए ही हुआ, ऐसी सोच लोगों में स्थापित कर दी। महाभारत में युधिष्ठिर को सम्राट अशोक की तरह धर्मराजा ही कहा गया है।

ब्राह्मणों ने अशोक की धम्मराजा और धम्म संकल्पनाओं को धर्मराजा और धर्म, इन नये संकल्पनाओं के रुप में सामने लाया। सम्राट अशोक अपने गिरनार शिलालेख में जो शब्द धम्म के बारे में लिखते हैं वही शब्द व्यास ने महाभारत में धर्म के बारे में लिखे।[36] यह बात सप्रमाण जागतिक अभ्यासक फॉल्क हिल्टबिटन ने सिद्ध की है, इसलिए अब इस पर कोई विवाद होने का कारण नहीं है। धम्म का निर्माण तथागत बुद्ध ने खुद अपनी प्रज्ञा से किया था। लेकिन महाभारत - 1.60.30 में यह कहा गया है कि ब्रह्म ने दाहिने छाती से धर्म का निर्माण किया है। क्या किसी छाती से धर्म उत्पन्न हो सकता है? अर्थात यह केवल लोगों को मूर्ख बनाकर बुद्ध के धम्म को धर्म के नाम से निगलने का ब्राह्मणी षड्यंत्र है।

धर्म अपनी ही जागिर है यह दिखाने के लिए ब्राह्मणों ने खुद को देवता और उनके विरोधी बौद्धों को दानव, राक्षस, दैत्य, असूर कहा। इसका प्रमाण महाभारत के - 1.58.35-51 में मिलता है, जहां पर ब्रह्म कहता है कि जब पृथ्वी पर दानवी और असूरी शक्तियां बढ़ेगी तब मैं मनुष्य के रुप में पृथ्वी पर अवतार लूंगा। यह कल्पना

सीधे-सीधे बौद्धों की बोधिसत्व अवतार की चोरी है। महाभारत में यक्षों का विपुल मात्रा में संदर्भ मिलता है। बौद्ध साहित्य में यक्ष अधिक मात्रा में है। यक्षों की हत्या कराने का मतलब वह सीधे-सीधे बौद्धों की हत्या करने का संदर्भ है। महाभारत में यक्षों को जलाकर मार डाला, ऐसा भी संदर्भ है।

महाभारत के माध्यम से ब्राह्मणों ने बौद्धों पर इस तरिके से अतिक्रमण करके अपना वर्चस्व स्थापित किया-

1) अपनी खुद की श्रेष्ठ पहचान बनाने के लिए ब्राह्मणों ने दूसरों से अलग एक बंदिस्त जाति में रुपांतरित किया।

2) राजाओं को प्रभावित करने के लिए ब्राह्मणों ने ग्रंथ बनाये, जिसमें ब्राह्मणों का वर्चस्व कायम रहे।

3) खुद को दूसरों से शुद्ध दिखाने के लिए दैनंदिन धार्मिक संस्कार अपने जीवन में लागू किया।

4) खुद को वांशिक श्रेष्ठ दिखाने के लिए ब्राह्मणों ने माता-पिता की तरफ से सात पीढ़ियों तक वंशावली बनाना शुरु किया।

5) बाकी लोग वंशावली नहीं रखते थे। इसलिए वे मुक्त तरिके से किसी के भी साथ अपने बच्चें करते थे, उन्हे कोई बंधन नहीं था। ब्राह्मणों ने उन्हे संकरज जातियों का नाम देकर शूद्र कहना शुरु किया और खुद को कुलीन श्रेष्ठ समझने लगे।

6) राजाओं को प्रभावित करने के लिए मनोरंजक कथानक और बिभास कर्मकांड शुरु किये।

7) बौद्ध भिक्खुओं को विहारों में मिलने वाले दान को उसे ब्राह्मणदान में परिवर्तित किया।

इस प्रकार के बदलाव ब्राह्मणों ने केवल खुद को श्रेष्ठ और बौद्धों को शूद्र घोषित करने के लिए किया। महाभारत में यह कहा गया है कि ''इस पृथ्वी का सबसे महानतम प्राणी ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण की निर्मिती सबसे पहले हुई है। इसलिए इस पृथ्वी पर जो कुछ है वह सभी ब्राह्मणों के अधीन है। इसलिए ब्राह्मणों को सभी लोगों ने हमेशा मान-सम्मान देना चाहिए और उनको जो अच्छा लगता है वह दान में देना चाहिए।''[37] गौतम धर्म सूत्र 11.1 में यह कहा गया है कि राजा सभी पर अधिकार चला सकता है, लेकिन ब्राह्मण पर नहीं। (राजा सर्वश्रेष्ठे ब्राह्मणावर्जम।) यही बात मनुस्मृति तथा रामायण, गीता में भी झलकती है। बौद्ध भिक्खुओं को भिक्षाटन में जो

मिलता उससे गुजारा करते थे। लेकिन ब्राह्मण को जो अच्छा लगे उसे जबरन छिन लेते थे। इसलिए ब्राह्मणों के आश्रम धनसंपत्ति से भरे पड़े थे, यह रामायण और महाभारत में दिखाई देते हैं। रामायण में राजा भरत जब राम को मिलने आश्रम में जाते हैं तो भारद्वाज ऋषि उनकी इतनी खातिरदारी करते है कि खुद भरत को उसके अपने राज्य में इतना सुख चैन कभी नहीं मिला।

बौद्ध साहित्य तथा बौद्ध राजाओं के कार्यकाल में सभी लोगों के साथ समानता का, समता का व्यवहार किया जाता था तथा महिलाओं को मान-सम्मान था।[38] रामायण, महाभारत एवं गीता में वर्ण आधारित व्यवस्था थी और उसमें बहुसंख्याक शूद्र-महिलाओं पर ज्यादती तथा शोषण था। शम्बूक, एकलव्य, यह कहानियां शूद्रों का मनोबल घटाने के लिए तथा ब्राह्मणों को अपने वर्चस्व पर गर्व मानने के लिए रची गयी। वैदिक साहित्य में महिलाओं को अत्यंत नीच स्थान दिया गया है।

सम्राट अशोक ने अपने शिलालेख में तीन ऋण बताये हैं- माता-पिता का ऋण, गुरु (भिक्खु) का ऋण और समाज का ऋण। महाभारत, मनुस्मृति में भी इन्हीं तीन ऋणों को चुराया है। लेकिन महिला चाहे वह माता हो, भगिनी या पत्नी, उसे नीच ही माना है। ब्राह्मणों ने इस तरह अशोक के धम्म शब्द को ही धर्म के रुप में इस्तेमाल किया है।[39]

डॉ.बाबासाहब आंबेडकर ने 'फिलॉसॉफी ऑफ हिन्दुइजम' इस ग्रंथ में सिद्ध किया है कि ब्राह्मणों के पास कोई तत्त्व या सिद्धांत नहीं है। जैसे बौद्ध धम्म के तत्त्व सिद्धांत न्याय, समता, समानता और भाईचारा है। ब्राह्मणों के पास वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, स्त्रीदास्य और अमर्याद शोषण और उसे ही उन्होंने धर्म का नाम दिया है। वैदिक धर्म नैतिक दृष्टि से धर्म ही नहीं है, बल्कि वह गुलाम बनाने का राजनीतिक षड्यंत्र है।

बुद्ध और बोधिसत्व बौद्ध साहित्यों में विभूतिकरण

बौद्ध धम्म में अशोक के पहले धम्म राजा संकल्पना कितनी विकसित हो चुकी है, यह हमने पहले ही चर्चा की है। उमा चक्रवर्ती (1996, pp.158) कहती है कि धम्म राजा बौद्ध धम्म के राजनीति की मुख्य संकल्पना थी। तथागत बुद्ध ने खुद धम्म राजा बनकर राजा प्रसेनजीत और बिंबिसार को अनेक बार मार्गदर्शन किया था।[40]

धम्मवलय प्राप्त होने के कारण धर्मराजा अन्य राजाओं की तरह सामान्य राजा न होकर वह आदर्श राजा (मानुसिंदो) बन गया था और लोग उसे देवता (सम्मुतिदेवा) के रुप में पूजते थे।[41] बौद्ध धम्म राजा को देवता के रुम में इसलिए पूजा जाता था। क्योंकि उसके पास पाँच बल होते थे।

1) शक्तिबल
2) संपत्ति बल
3) अमात्य बल
4) नीतिबल
5) प्रज्ञाबल

बुद्ध को दिव्यादान में देवा दी देव मतलब देवताओं का देवता कहा गया है। क्योंकि राजा सिर्फ देवता है। लेकिन उस देवता को चलाने वाले तथागत बुद्ध महादेवता समझे गए हैं। दिव्यावदान पृ.391 पर यह कहा गया है।-

''सर्वदेवता च बोधिसत्वस्य पदायिनिपतिता।
ततो राजा शुद्धोदन, बोधिसत्वा
देवतानामप्ययं देव इतितेन
बोधिसत्वस्य देवातिदेव इति
नामधेयं क्वतम्।''

अर्थात : ''सभी देवताओं ने बोधिसत्व के पैर धोए। राजा शुद्धोधन ने कहा ''यह बोधिसत्व तो देवों के देव हैं'' इसलिए बुद्ध को 'देवा दी देव' कहा जाने लगा'' यह भी पाली साहित्य में मान्यता है कि बुद्ध ने तीन चक्षु द्वारा बुद्धत्व प्राप्त किया। एक मास चक्खू, प्रज्ञा चक्खू और दिव्य चक्खू। दिव्य चक्खू से जिसने ज्ञान प्राप्त किया वह देव कहलाने लगे। बुद्ध को इसी संदर्भ में अमिताभों कहा जाने लगा। सम्राट अशोक ने भी खुद को देवनापिय उपाधी इसलिए लगाई थी, क्योंकि वे देवता बुद्ध के प्रिय अनुयायी धम्म राजा के रुप में बन चुके थे। यह विशेषण लगाकर सम्राट अशोक ने बौद्धों की प्राचीन मान्यता बल प्रदान किया है और समाज ने भी उसी संदर्भ में उन्हें स्वीकार किया है।

बौद्ध धम्म राजाओं को बुद्ध के अवतार अर्थात बोधिसत्व अवतार भी समझा

गया है। बोधिसत्व खुद निर्वाण प्राप्त नहीं करता, बल्कि बुद्ध के मिशन को पूरा करने के लिए अपना जीवन समर्पित करता है। बुद्ध का मिशन पूरा करने के लिए अर्थात धम्म राज्य की स्थापना करने के लिए राजा एक महत्त्वपूर्ण माध्यम समझा गया है। इसलिए अर्नस्ट बेंझ इस बारे में यह कहती हैं कि-''प्राचीन बौद्ध साहित्य में बौद्ध राजाओं को बोधिसत्व समझा गया है जो दूसरों की मुक्ति (कल्याण) के लिए बोधिसत्व की तरह निरंतर प्रयास करते हैं। इसलिए राजाओं का बुद्ध को बोधिसत्व अवतार भी समझा गया है।''[42] इससे सिद्ध होता है कि अवतार संकल्पना मूलतः बौद्धों की है और राजाओं को बोधिसत्व या धम्म राजा बनाने के लिए यह संकल्पना बौद्धों ने विकसित की थी। इसी संकल्पना को आधार बनाकर ब्राह्मणों ने बुद्ध को विष्णु बनाया और राजाओं को विष्णु का अवतार घोषित किया। बुद्ध को विष्णु कैसे बनाया? इसका संदर्भ महाभारत में मिलता है। महाभारत 12.325.4 के श्लोक नं.48, 44, 133 में विष्णु को तुषित स्वर्ग का देवता कहा गया है। लेकिन महाभारत के 12.323.12, 333, 28 और 337.54 में तुषित बौद्धों का स्वर्ग बताया गया है। अगर तुषित बौद्ध का स्वर्ग है तो उसमें निवास करने वाला विष्णु कौन है? बौद्ध साहित्य में बुद्ध को तुषित स्वर्ग का देवता कहा गया है, जो अपनी माँ को धम्म का मार्गदर्शन करने के लिए तुषित स्वर्ग में जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध साहित्य में तुषित स्वर्ग के देवता बुद्ध को ही महाभारत में विष्णु देवता कहा गया है।

महाभारत 12.325, 4 में विष्णु को तप और विद्या का देवता कहा गया है। लेकिन वास्तव में बुद्ध को ही ऐतिहासिक दृष्टि से तप (ध्यान साधना) और बुद्धि का देवता कहा गया है। विष्णु को महाभारत और गीता में भागवत कहा है। लेकिन भागवत या भगवत बुद्ध का पाली नाम है। भगवत मतलब तथागत बुद्ध जिसने वासनाओं को भग्न किया है। ''नमो तस्स भगवतो अर्हतो, सम्मासम बुद्धस्स'' यह बुद्ध के लिए वंदना गीत है। बुद्ध के चार महत्त्वपूर्ण प्रतीक चिन्ह हैं। धम्मचक्र, कमल, शंख और भिक्षापात्र। इन चारों को ब्राह्मणों ने विष्णु का चिन्ह बनाकर अपना धंधा चलाया। धम्मचक्र गतिमान धम्म को दर्शाता है, जो विष्णु का चक्र ब्राह्मणों ने बनाया, कमल बुद्धत्व का प्रतीक है उसे ब्राह्मणों ने विष्णु का पद्म बनाया। शंख बुद्ध पदों पर अंकित बुद्ध के सिंहनाद का प्रतीक है। सिंहनाद मतलब सिंह जैसे गर्जना करते हुए धम्म का प्रवचन सुनाते थे, जैसे जंगल में शेर की दहाड़ से सभी प्राणी चुपचाप बैठते हैं। उसी तरह बुद्ध के धम्म प्रवचन के समय मार सेना चुपचाप बैठती थी।

इसलिए बुद्ध के धम्म प्रवचन को सिंहनाद कहा गया है। बुद्ध के सिंहनाद का प्रतीक शंख को चुराकर ब्राह्मणों ने उसे विष्णु का शंख चिन्ह बताया। बुद्ध के भिक्षापात्र को पारसी भाषा में गदा कहते हैं। ब्राह्मणों ने भी उसे विष्णु का गदा चिन्ह बना दिया। इतना ही नहीं, बल्कि बौद्ध गया में बुद्ध पद को ब्राह्मणों ने विष्णु पद बनाया, ऐसा दावा सर मेजर जनरल कनिंघम ने अपने शोध में किया है। इन सभी बातों से यही सिद्ध होता है कि विष्णु वास्तव में बुद्ध ही है। बुद्ध को विष्णु बनाकर ब्राह्मणों ने मौर्योत्तर काल में बौद्ध राजा एवं प्रजा को मूर्ख बनाया और यह सिलसिला आज भी जारी है।

प्राचीन बौद्ध परंपरा में राजा को बुद्ध का अवतार बोधिसत्व समझा जाता था। सम्राट अशोक और सम्राट कनिष्क ने भी खुद को बोधिसत्व अवतार समझकर प्राचीन भारत में धम्म राज्य की स्थापना की थी। सम्राट अशोक एक आदर्श बोधिसत्व अवतार या धम्मराजा बन चुके थे, जिसको समझकर कुषाण और गुप्त राजाओं ने उनका राज्य चलाया था। सम्राट अशोक आदर्श इतना महान बन चुके थे कि दुनिया के अनेक राजाओं ने खुद को अशोक समझकर अपना राज्य चलाया।

ब्राह्मण बुद्ध और अशोक को इतिहास के पन्नों से मिटाना चाहते थे, ताकि आने वाले राजा उनसे प्रेरणा लेकर धम्म राज्य की स्थापना न करें। लेकिन ब्राह्मणों के सामने यह समस्या थी कि जनता के दिलो-दिमाग पर बुद्ध और बुद्ध के बोधिसत्व अवतार अशोक छाये हुए थे। ब्राह्मणों ने हिंसा के सहारे बौद्धों की सत्ता पर कब्जा तो किया, लेकिन जनता के दिलों दिमाग पर बुद्ध और अशोक ही छाये हुए थे। जिससे ब्राह्मण राज के विरोध में विद्रोह होने का डर ब्राह्मणों को सताने लगा था। क्या किया जाए कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे, इसपर ब्राह्मण सोचने लगे। बड़े विचार-विमर्श के बाद उन्हे समझ में आया कि बुद्ध और अशोक को अगर मिटाना है तो उनका ब्राह्मणीकरण करना पड़ेगा और अलग नामों से उन्हें सामने लाना होगा। इसलिए उन्होंने समानता दर्शक विष्णु नाम बुद्ध के लिए अपनाया और अशोक के लिए विष्णु का अलग-अलग अवतार सामने लाया। आरंभ में बुद्ध की सारी विशेषताएं विष्णु में होने के कारण बौद्धों को विष्णु शब्द से कोई ऐतराज नहीं था। लेकिन धीरे-धीरे ब्राह्मणों ने विष्णु नाम का उदात्तीकरण शुरु किया और बुद्ध नाम का लेप लगाने लगे। समय के साथ बुद्ध नाम मिटता गया और बुद्ध का दूसरा नाम प्रचलित होता गया। यह षड्यंत्र इतना चतुरता से किया गया कि बौद्ध जनता और राजा को गाफिल रहे। गुप्त काल तक ऐसी परिस्थिति पैदा हुई कि बुद्ध का विष्णु रुप जनमानस पर छा गया और

वास्तविक बुद्ध नाम गायब हो गया। फिर गुप्त काल में ब्राह्मणों ने विष्णु को ब्राह्मणों के साथ जोड़ दिया और उसे ब्राह्मणों का प्रमुख देवता घोषित किया। जैसे ही विष्णु ब्राह्मणी देवता बना वैसे ही बुद्ध का अस्तित्व समाप्त हो गया। विष्णु को मानने वाले राजा और उनकी प्रजा भी विष्णु के साथ ब्राह्मणवादी बनती गयी और बौद्ध धम्म धीरे-धीरे विलुप्त होता गया।

बुद्ध के अवतार अशोक को मिटाने के लिए भी ब्राह्मणों ने यही तरिका अपनाया। सम्राट अशोक बड़ी हस्ती होने के कारण उनके एक बोधिसतव अवतार के सामने विष्णु के 10 अवतार खड़े किये। सम्राट अशोक आक्रमक थे तो विष्णु अवतार राम को भी उसके जैसा आक्रमक दिखाया गया। सम्राट अशोक घनघोर कलिंग युद्ध लड़ते हैं तो इधर राम को भी रावण के साथ घनघोर युद्ध करते हुए दिखाया गया। सम्राट अशोक धम्म राज्य स्थापित करते हैं तो इधर राम राज्य स्थापित करते हैं। अशोक बौद्ध उपगुप्त महाथेरो को अपना मंत्री (अमात्य) बनाते हैं तो राम ब्राह्मण वशिष्ठ को अपना अमात्य बनाते हैं। भिक्खुओं के निर्देश पर अशोक ब्राह्मणों के सारे अधिकार छीन लेते हैं, जिससे ब्राह्मण के बच्चे मरने लगते है तो इधर रामायण में उन मरते बच्चों को लेकर ब्राह्मण राम की तरफ आता है और बौद्ध तपस्वी रुपी शम्बूक की हत्या करने का निर्देश देता है। सम्राट अशोक अपनी पत्नियों को मान सन्मान देते हैं तो राम गर्भवती सीता को वन में छोड़ देते हैं। इस तरह धम्मवादी अशोक को ब्राह्मणवादी राजा राम के माध्यम से ब्राह्मणों ने काउन्टर किया है। राम का आदर्श ब्राह्मणों ने रामायण के माध्यम से राजा और प्रजा के सामने इतने बड़े पैमाने पर प्रचारित किया कि गुप्त काल के बाद सम्राट अशोक का नामोनिशान मिटा दिया गया और राम एक आदर्श ब्राह्मणवादी राजा के रुप में छा गया। उस आदर्श को मानकर गुप्तोत्तर राजा ब्राह्मणवादी बन गये और उन्होंने ब्राह्मणों के निर्देश पर बौद्धों का नरसंहार अभियान शुरु किया। यह नरसंहार कितना भयानक था, इसकी चर्चा हम अगले पृष्ठ में करेंगे।

बुद्ध और अशोक का नाम ब्राह्मणों ने भारत के इतिहास से इतना पूर्ण रुप से मिटा दिया था कि 18 वीं सदी तक कोई सम्राट अशोक को भारत में जानता नही था। जब ब्रिटिशों ने बुद्ध पर खोजबीन, उत्खनन शुरु किया तो भारत में किसी ने भी नहीं पहचाना। तब ब्रिटिश को लगा कि इजिप्त में बड़े-बड़े पिरामिड और विकसित संस्कृति होने के कारण बुद्ध वहां पर पैदा हुए होंगे। तब उन्होंने अपने शोध दल को वहाँ भेजा जहां पर उन्हें पता चला कि बुद्ध भारत में ही पैदा हुए हैं। तब उन्होंने बौद्ध राष्ट्रों में

जाकर बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया और फिर बुद्ध से संबंधित सारी जानकारी सामने आने लगी। उसी तरह सम्राट अशोक के शिलालेख जब सामने आने लगे तो भारत में कोई भी व्यक्ति उन शिलालेख को नहीं पहचान सका था। अंग्रेजों ने काशी के एक पंडित को बड़ी धनराशि देकर शिलालेख पढ़ने को कहा। तब उस पंडित ब्राह्मण ने अशोक के शिलालेखों को युधिष्ठिर का लेख और अशोक स्तम्भ के बीम को लठ बताकर ब्रिटिशों को गुमराह किया और उस ब्राह्मण ने एक जाली किताब भी लिखी थी। लेकिन सन् 1837 में जेम्स प्रिन्सेप ब्रिटिश अधिकारी ने अशोक का वास्तविक इतिहास सामने लाया। इस तरह ब्राह्मणों ने बुद्ध और अशोक के साथ कितनी बदमाशी की यह समझ में आता है। ब्राह्मणों ने बौद्धों के तत्व और विचारों को चुराकर उनका ब्राह्मणीकरण किया। डॉ.बाबासाहब आंबेडकर ने कोलंबो में 'विश्व बौद्ध भ्रातृत्व संमेलन' में एक बात बौद्ध राष्ट्रों के सामने कही थी कि- **''किसी विषय के परंपरा का उचित ज्ञान प्राप्त होने के बाद ही उस बारे में यथार्थ ज्ञान हो सकता है। इसलिए जिस परिस्थिति ने बौद्ध धर्म को जन्म दिया वह भी हमें समझना चाहिए। उसी से बौद्ध धम्म का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होगा। भारत हमेशा के लिए हिंदू धर्म था, यह विचार मुझे मान्य नहीं है। हिंदू धर्म तो सबसे आखिर में विचारों की उत्क्रांति में आया है। वैदिक धर्म के प्रचार के बाद भारत में तीन बार धार्मिक परिवर्तन हुआ है। वैदिक धर्म का रुपांत ब्राह्मण धर्म में हुआ और ब्राह्मण धर्म का रुपांतर बाद में हिंदू धर्म में हुआ। बौद्ध धर्म का समाज का विभिन्न वर्णो में विभाजन हो इसका कडा विरोध था। इस चार्तुयवर्ण का आरंभ ब्राह्मण धर्म ने किया है। फ्रान्स के लिए फ्रॉन्स की राज्य क्रांति जितनी महत्त्वपूर्ण है उतनी ही मानव जाति के लिए बौद्ध धम्म का उदय होना भी महत्त्वपूर्ण है।''**[43]

●●●

संदर्भ :

1) सुभा सुत्त, मज्झिम निकाय 99.13, तेविज्ज सुत्त (दिघ निकाय), 13.2
2) अंबठ्ठ सुत्त, दीघनिकाय, 22-23
3) चांकिसुत्त, मज्झिम निकाय, 95-34,
Nanamoli and Bodhi, 2005, 785
4) अगन्न सुत्त, 3.27.8 (दीघनिकाय, 27)
5) Pali Text Society, P-13, MN. III, pp. 262
6) ODM, I, P-85, II, pp. 202
7) मज्झिमनिकाय II, pp. 74
8) सेला सुत्त, सुत्त निपात, Kenneth R. Normam, II, pp. 96
9) Milind Questions, by- Horner pp. 27, pts, pp. 227
10) अंगुत्तर निकाय, III, 5, 3, 4, 3, धम्मराजा सुत्त
11) अंगुत्तर निकाय, pp. 150, 511, Thera & Bodhi, AM, pp. 14-15
12) Lankawatarsutta, pp. 265, Vaidya
13) बुद्धघोष - विसुद्धीमग्ग, Nanmoli, 1956, 460
14) महाकवि हर्ष कृत नाटक - नागानंद अनुवादक - श्री गंगगाधर इंदूरकर साहित्यशास्त्री, 2003, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ.1
15) मंजुश्री मूलकल्प, भाषांतर - Snellgrove 1956, pp. 205-207
16) The Enlightment Sovereing, By Geogios T. Halkias, p. 1-2
17) Collins, 1998, 425-32
18) Anguttara Nikaya, II, 170
19) Buddhism : The Politics of Compassionate Rule,
Todd Lewis, p.4-5
20) Gord, 1962; Gokhale, 1966, 22
21) Beal, 1983, 63; Strong, 1983, 91-96
22) अशोक के अभिलेख संपादन - डॉ.राजबलि पांडे, पृ.32
23) अशोक के अभिलेख संपादन - डॉ.राजबलि पांडे, पृ.115 (कलकत्ता-वैरार अभिलेख

24) चक्रवर्ती सिंहनाद सुत्त, दिघनिकाय, 26.
25) King Ashoka as a role model of Buddhist Leadership
- Thomas Voss, p.8
26) John Strong the legend of Ashoka, 2008, p. 38
27) Savkisyail 1965
28) Whilshire, 1990 174
29) कुटदंत सुत्त, दिघनिकाय, I, 135-37
30) अंगुत्तर निकाय, III, p. 45, 208
31) Buddhism, The Politics of Compassionate Rule,
By-Todd Lewis, P. 240, अंगुत्तर निकाय, III, CXXXII
32) उपरोक्त, 241
33) Hardships and downfall fo buddism in india, By-Giovalli Verardi, pp.92-93
34) The Legend of bing Ashoka, John s. Strong, p. 293.
35) उपरोक्त, p. 293.
36) Dharma, By- Alt Hiltebeitel, p. 257
37) महाभारत, 12.74.29c-32
38) बुद्धचरित, 2.12
39) Olivelle, xxviii - xxxiv
40) मज्झिमनिकायए 119 पृ.346
41) Siddhi Buter-Inder, 1995, pp.147.
42) Ernst Benz, Buddhism or Comminism :
Which Hols the future of Asia? Transvetion
- Richard and Clara Winston, Great Briten, 1986, pp. 97
43) Dr. Babasaheb Ambedkar Writings and Speeches
Vol. 18, Part 3, pp. 206

भारत में बौद्ध धर्म का पतन किसने, क्यों और कैसे किया?

तथागत बुद्ध ने सिंधुकालीन बौद्ध सभ्यता को पुर्नजीवित करने के लिए धम्म का निर्माण किया था। धम्म का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों को मानवतावादी व्यक्ति बनाने का था। मानव मूल्यों जैसे समता, स्वतंत्रता, बंधुता, न्याय, मुदिता इनके माध्यम से ही मनुष्य का परिवर्तन एक सभ्य इंसान में हो सकता है। व्यक्ति के परिवर्तन से समाज का परिवर्तन और समाज के परिवर्तन से राज्य परिवर्तन और राज्य परिवर्तन से एक विकसित खुशहाल और संपन्न व्यवस्था और सभ्यता निर्माण हो सकता है। इस महान उद्देश्य को ध्यान में रखकर बुद्ध ने काल्पनिक ईश्वरवाद या आध्यात्म के बजाए मानवी मूल्यों पर आधारित धम्म का निर्माण किया। इन मूल्यों की स्थापना के लिए मूल्यों को प्रत्यक्ष आचरण में लाकर प्रचार-प्रसार करने वाले भिक्खु संघ का भी निर्माण किया। इस तरह बुद्ध ने धम्म को एक मानवी मिशन के रुप में चलाया। जिससे सर्वप्रथम समाज में परिवर्तन हुआ और लोगों में उन्नत दृष्टिकोण विकसित हुई। खुद के स्वार्थी फायदे के बजाए लोग संपूर्ण राष्ट्र की उन्नति के लिए धम्म-अभियान में जुड़ने लगे। अनाथपिंडक जैसे बड़े-बड़े व्यापारियों और सुजाता जैसी प्रतिष्ठित महिलाओं ने इस आंदोलन (मिशन) में अपना सर्वस्व त्यागकर धम्म को महत्त्वपूर्ण सामाजिक अधिष्ठान दिलाया। इन प्रतिष्ठित लोगों के धम्म के साथ जुड़ने से सामान्य प्रजा भी धम्ममय हो गई। जैसी प्रजा वैसा राजा, इस कहावत के अनुसार प्रजा को धम्ममय देखकर राजा भी धम्मानुयायी बनने लगे। सम्राट अशोक के काल तक धम्म का सामाजिक प्रभाव इतना बढ़ा कि ब्राह्मणों की अनितीमान धर्म व्यवस्था और बौद्धों की नीतिमान व्यवस्था में लोगों और राजाओं को स्पष्ट भेद दिखने लगा। सम्राट अशोक के पिता बिंबिसार के राजमहल में हर दिन 10 हजार ब्राह्मण भोजन करते थे, लेकिन उनमें शिस्तबद्धता, वैचारिकता और नीतिमत्ता का पूर्णतः अभाव था। एक दिन राजपुत्र अशोक खिड़की में बैठते हुए रास्ते से जा रहे एक बौद्ध भिक्खु को देखते हैं। उसकी शांत, प्रसन्न मुद्रा और विनयशीलता और युद्ध आचरण से वे अत्यंत प्रभावी हुए। उस भिक्खु को चर्चा के लिए अपने सभागृह में बुलाया। उनकी वैचारिक प्रगल्भता, नीतिमत्ता और शुद्ध आचरण देखकर अशोक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने दूसरे ही दिन असभ्य जंगली ब्राह्मणों को मुफ्त में खाना देना बंद कर दिया और उनकी

जगह पर बौद्ध भिक्खुओं को भोजन दान शुरु किया। उसके बाद सम्राट अशोक इतने बदले की सभी महत्त्वपूर्ण जगहों से ब्राह्मणों की छुट्टी कर दी और उनकी जगहों पर बौद्ध भिक्खुओं को स्थान दिया। बौद्ध धम्म की वजह से ब्राह्मणों की वर्चस्ववादी व्यवस्था सम्राट अशोक ने एक झटके में खत्म कर दी और उन्हें जमीन पर लाकर खड़ा कर दिया। इसलिए एक अभिलेख में सम्राट अशोक कहते हैं कि पहले लोग आपस में मिलते नहीं थे, एक दूसरे को ऊंच नीच समझते थे, लेकिन धम्म के प्रभाव में आकर सभी एक समान हो गए है और आपस में बिना हिचकिचाहट खुले मन से मिल रहे हैं। ब्राह्मणों के लिए यह सबसे बड़ी हार थी। इससे तिलमिलाकर अपना खोया हुआ वर्चस्व पुनः प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म के खिलाफ घृणात्मक हिंसा अभियान चलाया। उसकी अंतिम परिणती बौद्ध सम्राट बृहद्रथ मौर्य की हत्या से हुई। इस हिंसक अभियान ने ब्राह्मणों की प्रतिक्रांति को जीत दिलाई और उसके बल पर उन्होंने ब्राह्मण साम्राज्य की नींव डाली। लेकिन ब्राह्मण पुष्यमित्र शुंग का साम्राज्य केवल मगध तक ही सीमित था और बाकी बौद्ध राजाओं ने उससे अपने संबंध तोड़ दिये। इसलिए शुंग के काल में ब्राह्मण केवल मगध प्रांत में कुछ हद तक बौद्ध धर्म को हानि पहुंचा सके। लेकिन भारत के अन्य भागों में बौद्ध धर्म अच्छी तरह विकसित था। घृणा में जलते हुए ब्राह्मण केवल इतने से संतुष्ट नहीं थे, वें संपूर्ण भारत खंड में से बौद्ध धर्म को उखाड़कर फेंकना चाहते थे और भविष्य में बुद्ध और अशोक का नाम तक न रहे जाए उन्होंने ऐसी योजना बनाई। इसके तहत उन्होंने सबसे पहले बौद्ध धर्म के खिलाफ ब्राह्मण धर्म के पास लोगों या राजाओं को आकर्षित करने के लिए कोई वैचारिक मसाला नहीं था, तब ब्राह्मणों ने बौद्धों के ही वैचारिक तत्त्वज्ञान, संकल्पना और प्रतिकों का ब्राह्मणीकरण करना शुरु किया। इन बौद्ध प्रतिकों और कथाओं का ब्राह्मणीकरण होने की वजह से उनको मानने वाली बौद्ध जनता भी धीरे-धीरे ब्राह्मणवादी बनती चली गई। बौद्ध कथाओं में महत्त्वपूर्ण पात्र बुद्ध, धम्म और संघ के अनुयायी रहते थे, जिससे प्रभावित होकर जनता बौद्ध धम्म अनुकूल बनती थी। ब्राह्मणों ने बौद्ध कथाओं के पात्रों को चुराया और उनको ब्राह्मण अनुकूल दिखाना शुरु किया, जिससे जनता भी ब्राह्मणवादी बनती चली गई। उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो बौद्ध जातक कथा का महत्त्वपूर्ण पात्र बोधिसत्व राम बुद्ध के अनुयायी हैं और वह धम्म का तत्त्वज्ञान बताते हैं। लेकिन ब्राह्मणों ने इसी बोधिसत्व राम को रामायण कथा लिखकर उसमें उसे ब्राह्मणवादी दिखाया। उनके बाप दशरथ राजा को बदलकर

उसकी जगह पर ब्राह्मण ऋषि श्रृंग को बताया, जिससे राम भी रामायण में ब्राह्मण पुत्र बन गये। बौद्ध साहित्य में धम्म राजा का गुरु बौद्ध भिक्खु रहता है जैसे कि सम्राट अशोक का गुरु उपगुप्त महाथेरो थे, लेकिन रामायण में ब्राह्मणवादी राम के गुरु ब्राह्मण वशिष्ठ को दिखाया है। उपगुप्त महाथेरो के प्रभाव में आकर सम्राट अशोक ने संपूर्ण जम्बूद्विप को बौद्धधर्मीय बनाया था। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने विदेशों में भी बौद्ध धर्म फैलाया और इस तरह उसने एक आदर्श धम्म राज्य की स्थापना की जो बुद्ध के सपनों का राज्य था। इसका वर्णन बौद्ध साहित्य में बड़े आकर्षक तरिके से किया गया है। सम्राट अशोक के आदर्शो पर चलकर भारत और दुनिया के अनेक राजाओं ने खुद को धम्म राजा घोषित कर अपने-अपने समय में अपने प्रांतो में धम्म राज्य स्थापित किया।

बौद्ध धर्म को नष्ट करने के लिए सम्राट अशोक आदर्श धम्मराजा की छवि नष्ट करना और उसकी जगह पर ब्राह्मणवादी आदर्श राजा का निर्माण करना ब्राह्मणों के लिए जरुरी बन चुका था। लेकिन ऐसा कोई ऐतिहासिक राजा भारत या दुनिया में नहीं हुआ, जिसने ब्राह्मणवाद पर चलकर ब्राह्मण राज्य की स्थापना की हो। इसलिए ब्राह्मणों ने अशोक के चरित्र को ध्यान में रखकर काल्पनिक ब्राह्मणवादी राजा, कथानक रुप में जनता के सामने रखने की योजना बनाई और उस योजना को ध्यान में रखकर मौर्योत्तर काल में उन्होंने रामायण-महाभारत की रचना की। रामायण का आदर्श ब्राह्मणवादी राजा राम ब्राह्मणों के इशारों पर अपना राजकाज चलाते हुए ब्राह्मण विरोधी बौद्धों को शूद्र के नाम से दंडित करता है। यह आशय राजाओं में इतने बड़े पैमाने पर ब्राह्मणों ने फैलाया कि अनेक गुप्त राजा खुद को कट्टर ब्राह्मणवादी समझने लगे। दूसरे चंद्रगुप्त ने अपने ब्राह्मण मंत्री कालिदास के इशारे पर बौद्धधर्मी शकों पर हमले किए। व्हिलर का कहना है कि रामायण में जो राक्षस वर्णित है वह वास्तव में ब्राह्मणों के विरोधी बौद्ध हैं। आगे वह यह कहते हैं कि इन बौद्ध राक्षसों को नष्ट करने के लिए ब्राह्मणों ने विष्णु के हिंसक अवतार का अतिरंजित वर्णन किया है, ताकि राजा खुद को विष्णु का अवतार समझकर ब्राह्मणों के इशारे पर बौद्धों का दानव के रुप में खात्मा कर सके।[31] व्हिलर महोदय आगे यह कहते हैं कि घृणा अभियान के तहत ब्राह्मणों ने बौद्धों के विहारों को जलाकर नष्ट किया। इसका उदाहरण सारनाथ है, जहां पर उत्खनन में भारी मात्रा में जली हुई राख और अनाज मिले थे।[2] बुचानन का यह कहना है कि वायु पुराण के गया महात्म्य में जो गया सूर बताया गया है वह वास्तव

में बुद्ध ही है।[3] इस पर राजेंद्र लाल मित्र कहते हैं कि वह गयासूर वास्तव में तथागत बुद्ध है[4] जो ब्राह्मणों के पाखंड को महत्त्व नहीं देते थे। ब्राह्मणी देवताओं ने उसके सिर पर बैठकर उसे जमीन में गाड़ने की न केवल कोशिश की, बल्कि जमीन में गाड़ दिया। इसका मतलब यह है कि ब्राह्मणों ने बुद्ध स्तूप को शिवलिंग में परिवर्तित किया और बुद्ध स्तूप को जमीन मे गाड़कर बुद्ध का अस्तित्व मिटाने के लिए स्तूप के उपरी हिस्से को शिवलिंग कहना शुरु किया। सर मेजर जनरल कनिंघम भी यही कहते हैं कि महादेव के शिवलिंग वास्तव में बौद्ध स्तूप है।[5] एस.पी. गुप्ता ने भी ग्रंथ में लिखा है कि गुप्त काल में सम्राट अशोक के स्तूप को ब्राह्मणों ने मंदिर में परिवर्तित किया और सम्राट अशोक का जो शिलास्तम्भ था उसको शिवलिंग में परिवर्तित किया।[6] इसी तरह Ulrich Wieshner ने दावों के साथ सिद्ध किया है कि बौद्धों के मनौती स्तूपों को (Votive Stupa) ब्राह्मणों ने शिवलिंग में परिवर्तित किया। गुप्त राजाओं के उदाहरण से सिद्ध होता है कि मौर्योत्तर काल में ब्राह्मणों ने राजाओं के माध्यम से बौद्ध प्रतिकों को ब्राह्मणवादी प्रतिकों में बदलने का अभियान चलाया था।[7]

रेव्ह.विलियम टेलर कहते हैं कि ब्राह्मणों के लिखे हुए महाकाव्यों और पुराणों को डीकोड करना जरुरी है। तभी भारत का वास्तविक बौद्ध बनाम ब्राह्मण संघर्ष सामने आएगा।[8] यही बात डॉ.बाबासाहब आंबेडकर ने भी कही थी। टेलर आगे कहते हैं कि ब्राह्मणों की परशुराम कथा भी बौद्ध राजाओं पर ब्राह्मणों के विजय को दर्शाती है।[9] टेलर और आगे कहते हैं कि भारत पर आक्रमण करने वाले विदेशी ब्राह्मणों ने खुद की हिंसक पहचान छुपाने के लिए अपने पुरखों को परशुराम जैसे मिथकों के रुप में कथा को प्रस्तुत किया।[10]

गयासूर का आकार गया महात्म्य में 576 X 268 मील बड़ा है, ऐसा वर्णन किया है, जो कलिंग और बंगाल से हिमालय तक फैला होता है। इस प्रदेश में बौद्ध धम्म प्रमुख धर्म था। गया बुद्ध का सिर समझा गया है, इसलिए गया में बुद्ध के सिर पर बैठकर ब्राह्मणी देवताओं ने उसे जमीन में गाड़ दिया। पुरी बुद्ध की नाभी है और जजपुर छाती है।[11]इसको काउन्टर करने के लिए ब्राह्मणों ने विष्णु को सामने लाया, जो अपना पैर गया में रखकर पद्म कोणार्क में रखकर, गदा जजपुर में रखकर, चक्र भुवनेश्वर में रखकर और शंख को पुरी में रखा हुआ दिखाकर बुद्ध के अस्तित्व को इसके माध्यम से मिटा दिया। इसका अर्थ यह है कि यह सभी स्थल बौद्ध स्थल थे। ब्राह्मणों ने इन स्थलों का विष्णु के विभिन्न प्रतिकों के रुप में ब्राह्मणीकरण करके बुद्ध के अस्तित्व

को मिटा दिया।[12] इस तरह हिंसा के साथ-साथ ब्राह्मणों ने बोधिवृक्ष को कल्पवृक्ष के रुप में, बौद्ध विहारों को मंदिरों और बौद्ध परंपराओं को हिंदू परंपराओं के रुप में निगल लिया। इस तरह बौद्धों को हिन्दू बना लिया।[13] यही बात इलियट प्रसिद्ध ब्रिटिश शोधक ने भी मान्य की है। बौद्ध प्रतिकों को ब्राह्मणों ने शांति से नहीं, बल्कि आक्रामक तरिके से उसपर कब्जा जमा लिया था। राजेंद्र लाल मित्रा कहते हैं कि बौद्ध विहार को हिंदू मंदिर में रुपांतरित करने के लिए ब्राह्मण पहले उस विहार के एकदम सामने छोटा सा मंदिर बनाते थे और विहारों में होने वाली सभी बौद्ध धार्मिक प्रार्थना और क्रियाकर्मो की अपने मंदिर में नकल करते थे। इससे यह सिद्ध होता था कि बौद्धों को दोनों में फर्क नजर नहीं आता था।[14] और फिर ब्राह्मण विहार में घुसकर वहां पर धार्मिक क्रिया कर्म करते थे और विहार को अपने कब्जे में करने के बाद फिर उस विहार का स्वरुप मंदिर में बदल देते थे। इस बात का उदाहरण खुद फहियान ने अपने प्रवास वर्णन में श्रावस्ती के बारे में दर्ज किया है, जहां पर ब्राह्मणों ने इसी तरिके से अशोक के बनाए बौद्ध विहार के सामने एक मंदिर बनवाया था। बाद में उस मंदिर के बहाने सामने वाले बौद्ध विहार पर कब्जा जमाकर उसको ब्राह्मणवादी मंदिर में परिवर्तित किया था।[15] इसी तरह बुद्धगया में महाबोधि महाविहार के पास ही जगन्नाथ मंदिर के नाम से छोटा सा मंदिर बनवाया था। अब वह आसपास की काफी जगह घेर चुके हैं। शंकराचार्य ने भी उस जगह पर कब्जा किया था। महाबोधि महाविहार के फैसले में यह बात स्पष्ट तौर पर दर्ज है कि मूल बौद्धों को हिंदू बनाने के लिए ही बौद्धों के विहारों पर ब्राह्मणों ने कब्जा किया।

खास बात यह है कि मथुरा में बौद्ध धर्म का पतन सन् 1017 में हुए मुहम्मद गजनी के आक्रमणों के पहले ही ब्राह्मणों ने कर दिया था। कनिंघम ने अपने पुरातात्विक शोध में कहा है कि मथुरा में एक विशालकाय बौद्ध स्तूप था, ब्राह्मणों ने जोर-जबरदस्ती से उस स्तूप को मंदिर में परिवर्तित किया और फिर मुहम्मद गजनी के आक्रमण के समय उसने ब्राह्मणों के उस मंदिर को मस्जिद में परिवर्तित किया।[16] सर मेजर जनरल कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में बर्मा के एक बौद्ध मिशन का जिक्र किया है। भिक्खुओं के इस दल को बर्मा के राजा धम्माझेदी ने 1472 में बुद्धगया को भेंट देने के लिए भेजा था। इस दल ने यह देखा कि बुद्धगया में ब्राह्मणों ने सन् 1308 में कब्जा जमाया था और बुद्ध विहार के सामने एक विशाल पत्थर था, जिसके उपर बुद्धपद के चिन्ह थे, जिसे ब्राह्मण विष्णु पद के नाम से पूजा कर रहे थे। कनिंघम महोदय कहते है कि

बुद्ध पद वाला वह विशाल पत्थर वास्तव में जमीन के नीचे डूबे विशालकाय स्तूप का ऊपरी हिस्सा था और जमीन के नीचे बहुत बड़ा स्तूप था।[17] कनिंघम कहते हैं कि अभी वर्तमान में महंत और उसके 200 शिष्यों ने बुद्ध विहार पर कब्जा किया है। बौद्धों और जैनों को ब्राह्मणों ने हिंसा के माध्यम से किस तरह खत्म किया, इसका उदाहरण माधवाचार्य और कृष्णमिश्रा ने 'प्रबोधचंद्रोय' नामक ग्रंथ में विस्तृत तरिके से वर्णन दिया है, ऐसा कनिंघम महोदय कहते हैं।

फर्गुसन कहते हैं कि हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद बौद्धों का पतन बहुत तेजी से संपूर्ण भारत में हुआ और बौद्ध धर्म केवल बंगाल और बिहार में पाल वंश की वजह से 12 सदी तक जीवित रहा।[18]

बौद्ध धर्म में व्यापार को प्रोत्साहन दिया था।[19] इसलिए संपूर्ण एशिया में बुद्ध स्तूप प्रमुख व्यापारी मार्गो पर बनाये गये थे और बौद्ध विहार व्यापार के केंद्र बन चुके थे। महाराष्ट्र में नालासोपारा, तगर, उत्तर भारत में साकेत, पाटलीपुत्र, सियालकोट जैसे महत्त्वपूर्ण व्यापारी प्रसिद्ध केंद्र बन चुके थे। बौद्ध लोग अलग-अलग श्रेणियों में काम करते थे। हर एक व्यवसाय अलग श्रेणी में होती थी। तेल बनाने वाले, मिट्टी के बर्तन बनाने वाले, लकड़ी का काम करने वाले और ऐसे विभिन्न कौशल्यपूर्ण काम करने वाले बौद्ध कारिगर अलग-अलग श्रेणियों में रहते थे और उन्हीं श्रेणियों को हषवर्धन के बाद काम के आधार पर जातियों का नाम दिया गया।[20] संपूर्ण भारत में व्यावसायिक वर्ग से संबंधित बौद्धों ने व्यापारी मार्गो पर बड़े-बड़े बिहार, संघाराम, गुफाएं बनवाये थे। बौद्धों का व्यापार केवल भारत में नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ॲलेक्झांड्रीया शहर से सिल्क रुट के माध्यम से संपूर्ण दुनिया में फैला था। बौद्धों को पराजित करने के लिए ब्राह्मणों ने गुप्तोत्तर काल में व्यापार की जगह पर खेती का महत्त्व बढ़ाया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बंद करने के लिए मनुस्मृति के माध्यम से समुद्र बंदी कर दी गयी। क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से बुद्ध धर्म अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो गया था। बौद्ध धर्म को रोकने के लिए खेती पर आधारित बंदिस्त व्यवस्था बनाई। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने व्यापारिक महामार्ग बंद किये, जिससे बौद्धों का व्यापार खत्म हुआ और वे छोटे-छोटे कुशल कारिगर के रुप में ब्राह्मणवादी बंदिस्त जाति व्यवस्था के शिकार हो गए।[21] जो व्यवस्था कृषि पर आधारित बनाई गई थी, इसका अर्थ यह है कि आज के कुशल कर्मकार, कुर्मी, लोहार, सुतार, सोनार आदि यह सभी प्राचीन भारत में बौद्ध थे।

गुप्त राजाओं ने ब्राह्मणों को बड़े-बड़े भूदान (ब्रह्मदेय) देकर उनको शासक बनने में मदद की। मंजुश्री मूलकल्प में समुद्रगुप्त के बारे यह बताया गया है कि उसका एक सलाहकार ब्राह्मण मंत्री अत्यंत बदमाश था और समुद्रगुप्त उसके जैसे अनेक बदमाश ब्राह्मणों के साथ में लेकर दुष्ट राजा बन चुका था। उसके राज्यकाल में पूरी पृथ्वी बिमार पड़ चुकी थी। जिसकी वजह से वह अनेक बार चकराकर गिर पड़ा और अंत में अत्यंत दुःखी होकर मर गया।[22] ब्राह्मणों के जाल में फसकर राजाओं की कितनी बुरी दुर्गति होती थी, इसका यह उत्तम उदाहरण है।

गुप्त काल में ही ब्राह्मणों ने कलियुग पर आधारित साहित्य की रचना शुरु की। उसमे व्यापार करने वाले बौद्ध वैश्य (श्रेष्ठी) को अराजकता का मुख्य कारण बताया। वायु पुराण में यह वर्णन है- कलियुग में लोग स्थानियों को महत्त्व नहीं देंगे। वेदों को नकारेंगे, ब्राह्मणों को अपमानित करेंगे... इसलिए ब्राह्मण वेद और यज्ञों को छोड देंगे। राजा शूद्रों के बनेंगे और वे बौद्धों का समर्थन करेंगे। शूद्र लोग तपस्या करने लगेंगे। इस युग में लोग ज्यादातर व्यापारी बनेंगे। इस युग के अंत में शूद्र मुंडक बनकर चीवर परिधान करते हुए इंद्रियों पर नियंत्रण करेंगे। शूद्र लोग धर्म के प्रमुख बनेंगे और वेदों को कोई पूछेगा नहीं।[23]

इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि बौद्धों के प्रति मन में घृणा रखते हुए उनकी कितनी बदनामी कलियुग के नाम से की है इसका पता चलता है। इसी तरह विष्णु धर्म उपपुराण में यह कहा गया है कि ''दुष्ट शूद्र संन्यस्त भिक्षु बनकर द्विजों की सेवा करना छोड देंगे और उनके अपने धर्म का पालन करेंगे। उनमें से कुछ सुगत बनेंगे, कुछ महायानी बनेंगे तो कुछ शाक्य (शाक्त), श्रावक, निर्गंध (जैन) और सिद्ध पुत्र बनेंगे। संन्यस्त बनकर यह दुष्ट शूद्र भीख मांगकर दूसरों के अन्न पर अपना उदरनिर्वाह करेंगे'' इस तरह से शूद्रों का अपना मूल धर्म बौद्ध धर्म है, यह इसमें स्पष्ट लिखा है। आगे सत्रीसन्मत ग्रंथ में ब्राह्मण लिखते हैं कि - ''अगर बौद्ध, पाशुपत, जैन, लोकागत, कपिल इन लोगों के साथ अगर ब्राह्मणों को स्पर्श होता है तो ब्राह्मणों को तुरंत पानी से नहाकर शुद्ध करना चाहिए। लेकिन अगर कापालिक से स्पर्श होता है तो ब्राह्मण को नहाने के बाद प्रणायम भी करना चाहिए।[24] इससे सिद्ध होता है कि बौद्धों से नफरत के चलते ब्राह्मणों ने उनसे स्पर्श करना भी अशुद्ध समझा, जिससे अस्पृश्यता का जन्म हुआ। धर्म के घृणा अभियान से ही अस्पृश्यता का निर्माण हुआ और सभी बौद्ध को शूद्र और वर्णबाह्य (अतिशूद्र) घोषित कर ब्राह्माणों का गुलाम बनाया।

रामायण में इन्हीं बौद्ध शूद्र को शम्बूक के रुप में ब्राह्मणवादी राजा राम के द्वारा मारते हुए दिखाया गया है, ताकि भविष्य में राजाओं को अशोक के बजाए राम को आदर्श मानकर बौद्धों का संहार करना चाहिए और ब्राह्मणों के वर्णाश्रम धर्म को स्थापित करना चाहिए, यह रामायण के द्वारा संदेश दिया गया है।[25] मनुस्मृति और अर्थशास्त्र में दंडनीति का प्रावधान ब्राह्मणों ने इसलिए रखा, ताकि राजा को इन नास्तिकों का संहार करना चाहिए। इससे प्रेरित होकर हर्षवर्धन के बाद निर्माण हुए पल्लव, विष्णु कुडीन, वाकाटक जैसे राजाओं ने खुद को ब्राह्मणों के वर्णाश्रम धर्म का समर्थक कहा और अनेक अश्वमेध यज्ञ किये। इन राजाओं के समय बौद्धों पर कितने भयंकर अत्याचार होते थे इसका वर्णन सद्धर्म पुण्डरिक सुत्त में किया गया है ''तथागत बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद भी हम बौद्ध सूत्रों का प्रचार जारी रखेंगे। एक समय ऐसा आयेगा कि पाखंडी ब्राह्मण हमें लकड़ियों से पीटेंगे, हम पर थुकेंगे और उनके कहने पर अज्ञानी लोग हमें मारेंगे। राजाओं के सामने ब्राह्मण हमें विहारों से निकाल देंगे और उनपर उनका कब्जा जमाएंगे।''[26]

ब्राह्मणों ने बड़ी होशियारी से बौद्धों को ही बौद्धों के खिलाफ लड़वाया और खत्म किया। ब्राह्मण संख्या में कम थे और आज भी हैं। अल्पसंख्य ब्राह्मण बहुसंख्य बौद्धों का मुकाबला नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने विष्णु के विभिन्न अवतारों के रुप में कुछ बौद्ध राजाओं का ब्राह्मणीकरण किया। इन बौद्ध राजाओं का इस्तेमाल सामान्य बौद्ध राजाओं के खिलाफ किया। इसका उत्तम उदाहरण वायु पुराण की वामन बनाम बली कथा है। इस कथा का बली पात्र धम्म राजा अशोक का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि अशोक की तरह वह त्यागी और दानशूर है और अशोक की तरह पूरी पृथ्वी पर अपना चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करता है। अशोक अपने राजपुत्रों को संपूर्ण भारत में अलग-अलग प्रांतों के रज्जुक बनाता है। उसी तरह बली भी अंग, वंग, पुण्ड्र, कलिंग जैसे प्रांतों में अपने पुत्रों को अधिकारी बनाता है, जिन्हे 'बालेय क्षात्र' कहा गया है। करुणा और सत्यता का पालन करते हुए वह तीनों लोकों का धर्मराजा बन जाता है।[27] वामन छोटा ब्राह्मण अर्थात संख्या में कम है इसलिए उसे बटु ब्राह्मण के रुप में दिखाया गया है। वह बली को यज्ञ करने को कहता है, लेकिन अशोक की तरह बली यज्ञ का विरोध करता है, तब वह बली से दान मांगता है। सम्राट अशोक अपना संपूर्ण साम्राज्य बौद्ध संघ को दान देता है तो इस कथा में राजा बली अपना संपूर्ण साम्राज्य बटू ब्राह्मण को दान में दे देता है। इस प्रकार अशोक के जगह पर बली

और बुद्ध, संघ की जगह पर ब्राह्मण वामन को दिखाकर ब्राह्मणों ने बौद्ध साम्राज्य हड़प लिया। इस कथा में खास बात यह है कि बली अशोक का प्रतीक बौद्ध अनुयायी है तो वामन को भी बौद्ध भिक्खु संघ प्रतीक छद्मी बौद्ध दिखाया गया है। इस कथा का मतलब यह है कि ब्राह्मणों ने वामन जैसे छद्मी बौद्ध बनकर वास्तविक बौद्धों को मूर्ख बनाया और उनसे सत्ता-संपत्ति हड़प ली। इसका उत्तम ऐतिहासिक उदाहरण कुमारिल भट्ट और आदि ब्राह्मण है। यह दोनों ब्राह्मण जिंदगीभर बौद्ध भिक्खु के रुप में रहे लेकिन, यह दोनों छद्मी शंकराचार्य है। इन दोनों छद्मी बौद्ध ब्राह्मणों ने राजाओं को उकसाकर भिक्खुओं और सामान्य बौद्ध जनता की बड़े पैमाने पर हत्याएं की।[28]

वामन अर्थात झूठा बौद्ध और बली अर्थात सच्चा बौद्ध, इन दोनों की प्रतिमा बदामी गुफा के गुफा नं.2 में है। इसमें वामन के सिर पर बुद्ध के जैसी उष्णीवा है और उसके कान भी बुद्ध के जैसे लंबे हैं, लेकिन वह छद्मी बौद्ध है। इस शिल्प में वामन ब्राह्मण के सामने झूठा बौद्ध राजा (बली) अशोक का वंशज स्थानीय बौद्ध राजा है, जिसे ब्राह्मणवादी चालुक्य राजा (वामन) ने हराया था। इससे यह प्रतीत होता है कि बौद्धों ने ब्राह्मणवादी राजाओं के सामने आत्मसमर्पण कर लिया था। पुराणों में असुरों को मगधमुनी अर्थात शाक्य बुद्ध का अनुयायी कहा गया है। बली भी असुर के कारण बौद्ध राजाओं का प्रतीक है।[29] महात्मा फुले ने भी ब्राह्मण वामन के खिलाफ बली राजा का समर्थन करते हुए मोर्चा खोल दिया था। लेकिन, व्यवहारतः उन्होंने वामन रुपी विष्णु (ब्राह्मण नायक) के खिलाफ आदर्श रुपी बली को बढ़ावा दिया था। नये शोध से अब यह सिद्ध हो चुका है कि राजा बली वास्तव में धम्मराजा अशोक का प्रतीक है। इससे स्पष्ट होता है कि महात्मा फुले भी सम्राट अशोक के करीब जाकर उसके तत्त्वज्ञान का खुलकर समर्थन कर रहे थे।

शंकराचार्य अत्यंत बदमाश ब्राह्मण था। उसका जन्म दक्षिण भारत के कांचीपुरम में सन् 788 में हुआ था। कुमारिल भट्ट की तरह बौद्ध विद्वेश से उसका मन भरा पड़ा था।[30] और किसी भी हालत में बौद्धों को नष्ट करना चाहता था। उसने दक्षिण भारत की प्रसिद्ध बौद्ध गुफा नागार्जुन कोंडा पर अपने सशस्त्र ब्राह्मण अनुयायियों के उपर हमला किया और भिक्खुओं का कत्ल कर वहां के विहारों को भी नष्ट किया। तारानाथ ने शंकराचार्य के इस प्रकार के बौद्ध हत्याकांड का वर्णन उसके किताब में किया है।[31]

Figure 2: Badami, Cave 2. Vāmana and Bali from Trivikrama panel.

आकृति 2 - बदामी, गुफा-2
त्रिविक्रम प्रतिमा में दिखाये गए वामन और बली।

आदि शंकराचार्य का बौद्ध विरोधी क्रूर हिंसक अभियान -

शंकराचार्य की तरह कुमारिल भट्ट भी बौद्धों का कट्टर विरोधी था। बौद्धों के हाथी प्रतीक का विरोध करने के लिए वह खुद को सिंह कहता था। शंकर दिग्विजय में उसका ऐसा वर्णन है कि ''जब कुमारिल भट्ट सिंह गर्जना करते हुए आता था, तब पाखंडी जैन और बौद्धों के हाथी डरके मारे भाग जाते थे। इस तरह उसने बौद्ध धर्म को खत्म करना शुरु किया''[32] शंकराचार्य ने कांचीपुरम में बौद्धों पर हमला करके भगा दिया और उनके बौद्ध विहार को कामाक्षी देव के शक्तिपीठ में परिवर्तित किया। टी.ए.गोपीनाथ ने भी यही मान्य किया है कि कांची का कामाक्षी मंदिर पहले बौद्ध विहार था। शंकराचार्य की वजह से सभी बौद्ध हिंदू बना दिए गए और कुछ थोड़े बचे हुए बौद्ध आज भी बुद्धपल्ली नामक बस्ती में कांचीपुरम के एक कोने में रहते हैं।[33]

माधवाचार्य के शंकर दिग्विजय में यह बताया गया है कि कुमारिल भट्ट ने

सुधन्वन बौद्ध राजा द्वारिका में राज्य करता था। कुमारिल भट्ट ने उसे ब्राह्मणवादी बनाया और उसके माध्यम से बड़े पैमाने पर बौद्धों का हत्याकांड करवाया। कुमारिल का गुरु सुगत नामक एक बौद्ध भिक्खु था। कुमारिल भट्ट ने उसे तेल मिल में पिसकर मार डाला। इसी तरह उसने क्रूरतापूर्वक हजारों बौद्धों को मार डाला। शंकर दिग्विजय में उसके बारे में ऐसा वर्णन है कि उसने हजारों बौद्ध और जैनों की गर्दनें कुल्हाड़ी से काट डाली थी। इस तरह से कुमार भट्ट और शंकराचार्य इन दोनों ने मिलकर बौद्ध धर्म का संपूर्ण भारत में विनाश किया।[34] तारानाथ बताते हैं कि कुमारिल भट्ट ने राजा से मिलकर धर्मकिर्ति (सन् 600 से 660) को भी मारने को कहा। उसने राजा को कहा कि हम दोनों में वाद-विवाद की स्पर्धा लगाओ और जो हार जाएगा उसे मार डालो। धर्मकिर्ति अत्यंत विद्वान बौद्ध भिक्खु थे, वह कुमारिल भट्ट को मारना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस हिंसक स्पर्धा में भाग लेने से नकार दिया और इसके बजाए जो हारेगा उसने जितने वाले की विचारधारा स्वीकार करने का प्रस्ताव राजा के सामने रखा। धर्मकिर्ति ने आखिर में कुमारिल भट्ट को हरा दिया, लेकिन कुमारिल भट्ट ने शर्त पर अमल नहीं किया, बल्कि हिंसा का कार्य जारी रखा।[35]

शंकराचार्य बौद्ध भिक्खु गौडापाद का शिष्य था। गौडापाद ने उसे नागार्जुन का शून्य सिद्धांत सिखाया था। गौडापाद खुद असंग के विज्ञानवाद और नागार्जुन के मध्यमवाद का अनुयायी था। हैकर ने कहा है कि गौडापाद ने उसकी मांडुक्य कारिका बौद्ध प्रभाव में आकर ही लिखी थी। इसलिए उसे ब्राह्मण लोग प्रच्छन्न बौद्ध कहते थे।[36] गौडापाद से प्रभावित होकर शंकराचार्य ने भी अनेक बौद्ध सिद्धांतों को अपनाया। उसने बौद्धों के शून्य सिद्धांत को मायावाद के नाम से प्रचारित किया। बौद्धों के शून्य को ही शंकराचार्य ने ब्रह्म कहा। बौद्ध तत्त्वज्ञान (दर्शन) को ही चुराकर उसका ब्राह्मणीकरण किया।

तथागत बुद्ध ने अनित्यतावाद का सिद्धांत रखा था, जिसके अनुसार विश्व की प्रत्येक चीज अनित्य है और हमेशा परिवर्तनशील है। अर्थात नदी के प्रवाह की तरह संपूर्ण विश्व सतत गतिमान और प्रवाही है। इसलिए इस दुनिया में अंतिम स्थिर ऐसी कोई चीज नहीं है। इसलिए दुनिया एक श्रम के जैसी है। आज हम जिस अवस्था में अपने आस-पास के संसार और वस्तुओं को देखते हैं, उसे कल वही स्वरुप में देखेंगे। व्यक्ति बचपन में जैसा दिखता है वैसा जवानी में दिखता है वैसा बुढ़ापे में नहीं दिखता। इस प्रकार बदलाव एक वैश्विक सत्य है, जिसे बुद्ध ने अनित्यतावाद कहा। इस

बदलाव का विश्व में अगर एक ही जगह स्थिर रहने की कोई कोशिश करेगा तो वह टिक नहीं पाएगा। ब्राह्मणों का आत्मवाद सिद्धांत एक ऐसा सिद्धांत है, जो बदलते विश्व में आत्मा के अमर होने का दावा करता है। इसे बुद्ध ने एक बड़ा भ्रम कहा है। बुद्ध के सिद्धांत और अधिक स्पष्ट करने के लिए नागार्जुन ने शून्य सिद्धांत विकसित किया। दुनिया की प्रत्येक चीज एक ना एक दिन नष्ट होकर शून्य में विलीन होने वाली है। इसलिए व्यक्ति को प्रत्येक चीज की तरफ शून्य के रुप में देखना चाहिए, ऐसा उसका कहना था। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए शंकराचार्य ने भी यही कहा कि संपूर्ण विश्व एक मिथ्या परिकल्पना है। क्योंकि वह हमेशा बदलता रहता है और इसलिए उसमें शाश्वसता की कोई गारंटी नहीं है। इसके बजाए शून्य अर्थात ब्रह्म एक शाश्वत सत्य है। क्योंकि उसमें विश्व की सभी चीजें विलीन हो जाती है। इसलिए शंकराचार्य कहते है ब्रह्म सत्य जगत मिथ्य! अर्थात बुद्ध के निर्वाण को ही शून्य या ब्रह्म कहकर और अनित्यतावाद कहकर उसने अप्रत्यक्ष रुप में बौद्ध दर्शन को ही स्वीकारा था।[37] इस सिद्धांत को उसने वेदांत अर्थात वेदों का अंत करने वाला सिद्धांत कहा है। बुद्ध भी वेद विरोधी थे। इसलिए शंकराचार्य ने इतना हाहाकार मचाकर क्या हासिल किया? उसने बड़ी चालाकी से बौद्धों की हत्या करके, बौद्ध दर्शन को चुराया और उसे वेदांत के नाम से प्रचारित किया।

शंकराचार्य ने बुद्ध को निगलने के लिए बुद्ध को ही विष्णु का नौवां अवतार घोषित किया। नेहरु ने भी इस बात को मान्यता दी है, लेकिन बुद्ध से शंकराचार्य को महान कहा है। बुद्ध का दर्शन चुराकर बुद्ध को ही विष्णु का अवतार घोषित करने वाला ब्राह्मण शंकराचार्य और उसकी ब्राह्मणी फौज कितनी बदमाश है? इसका इस अध्ययन से पता चलता है।

शंकराचार्य ने बौद्ध विहारों को ब्राह्मणवादी मठों में तब्दिल किया और उन मठों में उसने शस्त्रधारी ब्राह्मणों को रखा। यही उसकी सैन्य शक्ति थी। शंकराचार्य से प्रेरित होकर ही अपने सशस्त्र कार्यकर्ताओं की फौज बनाई है, ऐसा लगता है। शंकराचार्य ने शस्त्रधारी लड़ाकू नागा साधुओं की फौज तैयार की थी। यह फौज उसने बौद्ध भिक्खुओं को नागा साधुओं में करने के लिए वह उसके कपड़े उतारकर नंगा कर देता था और पंचशील का पालन करने वाले भिक्खुओं को नशेड़ी साधू बनाता था। अहिंसक भिक्खुओं को हिसंक बनना चाहिए, इसलिए उनके हाथ में शस्त्र थमा देता था। इन्हीं शस्त्रधारी नंगे (नागा) साधुओं की मदद से बाकी बचे हुए बौद्ध भिक्खुओं

और बौद्ध जनता का भारी पैमाने पर कत्लेआम किया। शंकराचार्य के इस नागा फौज के बारे में जेम्स मॅकनाथ कॅम्बे लाने सन् 1898 में यह लिखा कि- ''यह लोग मठों में लड़ने की ट्रेनिंग देते थे और राजाओं की सेना में भी काम करते थे। उनकी मदद लेने के लिए राजाओं को कुछ वेतन देने की जरुरत नहीं पड़ती थी। सिर्फ उन्हें मान-सन्मान देना पड़ता था। इन साधुओं के मुखिया को बप्पा कहा जाता था और इनका इस्तेमाल वलभि के राजा को अगर इस साधु सेना का इस्तेमाल लड़ाई में करना हो तो राजा को बप्पा मुखिया के पैर पड़ना पड़ता था। इस प्रक्रिया को बप्प पद कहा जाता था। चौथे वलाभि शिलादित्य ने इसी तरह से बावा या बप्पा के पैर छुकर उसके साधु सेना की मदद से लड़ाई ली थी। इसलिए उस राजा को 'बप्पापादानु ध्याता' कहा गया है।'' इन्ही साधुओं ने मुस्लिमों के खिलाफ अयोध्या में जंग लड़ी थी।

सामंतवाद के माध्यम से ब्राह्मणों ने बौद्धों को दबाया-

प्राचीन बौद्ध भारत में बौद्धों का व्यापार बड़े पैमाने पर देश-विदेशों में फैला हुआ था। बौद्धों को पराजित करने के लिए ब्राह्मणों ने व्यापार को नष्ट किया और उसकी जगह पर सामंतवाद को जन्म दिया। गुप्त काल के बाद ब्राह्मणों ने सामंतवाद को बढ़ावा देना शुरु किया था। ब्राह्मणों को बड़ी-बड़ी जमीनें दान देनी चाहिए, ऐसा धार्मिक आदेश महाभारत ने दिया था। उसके अनुसार गुप्त और गुप्तोत्तर राजाओं ने ब्राह्मण को बड़े पैमाने पर जमीनें दान देना शुरु किया था। ब्राह्मण उन जमीनों का मालिक बनते थे और उसके अधीन अनेक गाँव आते थे। मजदूरों की संख्या बढ़ाने के लिए ब्राह्मणों ने बौद्धों का व्यापार बंद किया और अलग-अलग श्रेणी के कुशल कारीगर बौद्धों को उनके काम के अनुसार जाति में विभाजित किया। ब्राह्मण उसके प्रदेश का मालिक होने के कारण राजा उसके व्यवहार में हस्तक्षेप नहीं करता था। राजा को सिर्फ ब्राह्मणों से वसूली का इंतजार रहता था। अधिक उत्पादन निकालने के लिए ब्राह्मणों ने कारीगरों को जातियों में बंदिस्त किया और कम दामों में अधिक मुनाफा कमाना शुरु किया। इस प्रकार ब्राह्मण बौद्ध जनता को लूटने वाले सांमत बने और मध्ययुगीन काल में सांमती व्यवस्था के साथ जाति व्यवस्था का निर्माण हुआ।[39] मगध प्रांत या वर्तमान बिहार में आज भी सामंती व्यवस्था दिखाई देती है। भूमिहार ब्राह्मणों के पास भारी मात्रा में जमीनें है। इस ब्राह्मणवादी सामंती व्यवस्था को डॉ.बाबासाहब

आंबेडकर ने कानून लाकर संवैधानिक रुप में खत्म किया।

ब्राह्मण राजा के अंतर्गत राज्य के विविध प्रांतो में सामंत के रुप में जमीनदार बन चुके थे। लेकिन उसके साथ-साथ पुरोहितगिरी का भी काम करते थे। इसलिए जब ब्राह्मण नये इलाके में सामंत के रुप में रहने के लिए जाते थे, तो वहां सबसे पहले वह बौद्ध विहार को मंदिर में परिवर्तित करते थे। जो बौद्ध लोग ब्राह्मणों का हिंसामयी रुप देखकर शरण आते थे उनको स्थान देते थे। लेकिन जो बौद्ध लोग ब्राह्मणों का विरोध जारी रखते थे, उनको ब्राह्मण नीचले पायदान पर रखते थे। राजा ब्राह्मणों के धार्मिक व्यवहार में हस्तक्षेप नहीं करते थे, क्योंकि धर्म के माध्यम से ब्राह्मण सामंत जनता को पहले ही नियंत्रित कर राजा का काम आसान करते थे। मंदिर में बड़े-बड़े दान जनता से मांगकर राजा का वित्त बढ़ाते थे, इसलिए राजाओं को भी ब्राह्मणों से कोई आपत्ति नहीं थी। इस प्रकार मध्ययुगीन काल में ब्राह्मण और राजाओं का गठबंधन बौद्ध जनता के खिलाफ तैयार हो गया था, जिससे बौद्ध धम्म का पतन हो रहा था।[40]

ब्राह्मणों के भूदान को घटिका स्थान कहा जाता था, जिसमें राजा के सैनिकों को प्रवेश करने की पाबंदी होती थी। इसका उदाहरण परिव्राजक राजा हस्तिन के समय का मिलता है, जिसने अपने राज्य काल सन् 475 में शुरु किया था।[41] इस राजा ने मध्य प्रदेश के रेवा-सतना इलाके में अपना राज्य चलाया था। जैसे-जैसे ब्राह्मणों के कब्जे में जमीनें चली गई, वैसे-वैसे बौद्धों का पतन होता गया। ब्राह्मणों ने यह नियम बनाया था कि एक बार यज्ञ हो गया तो उसके आस-पास की पूरी जमीनें ब्राह्मणों की होगी। इसका वर्णन वामन-बलि पुराण कथा में मिलता है, जिसमें विष्णु कहता है कि एक बार यज्ञ होने के बाद ब्राह्मणों के उस जमीन पर असुरों को पैर नहीं रखना चाहिए।[42] राजाओं को ब्राह्मणों को यज्ञ करने के लिए जमीन दान देनी चाहिए अन्यथा उनका पतन होगा, ऐसी धमकी महाभारत के अनुशासन पर्व में दी है। ''राजा को ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक निमंत्रित कर उन्हें जो चाहिए वो देना चाहिए। क्योंकि अगर ब्राह्मण गुस्से में आया तो वह जहरिले साँप से भी अधिक खतरनाक बन जाता है।''[43] इसी अनुशासन पर्व में राजाओं को डराने के लिए आगे यह कहा है कि ''ब्राह्मण जलते निखारे जैसा रहता है, जो संपूर्ण पृथ्वी को जला सकता है।''[44] इस तरह ब्राह्मणों ने हिंसा के माध्यम से केवल बौद्ध जनता को ही नहीं, बल्कि राजाओं को भी अपने काबू में किया। अगर कोई सामाजिक गुट ब्राह्मणों का विरोध करे तो उसे अछूत घोषित किया जाता था। **यह परिस्थिति हमें दक्खन में अधिक दिखाई देती है, जहां**

पर बौद्धों ने बड़े पैमाने पर ब्राह्मणों के सामने घुटने नहीं टेके, जिसमे दक्खन में अछूतों की संख्या अधिक मात्रा दिखाई देती है।[45] यह परिस्थिति 7 वीं सदी तक पूर्ण रुप से संपूर्ण भारत में निर्माण हो चुकी थी। केवल मगध प्रांत में बौद्धों का वर्चस्व बचा हुआ था, ऐसा वर्णन इंजिंग ने किया है।[46] आठवीं सदी में पाल वंश के बढ़ते प्रभाव के साथ बंगाल और बिहार में बौद्ध धम्म का वर्चस्व बना रहा जो 12 वीं सदी तक इस्लाम के आने तक टिका रहा। लेकिन भारत के अन्य प्रदेशों में ब्राह्मणवादी सामंती व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी, जिसका मूल आधार जाति व्यवस्था थी। इसका उदाहरण पेरिय पुराणम में मिलता है, जिसकी रचना नायनमार ब्राह्मणों ने की थी। इस पुराण से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण भले ही भारत के विभिन्न प्रांतो में फैले हुए थे, लेकिन ब्राह्मण नाम से वे आपस में जुड़े रहे और उनकी इस एकजुटता ने भारत में ब्राह्मण साम्राज्य का निर्माण किया था।[47] थेवरम सुत्रो में ब्राह्मणों ने किस तरह हिंसा के माध्यम से सन् 870 से सन् 1118 तक बौद्धों और जैनों का कत्लेआम किया इसका वर्णन है।

बौद्धों को हराने के लिए ब्राह्मण लोग राजा के सामने धार्मिक विवाद स्पर्धा रखते थे। इसका वर्णन इंजिंग ने किया है। नागार्जुन ने अनेक ब्राह्मणों को हराकर बौद्ध धर्म का विस्तार किया था, ऐसा इंजिंग कहते है। ह्युएनत्संग ने भी बोधिसत्व गुणमति और ब्राह्मण माधव के बीच वाणी युद्ध हुआ था, ऐसा वर्णन किया है। दिग्नाग (सन् 480 से 540) इतना निपून विवादपटु था कि उसे तर्कपुंगवा (विवाद करनेवाला बैल) कहा जाता था।[48] आरंभ में बौद्ध ब्राह्मणों पर भारी पड़ते थे। लेकिन हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद कुमारिल भट्ट (सन् 625 से 675) ने छद्मी बौद्ध भिक्खु बनकर बौद्धों का ज्ञान हासिल कर लिया था। एक बार उसकी वास्तविकता बौद्धों को पता चली, तो बौद्ध भिक्खुंओं ने उसे विहार की तीसरी मंजिल से नीचे जीमन पर फेंक दिया था।

अन्य हिंसक उदाहरण

कुमारिल भट्ट के समकालिन एक दक्षिण का चम्पान्तर ब्राह्मण था, जो उसी के तरह अत्यंत क्रूर और हिंसक था। उसने जैनों को कितनी क्रूरता से मारा इसका वर्णन पेरिया पुरान में है। उसमें वह जैनों को नोकदार भाले की नोक पर लटकाकर मारता था। इसकी याद में तामिलनाडु में कालू वेत्ताल नामक उत्सव मनाया जाता है, जिसमें आदमी का कटा हुआ सिर भाले पर रखकर जुलूस निकाला जाता है।[49] उसने थेरा

बुद्धदत्त के गाँव बुतमंकलम में उस थेर का सिर काट दिया था। इसकी खबर बौद्ध भिक्खुओं ने उनके महाथेर भिक्खुओं को बताई तो महाथेर चारीबुद्ध के नेतृत्व में बौद्धों ने ब्राह्मण चम्पातंर के खिलाफ वाद–विवाद शुरु किया। लंबे समय तक दोनों पक्षों में मोक्ष पर वाद–विवाद हुआ, लेकिन आखिर में धोखे से चम्पांतर जित गया। उसकी क्रूरता से डरकर सभी बौद्ध भिक्खु उसके चरणों पर गिर पड़े और शैववादी बन गए।[50] इस तरह दक्षिण भारत में ब्राह्मणों ने हिंसा के द्वारा 7 वीं सदी में शैववाद में परिवर्तित किया। बौद्धों और जैनों की हत्या के बाद में दक्षिण के शैवों ने भिक्खुओं के कटे हुए सिरों की माला शिव के हाथ में रखकर उसको शिव का हिंसक रुप भैरव कहना शुरु किया।[51] शैव चम्पांतर के अनुयायी बुतमंकलम गाँव में अधिक मात्रा में रहते थे और वहां पर शिव ने राक्षसों के सिर जमीन पर काटकर गिराए थे, ऐसी किवदंती है।[52]

इसी तरह ब्राह्मण माणिक वाचकर (सन 862 से 845) ने बौद्धों के खिलाफ अत्यंत क्रूर हिंसाएं की जिसका वर्णन तिरुवृताउरार पुराणम में इस प्रकार दिया है कि उसने बौद्धों के खिलाफ चिदंबरम में वाद–विवाद किया, यह वाद–विवाद अनेक दिनों तक चला। बौद्ध हार नहीं मानते देखकर खुद शिव माणिक वाचकार के सपने में आया और उन बौद्ध भिक्खुओं को हिंसा के माध्यम से आदेश दिया। ब्राह्मण शिव के नाम से हिंसा करते थे। समूचे देशभर में ऐसी हजारों घटनाएं हैं, जिसमें ब्राह्मणों ने हिंसा के माध्यम से बौद्धों के कत्लेआम किये।[53] कांचिपुरम में एक शिल्प है, जिसमें बौद्धों को राजा के सामने किस तरह सूली पर लटकाकर मारा जाता था, यह दिखाया गया है।

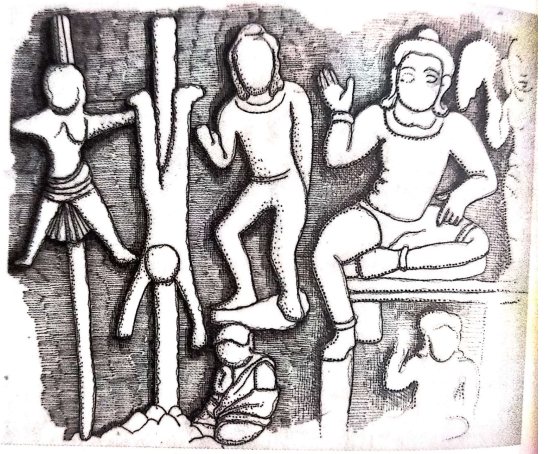

Figure 4: Pallavamalla Nandivarman II delivering judgement and impalement of Buddhists. Kāñcīpuram, Vaikuṇṭha Perumāḷ Temple.

बुस्टोन ने यह भविष्यवाणी की थी कि ''मारा और उसकी मार सेना जागृत होकर शक्तिशाली बनेगी और उनके प्रभाव में आकर राजा मंत्री और सेनापति धम्म पर अपना विश्वास खो देंगे और अधर्मी बनकर हिंसाचार का पाप कर्म करेंगे। वे लोग धम्म पर आक्रमण करेंगे, भिक्खु संघ का खात्मा करेंगे और विहारों को लूटकर नष्ट कर देंगे। मूर्तियों और मुल्यवान विरासत को नष्ट करते समय उन्हें जरा भी शर्म महसूस नही होगी।''[54]

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मार और उसकी मार सेना ब्राह्मण ही है, जिनके खिलाफ युद्ध लड़कर बुद्ध ने उन्हें हरा दिया था।

ऐसा नहीं है कि बौद्धों ने सशस्त्र रुप में ब्राह्मणों का प्रतिकार नहीं किया। विंध्य में बसे सशस्त्र बौद्धों ने शैव आचार्यो का बड़े पैमाने पर कत्लेआम किया था। कुमारिल भट्ट को तीसरी मंजिल से नीचे फेककर संघ से बाहर का रास्ता दिखा दिया था। कुमारिल भट्ट की हत्या भी बाद में बौद्धों ने ही कि थी। इतना ही नही, बल्कि शंकराचार्य की भी हत्या उम्र के 32 वें साल में तिब्बती बौद्ध लामा ने की है। प्राचीन काल में पुष्यमित्र शुंग की हत्या भी बौद्ध राजा मिलिंद और टेमेट्रियस इन दोनों ने मिलकर की थी। पुष्यमित्र शुंग जब सियालकोट से लौटकर पाटलीपुत्र की ओर वापस आ रहा था, तब इन दो बौद्ध राजाओं ने उसे दो पहाड़ो के बीच में घेरा और सिर में पत्थर डालकर हत्या की।

गहड़वालों का बौद्ध इतिहास –

पाल सम्राट और गहड़वाल राजाओं ने बौद्ध धर्म भारत के पुर्वोत्तर बिहार, बंगाल प्रांत में 12 वीं सदी तक जीवित रखा था। इतना ही नही, बल्कि 8 वीं सदी में अरब-मुस्लिम आक्रमणों तक सिंध प्रांत में भी बौद्ध धर्म जीवित था। सन् 711 में अरब सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर हमला किया और उसने देवाल, सिविस्तान, ब्राह्मणवाद और मुस्तान जैसे शहरों पर कब्जा किया। उस समय बौद्धों ने अरबो के सामने आत्मसमर्पण करने का निर्णय लिया था।[55] राजा दाहीर का मंत्री बुद्धरक्षित था और उसने देवाल शहर का संरक्षण करने की सलाह राजा को दी। लेकिन राजा दाहीर ने घमंड में आकर कहा कि मेरे होते हुए देवाल पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता। आखिरकार अरबो ने देवाल को जीत लिया और बुद्धरक्षित ने मुहम्मद बिन कासिम

के सामने आत्मसमर्पण किया। उसने प्यार से मुहम्मद बिन कासिम का स्वागत किया। लेकिन कासिम ने बौद्ध विहार की जगह पर मस्जिद का निर्माण करवाया।[56] बुद्धरक्षित कासिम के साथ मौज गया जो सिंधु नदी के पश्चिम वर्तमान सुक्कुर नगर है। वहां पर दाहीर का एक अधिकारी सामनी (श्रमन) था, उसने कासिम को संदेश भेजा कि हम धार्मिक लोग हैं और हिंसा में विश्वास नहीं करते। हमारे धर्म में हत्या करना मना है। इसलिए हम आपके साथ शांतिपूर्वक लोक वचनों को एकनिष्ठ माने जाते हैं, तो आप भी वैसा ही बर्ताव करेंगे, यह अपेक्षा है।[57] उसे अरब सेनापति बोजहारा ने नकार दिया और सैनिकों को बौद्धों के खिलाफ लड़ने का आदेश दिया। तब तुरंत बौद्धों ने मोहम्मद बिन कासिम को इसके बारे में संदेश भेजा, क्योंकि वह बौद्धों का मित्र बन चुका था। कासिम ने बाजहरा पर आक्रमण कर उसे क्षमा दिया और बौद्धों का बचाव किया।

कासिम के आक्रमण से बौद्ध बच गए और बाजहरा भागकर बुधिया गया जहां का राजा काक था। वह एक श्रमण बौद्ध था और उसके पुरखे बिहार के ओदंतपुरी से स्थलांतरित बुधिया में स्थाई हो चुके थे। उसने रात को अरबो पर हमला करने की योजना से इंकार किया। क्योंकि अरब सेनापति मोहम्मद बिन कासिम बौद्धों का समर्थक था। यह बात जब कासिम को पता चली तो उसने बड़े सम्मान से बौद्ध राजा काक बुधिया से मिलकर ब्राह्मण राजा दाहिर पर हमला किया।[59]

ब्राह्मणवाद का युद्ध अत्यंत भीषण हुआ। कम से कम 6 हजार सैनिक मारे गए थे। उसके बाद कासिम ने शरण आये श्रमणों को धिम्मी स्थान दिया। इन धिम्मियों को खान-ई-बुद्ध, बुतखान-ई-बुद्ध और इमारत-ई-बुद्ध भी कहा जाता था।[60] एक समय अरब लोग भी बौद्ध धर्मीय थे, इसलिए सिंध के बौद्धों से उन्हें कोई समस्या नहीं थी। जाटों को भी अरबों ने धिम्मी स्थान दिया था। धिम्मियों पर निगरानी रखने के लिए सामनी (श्रमण) वाद और बुधिनी इन अधिकारियों को कासिम ने नियुक्त किया था।[61] इन घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण विरुद्ध अरब में से जब किसी एक को चुनने का वक्त आया तो बौद्धों ने अरबो को चुना। बौद्धों ने अरब आक्रमकों के साथ गठबंधन किया था जो बाद में व्यापारिक गठबंधन में परिवर्तित हो चुका था। अरबो ने सिंध के बौद्ध व्यापारियों को सिंधी व्यापारी कहना शुरु किया। बौद्धों ने व्यापार के क्षेत्र में अरबो को अधिक मुनाफा करवाया। लेकिन अरबो ने उन्हे धिम्मी मतलब दुय्यम नागरिक का ही दर्जा कायम रखा। व्यापारिक क्षेत्र में बौद्धों को हटाने

के लिए अरबो ने सत्ता के बल पर व्यापार अपने कब्जे में कर लिया और बौद्धों को व्यापार से हटा दिया।[62]

पाल साम्राज्य उत्तर भारत में स्थापित होने के बाद सिंधी बौद्धों को पाल सम्राटों का समर्थन मिलने लगा। जिसकी वजह से उन्होंने फिर से अपना व्यापारी नेटवर्क पुर्वोत्तार कुंबोडिया और जावा जैसे देशों में फैलाया और पश्चिम को अरबो की वजह से छोड़ दिया। लेकिन पाल साम्राज्य कमजोर होने के बाद बौद्ध लोग पश्चिमी मुस्लिम और पूर्व में बौद्ध इन दोनों के बीच में फंस गए।

8 वीं सदी में अरब मुस्लिमों ने भारत पर सशस्त्र आक्रमण बढ़ाया। झाबुलीस्थान और काबूल दो बौद्ध राज्य चीन में तांग साम्राज्य के अधीन थे, उन्होंने अरबो का प्रतिकार किया। लेकिन, तांग साम्राज्य के पतन के बाद बौद्ध कमजोर पड़ गए। तब काबूल पर तुर्कीशाही राजाओं ने कब्जा जमाया और उन्होंने बौद्धों के बजाए शैवों को महत्त्व देना शुरु किया। काबूल में शाही राजाओं ने 10 वीं सदी तक राज्य चलाया और फिर सुबुक्ती गिन बनाम जयपाल के बीच जो युद्ध हुआ। उस युद्ध ने शाही राजाओं का अंत कर दिया। उसके बाद अरबो ने अफगानिस्तान के रास्ते से बौद्ध व्यापारियों को टक्कर देने के लिए नया व्यापारी नेटवर्क शुरु किया। इन प्रतिकूल परिस्थिति को देखकर बौद्ध भिक्खु सिंध प्रांत से भागकर उत्तर पूर्व भारत में अन्य बौद्ध देश में स्थानांतरित होने लगे और यह प्रक्रिया 3 शतकों तक चली। इस प्रकार चीन तांग साम्राज्य का प्रभाव सिंध प्रांत पर कम होने के बाद उसका फायदा मुस्लिमों के बजाए शैवशाही लोगों को हुआ और उन्होंने अपना काबूल में राज्य बना लिया। उनका राज्य दसवीं सदी में सबुक्तागीन ने मिटाया। बौद्ध लोग केवल अफगानिस्तान की पहाड़ी प्रदेश अर्गांदाब तक ही सीमित रहे, लेकिन व्यापारी के रुप में नहीं, बल्कि एक धार्मिक समूह के रुप में।

ब्राह्मणों ने बौद्धों के खिलाफ अरब और मुगल आक्रमकों का कैसा इस्तेमाल किया ?

मुस्लिमों के भारत में आने के बाद परिस्थिति में बदलाव हुआ। सिंध प्रांत में बौद्धों ने अरब मुस्लिमों के साथ संधि बनाकर खुद को शक्तिशाली बनाने और ब्राह्मणों को कमजोर बनाने की योजना अमल में लायी थी। इसी योजना पर उत्तर भारत के

बौद्धों ने भी पहले अमल किया और मुहम्मद गजनी के नेतृत्व में जब सन् 1000 से 1017 के बीच हमले हुए तो बौद्धों ने निचले तबके के लोगो में ब्राह्मणी अत्याचारों के खिलाफ आवाज बुलंद करते हुए मुस्लिमों का साथ दिया। यह विद्रोह की स्थिति 12 वीं सदी तक चली रही।

अफगानिस्तान में एक प्रसिद्ध विशालकाय बौद्ध महाविहार था, जिसे नवविहार कहा जाता था। उस विहार के बौद्ध भिक्खुओं ने मुस्लिम आक्रमण को ध्यान में रखकर उस विहार को बचाने के लिए इस्लाम और बौद्ध धर्म को जोड़ने वाली एक कड़ी बनाई जिसका नाम था– करामी पंथ। वे भिक्खु नवविहार के करामी पंथ के भिक्खु बुद्ध की मूर्ति की जगह पर अल्लाह समझते थे और इस रुप में अल्लाह की पूजा करते थे। यह एक महायानी पंथ था जो इस्लाम की तरह बुद्ध के निराकार रुप की पूजा करता था। इस पंथ का प्रभाव इतना बढ़ा कि मोहम्मद गोरी इस पंथ का अनुयायी था और उसने अपना प्रमुख सलाहागार मंत्री रुप में एक बौद्ध भिक्खु तिलक को रखा था।[63] यही जानकारी प्रो.खलिक अहमद निजारी जो मुस्लिम अलिगढ, युनिवर्सिटी से हैं उनकी किताब 'सलातन दिल्ली के मजहबी रुजानान' के पृ.12 पर आया है। डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर जी की 26, अलीपुर रोड निवास स्थान पर 'बौद्धजन महासभा' (अ.भा.बौद्ध जन समिती की दिल्ली की शाखा) की ओर से 23 जून, 1956 को एक खास सभा का आयोजन किया था। इस मौके पर उन्होंने यह बात कही थी कि 'एक समय अफगानिस्तान देश पूरा बौद्ध था।'[64] बौद्धों के प्रभाव में आकर ही मुहम्मद गजनी ने 17 बार भारत पर आक्रमण करके मंदिरों को लूट लिया था। क्योंकि ब्राह्मणों ने बौद्ध जनता का शोषण कर सारी संपत्ति मंदिरो में जमा करके रखी थी।

पहले ब्राह्मणों ने अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए अरबी आक्रमणों के खिलाफ संघर्ष किया। लेकिन बाद में उन्हें पता चला कि इसमें उनको नुकसान ज्यादा हो रहा है और बौद्धों का फायदा अधिक हो रहा है, इसलिए उन्होंने आक्रमणकारी अरबी और तुर्की मुस्लिमों के साथ संघर्ष करने के बजाए समझौता करना पसंद किया। इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि बौद्ध अकेले पड़ गए और दोनों के निशाने पर आ गए। 12 वीं सदी की शुरुआत में गहड़वाल राजा बनारस में राज्य करते थे। पहले वे ब्राह्मण समर्थक थे फिर भी बौद्धों के प्रति उनके मन में आदरभाव था। इसलिए चीन यात्री जिए जब सन् 964 में अपने 300 भिक्खुओं के साथ भारत में आए थे, तब उसने यह

वर्णन देखा कि गहड़वालों के प्रमुख नगर कन्नौज में असंख्य स्तूप और विहार थे।[65] सन् 1128-29 में राजा गोविंदचंद्र ने उत्कल के बौद्ध विद्वान शाक्य रक्षित और उसके अनुयायी वाघीश्वर रक्षित को श्रावस्ती के जेतवन में रहने के लिए 6 गाँव दान में दिए थे।[66] भारतीय पुरातत्व विभाग के एम.वैंकटरय्या तो श्रावस्ती ग्रंथ में गहड़वालों के बारे में यह लिखा है- ''ऐसे प्रमाण है जिनसे पता चलता है कि जेतवन की कुछ बौद्ध इमारतें बारहवीं सदी के मध्य तक जीवित रही। इसका मुख्य कारण यह था कि इस धर्म को कन्नौज के गहड़वाल राजा मदनपाल और उसके पुत्र गोविन्दचन्द्र की संरक्षकता का सौभाग्य प्राप्त रहा। उनके शासनकाल के कुछ लेख जेतवन के एक संघाराम (19) में मिले थे और स्मारकों की अपेक्षा सुरक्षित दशा में है। सम्बत् 1176 (इ.1119) का मदनपाल का लेख बतलाता है कि राजा के मंत्री विद्याधर ने शैव धर्म को त्याग अपना सारा धन जेतवन में एक विहार बनवाने के काम में लगा दिया था। दूसरा लेख, जो गोविन्दचन्द्र के शासनकाल (1929-30 ई.) का है। सूचित करता है कि राजा ने श्रावस्ती के आस-पास बुद्ध भट्टारक तथा जेतवन-महाविहार के दूसरे भिक्खुओं के छः गाँव दानकर दिये थे। सम्भव है कि गोविन्दचन्द्र ने यह भूदान बौद्ध धर्मावलाम्बिनी अपनी रानी कुमार देवी के आग्रह से दिया हो। सारनाथ के बौद्ध विहार को दिये हुए अपने दानों के कारण भी यह रानी विख्यात है।''[67] बौद्ध रानी कुमार देवी के संदर्भ में हमने पिछले अध्याय में सबूतों के साथ प्रमाणित किया है कि कुमार देवी और गोविंदचंद्र राजा बौद्धों के कट्टर अनुयायी तथा समर्थक थे। अयोध्या में कुमार देवी ने एक बौद्ध महाविहार बनाया जिसपर आज ब्राह्मणों ने राम मंदिर के नाम से कब्जा कर रखा है। अयोध्या में पुराने संघाराम का जिर्णोद्धार रानी कुमार देवी ने ही किया था।

गोविंदचंद्र की चार रानियाँ थी, उसमें दो रानियाँ बौद्ध थीं। पहली का नाम कुमार देवी और दूसरी का नाम वसंता देवी था। गोविंदचंद्र दो प्रांतो के बीच में फंस गये थे, जिसके पश्चिम में पंजाब प्रांत की तरफ मुस्लिम आक्रमक थे और पूर्व में ब्राह्मणवादी सेन राजा थे। इस परिस्थिति में दोनों पर हावी होने के लिए उन्होंने बौद्ध धर्म का रास्ता चुना, क्योंकि उसके नजदीक के मगध प्रांत और खुद उसके राज्य में बौद्धों का वर्चस्व बहुत ज्यादा था। उनके पुत्र जयचंद्र (ई.1170-1193) ने भी दोनों तरफ के ब्राह्मण और तुरुक्ष को नियंत्रित रखने के लिए बौद्धों का सहारा लिया। उसे कृष्ण का पूजक पुराणो में बनाया गया है, लेकिन बुद्ध गया का 1185 का उसका

शिलालेख उसके दीक्षागुरु सिद्ध श्रीमित्र का गुणगान गाता है। सिद्ध श्रीमित्र इतना प्रभावी था कि उसने ब्राह्मणवाद के अधर्म पर चलने वाले पृथ्वी के अनेक राजाओं को श्रीघन अर्थात बुद्ध का अनुयायी बनाया था।[68] और इस तरह बौद्ध धर्म को उसने फिर से पुर्नस्थापित किया था। उसके साथ ही महाबोधि महाविहार का जिर्णोद्धार भी किया था और अनेक खोए हुए बौद्ध ग्रंथों को पुर्नस्थापित किया था। श्रीमित्र ने जयचंद्र को चंद्र राजलेख नामक एक पत्र भी लिखा था, जिसे राहुल सांस्कृत्यायन ने तिब्बत से प्राप्त किया था। तो जयचंद्र ब्राह्मणवादी कैसे हो सकता है? जयचंद्र के पास एक सफेद हाथी था, सफेद हाथी बुद्ध का प्रतीक है। इसलिए एक आदर्श धम्मराजा के रुप में जयचंद्र ने उस हाथी को अपने पास रखा था। उस पर बौद्ध धर्म के अलग-अलग चिन्ह रेखांकित किये थे। जयचंद्र का हाथी इतना प्रसिद्ध था कि सिहाब अल्लाउद्दीन गोरी उसे किसी भी हालत में प्राप्त करना चाहता था। गोविंद्रचंद्र की तरह जयचंद्र भी ब्राह्मणवादी सेन राजाओं के कारण कट्टर बौद्ध बन गया था। जयचंद्र के बौद्ध होने के कारण ब्राह्मणवादी लेखक यह आरोप लगाते है कि आजमेर का चाहमान राजा तीसरे पृथ्वीराज के खिलाफ उसने सिहाव अल्लाउद्दीन गौरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए उकसाया था, लेकिन यह आरोप गलत है।[70] क्योंकि पृथ्वीराज के ब्राह्मण मंत्री ने ही पृथ्वीराज को धोखा देकर उसके खिलाफ अल्लाउद्दीन को बुलाया था। जयचंद्र के बौद्ध होने के कारण ही उसके प्रति ब्राह्मणों ने यह गलत लिखा है।

12 वीं सदी में बंगाल के पालमिथला के कर्नाटा और कन्नौज के गहड़वाल जैसे बौद्ध राज्यों का पतन होते ही भारत से बौद्ध धर्म का भी पतन हुआ। आखिरी पाल बौद्ध राजा गोविंद पाल गया के बल्लाल सेन से हार गया और उसके साथ पाल बौद्ध राजाओं का भी पतन हो गया।[71]

मगध में बौद्ध लोग बड़ी मात्रा में थे, क्योंकि वहां पर बौद्ध भिक्खु संघ और योगियों की संख्या अधिक थी। इससे पता चलता है कि मगध प्रांत को गहड़वाल राजाओं का भी समर्थन मिला था। मगध में धर्म स्वामी नेपाल से उसके सैन्यों के साथ आया था। लेकिन उसके वहां पहुंचने के पहले ही काफी बड़ी मात्रा में नुकसान हो चुका था। सन् 1324-35 को वह नालंदा में आया था। जब यह वहां पहुंचा तो वहां पर केवल दो ही बौद्ध विहार बचे थे, जिसका इस्तेमाल किया जा सके। लेकिन नालंदा को जाने से पहले वह बुद्धगया में रुका था। बुद्धगया में रुकने का उसने वर्णन भी किया

है कि उस पवित्र स्थल को दुश्मनों ने तोड़-फोड़ किया था। वहां का माहौल इतना डरावना था कि वहाँ केवल चार ही बौद्ध भिक्खु रह रहे थे। उनमें से एक भिक्खु धर्मस्वामी को देखकर कहता है कि अच्छा हुआ आप आ गए, सभी लोग तुर्कक्षों के सैन्यों के आक्रमण के कारण डर के मारे भाग गए है। लेकिन कुछ बौद्ध भिक्खुओं ने भागकर जाने के पहले महाबोधि महाविहार के गर्भगृह में एक दिवार बनवाई और उसके आगे दूसरी मुर्ति रखी है। उस दिवार पर उन्होंने महेश्वर का चित्र बनाया है, जिससे वह बौद्धों के दुश्मन ब्राह्मणवादी उस दिवार को कुछ नहीं करेंगे और दुश्मनों से वह मूर्ति सुरक्षित रहेगी। फिर उसके बाद भिक्खुओं ने कहा कि अब हम पाँच लोग है, यहां पर रुकना उचित नहीं है। अब हमें यहां से तुरंत भाग जाना होगा, हमला कभी भी हो सकता है।[72] बौद्धों पर विजय प्राप्त करने के लिए बंगाल के सेन राजाओं ने तुरुक्ष के साथ समझौता किया था। उसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों के निर्देशों पर तुरुक्ष में मगध के अनेक बौद्ध भिक्खुओं का कत्लेआम किया और विक्रमशील व उदंतपुरी के बौद्ध महाविद्यालयों को बुरी तरह से नष्ट कर डाला।[73] वह तुरुक्ष राजा कुतुबुद्दीन ऐबक था, जिसने गुलामवंशी स्थापना मोहम्मद गौरी के नेतृत्व में की थी। उसके दो साल बाद ही उसने 1193 में कन्नौज को बौद्ध राजा जयचंद्र को युद्ध में मार डाला था। उदन्तपुरी और विक्रमशीला के पतन के बारे में तारानाथ कहता है कि सेना राजाओं के निर्देश पर अनेक ब्राह्मण मगध में घुसे और उनके साथ परशियन मुस्लिम भी मगध में घुसे और उन्होंने मिलकर ओदंतपुरी और विक्रमशीला को सैनिक अड्डे बनाए।[74] वह चार ब्राह्मण सेना राजा थे। लव सेन, कास सेन, मनित सेन और रथिक सेन। तब तक इ-नसेरी में ओदंतपुरी पर बख्तियार खिलजी ने किस तरह हमला किया था? इसका वर्णन है- ''बख्तियार खिलजी ने अपनी सेना बिहार में घुसाई और बड़े पैमाने पर विध्वंस किया। उसके गुप्तचरों ने यह सूचना दी कि बिहार के नालंदा किले में 200 सैनिक घोड़े के साथ छिपे हुए हैं। तब बख्तियार खिलजी ने उसके फर्गना के दो भाई निजामुद्दीन और शमशुद्दीन को उस किले पर हमला करने के लिए भेजा। उस किले के अंदर सभी मुंडक श्रमण (भिक्खु) थे, जिन्हें उन्होंने खत्म किया और बड़े पैमाने पर वहां की धनसंपदा हड़प ली। वहाँ मिली किताबों को पढ़ने के लिए उन तुरुक्षों ने अनेक हिंदुओं को बुलाया। लेकिन किताबों को पढ़ने के बाद तुरुक्षों को पता चला कि वह किला न होकर एक महाविद्यालय है जिसे हिन्दी में विहार कहा जाता था और मारे गए लोग सैनिक नहीं, विद्वान बौद्ध भिक्खु थे। इसका अर्थ यह है कि उन तुरुक्षों

को नालंदा के बारे में किला बताकर और उसके अंदर के भिक्खुओं को सैनिक बताकर ब्राह्मणों ने गलत जानकारी दी थी, ताकि तुरुक्षों के हाथों बौद्ध महाविद्यालय का विनाश हो सके। यह सेना ब्राह्मण राजाओं द्वारा बौद्ध महाविद्यालयों का विनाश करने के लिए बनाया हुआ जाल था। मिनहाज ने यह बताया है कि बख्तियार खिलजी को यह गलत जानकारी दी गई थी।''[76]

नालंदा के बारे में भी ब्राह्मणों ने तुरुक्ष आक्रमकों का कैसा इस्तेमाल किया था इसका वर्णन तिबेटी ग्रंथ ''dpag bsam lion bzang'' में आया है। नालंदा की ''रत्नोदाथी'' ग्रंथालय की इमारत 9 मंजिला थी जहां पर हजारों बौद्ध ग्रंथ सुरक्षित रखे गए थे। तुरुक्षों ने पहले इस पर आक्रमण कर थोड़ा सा नुकसान पहुचाया था। जिसका मगध के राजा कुकुतसिद्ध के मंत्री मुदीतभद्र ने मरम्मत करके नया विहार बनवाया था। एक बार धम्म प्रवचन के दरम्यान दो श्रमणों ने कपड़े धोते समय पानी अंजाने में दो ब्राह्मण पुरोहितों पर फेक दिया। दोनों ब्राह्मण 12 साल तक सूर्य की यज्ञ में पूजा करते थे। उस प्रसंग से घुस्सा होकर उन्होंने यज्ञ के जलते निखारे (आग) ग्रंथालय पर फेंके जिससे बड़ी आग लगकर रत्नोदाथी जलकर खाक हो गया।[77] ये दोनो ब्राह्मण 12 सालों तक यज्ञ के नाम पर नालंदा महाविहार को जलाने की योजना पर अनुकूल परिस्थिति के इंतजार में थे, ऐसा लगता है। पुरातात्विक उत्खनन में भी नालंदा महाविहार को जलाया था, यह बात सिद्ध हो चुकी है और यह घृणित कार्य ब्राह्मणों ने किया। अब सवाल है ऐसा उन्होंने क्यों किया? ब्राह्मणों को बौद्धों के समतावादी विचारों से अत्यंत नफरत थी। बौद्ध दर्शन विचारों से ब्राह्मणों का वर्चस्व खत्म हो चुका था। ब्राह्मण ज्ञानी नहीं, बल्कि ज्ञान के दुश्मन हैं।

अन्य जगह की तरह ब्राह्मणों ने नालंदा के सामने भी एक छोटा मंदिर बनवाया था और वहां बैठकर वे बौद्धों को परेशान करते थे। उचित समय आने पर नालंदा विश्वविद्यालय को जला डाला। यह उनका घृणित कार्य दुनिया के इतिहास में सबसे ज्यादा कलंकित कार्य माना गया है। यह अपराधिक कार्य ब्राह्मणों ने किया और सरकारी पाठ्यक्रमों में इस अपराध का श्रेय ब्राह्मण इतिहासकारों ने मुगलों पर डाल दिया।

जब ब्राह्मणों ने तुर्को का इस्तेमाल बौद्धों के खिलाफ करना चालू किया तो बौद्धों को दोनों के खिलाफ लड़ने की नौबत आयी। तारानाथ बताता है कि सिद्ध नरोपा का शिष्य रिरिपा ने अत्यंत चालाकी से बनारस पर आक्रमण करने वाली तुरुक्ष सेना को

क्षमा कर दिया। उसके आक्रमण में तुरुक्ष सेना का सेनापति और अनेक महत्त्वपूर्ण सैनिक मारे गये और बाकी बचे हुए भाग गए। इसी रिरिपा ने आठ ब्राह्मणों को बंदी बनाकर इतना मारा की दो अंधे हो गए और 6 गूंगे हो गए।[78] गोरक्षनाथी भी पहले बौद्ध धर्मीय थे, लेकिन ब्राह्मणों ने उन्हें संपत्ति का लालच देकर मुर्ख बनाया। जिससे उन्होंने बौद्धों के पक्ष में लड़ना छोड दिया, ऐसा तारानाथ कहता है।[79] नाथ पंथ पर बौद्धों का ही प्रभाव कायम रहा।

मिथिला के राजा नरसिंह ने सुलतान गयासुद्दीन के साथ बड़ा उपहार देकर समझौता किया था, जिसकी वजह से सुलतान ने सारा दक्षिण बिहार नरसिंहा को जितवाकर दिया जो पहले बौद्धों के अधीन था। यही कारण है कि बख्तियार खिलजी ने भी उत्तर बिहार के मिथिला से जाने के बजाए दक्षिण बिहार के मार्ग से जाने की योजना बनाई थी। जिस रास्ते में नालंदा ओदंतपुरी, विक्रमशीला जैसे बौद्ध विश्वविद्यालय आते थे। अर्थात मिथिला के ब्राह्मण राजाओं ने ब्राह्मणों को बचाने के लिए, ब्राह्मणों के वर्चस्व के लिए ही तुरुक्षों के साथ समझौता किया और उस समझौते के कारण ही बौद्ध विरासत नष्ट की गई। 9-10 वीं सदी में बौद्धों का विनाश होने के बावजूद वाचस्पति मिश्र और उदायन जैसे ब्राह्मण बौद्धों पर अत्यंत घृणित टिका-टिप्पणी करते थे और 14 वीं सदी में बौद्ध धर्म पूर्णतः नष्ट होने के बावजूद मिथिला के ब्राह्मण मुस्लिमों के बजाए बौद्धों को अपना सबसे खतरनाक दुश्मन समझते थे।[80] राजा हरिसिंह देव, (इ.1279-1325) का राज कवि ज्योतिंरिश्वर, कवि शंकराचार्य बौद्धों को घृणित भावना में अपनी किताब वर्णरत्नाकर में ''अद्पतित और धोखादायक लोग'' ऐसा कहता है और 9 वें सदी के कवि उदायन ने अपनी किताब आत्मतत्त्व विवेक में बौद्धों पर जो घृणित टिका टिप्पणियाँ की थी, उसका वह सम्मान करता है।[81] मिथिला का राजकवि विद्यापति अपनी दूसरी कथा 'पुरुषपरिक्षा' में यह कहता है कि अल्लाउद्दीन खिलजी (1296-1316) और शंकर सिन्हा में समझौता हुआ था।[82] विद्यापति के कुछ कविताएं बंगाल के सुलतान ज्ञात अल्लाउद्दीन आजम को समर्पित की थी, जिसने उसके कवि को संरक्षण प्रदान किया था।[83] मिथिला के ब्राह्मण विद्वान भी जौनपुर के शारकी राजा इब्राहिम शाह (इ.1402-1440) को बड़ा मान-सम्मान देते थे और उसको ईश्वर समझते थे। उसकी राजधानी को अमरावती या इंद्रपुरी के नाम से गौरवान्वित करते थे। इस राजा ने भी ब्राह्मणों को मिथिला में बौद्धों को खत्म करने में मदद की थी।[84] उपेन्द्र ठाकुर इस पर कहते हैं कि बौद्धों के खिलाफ नफरत

और शत्रुत्व के चलते ब्राह्मणों ने तुरुक्षों के साथ गठबंधन किया था। मिथिला के राजा शिवसिन्हा की 15 वीं सदी की शुरुवात में मृत्यु होने पर उत्तर मिथिला बनोली स्थानीय ब्राह्मण राजा पुरादित्य ने बचे हुए बौद्धों का बड़े पैमाने पर नरसंहार किया था। तुरुक्षों के साथ उसके अच्छे संबंध थे।

उपरोक्त जानकारी से यही सिद्ध होता है कि केवल बौद्धों का खात्मा करने के लिए ब्राह्मणों ने विदेशी आक्रांता तरुक्षों के साथ और बाद में मुगलों के साथ समझौता किया था, जिससे उनके अच्छे संबंध बने थे। यही कारण है कि तुर्की और मुगल राजसत्ता के दरम्यान भारत में बौद्धों का पूर्णतः पतन हुआ। उनके विहार और महाविद्यालय जलाकर नष्ट किये गए। लेकिन ब्राह्मणों के मंदिर और ग्रंथों को कोई नुकसान नहीं हुआ। क्योंकि ब्राह्मणों ने भारत से बौद्धों का खात्मा करने के लिए तुर्की तथा मुगलों से मदद ली थी। ब्राह्मण-मुगल संबंध इतने गहरे थे कि ब्राह्मणों के कहने पर अनेक बौद्धों के जगह पर ब्राह्मणों के मंदिर बनवाये थे। बुद्धगया में महाबोधि महाविहार को बचाने के लिए बौद्धों ने उसे झाड़ियों में छिपा दिया और उसके दर्शनी हिस्से पर महेश्वर का चित्र बनाया। उन्हें पता था कि तुर्की आक्रमणकारी इसे ब्राह्मणी मंदिर मानकर नष्ट नहीं करेंगे और ऐसा ही हुआ। बख्तियार खिलजी का सैन्य जब वहां से गुजरा तो महेश्वर का चित्र सामने देखकर उसे नष्ट नहीं किया। लेकिन अन्य जगहों को बड़े पैमाने पर विध्वंस किया। अगर तुरुक्ष जैसे हिंसक विदेशी मुसलमान ब्राह्मणों के मंदिरों को अनदेखा करते थे, तो बाबर जैसा ब्राह्मण प्रेमी मुगल राजा अयोध्या मंदिर गिराकर वहाँ मस्जिद कैसा बना सकता है? बाबर ने अपने बाबरनामा में स्पष्टता अपने वंशजो को हिदायत दी थी कि ''दीर्घकाल तक भारत पर राज करना चाहते हो तो ब्राह्मणों को साथ में लेकर राज करो।'' इतना ही नहीं, बल्कि पृथ्वीराज चव्हाण जैसे राजपूत राजा होने के लिए भी उसके ब्राह्मण मंत्री ने उसे धोखा देकर आक्रमणकारी तुरुक्षों को उसके कमजोरियों की जानकारी दी, जिससे राजपूत राज्य का भी अंत हो गया, जिसके मुख्य कारण ब्राह्मण हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों को सबसे ज्यादा प्रिय सत्ता और संपत्ति है, इसके लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं और किसी को भी धोखा दे सकते हैं। प्राचीन काल से यह सिलसिला जारी है और वर्तमान में भी उनका रवैया वहीं है।

●●●

संदर्भ :

1. History of India, By-James Talboys Wheeler, 1869, p. 232-33
2. उपरोक्त 1874, p. 359-60
3. Buchanan, 1936, I : 98-99
4. Rajendralal Mitra, Buddhagaya, The heritage of sakya muni & the Antiquities of orissa, 1878, p.16-17
5. Alexander cunningham, 1874, p. 87, ASIR 3
6. S P. Gupta, The elements of Indians Art, 1980, p. 27.
7. Mackenzie Manuscript, I : 109-10; 121; 3.6; 5.14; 18, 25; 6:430.
8. Reverend William Taylor, Madras Journal of Literature Science, 2:371-84
9. उपरोक्त 2:501
10. उपरोक्त 4:11
11. Rajendra Lal Mitra, 1857-80, II : 175
12. Hardships & Downfall of Buddhism in India, By-Giovanni Veraldi, p.31
13. Rajendralal Mitra, II : 180; H. M. Elliot- The History of India as told, By-own historians in 1849.
14. उपरोक्त R. Mitra, 1857-80, II : 119
15. Faxian, b : 34-35; Faxian a : 54, p.539-40; Hardship & Downfall of Buddhism in Lord, By-Verando, p.134
16. Asir I (1871, Cunningham), p.237
17. Cunningham, 1892: 56-57, Harvey, 1925 : 119
18. A History of Architecture in all countries, Fergusson, 1876 : 209, Vol. 2, p. 445 ff.
19. Kosambi, (1965 : 71)
20. Green (1985 : 71)
21. R.C.Sharma (1987) on Chattopadhyaya, 1994 : 130 ff, 155 ff.]

22. मंजुश्रीमूलकल्प 4:11(53), 699-718
23. वायु पुराण, 1.58.34-70 ; ब्रह्मांड पुराण, 1.2.31.34-70.
24. II.310
25. Hardships & Downfall of Buddhism in india, by-verardi, p. 147
26. सद्धर्मपुंरिकसुत्र, a- 165-66; Wiston (1862, b. 365)
27. वायु पुराण, II. 37.26-32 (Vol. 2, p. 792)
28. Burgess, 1874 : 15-25; O' Flaherty, 1971 : 297 ff ; 1976 : 272 ff.
29. V. S. Agrawala, p. 50
30. Longhust (1936)
31. History of Buddhism in India, By-Lama Taranath, 87 A (p-226)
32. Shankara Digvijaya, I.95-98, p.9
33. T. A. Gopinath Rao, 1915 : 128
34. Shankara Digvijaya, Trans, By-Piantelli, 1998, 51-52, 4 p. 68-69; Shankarvijay, ct, Bades, 2000 : 215
35. History of Buddhism in India, By-Taranath, 90 A, p.232
36. Shankara : A Hindu Rehilalist or a crypto - Buddhist? By- Kencho Tenzin, p.23
37. Narayana (1970 : 128)
38. Compbell, 1978 : 62
39. D. N. Jha 1987 : 2000, p. I - 58
40. Sircar, 1966, A Network of Vassal & Suzarin Relationshipes, P.84
41. R. B. Padey in EI 28 (1949-50) 204-67, I. P. 13 4 P.265
42. Vamana Purana, 10.8, P.162
43. महाभारत, अनुशासन पर्व, 10.81, P.162
44. उपरोक्त, LX, Vol.II, p. 64
45. Hardshops & Downfall of Buddhism in India, By- Giovanni Verardi, P.200
46. The Biography on the Eminent Monks who went ? Search of the

law in the western -Countries the great tang during by-yijing, b. 49
47. hardships & Downfall of Buddhism in Verardi, By-Giovanni Verardip. 203
48. Waman Purana, 43.74, P. 381
49. Periya Puranam, 33.796-856 (Vol. 2, p. 154-65)
50. Periya Puranam, 33. 796-856 (Vol. 2, P. 181)
51. Appar Tirumarai) VI, 73.5, P. 100
52. उपरोक्त, VI. 58.10 (p-39)
53. Tiruvilaiyatar Puranam, 64.109-13
54. Bu Ston, Tol. 132, a-b, p. 173
55. Maclean, 1989; 61-62
56. Fathnama - yi - sind, p. 77
57. उपरोक्त, P. 93
58. Tabakar - Nasin, I : 491
59. Fathnama - yi- sind, b.96-97
60. उपरोक्त, P. 173
61. उपरोक्त, P. 65
62. maclean, 1989 : 70 tt
63. Mahammad Habib & Khalid Ahmad Nizami (Eds), A Comprechesive History of india, Vol. V (Delhi, 1987) P. 138
64. Dr. B. R. Ambedkar, Writing & Speaches Vol. 18, Part 3, p. 476
65. Jiye, 256
66. EI. II (1911-12, D. R. Sahani) ; 20-26
67. श्रावस्ती- लेखक-एम.वेंकटरमैया, अनुवादक-केदारनाथ शास्त्री, प्रकाशक-भारतीय पुरातत्व विभाग 1959
68. N. Sanyal (1929, ct. II. 7, 11 ; Niyogi, 1959 ; 198, 210, 260) ; Rahul Sankrtayan, 1934, 227)
69. Niyogi, 1956 : 198
70. Prabash, 1965, 196
71. CHB, 1/2, 272
72. Dharmasvamin, V, P.64
73. उपरोक्त, नारायण : P. 162 B, P.319
74. Taranath, 125 A, P. 318
75. Tababat is Nalin, I : 551 - 52
76. Hardships & Downfall of Buddhism in India, By-Giovanni Verardi P. 362
77. dpag bsa lion bzag : I, 92
78. History of Buddhism in India, By- Taranath, 12, A, p. 307
79. उपरोक्त, Taranath, 121 B, - 126 A, P. 320
80. Thakar, 1964 : 125 ; Vklerardi, 369,
81. Thakar, p. 39
82. Chaudhari, 1970 : 45, 243 - 45
83. CHB, II/I : 377
84. Chaudhari, 1970 - 71 ; 1976 : 57

राम मंदिर के बहाने हिन्दू राष्ट्र के नाम पर छुपा षड्यंत्र!

क्या राम मंदिर के बहाने आर.एस.एस. और भाजपा ने हिंदू राष्ट्र की स्थापना कर दी है? 5 अगस्त, 2020 को मोदी-योगी, भागवत ने रामराज की घोषणा कर दी। हिंदू राष्ट्र का श्रेय केवल आरएसएस, भाजपा को ही देना चाहिए। पिछली घटनाओं को खंगाला जाए तो इसके श्रेय के और भी हिस्सेदार हैं। पहली बात हिन्दू राष्ट्र के नाम पर पिछड़ा वर्ग का राज नहीं आएगा। राज तो केवल 3 प्रतिशत अल्पसंख्याक विदेशी ब्राह्मणों का ही आएगा और आया है। हिन्दू शब्द गाली है। हिन्दू शब्द वेद में नहीं मिलता, श्रुती, स्मृति, काव्यों (रामायण-महाभारत) पुरोणों में नही मिलता है। ''स'' से ''ह'' बना यह मिथ्या बाते हैं। हिन्दू शब्द वेद में नहीं मिलता यह बात खुद गोलवलकर ने भी संघ के शिविरों में स्वीकार की है। वस्तूतः हिन्दू पर्शियन शब्द है, जिसका अर्थ काला चोर, काला डाकू, काला गुलाम और नाजायज भी होता है। खुद अरुण शौरी ने भी यह बात स्वीकार की है कि हिन्दू गाली है। गोलवलकर से सवाल पूछा गया था कि स्वामी दयानंद सरस्वती भी हिन्दू शब्द को गाली कहते हैं तो आप उसका इस्तेमाल क्यों करते हो? तब गोलवलकर ने बड़ी चलाकी से जवाब दिया था कि ''मैं कोई इतिहासतज्ञ तो नहीं।'' ऐसा कहकर चालाकी से शब्दों का खेल किया गया। हिन्दू शब्द प्रयोग करने के पीछे अल्पसंख्य ब्राह्मण अपना विदेशीपन और नगण्य आबादी का अस्तित्व छुपा लेते हैं। विदेशी ब्राह्मणों को छिपने का 'हिन्दू' आवरन है। 20 दिसंबर, 1964 को गोलवलकर ने शंकराचार्य को एक निजी खत भेजा था, जिसमें उन्होंने देश-काल परिस्थिति के अनुसार दांवपेच बनाना पड़ता है, यह बताया है-**''आगे भी देशकाल परिस्थिति को सोचकर आवश्यक रीतियों को स्वीकार व अनावश्यक या अहितकारक रीतियों की उपेक्षा करने की दृष्टि से उचित व्यवस्था देने का तत्कालीन आचार्यो, धर्मगुरुओं का अधिकार भी पूर्व सरियों ने ऋषियों ने स्पष्ट तथा निर्देशित किया है।''**[1] ब्राह्मण हमेशा दांवपेच में परिवर्तन करते हैं उद्देश्य में नहीं। ब्राह्मण उद्देश्य एन-केन-प्रकारेन ब्राह्मणों का वर्चस्व कायम करना ही होता है। सन् 2008 में फरीदाबाद में लेफ्टनेंट कर्नल प्रसाद पुरोहित, अभिनव भारत और आरएसएस तथा भाजपा के खास लोगों की गुप्त मीटिंग करता है, उसकी उसने वीडियोग्राफी करके रखी थी। एटीएस

के हाथ में 24 वीडियो और 24 ऑडियो में सबूत के तौर पर मीटिंग में लेफ्टनेंट कर्नल प्रसाद पुरोहित कहता है कि **(पृ.61) ''We Will Fight the constitution, will fight the nation, this nation is not out''**

अर्थात- ''यह राष्ट्र हमारा (ब्राह्मणों का) नहीं है, इसलिए हमें (ब्राह्मणों को) राष्ट्र विरोध और संविधान के विरोध में लड़ना होगा।'' आगे तो चर्चा का रुख इस तरफ होता है कि भारतीय संविधान को ही तहस-नहस करना होगा। जब वर्तमान भारतीय संविधान खत्म हो जाएगा तब कौन-सा संविधान होगा? इस पर सुधाकर (द्विवेदी (पृ.67) कहते हैं-**''राज्य व्यवस्था का हमारे यहां कुछ पौराणिक शास्त्र हैं। हमारी जो स्मृतियां हैं वही हमारा संविधान है। समाज की इस समय 14 स्मृतियां है। इस देश में उन सारे को इकठ्ठा कर लीजिए।'' स्पष्ट करते हुए कहता है कि- (पृ.68) ''इस देश में हमें वेदों के मुताबिक जो बताया गया है। सनातन हिन्दू धर्म, वैदिक धर्म, वो चाहिए।''**[2] आर.एस.एस. भाजपा के लोग सार्वजनिक तौर पर हिन्दू शब्द को जोर-शोर से प्रचार करते हैं और निजी तथा गुप्त मीटिंग में भारत देश ब्राह्मणों का नहीं है, यह बताते हैं। साथ ही वेद, मनुस्मृति आधारित नया संविधान बनाने की बात करते है और वैदिक धर्म का आग्रह करते हैं, हिन्दू धर्म का नहीं। इसलिए हिन्दू के नाम पर निशाना भले ही मुसलमान हो, मगर वास्तविक निशाना पिछड़े वर्ग के ही लोग होते हैं, जिन्हें वे हिन्दू यानी ब्राह्मणों का गुलाम मानते है यही उसका वास्तविक अर्थ होता है। इसलिए अब सच सामने आ ही गया है कि हिन्दू यानी ब्राह्मणों का गुलाम और हिन्दू राष्ट्र यानी ब्राह्मणों द्वारा शासित देश या ब्राह्मणों द्वारा गुलाम बनाया गया देश।

गांधी द्वारा राम का इस्तेमाल

गांधी वास्तव में ठगी थे। वे बहुत पाखंडी थे। गांधीजी ने खुलेआम वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था का समर्थन किया। राऊण्ड टेबल कॉफ्रेन्स में गांधीजी ने डा.बाबासाहब आंबेडकर जी के अधिकारों का विरोध करते हुए कहा था कि, डा.बाबासाहब आंबेडकर की बात मान्य की गई तो इससे 'हिन्दुत्व' को धोखा होगा।[3] 1925 में काँग्रेस ने ही आरएसएस नाम की संस्था पैदा की थी। आरएसएस उस समय

कांग्रेस को ही मातृ संगठन मानती थी। आज भागवत ने हेडगेवार कांग्रेस के ही है, यह जाहिर किया और कांग्रेसी नेता मुखर्जी ने हेडगेवार को भारत माता के सच्चे 'सपूत' यह गौरव भी किया। वे कांग्रेस कमिटी के सेक्रेटरी थे। गांधी द्वारा चलाये जा रहे आंदोलन में वे जेल में भी गए थे। गांधी जी वर्ण व्यवस्था के इतने कट्टर समर्थक थे कि एक बार उन्होंने यह कह दिया था कि वर्ण व्यवस्था न होती तो मैं आत्महत्या कर लेता।[4] गांधीजी ने साधुपन का नाटक, ढोंग रचाया और भारत की आम जनता को ब्राह्मणों की आजादी के लिए इस्तेमाल किया। ब्राह्मणों ने इसी मकसद से गांधी का नेतृत्व मान्य किया और उनका इस्तेमाल होने के बाद यानी ब्राह्मणों के हाथ में देश की बागडोर सौंपने के बाद गांधी की सुनियोजित हत्या करवा दी गई। खैर गांधीजी ने 'राम' का इस्तेमाल आम जनता को आकृष्ट करने के लिए सबसे ज्यादा किया। गांधीजी रामायण, महाभारत, गीता का उपयोग करते थे। रामायण की कथाओं का गांधीजी ने बिगाड़कर अर्थ निकाला है। यानी गांधी अपने वकीलीपन का गलत इस्तेमाल भी करते थे। शम्बूक की हत्या राम ने की, यह रामायण में दर्ज होने के बावजूद गांधीजी लिखते हैं कि... गांधी शब्द खेल में माहिर थे। धर्म का इस्तेमाल गांधी ने आंदोलन के लिए किया। गांधीजी यह बात मान्य करते है कि ''मैने देखा कि सीधे-साधे भोले लोगों ने धोखे से अपना यह खयाल बना लिया है कि मुसिबत के समय में मैं उनको दिखाई देता हूँ। वे लोगों को रामनाम का जप करने को कहते हैं।''[5] सन् 1946 में गांधी ने राम को काल्पनिक, काव्यों में वर्णित राम नहीं माना, बल्कि 'ऐतिहासिक राम' ऐसा संबोधित किया।[6] गांधीजी काल्पनिक राम को ऐतिहासिक बताकर भारत के विभाजन के पहले धार्मिक माहौल बिगाड़ रहे थे। 'रामनाम' के जप को वे कुदरती इलाज बताते थे। गांधीजी अपने आश्रमों में राम के भजन गवाते थे। गांधीजी ने ब्रिटिशों तथा मुसलमानों के खिलाफ जनता को भड़काने के लिए धार्मिक प्रतिकों का होशियारी से हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया है। तिलक ने भी यही षड्यंत्र किया।

१९३४ का फसाद : गुलाम भारत में सन् 1934 में अयोध्या के गुम्बंदों पर कुछ लोगों ने हमला किया था। मस्जिद के गुम्बद पुराने होने के काण अत्यंत आसानी से गिर गए थे। 1934 में बड़ा फसाद भी हुआ था। कांग्रेस, हिन्दू महासभा, आरएसएस हिन्दू-मुसलमान के नाम से फसाद करवा रहे थे। क्योंकि सन् 1935 में सेकण्ड इंडिया

एक्ट बन गया था और लंदन के राउण्ड टेबल कॉफ्रेंस का वह नतीजा था। उसके आधार पर ही 1937 को प्रांतीय चुनाव भी आने वाले थे। ब्राह्मणों का राजनीतिक वर्चस्व कायम कराने के लिए 1934 को सुनियोजित फसाद किया गया था। अंग्रेजों ने उसे कंट्रोल किया और गिराए गए गुम्बदों को उसी तर्ज पर जैसे पहले थे दुबारा गुम्बद बनाए गए। ब्रिटिशों द्वारा गुम्बद बनाने के कारण वह 6 दिसम्बर, 1992 को इतनी आसानी से नहीं टूटा। इसलिए खास किस्म के हथियारों का इस्तेमाल किया गया था।

नेहरु द्वारा बाबरी मस्जिद में रामलला की मूर्ति रखवाना –

अंग्रेजों के समय में जो भी धार्मिक विचार हुए वे उसे मिटा लिए थे। जैसे ही भारत आजाद हुआ आजाद भारत में एक बड़े विवाद को जन्म दिया गया। दि. 22-23 दिसम्बर, 1949 को मस्जिद के अंदर रामलला की मूर्तियाँ रखी गई। इस संबंध में अयोध्या के पुलिस थाने में मुकदमा नं.215 अपराध - सं.-167 पर 23-12-1949 दर्ज है। ''करीब 7 बजे सुबह को जब मैं राम जन्मभूमि पहुँचा तो मालूम हुआ कि तकरीबन 50-60 जिसमें इस बात जिक्र है कि मस्जिद के अंदर राम-सीता की मूर्तियाँ रखी गई। खास बात यह है कि ''भगवान राम की बाल रुप की मूर्तियाँ सिर्फ अयोध्या के मंदिरों में ही दिखती है। इस बार जो मूर्ति प्रकट कराई गई, उसे भाईजी (हनुमान प्रसाद पोद्दार) लाये थे।[7] हेमंत शर्मा के मुताबिक 21 दिसम्बर, 1949 को अयोध्या में तत्कालीन संघ प्रमुख माधव गोलवलकर भी गये थे। यानी घटना को अंजाम देने के एक दिन पहले।

मूर्ति रखते ही तान-तनाव निर्माण हो गया। विवाद को हल करने के बजाए और पेंचिदा कर दिया गया। स्थानीय प्रशासन ने नगरपालिका के बोर्ड अध्यक्ष प्रिया दत्त राम को ''रिसिवर'' नियुक्त कर दिया। जो घटनाक्रम है उसमें फैजाबाद जिले के कलेक्टर के.के.नायर की भूमिका बहुत ही संदेहस्पद रही। प्रभात प्रकाशन का सीधा संबंध आर.एस.एस. से है। हेमंत शर्मा द्वारा सन् 2018 में प्रकाशित किताब में के.के. नायर का पत्राचार छापा गया है। लेखक ने उसका स्रोत कहाँ से है? यह नहीं बताया है। यह जानकारी इसलिए बता रहे हैं कि जब इलाहाबाद हाईकोर्ट में विवाद चल रहा था, तब 1948-49 के तत्कालीन फैजाबाद जिला कलेक्टर का गृहविभाग से क्या

पत्राचार हुआ इसकी कॉपियाँ मांगी गई थी। ''गोपन अनुभाग-1 में प्रकरण से संबंधित पात्रावलियों की उपलब्धता ''शून्य'' है।'' साथ ही यह भी बताया गया कि- ''तथाकथित पत्रावली संख्या- III-1949 के सृजन, वीड-आउट अथवा खोये जाने का कोई साक्ष्य अनुभाग में उपलब्ध नहीं है और न ही श्रीराम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद संबंधी कोई अन्य पत्राचार विभाग द्वारा किया जाना प्रकट होता है।

2) विभाग में ऐसी सम्भावना भी खोजी गयी है कि ऐसे पत्रावली या संदर्भ से संबंधित कोई पत्राचार या अभिलेखों की मांग या प्रेषण अथवा किसी अन्य पत्रावली के साथ सम्बधता तो नहीं हो गयी है? परंतु उक्त आशय का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं हुआ है।'' इसका जवाब मुख्य सचिव उत्तर प्रदेश ने दिया। गायब फाईलों की जांच सीबीआई के द्वारा की गई। ''सीबीआई को भी ये फाईलें नहीं मिल सकी। अदालत में प्रस्तुत इन गायब पत्रों के सम्बन्ध में जांच की जिम्मेदारी सीबीआई को दी गयी थी। लेकिन सीबीआई इसमें सफल नहीं हो सकी।''[8] हाथ में कुछ भी नहीं आया। जहां से विवाद शुरु होता है उसी के दस्तावेज कैसे गायब हो गए? यह काम किसने किया और क्यों किया?

दि. 27 दिसम्बर, 1949 को भगवान सहाय को के.के.नायर ने खत लिखा है जिसमें लिखा 'मुझे कांग्रेसियों में भी ऐसा कोई हिंदू नहीं मिला, जो मूर्ति हटाए जाने के प्रस्ताव के समर्थन में हो।' पंडित जवाहरलाल नेहरु खुद को सेक्युलर कहलाते थे। उस समय उनकी भूमिका इस विवाद पर क्या थी? नेहरु ने दि.17 अप्रैल, 1950 को गोविंद वल्लभपंत को जो खत लिखा उसमें यह बात मान्य की, कि मंदिर विवाद में कांग्रेसी लोग ही अधिक थे। 'मस्जिद और मंदिरों को लेकर अयोध्या में जो कुछ घटा, वह बहुत गलत था, लेकिन सबसे अफसोसजनक बात थी, हमारे ही कुछ लोग इसमें शामिल थे, जिनकी सहमति से यह सब हुआ।'[9] हेमंत शर्मा के अनुसार के.के.नायर हिन्दू महासभा से प्रभावित थे।[10]गोविंद वल्लभपंत आचार्य नरेंद्र देव के खिलाफ थे। आचार्य नरेंद्र देव मूलतः फैजाबाद के थे और वे बौद्ध तत्वज्ञान के पक्षधर थे। उनके इसी मुद्दे पर उन्हें बदनाम किया और कांग्रेस ने हराया। के. के. नायर मूलतः नेहरु के ही व्यक्ति थे। बिना राजनीतिक आश्रय संरक्षण के अलावा इतना बड़ा कार्य करना संभव नहीं था। प्रसिद्ध पत्रकार कुलदीप नायर नेहरु के समकालीन थे और उनके नजदीकी माने जाते थे। उन्होंने अपने जीवन चरित्र में मूर्ति रखवाने का श्रेय नेहरु को दिया है। - ''यह बात तब भी सबको पता थी कि एक स्थानीय प्रशासक के.के.नायर

ने 22-23 दिसम्बर, 1949 को वहां मूर्तियां रखी थी। आरएसएस के मुखपत्र 'ऑर्गेनाइजर' ने इस सम्बन्ध में लिखा था-'23 दिसम्बर 1949 की ऐतिहासिक सुबह जन्माष्टमी पर श्री रामचन्द्र और सीता देवी की मूर्तियां प्रकट होने का चमत्कार हुआ' आरएसएस ने नायर को पुरस्कृत करते हुए उनकी पत्नी शकुन्तला को 1951 में लोकसभा का टिकट दिया, जिस पर वे विजयी भी हुई।''[11] इतना ही नहीं इस्तिफा देने के बाद के.के.नायर फैजाबाद में आकर बस गए थे। नेहरु सेक्युलर नहीं थे, वे कितने बड़े सनातनी ब्राह्मण थे इसका मिसाल उनके नाम के साथ लगा हुआ पंडित शब्द से ही पता चलता है। इसी नेहरु ने कायस्थ सुभाष चंद्र बोस को प्रताड़ित करते हुए कांग्रेस से निकलवाया था और पिछड़े वर्ग के सरदार पटेल को प्रधानमंत्री नहीं बनने दिया। डा.राजेंद्र प्रसाद भी भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने तो उन्हें नेहरु काशी ले गए और प्रसाद जी द्वारा यानी एक राष्ट्रपति द्वारा 200 ब्राह्मणों के पैर धुलवाए। ऐसा नेहरु ने क्यों किया? डा.राजेंद्र प्रसाद कायस्थ थे, वर्ण व्यवस्था के अनुसार शूद्र थे। एक शूद्र व्यक्ति के हाथों से ब्राह्मणों के पैर धुलवाकर नेहरु ने यही सिद्ध किया कि भारत में ब्राह्मण राज की स्थापना हो चुकी है। यही वे नेहरु थे कि भारत के आजादी का दिन और समय भी पंचाग देखकर किया! वह भी मध्यरात्रि! और मध्यरात को ही यानी दि.22-23 दिसम्बर, 1949 को राम की मूर्ति रखवाई गई।

नेहरु को शुंग तथा शंकराचार्य पर बड़ा गर्व था। क्योंकि, इन्होंने बौद्ध धम्म को रोका ही नहीं उसपर हमला भी किया। काका कालेलकर ने नेहरु को सवाल किया कि-''हम अपने इतिहास में बुद्ध-महावीर को जो स्थान देते हैं उनकी तुलना में शंकराचार्य का क्या स्थान है?'' इसपर नेहरु ने जवाब दिया कि ''सच पूछो तो मेरी राय में शंकराचार्य का स्थान बुद्ध-महावीर से जरा ऊँचा है। शंकराचार्य के साहित्य में जो झगड़ालूपन है वह मुझे पसंद नहीं है, लेकिन वे बहुत बड़े संगठक थे। उन्होंने जो चार मठ स्थापित किये वे केवल मठ नहीं थे वे हमारी चार अध्यात्मिक छावनियां थी। उन्होंने ही तो बुद्ध भगवान को अवतार रुप में स्थापित किया ना? यह कोई मामूली सिद्धी नहीं है। शंकराचार्य के काम का मूल्यांकन अभी योग्य पद्धति से हुआ नहीं है, यह होना चाहिए। इतिहास में उनका जो स्वभाविक स्थान है, वह उन्हें देना चाहिए।''[12] शंकराचार्य महान संगठन नहीं, आतंकवादी थे। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने बौद्ध भिक्खुओं का कत्लेआम किया था और उसके बाद बौद्ध महाविहारों पर जबरन कब्जा करवाया था। बुद्धगया पर भी आदि शंकराचार्य ने हमला किया था।

उसके भौतिक प्रमाण आज भी वहां दिखाई पड़ते हैं। शंकर दिग्विजय में कुमारिल भट्ट ने यह कबूल किया था कि भेष बदलकर बौद्ध भिक्खु बनकर बौद्धों की भाषा, तत्त्वज्ञान सिखा। बौद्धिक स्तर पर बौद्ध भिक्खुओं को हराना संभव नहीं, जानकारी ही उनका नरसंहार करने की योजना बनाई गई और उसे अंजाम दिया गया। इसका लिखित दस्तावेज शांकर भाष्य में मौजूद है। नेहरु और गोलवलकर शंकराचार्य को आदर्श मानते थे।

नेहरु अत्यंत षड्यंत्रकारी थे, इसकी और एक मिसाल यहां हम देना चाहेंगे। नेहरु ने अपने वसियत में जो केवल प्रचार के लिए और लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए बनाई गई थी। उसमें नेहरु कहते हैं कि ''मै पूरी संजीदगी के साथ यह घोषणा कर रहा हूँ कि मैं अपनी मृत्यु के बाद किसी तरह की धार्मिक रस्मे नहीं करता और सिर्फ एक तौर तरिके के रुप में भी उनको स्वीकार करना पाखंड मात्र होगा और अपने आपको और दूसरों को धोखा देना होगा।'' ऐसा तो नेहरु ने कहा, मगर जीते जी व्यवहार क्या किया? नेहरु के पर्सनल असिस्टेंट रहे मथाई ने भी पुष्टि की है कि नेहरु ने मरने के पहले जप, यज्ञ किया था, ज्योतिषि को बुलाया था। कुलदीप नायर ने इस पर खुद लिखा है कि, -

''जब मैं केंद्रीय मंत्री गुलजारी लाल नंदा से इस सम्बन्ध में जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि नेहरु की रजामंदी से ही मृत्युंजय मंत्र का 4,25,000 बार जाप किया गया था और कई बार वे खुद भी जाप के दौरान उपस्थित थे।''[13] इतना ही नहीं नेहरु की मृत्यु के समय उनके बिस्तर के पास गीता और उपनिषदों की प्रतिमा रखी गई थी जो नेहरु की अच्छा थी। नेहरु अपने ब्रीफ केस में गीता और मनुस्मृति रखते थे। इस तरह से देखा जाए तो नेहरु ने ही 1949 को मंदिर-मस्जिद के विवाद को जन्म दिया। नेहरु ने ही ब्राह्मणवाद को आजाद भारत में मजबूती दी। सरकारी पैसा कुभ्म मेले पर बर्बाद करवाया। ब्राह्मण राज की स्थापना का श्रेय पंडित जवाहरलाल नेहरु को ही जाता है। वास्तविक नेहरु के कारनामे इस तरह थे। नेहरु ने स्वतंत्र भारत का प्रथम लोकतांत्रिक व्यवस्था, संविधान लागू होने के एक महीने पहले 22-23 दिसम्बर, 1949 को हिन्दू-मुसलमान की समस्या को पैदा किया। क्योंकि लोकतंत्र वास्तविक ढंग से लागू हो गया तो डा.बाबासाहब आंबेडकर जी का प्रधानमंत्री बनना नेहरु कैसे पसंद करते? 1949 को धार्मिक विवाद का मुद्दा खड़ा किया गया ताकि जनता हिन्दू और मुसलमान दो खेमों में बट जाए और 3 प्रतिशत ब्राह्मण सत्ता की मलाई चाटे और

व्यवस्था पर हावी हो जाए। आगे का दौर वैसा ही चला। धार्मिक ध्रुविकरण से अल्पसंख्य ब्राह्मण हिन्दू के नाम पर सत्ता व्यवस्था में सर्वोच्च बने। लोकतंत्र का पराजय हुआ। आम लोग आजादी के बाद गुलामी के गर्त में धकेले गए। 1949 को ही दूसरी घटना घटित होती है और वह यह कि गुलाम भारत में गांधी द्वारा गया कांग्रेस अधिवेशन दौरान विभिन्न राष्ट्र के बौद्ध भिक्खुओं का डेलीगेशन उन्हे मिला था। बौद्ध गया पर बौद्धों का नियंत्रण होना चाहिए न की महंत ब्राह्मणों का, इस पर गांधी ने राय दी थी कि आज हम भी अंग्रेजों के गुलाम हैं। आजाद होते ही पहले नंबर पर हम यही काम करेंगे की बुद्धगया बौद्धों को सौपेंगे। भारत आजाद हो गया। तुरंत नेहरु ने बिहार के मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिहं जो भूमिहार ब्राह्मण थे उन्हें कहा तुरंत महाबोधि महाविहार कानून बनाओ और बुद्धगया पर महंत ब्राह्मणों का कानूनन कब्जा करवाओ। महाबोधि महाविहार टेम्पल एक्ट 1949 काला कानून नेहरु के ही दिमाग की उपज थी जिसके द्वारा ब्राह्मणों का उसपर कब्जा करवाया गया है। यह कब्जा आज भी बरकरार है।

वैसे देखा जाए तो गांधी की हत्या के बाद आरएसएस पर जो पाबंदी लगाई थी वह नेहरु ने क्यों हटाई? डा.बाबासाहब आंबेडकर को रोकने के लिए ही वह हटाई। भारत में वास्तविक लोकतंत्र न लागू हो इसकी फिक्र नेहरु को थी। कांग्रेस और आरएसएस कभी भी अलग-अलग नहीं रहे। वे एक साथ ही, एक ही मकसद पर काम करते रहे। आरएसएस ने भी अपना राजनीतिक दल जनसंघ बनाया था। इसके बावजूद आरएसएस के लोग आरएसएस में रहते हुए कांग्रेस का टिकट लेकर चुनाव लड़ते थे। इसका संदर्भ गोलवलकर के समय समग्र साहित्य में एक खत मिला जो उन्होंने 18 अगस्त, 1958 को भी हरिबाबू को लिखा था जो ओडिसा कटक के राष्ट्रीय स्वयंसेवक के पदाधिकारी थे। गोलवलकर लिखते हैं कि- ''आपके कांग्रेस में सम्मिलित होने से एक ज्येष्ठ स्वयंसेवक इस नाते कटक शाखा को मार्गदर्शन करने में कुछ बाधा निर्माण होगी, ऐसा मैं नहीं मानता। कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्वयंसेवक और साथ ही कांग्रेस का सदस्य रहने में कोई विरोधाभास नहीं है। किसी राजकीय दल का केवल सदस्य बनने से कोई व्यक्ति अपने हिंदुत्व का त्याग नहीं करता। यदि कोई राजकीय दल इस तरह की कपोलकल्पित अपेक्षा करता है, तो किसी भी सज्जन, स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए वह सर्वथा त्याज्य ही रहना चाहिए। मेरी ऐसी धारणा है कि कांग्रेसजन इतने अविचारी नहीं है कि वे आपसे अपने हिंदुत्व

तथा हिंदू-समाज एवं संस्कृति के सेवाकार्य को छोड़ने की अपेक्षा करेंगे।'' कांग्रेस और आरएसएस का हिंदुत्व एक ही है। अब सवाल है कि यह कम्युनल और सेक्युलर का नाटक कब से शुरु हुआ? वह बाबरी मस्जिद ढहाने के बाद शुरु हुआ। कांग्रेस और आरएसएस-भाजपा एक ही है और वे एक ही मकसद पर काम कर रहे हैं। भारतीय जनता को गुमराह करने के लिए ही 3 प्रतिशत विदेशी ब्राह्मणों ने अलग-अलग मुखौटे, संगठन-दल के नाम से धारण किये हुए हैं।

अयोध्या का विवाद कांग्रेस ने शुरु किया था। जिला मजिस्ट्रेट के.के. नायर की अगुवाई में राम जन्मभूमि सेवा समिती का गठन 22 फरवरी, 1950 को किया गया था। इसमें कांग्रेसी लोग भी शामिल थे। अयोध्या से रहे और बाद में वे विधानसभा अध्यक्ष भी बने। बिना आंदोलन राम मंदिर नहीं बनेगा इसलिए कांग्रेस, आरएसएस, हिन्दू महासभा और भाजपा ने इस मुद्दे को राजनीतिक हथियार बनाया। इससे राजनीतिक फायदा होने लगा। इस मुद्दे को हवा देने के लिए ही बाबरी मस्जिद एक्शन कमिटी बनाई गई। बाबरी मस्जिद, एक्शन कमेटी के संयोजक ने बल दिया कि ''यदि ऐतिहासिक तथ्यों तथा 1850 के पूर्व लिखी गई किसी मानक पुस्तक द्वारा यह सिद्ध हो जाय कि बाबरी-मस्जिद मंदिर तोड़कर बनायाी गयी थी तो मुसलमान स्वयं उसे गिरा देंगे।''[13] ब्राह्मणों ने संगठित रुप से आंदोलन चलाया। मूलतः पिछड़े वर्गो के हक-अधिकार को दबाना इस आंदोलन के पीछे मुख्य मकसद था।

सन् 1964 में विहिंप (विश्व हिंदू परिषद) का निर्माण किया गया था। लेकिन तब उनके एजेण्डे में अयोध्या राम जन्मभूमि का मुद्दा नही था। अयोध्या मुद्दे को पहली बार विज्ञान-भवन में 1984 में विश्व हिन्दू परिषद ने दिल्ली में 7-8 अप्रैल को हुई पहली धर्मसंसद के छठे प्रस्ताव के रुप में अपनाया और अयोध्या में राम जन्मभूमि, मथुरा में कृष्ण जन्मस्थान तथा बनारस के काशी-विश्वनाथ को हिन्दुओं को वापस करने की मांग करने का प्रस्ताव पास किया। इसके बाद विश्व हिन्दू परिषद सक्रिय हुई।[14] ''पिछड़े वर्ग को आरक्षण ना देना, उनकी संख्या के अनुपात में उनको भागीदारी ना देना इसीलिए अब खुलकर धार्मिक एजेंडे पर विहिंप काम कर रही थी। लेकिन यह काम कांग्रेस का विरोध करने के लिए नहीं था, बल्कि आपसी सहमति से चल रहा था। पिछड़े वर्ग को अगर अधिकार वंचित करना है तो धार्मिक मुद्दे पर ही उन्हे डाइवर्ट किया जा सकता है। गोलवलकर नेहरु का जैसे समर्थन करते थे उसी तरह इंदिरा गांधी पिछड़े वर्ग का आंदोलन रोकने के लिए ही सिखों के खिलाफ मिलिट्री एक्शन की

ताकि इस हिंसात्मक आंदोलन के कारण पिछड़े वर्ग का आंदोलन दब जाए। जैसी करनी वैसी भरनी! प्रतिक्रिया के रुप सिखों ने इंदिरा गांधी की हत्या कर दी। खास बात इंदिरा गांधी के पर्सनल बॉडीगार्ड ने ओबीसी के आंदोलन को दबाने के कारण ही इंदिरा गांधी को गोली मारी। इंदिरा गांधी भी राममंदिर बनाने की पक्षधर थी। इंदिरा गांधी की हत्या की खबर सुनते ही राममंदिर आंदोलन चलाने वाले ब्राह्मण साधू रो पड़े थे। ''समाचार सुनकर सामने बैठे दोनों साधु रो पड़े और कहने लगे कि अब राम जन्मभूमि मुक्ति आन्दोलन का क्या होगा? उन्होंने यह रहस्योद्घाटन किया कि हम हाल ही में हरिद्वार के भारत माता मंदिर के स्वामी सत्यमित्रानन्द जी और विश्व हिन्दू परिषद के नेताओं के साथ दिल्ली में प्रधानमंत्री से मिले थे तथा राम जन्मभूमि मुक्ति का अनुरोध किया था।''[5] इंदिरा गांधी भी राम मंदिर बनाने की योजना पर काम कर रही थी। इंदिरा गांधी की हत्या होने के बाद आरएसएस ने राजीव गांधी को समर्थन दिया। राजीव गांधी ने आरएसएस से गुप्त समझौता करके भारी बहुमत से चुनकर आये और केंद्र में सत्ता हासिल की। पायलेटी करने वाले राजीव गांधी राजनीतिक पटल पर आयेगा। भाजपा के दो ही सांसद अटल-आडवाणी चुनकर आये थे।

राजीव गांधी ने अयोध्या में जाकर देवराह बाबा के पैर तक अपने सिर पर रख आये थे। देवराह बाबा ने ही कांग्रेस का चिन्ह पंजा करने को कहा था, जो आज भी है। कांग्रेस के प्रमुख राजीव गांधी ने ही विवादित जगह जाकर शिलान्यास किया था और राजीव गांधी के ही कहने पर जस्टीस पांडे ने विवादित जगह पर जो ताला लगवाया था उसे खोलने का आदेश दिया था। फैजाबाद के तत्कालीन जिला न्यायाधीश कृष्ण मोहन पांड्ये ने ताला खोलने का जो फैसला दिया वह कानून के मद्दे नजर नहीं, बल्कि उन्होंने अपने आत्मचरित्र 'Voice fo Conscience' में उस काले बंदर को देखकर फैसला किया था। इसका जिक्र किया गया है। पांड्ये जज ने क्या लिखा है? ''जिस रोज मैं ताला खोलने का आदेश लिख रहा था, मेरी अदालत की छत पर एक काला बंदर पूरे दिन प्लेट पोस्ट को पकड़कर बैठा रहा। वे लोग जो फैसला सुनने के लिए अदालत आए थे, उस बंदर को फल और मुंगफली देते रहे, पर बंदर ने कुछ नहीं खाया। चुपचाप बैठा रहा। फैसले के बाद जब डी.एम. और एस.एस.पी. मुझे मेरे घर पहुंचाने गए तो मैने उस बंदर को अपने घर के बरामदे में बैठा पाया। मुझे आश्चर्य हुआ। मैने उसे प्रणाम किया। वह कोई दैवीय ताकत थी।'' काले बंदर को देखकर फैसला देने वाले पांड्ये जज बाद में होईकोर्ट के जज भी बने। 1994

में पांड्ये रिटायर्ड हुए। ऐसे जज ने अपने कार्यकाल में क्या फैसले दिए होंगे इसका अनुमान पर भी किसी को पीएचडी करना चाहिए।

शीतला सिहं अयोध्या विवाद के मध्यस्थ व्यक्ति थे। खुद राजीव गांधी भी मंदिर के पक्षधर थे। अयोध्या को छोड़कर बाकी धार्मिक स्थलों की यथोस्थिति रहेगी, ऐसा प्रस्ताव रखा गया था। अयोध्या में राजीव गांधी और पी.व्ही.नरसिंह राव ने मंदिर बनाने की पूरी योजना बना रखी थी। प्रस्तावित मंदिर जो 268 फुट लम्बा 140 फुट चौड़ा तथा 140 फुट ऊँचा है बिना मस्जिद को नुकसान पहुंचाये बनना सम्भव ही नहीं है। 1989 के बाद राम मंदिर पर गतिविधियां विहिंप कांग्रेस के प्रोत्साहन पर ही बढ़ा रहे थे। कांग्रेस की मंदिर बनाने की योजना क्या थी? इस बाबत डा.बी.राय के किताब का हवाला देकर शीतला सिंह बताते हैं कि- ''जब डा.बी.राय जो मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह के विशेष सुरक्षा अधिकारी थे जो बाद में बाबरी-मस्जिद ध्वंस के समय फैजाबाद के एस.एस.पी हो गये थे। लिखते हैं कि उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह ने एक दिन उन्हें बुलाया और पूछा कि आप गाड़ी चलाते है? एक जगह जाना है, सभी सुरक्षाकर्मियों को छुट्टी दे दीजिए। मैं उन्हे महानगर में एक रिटायर्ड आयकर अधिकारी के आवास पर लेकर गया जहां विश्व हिन्दू परिवार के नेता महन्त अवैद्यनाथ मौजूद थे। वहां पर हम तीन ही थे (वीर बहादुदर सिंह, महन्त अवैद्यनाथ तथा मैं)। वीर बहादूर सिंह जी ने कहा कि राजीव जी चाहते हैं कि सोमनाथ की तर्ज पर केन्द्र सरकार मंदिर बनाए। इसकी शर्त यह रहेगी कि मन्दिर गिराया नहीं जाएगा। इसके लिए मस्जिद के ऊपर चारों ओर खम्भे बनाकर एक छत डालकर मन्दिर बनेगा। विहिंप यदि मन्दिर बनाना चाहती है तो केन्द्र सरकार की ओर से बनाए। अवैद्यनाथ जी ने कहा कि इससे तो कांग्रेस को लाभ मिलेगा। मैं विहिंप और भाजपा के नोताओं से बात करके आपको बताऊंगा।''[17] लेकिन कांग्रेस की योजना में भी मस्जिद का वजूद ही खत्म करना था। आगे चलकर कांग्रेस और आरएसएस ने अंदरुनी तौर पर गुप्त योजना बनाई और उसकी परिणती मस्जिद के ध्वंस के लिए हुई।

मस्जिद ध्वंस के लिए रथयात्रा का माहौल बनाया गया। इसका सारा रिमोट कंट्रोल आरएसएस के हाथ में था। कांग्रेस के सहयोग के बगैर राम मंदिर आंदोलन तीव्र नहीं हो सकता था। इसके लिए रामायण सिरियल तक दूरदर्शन पर समूचे भारत में दिखाई गई। मस्जिद ढहाने के लिए जनमानस तैयार करना जरुरी था। यह सब योजना बनाकर चल रहा था।

राजीव गांधी के बाद पी.वी.नरसिंहराव के हाथ में कांग्रेस तथा देश के सूत्र आए। देश का गृहमंत्री महाराष्ट्र-नांदेड के शंकरराव चव्हाण को बनाया गया। केंद्र सरकार ने अयोध्या में कारसेवा के नाम पर लाखों की संख्या में लोगों को इकठ्ठा होने दिया। उत्तर प्रदेश में भाजपा की कल्याण सिहं की सरकार थी। केंद्र सरकार को सारी खुफिया जानकारी मिल रही थी और परिस्थिति का आकलन पहले ही हो चुका था। लेकिन घटना को अंजाम देने के लिए केंद्र की कांग्रेस सरकार ने पूरा साथ-सहयोग दिया और ''6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद ढहाई गई। मंदिर आंदोलन के प्रमुख एल.के.आडवाणी ने अपने जीवन चरित्र 'माइकंट्री, माइ लाईफ' में 6 दिसम्बर, 1992 को क्या हुआ था? इसका जिक्र करते हुए कहा कि - (6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद के ध्वस्त के बाद का) अयोध्या से लखनऊ तक का सफर मुझे बिलकुल याद है। 135 किलोमीटर का वह सफर कड़ी सुरक्षा के बावजूद जल्लोष-आनंद के साथ लोग मना रहे थे। अयोध्या से निकलकर आधा घंटा होते ही हमारी गाड़ी पुलिस ने रोकी। मुझे और प्रमोद महाजन को गाड़ी में देखकर उत्तर प्रदेश के सरकारी एक वरिष्ठ अधिकारी हमारे पास आये और कहने लगे, 'अडवाणी जी, कुछ बचा तो नहीं ना? बिलकुल साफ कर दिया ना?' अयोध्या के दुःखद घटना के बाद आम लोगों की और उसमें भी खास राज्य सरकार के कर्मचारी और अधिकारी भी शामिल थे। उनकी मनःस्थिती अत्यंत खुशी की थी। इसपर रोशनी डालने के लिए ही मैनें यह घटना बताई है।''[17] सरकारी सुरक्षा यंत्रणा सारी की सारी उस क्राईम करने के समर्थन में लगी थी।

इस घटना पर देश के पीएम पी.वी.नरसिंहराव की क्या स्थिती थी? पी.वी.नरसिंहराव के अतिरिक्त सचिव रहे पी.वी.आर.के प्रसाद जो आइएएस थे, इन्होंने 'व्हिल्स बिहाइंड द वेल' नामक किताब लिखी है। जिसमें 6 दिसम्बर के दिन नरसिहं राव की मानसिकता क्या थी? इसका वर्णन किया है। उन्होंने उस दिन नरसिंहराव के व्यवहार का वर्णन करते हुए लिखा है कि-''आदतन प्रधानमंत्री रविवार को मुझे बुलाते थे। 6 दिसम्बर को भी रविवार था। जब मैं गया तो कमरे में पी.वी.अकेले थे। उन्होंने मुझे बैठने को कहा। मैने देखा, वे अपने आप से जोर-जोर से बातें कर रहे हैं। मैं बड़े ध्यान से उन्हे सुन रहा था। पी.वी. कह रहे थे, हम भारतीय जनता पार्टी से लड़ सकते हैं, लेकिन हम भगवान राम से कैसे लडेंगे? भारतीय जनता पार्टी का बरताव ऐसा है, जैसे भगवान राम पर सिर्फ उन्हीं का अधिकार है। अब हम कहते हैं कि कांग्रेस एक धर्मनिरपेक्ष पार्टी है। तो इसका यह कतई मतलब नहीं है कि हम नास्तिक हैं। भगवान

राम हमारे लिए भी भगवान है। हम भी उनकी पूजा वैसे ही करते हैं जैसे वे करते हैं। अयोध्या में राम मंदिर बनाने के नाम पर ये लोग कब तक लोगों की आँखों में धूल झोंकते रहेंगे?'' पी.वी.नरसिंह राव के सहयोग से ही बाबारी मस्जिद के ध्वंस का कार्य चल रहा था। यही सच्चाई है। कुलदीप नायर अपने जीवन चरित्र में लिखते है कि जब बाबरी मस्जिद गिराई जा रही थी तब नरसिंहराव पूजा-पाठ में व्यस्त थे जैसे ही काम तमाम हो गया यह जानकारी उन्हें दी गई तब वे पूजा पाठ से उठे। यह बात तो निर्विवाद है कि कांग्रेस के सहयोग से ही बाबरी मस्जिद ढहाई गई। बाबरी मस्जिद के शहादत के बाद पी.वी.नरसिंह राव ने 'उसी जगह पर मस्जिद निर्माण की जाएगी' यह आश्वासन दिया था। उसे एक साल पूरे होने के बाद संसद में बोम्बई ने याद दिलाई। सोमनाथ चॅटर्जी ने भी उस पर सवाल किया। शंकरराव चव्हाण उस समय गृहमंत्री थे। उन्होंने अत्यंत चलाकी से जवाब दे दिया कि 'दुबारा निर्माण की जाएगी इसका अर्थ क्या है? उसी स्थान पर मस्जिद निर्माण की जाएगी, ऐसा प्रधानमंत्री ने कहा होगा, मुझे नहीं लगता' अन्य सदस्यों ने बार-बार याद दिलाया कि रिबिल्ट यानी उसी स्थान पर मस्जिद निर्माण कर देंगे, ऐसा पीएम ने कहा था। चव्हाण ने फिर भी कहा कि उसका अर्थ उसी जगह पर होता है, ऐसा नहीं। विवाद इतना बड़ा था की पीएम का वक्तव्य जो दूरदर्शन से प्रसारित हुआ था, उसे संसद में सभी को सुनाया जाए, ऐसा कहा गया। आडवाणी इसपर बोले कि अयोध्या तथा देश के मुसलमानों ने रामजन्म भूमि से दूर कोई जगह चुनकर मस्जिद निर्माण की तो उसे किसी का विरोध नहीं होगा। इस तरह से भाजपा ने कांग्रेस का बचाव किया। दोनों की योजना एक ही थी जिसपर आज अमल किया गया।

बाबरी मस्जिद गिराने के पहले के षडयंत्र

अयोध्या का फैसला आने के बाद के.के. मुहम्मद ने ''मैं हूँ भारतीय'' नामक जीवन चरित्र लिखकर आरएसएस से संबंधित प्रभात प्रकाशन से वह प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने एक बात का अब खुलासा किया है कि-''उसी समय 15 दिसम्बर, 1990 को मैनें बयान दिया कि बाबरी मस्जिद के नीचे मंदिर के अंशों को स्वंय मैने देखा है।''[18] के.के.मुहम्मद का ब्राह्मणों ने बखूबी इस्तेमाल ही किया। ब्राह्मणों को केवल सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर ही दलाल मिलते हैं, ऐसा नहीं इतिहास

और पुरातत्व शास्त्र में भी डिग्रीधारी अक्लमंद दलाल मिलते हैं। खास बात है कि उनकी बात को 'इंडियन एक्सप्रेस' में 1990 को बढ़ा-चढ़ाकर छापा गया। बाबरी मस्जिद का ढाँचा गिराने में के.के. मुहम्मद का भी हाथ है। बदले में उन्हें शान-शौकत मिली, सम्मान मिला। अयोध्या विवाद मामले पर फैसला आते ही धड़ाधड़ किताबें प्रकाशित हुई। उसमें से एक प्रो.दीनबन्धु पाण्ड्ये की किताब- 'राम जन्मभूमि मन्दिर अयोध्या की प्राचीनता' भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद ने उसे प्रमोट किया। दूसरी खास बात की उस छुटे लेखन को बी.आर.मणि ने समर्थन दिया। मणि का भी आरएसएस ने खूब इस्तेमाल किया। लॉकडाऊन में मणि का वास्तविक चेहरा खुलकर सामने आया। पाण्डे ने अपनी किताब में पुरातत्वज्ञों के गोपनीय रिपोर्टो के कुछ पन्नें जोड़े हैं। मगर उसमें क्या लिखा है उसे खुलकर नहीं लिखा। सवाल यह है कि वह रिपोर्ट अत्यंत छोटे तथा गोपनीय क्यों बनाए? और वह सामग्री पाण्डे को कैसे प्राप्त हुई? सारा का सारा षड्यंत्र ही है। वे गोपनीय खत खास बात की ओर इंगित कर रहे थे। 3 जुलाई, 1992 को डॉ.वाई.डी. शर्मा, डा.के.एस. श्रीवास्तव जो दोनों भारतीय पुरातत्व विभाग के पूर्व निदेशक थे और पी.आर. ग्रोवर पूर्व निदेशक भारतीय इतिहास सर्वेक्षण परिषद थे। इन्होंने लखनऊ में आयोजित पत्रकार परिषद में विवादित जगह पर 10 फीट खड्डा खोदा था और वहां उन्हे अधिक मूर्तियां मिली। लेकिन उन्होंने वह मूर्तियाँ किसकी है इसे सार्वजनिक क्यों नहीं किया? उनका दावा था कि उस विवादित जगह के नीचे मंदिर ही है और उसका काल 11-12 वीं सदी का है। उसके बाद एएसआई महानिदेशक एम.सी.जोशी, डा.शर्मा को एक खत भेजते हैं। जिसमें वे जिक्र करते है कि- 'हाल ही में विहिंप द्वारा खोदी गई जगह का अध्ययन किया जो राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के पास है।' आप इस पर रिपोर्ट बनाकर भेजें। दि.5 सितम्बर, 1992 को डा.जयदत्त शर्मा ने महानिदेशक जोशी को अत्यंत गोपनीय तरिके से एक खत भेजा। जिसका आशय विहिप के द्वारा खोदे गए वस्तुओं का समर्थन करना था। वहां पर एक मंदिर था और वह 15, 16 वीं सदी में मंदिर को कुछ समय के लिए ध्वस्त किया था और उसके टुकड़ों को जानबूझकर खोदे गए गड्ढों में फेंक दिया था। उसी स्थान पर विहिप के लोग कैसे पहुँचे? पूरा भारतीय पुरातत्व विभाग इस काम पर लगाया था। ऐसा लगता है कि मस्जिद गिराने की वे लोग पार्श्वभूमि बना रहे थे। कांग्रेस और विश्व हिंदू परिषद एक ही एजेंडे पर काम पर लगे थे।

1 दिसम्बर, 1990 को विश्व हिंदू परिषद और बाबरी मस्जिद ऐक्शन कमेटी के

बीच द्विपक्षीय वार्ता आरम्भ हुई, जिसमें विहिंप की ओर से विष्णुहरि डालमिया, प्रदीप प्रसाद तोसनीवाल, श्रीशचंद्र दीक्षित, मोरोपंत पिंगले, कौशल किशोर, भानु प्रताप शुक्ल और आचार्य गिरीराज किशोर शामिल थे। 14 दिसम्बर को और एक बैठक हुई, जिसमें केंद्र के तत्कालीन गृहराज्यमंत्री, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री भी शामिल थे। बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी की तरफ से जफरयाब जिलानी ने कहा कि इस बात का साक्ष्य नहीं है कि मंदिर तोड़कर मस्जिद बनायी गयी है। राजस्थान के मुख्यमंत्री भैरव सिंह शेखावत ने कहा कि दोनों तरफ से गंभीरता से विवेचन होना चाहिए। फिर 22 दिसम्बर तक दोनों पक्षों को अपने-अपने सबूत पेश करने को कहा गया। उसके बाद 10 जनवरी को गुजरात भवन में एक बैठक हुई उसमें कई इतिहासकारों को बुलाया था।- डॉ.आर.एस.शर्मा, डा.डी.एन.झा, सूरजभान, डा.ए. अख्तर और विहिंप की तरफ से जस्टीस गुमानमल लोढा, जस्टिस देवकी नंदन अग्रवाल, जस्टिस डी.पी. सहगल, प्रमुख अधिवक्ता वी.के.एस.चौधरी, आदि 10 व्यक्ति शामिल थे। गृहमंत्रालय से बार-बार यह भी कहा गया कि प्रो.बी.बी.लाल द्वारा की गयी खुदाई की रिपोर्ट भी उपलब्ध कराए। लेकिन वह पेश नहीं की गई। दि. 31 मई, 1991 को 'राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद पर इतिहासकारों की एक रिपोर्ट पेश की गई। उस रिपोर्ट में यह दावा किया कि वहां कोई मन्दिर के अवशेष नहीं है। लेकिन, मजे की बात यह है कि अयोध्या महात्म्य और स्कंद पुराण यह अत्यंत प्रक्षिप्त है। 18 वीं सदी तक प्रक्षिप्त का काम चलता रहा। जो भी हो अयोध्या महात्म्य और स्कंद पुराण प्रमाणित दस्तावेज कतई नहीं हो सकते, ऐसा उन इतिहासकारों का मत है। आखिरकार वहीं हुआ जो शासक जातियों ने पहले से ही तय किया था। 6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद गिराई गई। देश में बड़े पैमाने पर हिंसा कांड हुआ, जिसमें जान-माल की हानि हुई।

आगे हम देखते हैं कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के आदेश पर 2.77 एकड़ जगह यानी विवादित जगह पर जमीन के नीचे मंदिर के अवशेष हैं या नहीं? इस मुद्दे को लेकर उत्खनन का कार्य कराने का ऑर्डर दिया गया। उत्खनन कार्य की समय सीमा 1 माह 15 दिन का रखा, लेकिन वास्तव में यह कार्य 114 दिन चला। दो खंडो में पेश की गई रिपोर्ट ठोस रुप से राम के मंदिर का निर्देश नहीं करती। रानी कुमार देवी का ढांचा यह पुरातात्विक दृष्टि से बौद्ध ढांचा है। सन् 2003 की मांझी, मणि की वह रिपोर्ट भी उस विवादित जगह पर बौद्धों के ही प्राचीन अवशेष हैं, यह मान्य करती है। मणि

ने लॉकडाउन में लाईव एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने यह कहा था कि उनको एक-दो साल पहले ब्रेन स्टोक हो चुका था। वे रेगुलर दवा ले रहे थे और उनकी वह कार्य करने की इच्छा नहीं थी। मणि अब वर्तमान में आरएसएस, भाजपा की लाइन पकड़कर बोल रहे हैं। तथ्य और सबूतों को उन्होंने भी अब छोड़ दिया है। एक बात जाहिर है कि मणि का शासक जातियों ने इस्तेमाल किया। हंस बेकर और पोलक का यह मत है कि विवादित ढांचे के नीचे बौद्ध रानी कुमार देवी द्वारा बनाया गया बौद्ध मंदिर है। राम का मंदिर उत्तर भारत में कहीं पर भी दिखाई नहीं देता। राम कल्ट ही 13-14 की सदी के बाद शुरु हुआ।

इलाहाबाद हाईकोर्ट और सर्वोच्च न्यायालय ने बौद्धों का पक्ष जानबूझकर दबा दिया है। तथ्य और सबूत के आधार पर वह विवादित जगह 2.77 एकड़ जगह ही नहीं, बल्कि पूरा 70 एकड़ से ज्यादा जगह बौद्ध प्राचीन अवशेषों से भरी पड़ी है। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में 22 अप्रैल, 2009 को एड.जफरयान जिलानी ने युक्तिवाद का जिक्र किया है, जिसमें उन्होंने कहा ''बाबरी मस्जिद के जगह पर ही राम का जन्म स्थान है। इस बारे में विवाद है इसको हमारा विरोध है।'' इसे उद्धृत किया, जिसमें आस्था, मान्यता वेगैरे शब्दों का प्रयोग किया है। जजमेंट के 545 पृष्ठ पर एएसआई को 2003 की रिपोर्ट का जिक्र आया है। गोलाकार संरचना (सर्कलर श्राईन) का खास जिक्र आया है। इस पर मुस्लिम पक्षकार के वकील ने कहा वह मंदिर के बजाए स्तूप की रचना लगती है। कोर्ट के सामने बौद्ध स्तूप की संरचना का मुद्दा आया था। मगर यह अत्यंत सोचनीय बात है कि बौद्धों के अवशेषों की चर्चा क्यों नहीं हुई? बौद्धों का पक्ष न्यायपालिका में बाद में पहुंचा था। उसे स्वीकार भी किया था। मगर ऐन वक्त पर उसको दरकिनार कर दिया गया।

सर्वोच्च न्यायालय में जो बहस चली वह निर्धारित समय के अंदर चली यानी 40 दिन चली। कोर्ट में जो युक्तिवाद किये गए है उसपर आधारित किताबें अब अल्पावधि में प्रकाशित किये गए हैं। कोर्ट के अंदर चली बहस अब सार्वजनिक की गई है। सुप्रसिद्ध वकील धवन महोदय ने 4 अक्टूबर, 2019 को युक्तिवाद करते हुए कहा था कि-''कल कोर्ट में कहा गया कि यह मामला क्रिकेट टूर्नामेंट की तरह है। इस पर सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि यह एक केस ही है। हमारे लिए भी यह एक केस ही है। हमें इस पर व्यर्थ की भाषणबाजी कर राज्यसभा नहीं जाना है।''[19] फैसला दिये जाने के बाद जस्टीस गोगई राज्यसभा पर नियुक्त किये गए तब कई जजों ने इसपर तिखी

प्रतिक्रिया दी। जस्टीस गोगई और उनके साथ के अन्य जजों ने प्रेस मीडिया के सामने न्यायपालिका में सरकार का हो रहा हस्तक्षेप पर सार्वजनिक किया था। वही साथी न्या.गोगोई के राज्यसभा पद स्वीकृत करने पर नाराजगी भी जताई थी। यह तो न्यायाधिशों ने ही आपत्ति उठाई थी कि यह फैसला भेदभावपूर्ण है।

लॉकडाउन को भागवत ने अवसर क्यो बताया?

लॉकडाउन घोषित होते ही दूसरे दिन जब पूरे देश में आवागमन बंद था, सारे काम बंद थे। लॉकडाउन कें दौरान लोग घर के बाहर न निकले, ऐसा खुद प्रधानमंत्री मोदी देश को राष्ट्रहित में अपील कर रहे थे। तभी लॉकडाउन में ही सवेरे पाँच बजे योगी आदित्यनाथ और ब्राह्मणों का जमावड़ा विवादित जगह जाकर रामलला को अस्थायी भवन में शिफ्ट करते हैं और तुरंत उस जगह पर जेसीबी लगाकर तोड़फोड़ का कार्य पूरा एक महीना चलाते हैं। समतलीकरण के नाम पर वहां के प्राचीन बौद्ध अवशेषों को नष्ट किया गया। बुद्ध स्तूप को तोड़ा गया। सोशल मीडिया में तस्वीरें सामने आने के कारण पूरे देश में चर्चा का विषय बना। एएसआई इस मामले पर कुछ भी नहीं बोली। न्यायपालिका चुप! आरएसएस के प्रमुख मोहन भागवत ने अपने फेसबुक पर लॉकडाउन को अवसर कहा था। उसका तात्पर्य यही था कि लॉकडाउन का सहारा लेकर बौद्धों के मुख्य स्थान पर कब्जा करवाने हेतु सबूत नष्ट करना, यह ब्राह्मणों के लिए अवसर है। 2.77 एकड़ से अब 125 एकड़ जगह पर राम मंदिर का परिसर घोषित कराना यानी सम्राट अशोक के सभी परिसर पर जबरन कब्जा करना है। लोगों द्वारा विरोध हुआ तो ब्राह्मणों ने उसे अपशकुन मानकर वहां रुद्राभिषेक भी किया। फिर आगे भी लॉकडाउन था। प्रधानमंत्री के नाम से मंदिर का शिल्यान्यास का विज्ञापन किया गया और 5 अगस्त को मोदी को चलाने वाले मोहन भागवत भी अयोध्या में आए। मोदी, योगी और भागवत ने लोकतांत्रिक देश में 'रामराज्य' की घोषणा कर दी। मंदिर के बहाने ब्राह्मणों का वर्चस्व और भी ज्यादा मजबूत हो गया है। कांग्रेस ने भी भाजपा का इस मुद्दे पर समर्थन किया। राहुल गांधी और कमलनाथ ने समर्थन किया कि राममंदिर बनाना यह राजीव गांधी का ही सपना था। दोनों एक ही है, काँग्रेस-भाजपा का एक ही अजेंड़ा है और वह है मनुप्रणित राज्य यानी ब्राह्मणी राज्य की स्थापना करना।

डीएनए अनुसंधान से यह सिद्ध हुआ है कि ब्राह्मण इस देश के नहीं हैं। वे यूरेशियन है। यामनेया प्रजाति के आक्रांता तथा हिंसक ब्राह्मणों ने भारत को पूर्ण रुप से कब्जा कर लिया है। जिनका डीएनए भारतीय नहीं, उन विदेशी आक्रांता ब्राह्मणों का भारत के किसी भी भूभाग पर कब्जा कैसे हो सकता है? मूलनिवासी बहुजनों जागो, यह मुट्ठीभर विदेशी ब्राह्मण भारत को दो हिस्सों में तोड़ना चाहते हैं। जल्दी करो और भारत को विदेशी ब्राह्मणों से आजाद करो!

●●●

संदर्भ :

1) श्रीगुरुजी समग्र साहित्य खंड-7, पृ.38
2) विदेशी ब्राह्मणों की मातृभूमि यूरेशिया नए डीएनए रिपोर्ट से अंतिम फैसला- लेखन एवं संपादन - प्रो.विलास खरात, पृ.127
3) कांग्रेस का इतिहास, भाग-1, लेखक- डा.बी.पट्टभिसीतारामय्या, पृ.561
4) संपूर्ण गांधी वाङमय खंड - 35, पृ.337
5) रामनाम, लेखक- गांधीजी पृ.7
6) उपरोक्त, पृ.20
7) युद्ध में अयोध्या, लेखक- हेमंत शर्मा, पृ.281 प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
8) अयोध्या रामजन्मभूमी - बाबरी - मस्जिद का सच लेखक- शीतला सिंह, पृ.41, कोशल पब्लिकेशन, फैजाबाद, द्वितीय संस्करण, 2019
9) युद्ध में अयोध्या, लेखक : हेमंत शर्मा, पृ.289
10) उपरोक्त, पृ.299
11) कुलदीप नायर का जीवन चरित्र - Beyond the lines, An Autobiography का हिन्दी अनुवाद, अनुवादक-युगांक धीर, पृ.398-399
12) गांधी युग के एक जंगल विद्यापीठ में, लेखक- रवींद्र केलकर, पृ.63-64 प्रकाशन-1989
13) अयोध्या- राम जन्मभूमि - बाबरी मस्जिद का सच,

लेखक- शीतला सिंह, पृ.77
14) उपरोक्त, पृ.55
15) उपरोक्त, पृ.56
16) उपरोक्त, पृ.139
17) My Country, My life, By- L. K. Adwani, pp.402
18) Supreme Court of India -
अयोध्या मामले पर जजमेंट व नवम्बर 2020, पृ.62
19) सुप्रीम कोर्ट में रामलला,
लेखन एवं संपादन - पवन कुमार, पृ. 183, प्रभात प्रकाशन,
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2020.

परिशिष्ट-1

उत्तर-पश्चिम अवध प्रांत का पुरातात्विक अहवाल प्रमुख फुहरर अयोध्या बाबत अहवाल-सन 1891

(सर मेजर जनरल कनिंघम ने 1857 के बाद तुरंत अयोध्या में उत्खनन तथा सर्वेक्षण कार्य किया था, जिसका बाद में रिपोर्ट भी प्रकाशित हुआ था। उनके शोध के पश्चात तीन दशक बाद फुहरर ने अवध प्रांत के पुरातात्विक अधिकृत अधिकारी होने के नाते सर्वेक्षण किया था। उनका शोध भी सर जनरल कनिंघम के शोध को अधिक पुष्टि देता है। इससे यह बात और ज्यादा मजबूती से सिद्ध होती है कि वह जगह बौद्ध जगह थी। इसलिए इसे परिशिष्ट में जोड़ा गया है।)

इसमें कोई शंका ही नहीं कि, ह्युएनत्संग ने जो पिसोकिया या विशाखा देखी थी उसमे अनेक पाखंडी यानी ब्राह्मण रहते थे, ऐसा जो ह्युएनत्संग ने वर्णन किया था। वह स्थान दूसरा तीसरा कोई नहीं, बल्कि वह हिंदू की अयोध्या ही है। उसने विशाखा का वर्णन 16 ली यानी 2 मील और 2X3 मील इतने परिघि को दिखाया है। इसलिए उसके समय में ही राम की राजधानी वर्तमान की अयोध्या शहर के आधे से ज्यादा नहीं थी। पुराने नगर में 20 के लगभग संघाराम थे और उसमें 3 हजार भिक्खु रहते थे। उसके पास ही उस नगर में ब्राह्मणों के 50 मंदिर भी थे। इस वर्णन से ऐसा दिखाई देता है कि 7 वें शतक के आरंभ में ही विक्रमादित्य के निर्माण किए हुए 300 से ज्यादा मंदिर नष्ट हो चुके थे। उससे स्पष्ट होता है कि यह नगर धीरे-धीरे पहले से ज्यादा पतन की ओर चला होगा। मगर इस नगर के बौद्ध विहार बहुत अच्छी स्थिति में थे और बनारस की ही तरह यहां पर असंख्य बुद्धिमान भिक्खु रहते थे।

ह्युएनत्संग का वर्णन किया हुआ पहला स्मारक बिना नाम का संघाराम है। सर जनरल कनिंघम ने उसे सुग्रीव पर्वत कहा है जो 500 फीट और 300 फीट है। उसका भव्य आकार और आकृति स्वरुप यही दर्शाता है कि वह एक विशाल विहार (संघाराम) था। यह बताने में कोई शंका ही नही है कि उसके बीचोबीच अंदर एक कुँआ था और उस कुँएं के आसपास भिक्खुओं के निवास के लिए अनेक कमरे बनाए थे। उसकी स्थिति नगर के दक्षिण दिशा की ओर नगर के अंदर जाने वाले रास्ते के पूर्व दिशा को होने के कारण ह्युअएत्संग ने उस संघाराम का जो वर्णन किया है वह उसकी भौगौलिक स्थिति के अनुसार वर्तमान में भी बिलकुल सही मिलाता है। इस

संघाराम के साथ-साथ वहां सम्राट अशोक के द्वारा बनाया हुआ 200 फीट ऊंचा बुद्ध स्तूप था। जहां पर बुद्ध ने 6 वर्ष धम्म का प्रवचन एवं प्रचार किया था। उसी जगह पर सम्राट अशोक ने वह पवित्र स्तूप बनाया था। सर जनरल कनिंघम ने इसी भव्य स्तूप को मणि पर्वत कहा है जो 65 फीट ऊंचा था, जिसका ऊपरी पत्थरीली हिस्सा उससे भी ज्यादा ऊंचा होगा और उसके ऊपर आकर्षक धातु का मिनार बराबर 200 फीट ऊंचा बुद्ध स्तूप था। कनिंघम महोदय आगे कहते हैं कि इस स्तूप के नीचे का हिस्सा मिट्टी से बना हुआ बुद्ध काल के जो पहले का बना हुआ था और उसके ऊपर ही सम्राट अशोक ने ऊपर का पत्थरीली हिस्सा नये सिरे से निर्माण किया था। आगे ह्युएनत्संग दातून के वृक्ष के जगह का वर्णन करता है और उसके साथ-साथ उस भव्य स्तूप के आसपास ही पूर्व के चार बुद्ध उठते-बैठते थे। कनिंघम ने इस स्थान का वर्णन किया है कि सीस और आयुब के दर्गे की जगह है। और यह दर्गे मणिपर्वत के दक्षिण दिशा को लगा हुआ है। कनिंघम ने इन दो दर्गो के संबंध में पूर्व के चार बुद्धों से इसका संबंध जोड़ा है। उस दर्गे के प्रारंग में ही वह चार बुद्ध नित्य के काम करते थे। मगर चीनी यात्री ने बुद्ध के जिन पदचिन्ह को अपने वर्णन में बताए थे। वे कनिंघम को नहीं मिले।

ह्युएनस्तंग ने आखिर में जिन स्थापत्य का वर्णन किया था वह एक स्तूप था, उसमें बुद्ध के केस और नाखून रखे हुए थे। उसके आस-पास असंख्य मात्रा में बिलकुल एक दूसरे को खचाखच लगे हुए मनौती बौद्ध स्तूप थे। वहां पानी रखने के लिए छोटे-छोटे हौद थे, जिससे यह दिखाई देता है कि पवित्र पानी के हौद वहां होते थे। इससे यही स्पष्ट होता है कि वह एक पवित्र धार्मिक स्थल था। जनरल कनिंघम ने उस स्तूप को कुबेर पर्वत कहा है। सीस और आयुब दर्गे के परिसर के दक्षिण दिशा को लगे हुए हैं। वह अब नष्ट हुए प्राय संघाराम के पश्चिम दिशा को इलाका सटा हुआ है।

चीन यात्री ने पानी के एक बड़े हौद का जो वर्णन किया है उसे अभी ब्राह्मण गणेश कुंड कहते हैं। लेकिन वह बौद्ध वास्तू ही है। उसके आस पास के छोटे-छोटे हौद बहुत पहले ही नष्ट हुए हैं। क्योंकि उनके हिस्से का सामान मुगल शासकों ने उनकी कबरें और आस पास की मस्जिदें तथा पूल बनाने के लिए इस्तेमाल किए हैं।

इन स्मारकों के उत्तर दिशा में एक पुराना नगर था, जिसका नाम बरेता था, ऐसा कुछ लोग बोलते हैं। उनका ऐसा कहना है कि अयोध्या राम की राजधानी थी, मगर

इस पुराने शहर को बरेता कहा जाता था। बरेता नाम की विशाखा नाम से कोई संबंध नहीं था। अयोध्या ही साकेत का दूसरा नाम था, ऐसा हम कह सकते है। **परंपरा के नाम पर राम का संबंध उस जगह को लोग जोड़ देते हैं, इसमें तथ्य नहीं।**

●●●

संदर्भ :

Archaelogical Survey of India-

The Monument Antiqities and Inscriptions, North-Western Provines and Oudh.

By- A. Fuhrer पृ. 299-300

परिशिष्ट–2-

बौद्ध रानी कुमार देवी कासारनाथ का शिलालेख –स्टेन कोनो

मुझे और मार्शल को सारनाथ में सन् 1908 के उत्खनन करते समय एक शिलालेख मिला था। धम्मेक स्तूप के उत्तर दिशा में उत्खनन कार्य करके वह प्राप्त हुआ था। दक्षिण दिशा के ऊंचे रेती के टिलों पर पूर्व और पश्चिम की ओर गुप्तकाल के भिक्खुनी निवास के अवशेष थे। वह शिलालेख 21 x 15 1/2 आकार का है। उसपर पूर्णतः लिखावट से वह व्याप्त है। खास बात वह पूर्णतः सुरक्षित अवस्था में मिला। उसपर के अक्षरों का आकार 1/2 इंच है।

नागरी वैशिष्ट्यता से वह बहुत ही आकर्षक और अंलकार युक्त है और उसका नक्काशी खास तरह का है। प्रत्येक शब्द मस्तिष्क का रुप है। Bhatah में To और Kandapatikah यह लाईन क्र.8 का शब्द ध्यान देने लायक है। उससे व्याकरण की दृष्टि से कुछ खास गुणधर्म है। 'व' के बदले में 'ब' का सभी जगह और पूर्णविराम की जगह ना इस्तेमाल किया गया है। जैसे लाईन नं.11 में Sudhansos यहाँ कुछ भटीयुक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे की 'धर्मा' के बजाय 'हर्मा' हुआ है। 1.6; प्रख्यतों के बजाय में प्रक्षतों– 1.8, विस्मय के बदले में विश्मयकारी– 1.3; त्रेत्र की बजाए नेत्र भिरम 1.15, त्री के बजाय नि–1.22; महिभूजह के बजाय माहिभूजाह– 1.19 इ. कुमार देवी की अक्षर रचना लाइन नं.11 और 22, विहारों लाइन क्र. 23 और 16 में दूसरी ओर कुमार के बजाए कुमारा यह महाराष्ट्र प्राकृत के छन्द तथा वृत्त की तरह सभी ओर दिखाई देते हैं। कुमार वाला यह रुप हमेशा कुमारपाला के बजाय हेमचंद्र के देसीनुमाला के अनुसार ही दिखाई देते हैं। (I 104, 88) विहार के संदर्भ में वह पाणिनी के नियम की तरह है। VI 3-122.

भाषा संस्कृत की है और वसुंधरा के प्रार्थना के रुप को छोड़ दिया जाए तो वह शिलालेख काव्य रुप में ही है। उसमें 13 (क्र.3, 5, 6, 7, 11, 12, 13, 17, 18, 19, 21, 23 और 24) यह शार्दुल विक्रीडीत छंद में है। और 5 (क्र.1, 10, 14, 15 और 20) यह मालिनी छंद में और 4 (क्र.4, 16, 22 और 23) यह वसंततिलका में 3 (क्र.8, 9 और 26) यह अनुष्टुभ में और 1 (क्र. 2) यह सम्रधारा इस छंदवृत्त में लिखे हुए है।

शिलालेख का उद्देश्य कुमार देवी के निर्माण किए हुए विहार की ऐतिहासिक नोंद कराना है। कुमार देवी कनौज के गोविंदचंद्र राजा की अनेक रानियों में से एक थी। 21–23 अध्याय की शब्द रचना में उसके दान को दर्ज किया गया है। वह पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। हमें पहले यह बताया गया कि 21 अध्याय में उसने एक विहार बनाया है जिसमें वसुंधरा देवी की प्रतिमा रखी गई है। उसके नीचे का अध्याय स्पष्ट नहीं है। राय बहादूर वी. व्यंकटय्या ने स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि मुझे लगता है कि जम्बुकी ने ताम्रपट बाहर निकाला, जिसमें वह कुमार देवी फिर से सादर करती है कि धर्म–चक्र जिन मूलतः धर्म अशोक ने बनाया हुआ था उसे इस जगह पुर्नस्थापित करने की जरुरत थी। इस शिलालेख में धर्मचक्र जिनके स्थापित करने के बारे में जानकारी और उसकी पुर्नरचना और सुरक्षा के बारे में तपशील दिया गया है। कुमार देवी को ऊपरी तौर पर देखा जाए तो वह बनारस के आसपास की दिशा के संबंध में नई या अपरिचित थी। उसके विचारार्थ उसमें रखे गये हैं। उसमें उसे ''पेटलिको की सर्वश्रेष्ठ (सबसे पहली)'' ऐसे विशेषण से उसे सम्मानित किया गया है। उसने जिन पुनर्स्थापित किया है। साथ ही नया विहार भी बनाया है। इसलिए नये जिन को स्थापित किया। उसने यह भी भावना व्यक्त की है कि वह अनन्त समय तक रहेगा। धर्मचक्र जिन के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि वह धर्म अशोक (सम्राट अशोक) के समय में अस्तित्व में था। जिसमें बुद्ध की एक प्रतिमा थी और कुमार देवी ने उसी के लिए यह विहार बनवायी थी, वही स्मारक ही गंधकुटी है। जब तक चाँद–सूरज रहेगा, तब तक यह पवित्र वास्तु रहेगी, ऐसा उसका दावा है।

इस शिलालेख को चार हिस्सों में समझने के लिए विभाजित किया जा सकता है। वसुंधरा (VI) के आधार से बाद के चांद (V.2) VV-3-6 यह वंश या खानदान के कुछ राजाओं या सेनापति की कुछ जानकारी देता है। हमें इससे ज्ञात होता है कि चंद्रवंश में एक सर्वश्रेष्ठ राजा पैदा हुआ वह है वल्लभ राजा जिसे मूलराजा या परमेश्वर (V.3) कहा गया है। अगले अध्याय में इसी वंश के राजा, देवरक्षित इनकी वल्लभ राजा के साथ क्या नाता है? यह कुछ न बताते हुए जानकारी दी गई है। उसका वर्णन चिकोरवंश के कमल का पूर्ण चंद्र बखान किया गया है। देवरक्षित के खानदान का राजा के तौर पर जिक्र किया है। इसलिए उसके बारे में स्पष्टीकरण करना उचित होगा। V-5-6 जिसमें ऊपरी तौर पर उस पुत्र के तौर पर आता है। वल्लभ राजा के साथ उसका नाती संबंध देखा जाए तो वह उसके पिता साबित होते हैं।

शिलालेख का दूसरा हिस्सा V-7-13 में जानकारी दी गई है। देवरक्षित महाना के द्वारा पराजित हुआ था। महाना गौड राजा के मामा थे जिन्होंने रामपाल के सिंहासन को पूर्णशक्ति के साथ स्थापित किया था। उसके बाद उन्होंने उनकी पुत्री शंकरा देवी को उस राजा को दी। उसकी पुत्री कुमार देवी थी। उसके स्तुति के लिए यह शिलालेख बनाया गया है। तीसरा हिस्सा V-14-20 में गहड़वाल वंश के बारे में है। उस परिवार का एक प्रतापी राजा कुमार देवी का पति गोविंदचंद्र ही है। इसके बाद आये हुए राजा का संदर्भ शिलालेख के अनुसार योग्य है। पर वह जानकारी राजा के दादा के पीछे लेकर नहीं जाती। सबसे पहले हमे चंद्र-चंद्रदेव से परिचय हो जाता है। उसका बेटा मदनचंद्र है। अन्य जगह पर उसे मदनपाल के नाम से भी जाना गया है। गोविंदचंद्र का पिता है, ऐसा उसमें कहा गया है। उसने बनारस को दुष्ट तुरुक्ष सैन्यों से बचाया था।

शिलालेख का पाँचवा हिस्सा (21-23 अध्याय) यह कुमार देवी के दान के संदर्भ में है। उसकी तारीफ अध्याय 24 में की गई है। अध्याय 25-26 यह हमें जानकारी देते हैं कि शिलालेख जो यहाँ प्रशस्ती संबोधा गया है, जिसे श्रीकुंद ने रचाया है और उसे वामन ने शिल्पबद्ध किया है।

गोविंदचंद्र कनौज के विख्यात राजा थे, जिनके शिलालेख ईसवी सन् 1114 और 1154 समय के हैं। यह शिलालेख यही बताता है कि उसने तुरुक्षों के विरोध में बनारस की सुरक्षा की थी। तुरुक्ष यानी मोहम्मेडन या मुसलमान है। हमें पता है कि गोविंदचंद्र के समय में मुहम्मद की बनारस पर कौन सा हमला हुआ था। सन् 1033 में अहमद निसालतेद्दीन के नेतृत्व में मुहमदी फौज शहर में दाखिल हुई थी। मगर वे वहां केवल एक दिन ही ठहरे। क्योंकि उन्हें हमेशा के वास्तव्य के संकेत दिखाई नहीं दिए। दूसरी तरफ से आप देखते हैं कि मुहमद के समय से ही मुगल देश में यमुना के पास रुके रहे और वे आगे 12 वीं सदी तक रहे। यह गोविंदचंद्र के उनके खिलाफ की गई कार्रवाही का ही नतीजा माना जा सकता है। उसी के कारण उसे और उनके वारिसों को तुरुक्षदंड नाम से उपाधि दी गयी थी। तुरुक्षदंड अनुवादित शब्द है, जिसका मतलब- 'खुशबूदार बासुंरी पर शुल्क' या 'मुहम्मदी शुल्क'। प्राप्त शिलालेख से यही अर्थ ध्वनित होता है।

इस शिलालेख से कुमार देवी और गोविंदचंद्र की नई रानी का परिचय होता है। कुमार देवी जो महाना की बड़ी पुत्री है। इस शिलालेख से गोविंदचंद्र के तीन अन्य रानियों की जानकारी उपलब्ध हुई है, जिसमें नयन देवी, गोसाला देवी आणि दल्हना

देवी। जब गोविंदचंद्र खुद परंपरावादी हिंदू थे, जिसकी चौथी रानी बौद्ध थी। महामहो उपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री की दी हुई जानकारी के अनुसार, गोविंदचंद्र को वसंता देवी नाम की एक और दूसरी पत्नी थी, जिसका जिक्र अष्टसहासिका ग्रंथ नेपाल दरबार के ग्रंथ में है। (क्र.38 तीसरा संकलन) समाप्तिलेख ऐसा- श्रीश्री कान्यकुब्ज-अधिपति-अश्वपति-गजपति-नरपति-श्रीप्रवरा महायाना-यायी न्याहरपरमोपासिका-राजनी-वसंतदेव्याह देया धर्मो-याचिन... यह भी संभव है कि वसंत देवी और कुमार देवी दोनों एक ही हो सकती हैं। वसंत का एक अर्थ जवान भी होता है। जवान यानी कुमार यह भी ज्यादा संभावना है कि वह दो अलग-अलग व्यक्ति हों।

महाना के बारे में कुछ जानकारी देखते हैं - महाना कुमार देवी के माता पिता और उसके वंश के राजा के संदर्भ में है। उनके बारे में संध्याकारों ने नंदी के रामचरित से महामहो उपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री ने सामने लाया। महाना गौड, राजा के रामपाल के मामा थे। विग्रहपाल रामपाल के पिताजी, जिन्होने दहाल के चेदी राजा कर्ण के विरोध में सफल युद्ध किया। उनके शिलालेख पर कालचुरी संवत 493= सन् 1042 का जिक्र आया है। कर्ण का राज शायद बहुत ज्यादा फैला हुआ था। इसलिए आप ज्यादा विग्रहपाल के साथ कोई युद्ध हुआ है यह निश्चित नहीं कह सकते। विग्रह पाल के दादा महिपाल सन् 1026 को शिलालेख हमारे पास है और महिपाल का बेटा जयपाल ने कम से कम 15 वर्ष तक राज किया था। इसलिए विग्रहपाल का राज पदग्रहण सन् 1041 के पहले नहीं हो सकता। इसका लड़का रामपाल जो उसके दो भाई-महिपाल और सूरज पाल के पहले ही सिंहासन पर आरुढ़ हो चुके थे। रामपाल शंकरा देवी गोविंदचंद्र की रानी कुमारदेवी की माता थी, उसका समकालीन था। इसलिए यह ज्यादा ही संभव है कि विग्रह पाल सिंहासन पर आरुढ़ सन् 1050 में होना चाहिए और रामपाल का राज 11 वें सदी की आखिरी पाडाव में हुआ होगा। महाना, शंकरा देवी के पिता दोनों के भी समकालीन होने चाहिए। रामचरित जो उसे मथना या महाना कहकर संबोधता है वह राष्ट्रकुट है, ऐसा कहता है और व रामपाल का मामा है। इसलिए यह संभव है कि विग्रहपाल यह राष्ट्रकुट राजपुत्री जो चेदी राजा कर्ण की पुत्री, जो उसे युद्ध के बाद दी गई हो जैसा कि रामचरित में उपर वर्णन किया गया है, वैसा जिक्र आया है। उसके आधार पर कह सकते हैं। महाना रामपाल का दाहिने हाथ जैसे थे और भीम के विरोध में हुए युद्ध में उसने बड़ी सहायता की थी। युद्ध में

लड़े उस पाल राजा का रामचरित में वर्णन राजा का संरक्षक, विरगुना, पीठ का राजा, दो दक्षिण का भगवान है या राजा है। पीठ के देवरक्षित का भी जिक्र आया है। मगर संरक्षक योजना अंतर्गत नहीं। अपने शिलालेख के देवरक्षित से वह बिलकुल मैच होता है या वही होना चाहिए। संभावना भी वही है कि पीठ का शासक विरगुना मुलतः रामपाल के तरफ खड़ा होता है तो देवरक्षित उसके विरोध में खड़ा होता है। पीठी या पिठिका की ओर से उसका स्वागत किया गया, जो रामचरित के अनुसार दक्षिण की ओर स्थापित हुई है। पीठी या पिठिका यह पीठ के साथ साधर्म्य रखती है और इसलिए यह संभव है। पीठी यह पीठापूरम के साथ बिलकुल साम्य रखती है। 12 वीं सदी के मध्य में पूर्व के चालुक्य की एक शाखा पीठापुरम पर राज करते थे और वह शहर पहले ही पुलके था (दूसरा) इसने जीत लिया था। पीठपुरम शाखा का पहले ही चालुक्य राजपुत्र की ऐसी कोई ऐतिहासिक जानकारी आगे आती नहीं है। इस परिवार का सच्चा इतिहास विजयादित्य तीसरा इसके साथ शुरु हुआ हो, ऐसा लगता है, जिसका राज्यभिषेक सन् 1158 को संपन्न हुआ था। यह दर्ज करना ही पड़ेगा कि पीठापुरम शिलालेख के वंशवृक्ष यह अंशता सही हो सकती है। श्री सिवेल ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि बेटा जिसने सन् 925 में राज किया है और विक्रमादित्य तीसरा जिसका राजाभिषेक सन् 1158 में हुआ है। उसमें केवल चार ही पीढ़ियों के अंतर की गिनती की है।

पीठपुरम में यह शाखा प्रस्थापित होने के पहले ही पूर्व के वेंगी प्रांत के अनेक जगहों में से इस जगह पर मजबूत पकड़ थी। 11 वें सदी के अंत में कुलोत्तुंगा चोडादेवा राजा का राज था, जो वेंगी प्रथम का शासक था। मगर 1070 में वह चोडा राज का अभिषिक्त राजा था। उसके बाद वेंगी के वाईसराय का राज आया। उसके पहले वह चाचा विजयादित्य सातवां के पश्चात बेटा राणा राजा (1077-78) और वीर चोडा, (1078) ने राज किया। श्री. व्यंकटय्या बताते है कि यह बाद के वाईसरॉय (राजा के प्रतिनिधि कहकर राजपाट संभालने वाले अधिकारी) रामचरित पाल के विरगुना के साथ मैच होते है या वही हो सकता है। वेंगी के वाईसरॉय अंतर्गत देवरक्षित जब सेनापति हुआ तो ऐसा कहा जाता है कि गजपती वैभवता भी पीछे छोड़कर वह आगे पहुंच गया था। ऐसा विशेषण पूर्व के गंगा किनारे के कुछ राजा इस्तेमाल करते थे। यह भी संभव है कि वह चोड गंगा से संबंधित हो। कालिनगत्तु परने ने कुलोत्तुंग पहला

ने इस राज्य के विरोध में मुहिम शुरु की थी और देवरक्षित इसमें अहम भूमिका अदा करता है। हमें चिकारा परिवार के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं मिली, जिससे देवरक्षित आगे आया है।

श्री वंकय्या के 1907-08 के सालाना रिपोर्ट के परिच्छेद 48 पर टिपणी दिखती है कि राजा गोविंदचंद्र से देवरक्षित की पुत्री का विवाह हुआ है। इसका मतलब शायद चोल और गहड़वाल के बीच की रिश्तेदारी का संबंध होगा। सन् 1110-11 को कुलतुगन देव शिलालेख के बाद तुरंत गहड़वाल वंश का एक अधूरा शिलालेख प्राप्त हुआ है। गंगाई चोंडा चोलापुर में प्राप्त हुआ है, जिसमें गोविंदचंद्र की शादी के साथ-साथ रिश्तेदारों के संबंधों को भी दर्शाया गया हैं। श्री.वंकय्या गहड़वाल की चोल राजाओं के साथ पहचान करते हैं। आगे राजेंद्र चोल की गंगा के किनारे की मुहिम तिरुवलंगाडु पटा में दर्ज की गई थी वह ज्यादा संभव लगती है। इससे यह संभावना है कि इस मुहिम के कारण उत्तर के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाने के कारण बनी। राजेंद्र चोल ने जिते हुए राजपुत्र में से दंडभक्ति का धर्मपाल और दंडभक्ति का राजा प्रतिमा संरजामशाही राजा में से एक था। रामपाल चरित्र के अनुसार रामापाल ने भीम के खिलाफ किये हुए युद्ध में सहायता दी। हमारे शिलालेख में दर्ज अलग-अलग लोगों के नाम और उनकी रिश्तेदारी के संबंध इस तरह से है-

पीठी के वल्लभराज	राष्ट्रकुट	गहड़वाल
देवरक्षित, विवाहित	परिवार के महान	परिवार का चांद
	शंकरादेवी	मदनचंद्र
	कुमारदेवी विवाहिता	गोविंदचंद्र

क्र.25 के अध्यायनुसार कुंदा ने शिलालेख रचा हुआ है जो खुद का वर्णन करता है। तिर्थी के हाथी की तुलना में शेर, रोहन पर्वत काव्य रचना के साथ वैभवयुक्त रत्न, भाषाओं का कवि और वंग राजा का अत्यंत विश्वासू, करीबी दोस्त, ऐसा बखान किया है। वह अन्य जगह पत्र ज्ञात नहीं है। उसका नाम सदुक्तीकर्ण मित्र में नहीं आता है। या मुझे जितनी जानकारी है यह किसी भी काव्यसंग्रह में नहीं है। शिलालेख को उकेरने वाला वामन था।

कुमारदेवी के शिलालेख का अनुवाद–

स्वागत है।

उदार और सर्वश्रेष्ठ उदात्ता वसुंधरा को अत्यंत विनम्रता से वंदन।

अ. (V.) 1) वसुंधरा विश्व का संरक्षण करो। जो बहुविध विश्व के अमर्याद दुःख के विस्तृत प्रवाह के धर्म के अमृत प्रवाह कम करता है। जो धनसंपदा तथा सेना धरा पर, आकाश और स्वर्ग पर वर्षा करता है। वह उनमे से सभी मनुष्य के दुःखों को जितता है।

अ.2) जो कमला का प्रियकर, विश्व के उजाले हेतु ज्ञानदीप हमेशा विराजमान रहे। जो अतिसुंदर चंद्ररत्न के झरने का कारण है। जो तीव्र इच्छाएं रखने वाले लोगों के आँखों में पानी लाता है, जो मगरुर कुमारिका की घमंडता की गांठ बंद कमल को भी खोलता है। जो उसके अमृत से भरे प्रेम किरणों से देवताओं को पुर्नजीवित कर देता है, जो इश्वर से जलकर खाक हो गया था, इसपर उससे पूर्णतः पराजित हो गया था।

अ.3) उसके (चंद्र के) वंश में जो बहुपराक्रमी है और वह सुयोग्य वंदन का आनंद लेता है। जो बेशुमार प्रसिद्धि की चकाकी में प्रकाशमान है; वह उसकी शुद्धता से देवों के नदी का गर्व तेज गति से हरण करता है। जो अपने विरोधियों का वैभव नष्ट करता है वह अत्यंत अलौकिक वीर पुरुष वल्लभ राजा नाम से विख्यात है। राजपुत्रों में श्रेष्ठ ख्यातनाम विशाल पिठिका का विजयी भगवान (राजा) का विशाल पराक्रम बढ़ता ही रहे।

अ. 4 व 5) चिकोरा परिवार का कमल की तरह विस्तारित होने वाला पूर्ण चंद्र इस धरा पर श्रीदेवरक्षित नाम से विख्यात है जो पीठा का भगवान जो उसके वैभव से गजपति को भी पीछे डालकर आगे गया है। उसकी वैभव एकमात्र विश्व के हृदयों अत्यानंदीत करता है। उसका (वल्लभराजा) का वंशज उस तरह है जैसे – महासागर से चंद्र एक (सच्चा) विष्णु (विधू), सौंदर्य के लिए लक्ष्मी, एक (सच्चा) चंद्र महासागर के धारा प्रवाह को उपर उठाता है जैसे प्रत्यक्ष दिखने वाला आनंद (जैसे चांद महासागर

को ज्वार–भाटा लाता है।) एक दूसरा विष्णु उसके ख्याति के साथ तेजरुपी प्रकाश भी) अतुल्यनीय सच्चेपन का खजाना; दैदिप्यमान गुणों का खजाना, ज्ञान अगाध महासागर धर्म का अद्वितीय संचय, ऊर्जा का स्रोत, शस्त्र अस्त्र का ठिकाना;

अ.6) जो प्रचिती देने वाला सही मायने में अलौकिक वृक्ष ही है जो दीनों का दाता, जो बलशाली पर्वतों के जैसे वह उसके घमंडी दुश्मनों का (टुकड़े–टुकड़े करने वाला) जैसे वह आकश में गड़गड़ाने वाली बिजली है, जिसका प्रतिकार करना नामुमकीन है। एक अद्भूत व्यक्ति– जिसके हाथ वनस्पति के अंकुश की तरह है, जो कामदेव के ज्वार को दूर करता है जो ज्वार मोहित करने वाली स्त्री और मृत्यु देवता के कारण आया है।

अ.7) गौड देश में जहां एक अद्वितीय योद्धा है उसकी शूरता असली यौद्धा क्षत्रिय के मुकुट की छोटी सी निशानी है। अंग राजा महान, राजा का वंदनीय मामा, उसने अंगरक्षित को युद्ध में जीता है और रामपाल का वैभव अबाधित रखा है। उसके शत्रुओं का उसने दमन किया, इसलिए उसके वैभव का उदय हुआ है।

अ.8) महान देवकी पुत्री पर्वत के पुत्री समान है (यानी पार्वती) ; जिसका विवाह पीठी के भगवान के साथ हुआ है जैसा पार्वती का स्वंयभू के साथ हुआ था।

अ.9) शंकरादेवी नाम से विख्यात है वह पूर्णतः तारा जैसी है और वह दानशूर इतनी है जैसे कल्पवृक्ष के बेला की तरह है।

अ.10) इसलिए उनके यहां कुमार देवी का जन्म हुआ। वह ऐसी देवी है जैसे शरद ऋतु की चंदा पर डाग विरहीत सुंदर, जैसे तारों से, करुणा से तत्पर, दुःख के महासागर से विश्व को मुक्त करने के लिए वह पृथ्वी पर मानो अवतरित हुई है।

अ.11) उसकी निर्मिती के बाद देवता भी खुद की होशियारी पर अभिमान से झूम उठे। उसके चेहरे की श्रेष्ठता के कारण चांद भी हवा में थम गया। रात को वह उग

आया और अशुद्ध बन गया और उसके बाद दागों से भर गया। उसका आश्चर्यजनक सौंदर्य हम लोगों से कैसे क्या बखान किया जाएगा?

अ.12) वह जिसने आश्चर्यजनक मार्ग से सुंदर कार्य प्राप्त की है। जैसे की मादी हिरणों को पिंजडे में पकड़ने वाली तेजस्वी जाल है वैसे ही उसके पहलू को झपकने वाली आंख है। वह सुंदर, संपन्न अत्यंत तेजस्वी मोहकता के कारण आनंदी लहरों से उछलने वाले सफेद महासागर के लहरों की संपदा को मानों लूट रही हो। उसके सुशोभित आकर्षक गुणों के कारण वह पर्वत की पुत्री (पार्वती) के मोह की तरह है।

अ.13) उसका मन केवल, धर्म पर ही अडीग है, उसकी इच्छाएं सद्‌गुणों पर टिकी हुई है। गुणवत्ता के संग्रह में रहने का उसने प्रण लिया है। दानशूरता के कारण उसने उच्च समाधान को पाया है। उसके चलने की ढंग हाथी की तरह है, उसका पोषाक (दिखना) आँखों को मोहित करने वाला है। वह बुद्ध के सामने नतमस्तक होती है और लोग उसकी जयजयकार करते हैं। वह दयावान है और दुःखियों का पक्ष लेती है, वह हमेशा सुदेवा के निवास है। पापों को समूल नष्ट करने वाली और बहुत से सद्‌गुणों से युक्त उसका स्वाभिमान भरा है।

अ.14) राजशाही गहड़वाल वंश में विश्व में एक विख्यात राजा पैदा हुआ। उसका नाम चंद्र है, सभी शासकों, राजाओं में एक चंद्र, राजा के पत्नी की आंसुओं के प्रवाह जो उसे रोक नहीं सके, यमुना का पानी मानो उसके कारण गहरा हुआ।

अ.15) राजा मदनचंद्र व गतीशील राज्यों का शिखर रत्न, उससे पैदा हुआ। वह राजा जिसने पृथ्वी का गोल एक राजदंड तले लाया, उसके शौर्य के अग्नि को वैभव महान और बलशाली है। उसने महानन का वैभव भी उसके वैभव से कम किया।

अ.16) हरि, दुष्ट तुरुखा युद्धों से वाराणसी को जिसने संरक्षित किया, जैसा की वह एकमेव व्यक्ति है जो पृथ्वी की सुरक्षा करने का पात्र है। वह उसी से पैदा हुआ, जिसका नाम गोविंदचंद्र नाम से विख्यात है।

अ.17) आश्चर्यकारक अलौकिक गाय के बछड़ों को जिन्हें पीने के लिए दूध

का एक बूंद भी नहीं मिला था, जो दीनहीन याचकों के हृदयों का समाधान करने हेतु उसके हमेशा के इस्तेमाल के कारण दूध का एक बुंद भी नहीं मिलता था। मगर यह हीनदीन याचकों की प्रचंड संख्या उस राजा के दानशीलता के माध्यम से सुखी हुई थी जो दूध पीने के लिए नीचे बैठते थे और दूध मनमाने ढंग से उन्हें उपलब्ध कराया जाता था।

अ.18) यह अच्छे शहर में उसके विरोधक, शिकारी गलती से भी नीचे पड़ा हुआ कंठहार उठाते नहीं हैं। उन्हें वह हिरण के गले का पट्टा है, ऐसा वह विचार करते हैं। और शिकारी जमीन पर पड़े हुए सोने का कर्णभूषण भी लकड़ी से फेंक देते है। फुलहारा लेते हुए उनके हाथ में डर के मारे कंपकपी आ जाती है, क्योंकि वे उसे साँप समझते है।

अ.19) सूरज के रथ को देर हुआ, क्योंकि उसके घोड़ों की जोड़ी उतावली थी। उसके शत्रुओं का नाश किये हुए शहरों महलों के छतों का ताजा तवाना, चमकदार, मोटा घास, विपुलता से खा रहे थे। चांद भी धूंधला सा हो गया था, क्योंकि उसके पास जो धूंधला केसरी रंग हिरण का (उसके कंठ के) रक्षण करना ही था, जो हिरण घास के लोभ के कारण नीचे गिर रहा था।

अ.20) कुमारदेवी वस्तुतः इसीलिए उस राजा के साथ विख्यात थी जैसे श्री विष्णु के साथ थी और उसकी तारिफ तीनों लोकों में गाई जाती है। राजा के वैभवशाली अंतरपुर के स्त्रियों में वह सही में तारे के बीच चंद्रघंटा की तरह दिखती थी।

अ.21 3 यह विहार पृथ्वी का आभूषण है। जिसके व्यवहार में नौ भाग सम्मिलित है जो उसने निर्माण किए है और उसे ऐसा सजाया है जैसे वह वसुंधरा ने ही उसे तारिणी के आकार में सजाया हो। उसके निर्माता भी आश्चर्यचकित हुए जब उहोंने अत्यंत आकर्षण, कौशल्ययुक्त देवता प्रतिमा (बुद्ध प्रतिमाओं) को कार्य पूरा होने के पश्चात देखा।

अ.22) वह शिलालेख के माध्यम से जो भी धम्मचक्र जिनका दान घोषित करती है। जबतक चांद और सूरज रहेगा, तब तक इस भूस्थल पर वह संरक्षित रहेगा। उस

जाम्भुकी को उसने (कुमारदेवी ने) पट्टालिक से सर्वश्रेष्ठ बनाया है।

अ.23) (धम्म) चक्र गतिमान करने वाले भगवान (बुद्ध) उसने दुबारा स्थापित किया है, जैसे (सम्राट) धर्मा अशोक के समय में था। लोगों के शास्ता के नमना स्थविरों के लिए वह विस्तृत तौर पर स्थापित किया गया है। वह जब तक चांद और सूरज है, तब तक वह स्थापित रहेगा।

अ.24) जब तक विश्व का कोई भी व्यक्ति उसकी प्रसिद्धि को संरक्षित करेगा तो उसने (रानी कुमार देवी ने) उसके दोनों चरणों पर वह नतमस्तक होने का वचन दिया है। जिन (बुद्ध) तुम उसके गवाह रहोगे। कोई मूर्ख उसकी प्रसिद्धि छिनने का प्रयास करेगा तब लोकपाल उस दुष्ट व्यक्ति को उसके क्रोध से सजा का भागिदार बनाएंगे।

अ.25) कवि आठ भाषाओं में बंग राजा का अत्यंत विश्वासू मित्र के तौर पर जाना जाता है। उसका नाम श्री कुंद है। विद्वान जो एकमात्र सिंह है वह पाखंडियों के हाथियों पर भी हमला करेगा। जो काव्य रचना में चमकने वाले रत्न का रोहन पर्वत है उसने उसके लिए स्तुतिवचन बनाये है। वह वचन अक्षरों के मोहन मालाओं में सौंदर्ययुक्त पिरोये है।

अ.26) यह प्रशस्ती वामन से उत्कृष्ट पत्थर पर जो राजवर्मा का (यानी नीलमणि पत्थर) प्रतिस्पर्धा है उसपर उकेरा गया है।

●●●

(संदर्भ : Epigrabhpia India and Record of the Archeological Survey of India Vol. IX - 1907-08

Edited By- E. Hultzsch & Sten Konow, पृ. 319-328)

परिशिष्ट-3
दशरत जातक

''एभ लक्ष्मण सीता च...'' शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय एक ऐसे गृहस्थ के बारे में कही, जिसका पिता मर गया था।

क.वर्तमान कथा

यह पिता के नाम पर शोक से अभिभूत हो सारे काम छोड़ शोक से पागल हो गया था। शास्ता ने प्रातःकाल ही लोक का विचार करते हुए उसके सोतापत्र हो सकने की सम्भावना को देखा। वे अगले दिन श्रावस्ती में भिक्षाटन कर, भोजन करने के बाद, भिक्षुओं को विदा कर, एक अनुयायी भिक्षु के साथ उसके घर पहुंचे। उसके प्रणाम कर बैठने पर शास्ता ने उसे मधुर-स्वर से सम्बोधित करते हुए पूछा-

''उपासक! चिन्ता करता है?''

''भन्ते! हाँ। पितृ-शोक मुझे कष्ट दे रहा है।''

''उपासक! पुराने पण्डितों ने आठ लोक-धर्मों को तत्वतः जान पिता के मरने पर तनिक भी शोक नहीं किया।'' यह कह शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही-

ख-अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में महाराज दशरथ चार अंगतियों में न पड़ धर्मानुसार राज्य करता था। उसकी सोलह हजार स्त्रियों में से ज्येष्ठ पटरानी ने दो पुत्रों और एक पुत्री को जन्म दिया। ज्येष्ठ पुत्र का नाम था राम-पण्डित, द्वितीय पुत्र का नाम था लखन-कुमार और पुत्री का नाम सीता देवी। आगे चलकर पटरानी मर गई। राजा के मरने से चिरकाल तक शोकाभिभूत हुआ। फिर अमात्यों के कहने-सुनने से होश में आ, उसका क्रिया-कर्म करने के बाद उसने एक दूसरी पटरानी बनाई। वह राजा की प्रिया थी, मनोरमा। उसने भी आगे चलकर गर्भवती के लिये आवश्यक चीजें पा, पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम भरत कुमार रखा गया। राजा ने पुत्र-स्नेह से कहा-''भद्रे! तुझे वर देता हूँ, मांग।।'' उसने ''लिया'' करके रख दिया और कुमार के साठ वर्ष का हो जाने पर राजा के पास पहुंच कर कही-''देव! तुमने मेरे पुत्र को वर दिया था। अब

उसे दें।''

''भद्रे! ले''

''देव! मेरे पुत्र को राज्य दें।''

राजा ने उंगलियां चटखाई और उसे डराया-''चण्डालिनी! तेरा नाश हो। मेरे दोनों पुत्र अग्नि स्कन्ध के समान प्रज्वलित है। उन्हें मरवाकर अपने पुत्र को राज्य देना चाहती है।'' वह डर कर शयनघर (शयनकक्ष) में जा घुसी। फिर बाद में राजा से बार-बार राज्य की ही याचना करती रही। राजा ने उसे बिना वर दिये ही सोचा-स्त्री अकृतज्ञ तथा मित्र-द्रोही होती है। डर है कि कहीं यह झूठा पत्र का झूठी-मोहर के द्वारा पुत्रों को न मरवा दे। उसने पुत्रों को बुलाया और उस बात से विदित कर कहा-''तात! यहां रहे तो तुम्हारे लिए खतरा भी हो सकता है। तुम सामन्त-राज्य में या जंगल में जाकर रहो। मेरे मरने पर आकर अपने वंश के राज्य पर अधिकार करना।'' फिर उसने ज्योतिषियों से अपनी आयु की सीमा पूछी। उन्होंने और बारह वर्ष बताई। तब वह बोला-''तात! अब से बारह वर्ष बाद आकर छत्र धारण करना।'' वे 'अच्छा' कह पिता को प्रणाम कर रोते हुए प्रासाद से उतरे। सीता-देवी बोली-- मैं भी भाइयों के साथ जाऊँगी। वह भी पिता को प्रणाम कर, रोती हुई (साथ) निकली। जनता भी उन तीनों के साथ थी। उसे पीछे लौटा कमशः वे हिमालय पहुंचे। ऐसी जगह जहां पानी और फलफूल सुलभ हो, आश्रम बना वे फलफूल से निर्वाह करते हुए रहने लगे। लखन-पण्डित और सीता ने राम-पण्डित से प्रार्थना की कि आप हमारे लिये पिता-तुल्य हैं। आप आश्रम में ही रहे। हम फलफूल लाकर आपका पोषण करेंगे। तब से राम-पंडित वही रहने लगे। दोनों फलफूल लाकर उनकी सेवा करने लगे। महाराज दशरथ पुत्र-शोक के कारण नौवें वर्ष में मर गये। उनका शरीर-कृत्य हो जाने पर देवी ने अपने पुत्र भरत कुमार से कहा-छत्र धारण कर। लेकिन अमात्यों ने बाधा डाली। वे बोले-छत्र के स्वामी जंगल में रहते हैं। भरत कुमार ने सोचा मैं अपने भाई राम-पण्डित को जंगल से लाकर छत्र धारण कराऊंगा। पाँच राजकीय चिन्हों और चतुरगिनी-सेना के साथ वह राम-पण्डित के निवास स्थान पर पहुंचा और उससे थोड़ी दूर पर छावनी डाल दी। फिर खुद अमात्यों के साथ, जिस समय लखन-पण्डित और सीता आरण्य में गये हुए थे, आश्रम पहुंच, भली प्रकार स्थापित स्वर्ण-मूर्ति की तरह राम-पण्डित को निश्चित भाष मुखपूर्वक बैठे देखा। वह पास जा, प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ और राजा का समाचार कह, अमात्यों सहित पैरों में गिरकर रोने लगा। राम

पण्डित न चिन्तित हुए, न रोए। उनकी आकृति में विकृति नहीं आई। भरत जब रोकर बैठ गया तो शाम को दोनों (लखन-सीता) फलफूल लेकर आ पहुंचे। राम-पण्डित ने सोचा-यह बच्चे हैं। मेरे जितने समझदार नहीं है। यकायक यह समाचार कहूंगा। उसने उन्हें सामने का एक जलाशय दिखाते हुए कहा 'तुम बहुत देर करके आये, तुम्हारे लिए यही सजा है, इस पानी में आकर खड़े होना' कह यह आधी गाथा कही-

एथ लक्खण सीता च उभो ओतरथोदकं

(आओ लखन और सीता, दोनो पानी में उतरो।)

वे प्रथम कहते ही जाकर खड़े हो गये। तब उन्हें यह वृतान्त कहते हुए-शेष आधी गाथा कही-

एवायं भरतो आह राजा दसरथो मतो

(यह भरत ऐसा कहता है कि राजा दशरथ मर गया।)

यह सुनते ही कि पिता मर गया है, वे बेहोश हो गये। दुबारा कहने पर वे बेहोश हो गये। इसी प्रकार तीसरी बार भी बेहोश हो जाने पर अमात्यों ने उठा कर पानी से निकाला और भूमि पर बिठाया। जब उन्हें होश आया तो सब परस्पर पीठ कर बैठे। तब भरत-कुमार ने सोचा-मेरा भाई लखन कुमार और बहन सीता पिता के मरने का समाचार सुन शोक सहन न कर सके, किन्तु राम-पण्डित न सोच करता है, न रोता है। उसके शोक-रहित रहने का क्या कारण है? मैं उसे पूछूंगा।'' उसने उसे पूछते हुए दूसरी गाथा कही-

केन रामप्पभावेन, सोचितब्बं न सोचसि,
पितरं कालकतं सुत्वा, न तं पसहते दुखं ।।२।।

(हे राम! तू किस प्रभाव के कारण शोचनीय के लिए चिन्ता नहीं करता? पिता का मर जाना सुनकर तुझे दुःख नहीं होता ।।२।।)

राम पण्डित ने अपने शोक-रहित रहने का कारण बताते हुए इन गाथाओं ने अनित्यता का प्रकाश किया-

यं न सक्का पालेतुं पोसेन लपतं बहुं,
स किस्स विज्जु मेधावी अत्तानं उपतापये ।।३।।
दहरा च हि वृद्धा च ये बाला ये च पण्डिता,
अड्ढा चेव दलिद्दा च सब्बे मच्चुपरायना ।।४।।
फलानं इव पक्कानं निच्चं पपतना भयं,

एवं जातनं मच्चानं निच्चं मरणतो भयं ।।५।।
सायं एके न दिस्सन्ति पातो दिट्ठा बहुज्जना,
पातो एके न दिस्सन्ति सायं दिट्ठा बहुज्जना ।।६।।
पीरदेवमानो चे कञ्चिदेव अत्थ्यं उदब्बहे,
सम्मूळहो हिंसमत्तानं कयिरा चेनं विचक्खणो ।।७।।
किसो विवण्णो भवति हिंसं अत्तानं अत्तनो,
न तेन पेता पालेन्ति निरत्था पीरदेवता ।।८।।
यथा सरनं आदित्त वारिना पीरनिब्बये,
एवं पि धीरो सुत्वा मेधावी पण्डितो नरो,
खिप्पं उप्पतितं सोकं वातो तूलं व घंसये ।।९।।
एकोव मच्चो अच्चेति एकोव जायते कले,
सत्रोपरमा त्वेव सम्भोगा सब्बपाणिनं ।।१०।।
तस्मा दि धीरस्स बहुस्तुतस्स
सम्पस्सतो लोकं इमं परं च
अत्राय धम्मं हृदयं मनत्र्च
सोका महन्ता पि न तपायन्ति ।।११।।
सांह यसं च भोगं च भरिस्सामि च आवके
तेसं सम्पालयिस्सामि, किच्चंग एवं विजानतो ।।१२।।

(जिसे आदमी बहुत विलाप करके भी जीवित नहीं रख सकता, उसके लिए कोई बुद्धिमान् मेधावी अपने आपको क्यों कष्ट दे? ।।२।। तरुण, वृद्ध, मुर्ख, पण्डित, धनी तथा दरिद्र- सभी मरणशील हैं। ।।४।। पके कली के नित्य गिर पड़ने का भय रहता है और जिसने भी जन्म ग्रहण किया है उसे नित्य मृत्यु का भय रहता है ।।५।। प्रातःकाल बहुत से आदमी दिखाई देते हैं और शाम को उनमें से कुछ नहीं दिखाई देते। शाम को बहुत से आदमी दिखाई देते है और प्रातःकाल उनमें से कुछ आदमी नहीं दिखाई देते।।९।। रोने-पीटने से अपने को कष्ट देकर मूढजन को यदि कुछ भी लाभ होता हो, तो ज्ञानी आदमी भी रोना-पीटना करे ।।७।। अपने से अपनी हिंसा करता हुआ आदमी तृष्ण (कमजोर) हो जाता है, दुर्वर्ण हो जाता है। रोने-पीटने से मृत आदमियों का पोषण नहीं होता, रोना-पीटना निरर्थक है ।।८।। जैसे घर में आग लगने पर तुरन्त बुझा दी जाती है, उसी प्रकार थोर-ज्ञानी मेधावी आदमी को चाहिए कि

हवा के रुई को उड़ा देने की तरह शीघ्र ही क्रोध को नष्ट कर दे ।।९।। आदमी अकेला जाता है, आदमी अकेला ही (किसी न किसी) कुल में पैदा होता है। सभी प्राणियों के सम्भोग संयोग तक ही है ।१०।। इसलिए जो धीर है, बहुश्रृत है, इस लोक और पर-लोक को देखता है, (अष्ट) लोक-धर्मो को जानता है, उसके हृदय और मन को बड़े भारी शोक भी कष्ट नहीं देते है। ।।११।। इसलिए मैं (वैभव देने योग्य व्यक्तियों को) भोग दूंगा, और सम्बन्धियों का पोषण करुंगा और शेष जनों का पालन करुंगा- यही बुद्धिमान् के लिए करणीय है ।।१२।।

जनता राम-पण्डित का यह अनित्यता-प्रकाशन धर्मोपदेश सुनकर शोक-रहित हो गई। तब भरत कुमार ने राम पण्डित को प्रणाम करके प्रार्थना की- ''वाराणसी-राज्य संभालें।''

''तात! लखन और सीती देवी को ले जाकर राज्य का अनुशासन करो।''

''और देव! तुम?''

''तात! मुझे पिता ने कहा था कि बारह वर्ष के बाद आकर राज्य करना। मैं अभी गया तो उनकी आज्ञा का पालन नही होगा। शेष तीन वर्षो के बीतने पर आऊंगा।''

''इतनी देर तक कौन राज्य चलायेगा?''

''तुम करो ।''

''हम नहीं चलायेंगे ।''

''तो जब तक मैं नहीं आता, ये पादुकाएं राज्य चलायेंगी'' कह अपनी तृण-पादुका उतार कर दे दी। वे तीनों जन पादुकाए ले, राम-पण्डित को प्रणाम कर, जनता सहित वाराणसी पहुँचे। तीन वर्ष पादुकाओं ने राज्य किया ....अमात्य तृण-पादुकाओं को राज्य-सिंहासन पर रख मुकदमों का निर्णय करते ..... यदि मुकदमे का निर्णय ठीक न होता तो पादुका परस्पर लड़ती। उससे वे दुबारा निर्णय होने पर पादुका चुप चाप रहती। (राम) पण्डित ने तीन वर्ष बाद जंगल से निकल वाराणसी नगर पहुंच उद्यान में प्रवेश किया। उनके आगमन की सूचना पा अमात्यों सहित कुमारों ने उद्यान पहुंच सीता को पटरानी बना दोनों का राज्यभिषेक किया । इस प्रकार अभिषिक्त बोधिसत्व ने अलंकृत रथ पर चढ़, बहुत से अनुयायियों के साथ नगर में प्रवेश कर, (नगर वर्ष की) प्रदक्षिणा कर, सुचन्दक प्रासाद के ऊंचे तल्ले पर चढ़, सोलह हजार वर्ष धर्मानुसार राज्य कर स्वर्ग लाभ किया।

पर सम्बुध्द-गाथा उस बात को स्पष्ट करती है--

दस स्स सहस्सानि, सट्ठि वस्स सतानि च,
कम्बुगीवो महाबाहु, रामो रज्जं अकारयि।।१३।।

(स्वर्ण-ग्रीवा महान् बाहु नाम ने दस हजार और छः हजार (अर्थात्! सोलह हजार) वर्ष राज्य किया।।१३।।)

शास्ता ने यह धर्म देशना ला जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में गृहस्थ श्रोतापकत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय दशरथ महाराज शुद्धोधन महाराज थे, माता महामाया, सीता राहुल माता, भरत आनंद, लखन सारिपुत्र, परिषद बुद्ध-परिषद, और राम-पण्डित तो मैं ही था।

●●●

संदर्भ

जातक भाग-4, जातक नं.461, पृष्ठ-325-330
अनुवादक-भदन्त आनन्द कौसल्यायन
प्रकाशक-हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

परिशिष्ट-4-

महर्षि वाल्मिकी कपुरथला कोर्ट का ऐतिहासिक फैसला

ऑर्डर दि.30 जून 2009
श्री.फतेहदिपसिंग सेशन जज
कपुरथला, इनके कोर्ट में।

1) बेल अर्जी नं. NIL (निरंक)
दि. 11/6/2009
डेट ऑफ ऑर्डर
30-6-2009
G.No. 829/ 22.10-2009

स्टेट बनाम
सुनील चोप्रा,
आर.सी. चोप्रा इनका बेटा निवासी - 339 शहीर उदमसिंग नगर जालंदर,
... तक्रारकर्ता
(सप्लेमेंटरी बेलअर्जी अंडर सेक्शन 438 (RPC)
F.I.R. No. 163, दि. 8-4-2009
F.I.R. अंडर सेक्शन 295-A, 153-A 120-B IPC
इसके साथ अनुसूचित जाति, जनजाति प्रताड़ना कानून (ॲट्रॉसिटी एक्ट) सेक्शन 3 (I) (X)
पुलिस स्टेशन - सिटी कपूरथला।

2) बेल अर्जी नं. NIL (निरंक)
दि. 11-6-2009
डेट ऑफ ऑर्डर 30-6-2009

राज्य बनाम

अशु खुराना,

राजेश खुराना की पत्नी/घर नं. 75, डी, टाईप

IV स्पेशल, R.C.F. कपूरथला,

... तक्रारकर्ता।

सप्लीमेंटरी बेल अप्लीकेशन अंडर सेक्शन 438 (RPC)

स्टेट बनाम नरेंद्रखन्ना,

M.D. श्रीजान पब्लिशर्स, प्रा.लि. R/o, प्लॉट नं. 10, पहली मंजील, विष्णू मार्केट, कर्मशियल कॉम्प्लेक्स, मुखर्जी नगर, दिल्ली-9

एवं

राज्य बनाम

मनिषा शर्मा

पिता डा.सतिश शर्मा

(10, (द्वारा) दिल्ली पब्लिक स्कूल नोयडा, उत्तर प्रदेश)

एवं राज्य बनाम

सुरज आनंद

पिता का नाम

श्री. मोहनलाल आनंद,

प्रो. M/S, स्वराज किताब घर, माल हिरन गेट, जालन्धर

उपस्थित - श्री. अमनपाल सिंग ढिल्लन

-तक्रारकर्ता सुनील चोप्रा इनका वकील।

श्रीमान चंद्रशेखर-तक्रारकर्ता अशु खुराना के वकील

श्री.आर.के. भल्ला - नरेंद्र खन्ना, मनिषा शर्मा और सूरज आनंद

इन याचिकाकर्ताओ के वकील श्रीमान बी.एस.ढिल्लन

सरकारी वकील- उनके साथ इन्स्पेक्टर दलजित सिंग और ASI जितलाल

श्री.दलबिर सिंग और श्री.दलजित सिंग- तक्रारकर्ता के वकील।

आदेश

याचिकाकर्ता सुनील चोपड़ा, आशु खुराना, नरेंद्र खन्ना, मनिषा शर्मा और सुरजानंद के ऊपर (RPC 438) के अंतर्गत जो तकरार (शिकायत) दर्ज हुई थी, उसके तहत इन पाँचों ने दाखिल किए एन्टीसिपेटरी बेल एप्लिकेशन और उसके साथ दाखिल किया हुआ सप्लीमेंटरी बेल एप्लिकेशन्स। इस ऑर्डर के तहत उनका निपटारा किया जाता है। F.I.R. दाखिल हुआ है उसके अनुसार उचित कदम के तहत उपर के सभी के बेल अर्जियों का निपटारा किया जाता है। नोटिस भेजने के बाद श्री.बी.एस.ढिल्लन इन्स्पेक्टर और ASI जीतलाल स्टेट के पक्ष में सबूत पेश करने के लिए कोर्ट में हाजिर हुए और उन्होंने इस तरह घटना का वर्णन किया।-

2) रावन सेना कमिटी के सदस्यों और चरणजीत हंस 23/5/2009 को कपूरथला डिप्टी कमिश्नर के पास शिकायत दर्ज की। जिसमें उन्होंने यह आरोप लगाया कि कपूरथला के कांजली रोड पर स्थित सॅक्रेड हर्ट पब्लिक स्कूल में पराग नामक हिंदी किताब के भाग 7 में आरोपी नरेंद्र खन्ना स्कूल के चेयरमन आरोपी-याचिकाकर्ता सुनील चोपड़ा के इशारे पर समाज में उनकी जाति को नीचा दिखाने के लिए आरोपी-याचिकाकर्ता-मनिषा शर्मा ने उक्त किताब की प्रकरण-6 में भगवान वाल्मिकी जी के बारे में कथा लिखी, जिससे वाल्मिकी जाति का मानसम्मान धुमिल हो जाए। यह बात उनके धर्म के लिए कलंक लगाने वाली है, जिसकी वजह से उनकी धार्मिक भावना आहत हो चुकी है। इसलिए शिकायतकर्ताओं ने इन आरोपियों के खिलाफ उचित कार्रवाई करने की मांग की है और कारवाई नहीं हुई तो रास्ते पर आंदोलन करने का भी इशारा दिया है। क्योंकि इन आरोपियों ने तथ्यों को विपरित बताया है। उनकी शिकायत पुलिस ने ले ली है और उसके तहत आरोपियों के खिलाफ IPC के सेक्शन 295-A के अंतर्गत उनपर आरोप दर्ज किया गया है। लेखिका मनिषा शर्मा, प्रकाशक नरेंद्र खन्ना, स्कूल के चेयरमैन सुनील चोपड़ा, सुरज आनंद और आशु खुराना, स्कूल के सदस्यों के ऊपर सेक्शन 153-AE 120-B, IPC के साथ एट्रोसिटी एक्ट सेक्शन 3 (1) (X) 1989 के तहत गुनाह दाखिल किया है।

3. श्री.बी.एस.ढिल्लन, स्टेट के लिए सरकारी वकील और उनके साथ तकरारकर्ता के वकील श्री.नरिंदर सिंह और श्री.दलबीर सिंह ने बातों को लेकर आरोपियों के बेल

को खारिज करने कोर्ट से विनती की है कि उन्होने एक जाति समुदाय के धार्मिक भावनाओं को ठेच पहुंचाई है और उन्हें नीचा दिखाने की कोशिश की है। इस तरह समाज के विभिन्न जातियों के अंदर झगड़ा लगाने की कोशिश की है ताकि समाज का माहौल बिगड़ जाए। इसके लिए अगर इस तरह के हरकतों को रोका नहीं गया तो समाज में अराजकता फैल जायेगी और इसलिए उनकी बेल एप्लिकेशन (याचिका) खारिज की जाती है।

4. श्रीमान अमनपाल सिंह ढिल्लन, चंद्रशेखर और आर.के.ढल्ला इन वकीलों ने आरोपी–याचिकाकर्ता की तरफ से याचिका दाखिल की है। उसमें लिखा है कि याचिकाकर्ता सुनील चोपड़ा और अशोक खुराना जांच अधिकारी के जांच में सहयोग दिया है। जिला प्रशासन ने शिकायतकर्ताओं के दबाव में आकर एकतरफा व्यवहार किया है। किसी खास जाति के धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने का कोई भी उद्देश्य उस प्रकरण के लिखते वक्त याचिकाकर्ताओं के मन में नहीं था और कोर्ट पर प्रभाव डालने के लिए उन्होंने विभिन्न धार्मिक ग्रंथ व इतिहास सामग्री को सामने रखकर ऐतिहासिक तथ्यों को कोर्ट के सामने पेश किया है। इसलिए उनके खिलाफ सेक्शन 295-A या सेक्शन 153-A के अंतर्गत दावा नहीं हो सकता और एट्रोसिटी एक्ट 1989 के तहत भी उनपर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। उनके समर्थन में उन्होंने अलग–अलग न्यायिक मामले सामने रखे– किशोर सिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब राज्य. रिपोर्टेड 2002 (2) RCR (क्रिमिनल 215, सबदार हाश्मी मेमोरियल ट्रस्ट के ट्रस्टी बनाम दिल्ली NCT, सरकार रिपोर्टेड 2001 (4) RCR (क्रिमिनल) 737, जोनाथन नितीन ब्रॅडी बनाम पश्चिम बंगाल सरकार, रिर्पोटेड इन 2008 (4) RCR (क्रिमिनल) 370. बिलाल अहमद कालू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य रिपोर्टेड इन 1997 (2) अपेक्स कोट, जर्नल, 362 (SC) और मन्जर सईद खान बनाम महाराष्ट्र राज्य रिर्पोटेड इन 2006 (2), अपेक्स कोर्ट जजमेंट 629

5. दोनों पक्षों की बात सुनकर आरोप, प्रत्यारोपों को जानकर, समझकर कोर्ट यह सोचता है कि आरोपियों ने ऋषि वाल्मिकी के जीवन की कथा लिखकर और प्रकाशित कर जानबूझकर धर्म के आधार पर और बुरी भावनाएं ध्यान में रखकर एक खास समाज के धार्मिक भावनाओं को भड़काया है। इस प्रकार उन्होंने अनुसूचित

जाति के सदस्यों के एक षड्यंत्र के भावनाओं का अपमान किया है और उन्हे ठेस पहुंचाई है। याचिकाकर्ताओं के वकीलों ने सफदार हाश्मी मेमोरियल ट्रस्ट के ट्रस्टी, जोनाधन नितिन ब्रॅडी, बिलाल अहमद कालू और मंजर शहीद खान जैसे उदाहरण देकर अपना पक्ष पेश करने की कोशिश की। लेकिन वे याचिकाकर्ताओं को नहीं मना सके। इसलिए मा.उच्च न्यायालय और मा.दिल्ली उच्च न्यायालय के फूल बेंच अनुसार यह बताया जाता है कि द्वेष या दुश्मनी दो धर्म या दो समूह या जाति और समूह में, पैदा करने के लिए दो समूह या दो ग्रुप इस प्रक्रिया में सामिल होने चाहिए। किसी समूह या गुट से कोई संबंध ना होते हुए केवल किसी समूह या गुट के भावनाएं आहत होने से आइपीसी के सेक्शन 153–A के अंतर्गत कार्रवाही नहीं हो सकती। सफदार हाश्मी मेमोरियल ट्रस्ट केस में ऐसा कहा गया है कि 295-A IPC सेक्शन अनुसार गुनाह सिद्ध होने के लिए इच्छा के खिलाफ या लापरवाही या किसी समूह के धार्मिक भावनाओं के भड़काने के दुष्ट उद्देश्य से या जानबूझकर गुनाह किया होगा, ऐसा दिखाई नहीं देता। इसलिए किसी समूह के धार्मिक भावनाओं को दुष्ट हेतु से भावनाएं भड़काने का सवाल ही नहीं पैदा होता है। 'पराग' किताब के खंड–7 के प्रकरण 6 के 34 से 37 पेज नंबर पर जो लेख लिखा है वह गलत तरिके से या विकृत रुप में लिखा गया है। शिकायतकर्ता साबित नहीं कर पाये और केवल राज पर्वत से संबंधित लेखन करने वाले कोई महान इतिहासकार नहीं है। इसलिए उनके लेखन को कोई विशेष तवज्जो नहीं दिया जा सकता। याचिकाकर्ताओं के वकील महर्षि वाल्मिकी के संबंध में संक्षिप्त स्कंद पुराण, अध्यात्म्य रामायण, संक्षिप्त भविष्य पुराण, श्रीमद वाल्मिकी रामायण, कल्याण संस्कार अंक और प्रमुख ऋषि–मुनी जैसे बहुत साहित्य कोर्ट के सामने पेश किया। वकील श्री.भगवानदास ने एक प्रसिद्ध लेखक के 'वाल्मिकी जयंती और भंगी जाति' इस किताब के आधार पर सिद्ध किया है कि ऋषि वाल्मिकी जन्म से ब्राह्मण थे और यह सिद्ध करने के लिए दूसरे प्रसिद्ध साहित्य जैसे कि बृहद हिंदी ज्ञानकोश, आनंद रामायण, किर्तीवास रामायण, राज्यकांड, पेश किए। जिसमें **ऐतिहासिक और धार्मिक तौर पर ऋषि वाल्मिकी जी का जिक्र वाल्मिकी मतलब 'वाल्मिक (बांबी)' होता है। जिन्हें पहले रत्नाकर/रत्ना नाम से जाना जाता था। वे प्रचेता ब्राह्मण के पुत्र थे और वे जन्म से ब्राह्मण होकर भृगू वंश के थे। उन्होंने दूसरे ऋषि नारद से मिलने के बाद ब्राह्मणवादी विचारधारा को निर्मित किया था।** नारद से मिलने के बाद उनके जीवन में बहुत

बड़ा बदलाव आया, जिससे उनकी आत्मा शुद्ध हुई और उनका नया दैवी जन्म हुआ। **इस तरह ऐतिहासिक और धार्मिक साहित्य के आधार पर ऋषि वाल्मिकी जी नीचले जाति के थे यह शिकायतकर्ताओं का दावा खारिज हो जाता है। इसलिए आरोपियों ने इतिहास बदलकर या तथ्यों को तोड़मरोडकर ऋषि वाल्मिकी जी का इतिहास पेश किया है या शिकायतकर्ताओं के जाति से वाल्मिकी जी आते हैं यह सिद्ध नहीं होता।** इसलिए IPC के सेक्शन 295-A, 153-A के अंतर्गत जानबूझकर दुष्ट हेतु से किसी की भावनाओं को भड़काने या दो समूह में झगड़े लगाने का आरोप सिद्ध नहीं होता। उपरोक्त चर्चित किशोर सिंह के केस का सहारा याचिकाकर्ताओं के वकीलों ने लिया है, जिसे में यह कहा गया है कि गुनाह होते समय गुनाहगार को इस बात का एहसास होना जरुरी है कि पीड़ित व्यक्ति को एट्रोसिटी एक्ट का संरक्षण है। **लेकिन शिकायत में इस बात का अभाव है और ऋषि वाल्मिकी जी उस जाति से नहीं आते जिस जाति के एट्रासिटी 1989 लागू है। इसलिए ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इस केस में किसी प्रकार का जानबूझकर किसी का अपमान नहीं हुआ है।** इसलिए एट्रॉसिटी एक्ट-1989 के सेक्शन 18 के तहत आरोपियों को सजा नहीं दी जा सकती।

6. आरोपियों की पुलिस कस्टडी में जांच होनी चाहिए, इस मांग के लिए शिकायतकर्ताओं के वकील ने कोई समाधान कारण पेश नहीं किये। इसलिए माननीय सुप्रीम कोर्ट के जोनाथन नितिन ब्रॅडी केस का संदर्भ पीड़ित- याचिकाकर्ता ने जो दिया है इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनसे कुछ खास जानकारी नहीं लेनी थी। इसलिए उन्हें कस्टडी की जरुरत नहीं थी। बात यह है कि याचिकाकर्ता सुनील चोपड़ा और आशु खुराना पहले से ही जांच प्रक्रिया में शामिल है। इसलिए पीड़ित-याचिकाकर्ता नरेंद्र खन्ना, मनिषा शर्मा और सुरजानंद जो जमानत अर्जी और सप्लीमेंटरी जमानत अर्जी कोर्ट में दाखिल की है उसे स्वीकार किया जाता है और जिन आरोपी याचिकाकर्ताओं को अरेस्ट किया है उनको (RCP सेक्शन 438(2)) के तहत जांच अधिकारी के हिसाब से जमानत मंजूर की जाती है। इसी तरह आरोपी-याचिकाकर्ता और आशु खुराना को भी 11-6-2009 को अंतरिम जमानत (RPC सेक्शन 438 (2))के तहत उपर की तरह जमानत मंजूर की जाती है। बेल अप्लीकेशन रिकॉर्ड में

नामित 'स्टेट बनाम आशु खराना, नरेन्द्र खन्ना, मनिषा शर्मा और सुरज आनंद' इनके रिकॉर्ड के सामने जमानत ऑर्डर की कॉपी जोड़ी जाए। सभी जामनत अर्जी का निपटारा होने के कारण उनको सरकारी रिकॉर्ड में दर्ज करके रखा जाए।

खुले कोर्ट में सुनवाई
30-06-2009

हस्ताक्षर
-फतेहदीप सिंह
शेसन जज
कपूरथला, पंजाब

●●●

परिशिष्ट–5

रामायण में राजनीतिक विचारधारा–शेल्डन पोलॉक

(शेल्डान पोलॉक मूलतः जॉर्ज व्ही.बॉब्री त्स्कोय नाम के व्यक्ति हैं। वे यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो में संस्कृत और भारतीय साहित्य के प्रोफेसर है। खास बात यह हैं कि इन्हें भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से नवाजा गया है। यानी इनके शोध को भारत सरकार यानी ब्राह्मणों ने मान्यता दी है।)

(संबंधित लेख का सारांश शेल्डान पोलॉक जी द्वारा लिखा गया 'रामायण में विचारधारा' से लिया गया है। जो जर्नल ऑफ आशियन स्टडीज 52, नं. 2 (मई 1993) 261–297) में प्रकाशित हुआ था)

... रामायण और राजनीतिक प्रतिकों का आपस में बहुत बड़ा संबंध है और उसका बहुत बड़ा इतिहास है। प्राचीन काल से ही रामायण के कथा ने हमेशा एक खास किस्म की विचारधारा विभिन्न राजनीतिक उपदेश के माध्यम से प्रस्तुत की है। वैसे देखा जाए तो दक्षिण एशिया में ऐसा एक भी ग्रंथ नहीं मिलेगा, जिसने राजनीतिक विचारधारा इतने बड़े प्रभावी ढंग और सातत्यपूर्ण बताया है। यह एक इतिहास है लेकिन आधुनिक भारत की दृष्टि से वह अलिखित ही है।

वास्तविक इतिहास की तुलना में रामायण का राजनीतिक दृष्टिकोण से इतिहास के बारे में बहुत ही कम मात्रा में लिखा गया है। पिछले हजार वर्षो की अवधि में स्थानीय भाषाओं की कथा (कम्बन, किर्तीभास, तुलसीदास इत्यादी) जैसे स्थानीय कथाओं के साथ संस्कृत कथाओं के पहलुओं के बारे में शोध बहुत ही कम मात्रा में हुआ है। इतना ही नहीं, भिन्न–भिन्न स्थानीय कथाओं की उत्पत्ति कहां से हुई? इस बारे में भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। मिसाल के तौर पर एक हजार वर्ष के समय में रामकथा के बाबत संस्कृत, प्राकृत और स्थानीय भाषाओं में बड़े पैमाने पर नाटक और अन्य साहित्य लिखा गया है। जैसे पाँचवें सदी में वाकाटक राज प्रवरसेन के समय में सेतु बंध, 7 वें सदी के कनौज के यशोवर्मन के समय के राम अभ्यूदय, 8 वें सदी के कलांजना के श्रीमाता के समय का स्वप्नदसानंद, 11 वें सदी के धार के भोज राजा के समय का चंपू रामायण से लेकर 17 वें सदी तक के शिवाजी महाराज के समय के रामदास का रामायण। मगर इन सभी ग्रंथों में वर्णन किये हुए सामाजिक और राजनीतिक मुद्दो के संबंध में विचार किए हुए ग्रंथ के अलावा इनके बारे में खास कोई

जानकारी नहीं है।[1]

इस तरह रामायण के राजनीतिक जीवन के बारे में जानकारी कम होने के कारण उस पर जल्दबाजी से भाष्य करना उचित नही होगा। ऐसा घटित हुआ है, क्योंकि इतिहास में केवल सांस्कृतिक नाट्य कहकर न रुकते हुए रामायण ने महत्त्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका निभाई है।...

पुराण काव्योत्तर भारत में अलग–अलग मंदिरो में राजनीतिक शिलालेखों और इतिहासों के सबूतों के आधार पर यही दिखाई देता है कि भारत की राजनीतिक वलय निर्माण करने के लिए एक प्रमुख संगठनात्मक आंदोलन के तौर पर रामायण का इस्तेमाल किया गया है।

मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मध्ययुगीन उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बारे में वाल्मिकी के काव्य की कथा कैसे प्रसारित की गई? इसपर मैं बोलना चाहता हूँ। क्योंकि आगे जो मुद्दे चर्चा में लिए गए हैं उन मुद्दों में वह कथा की मुख्य किरदार निभाती है। जैसे कि विजय नगर के रामचंद्र मंदिर से जैन काशी, तीसरा पृथ्वीराज पर आधारित जीवन चरित्र। हमको यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि रामायण एकरुप ग्रंथ लेखक नहीं है, वह तो एक अनेक बहुआयामी लेखन है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो स्थानीय आस्था से लेकर राजनीतिक परिस्थिति पर समय–समय पर बदलाव होते गए हैं। (Richman, 1991 : 16) लेकिन यह अलग–अलग कथा एक ही कथा का रुपांतरित (परिवर्ती) कथा है। लेकिन मध्यकाल भारत के राजस्थान, गुजरात और दक्खन के इन अलग–अलग रामायणों के लेखनों और जनता पर क्या परिणाम हुआ हैं इसका शोध करना कठिन है।

इसमें कोई शंका ही नहीं है कि रामायण में प्राचीन भारत की राजनीतिक विचारधारा प्रस्तुत की गई है और वह खासकर सम्राट अशोक की ही है। (Pollock 1986 : 9-24) अगर रामायण का इतिहास राजनीतिक स्वरुप और लेखन स्वरुप ऐसे दो विभागों में विभाजित किया जाय तो दोनों में बहुत अंतर दिखाई देता है। चौथे शतक से लेकर अगले 1 हजार वर्षो तक रामकथा को लेखन स्वरुप में सहारा मिला है और इससे उसके कथानक की व्याप्ति बढ़ाई गई है। (अल्लाहा राघव 2, हम्मीराद मर्दना 1.8) रामायण के विस्तारिकरण की शुरुआत दूसरे, तीसरे शतक में भाष के लेखन से हुई। आगे 4, 5 वी सदी तक कालिदास और कुमारदास ने परंपरा जारी रखी और आगे 7 वीं सदी से लेकर 9 वीं सदी तक भवभूती,

भट्टी, मुरारी, राजशेखर आगे चलाई और वैसे ही वह आगे चलती रही। पहले एक हजार वर्ष में रामायण में राजनीतिक ख्वाब लोगों के सामने पेश किया और उसके साथ साथ नैतिकता जोड़कर राजाओं को देवी स्वरुप प्रदान किया गया। अगले एक हजार वर्ष में राम कथा ने जीवित स्वरुप धारण किया, जिससे राजा यही राम है, यह चित्र प्रस्तुत किया। 12 वें सदी में राजा ही राम का अवतार होता है यह धारण आगे लायी।
...

11 वीं सदी से लेकर 14 वें सदी तक मध्य और पश्चिम भारत के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में रामायण ने किस तरह आश्चर्यजनक कार्य किया है? यह देखते हैं कि रामायण ने एक दूसरे से संबंधित कल्पना प्रस्तुत की है। अर्थात एक तरफ दैवी राजनीतिक शक्ति निर्माण करके उसका बार-बार कथन करके ऐतिहासिक दृष्टि से समाज में स्थापित किया तो दूसरी ओर उसकी विरोधी दानवी राजनीतिक शक्ति अलग करके उसका विरोध कैसे किया और उसका पतन पूर्णतः कैसे किया गया यह दिखाया गया है। मध्ययुगीन दक्षिण एशिया के महत्त्वपूर्ण लोगों ने इन दैवी और दानवी राजनीतिक शक्तियों का इस्तेमाल करके दो पद्धतियों को जन्म दिया है। एक तरफ अति प्राचीन राजनीतिक धर्मवाद, जिसके माध्यम से राजनीतिक शक्ति को मान्यता देना संभव है या उसका उदारीकरण, करना संभव है। दूसरी ओर विरोधी लोगों को रामायण के रावण की तरह दानव घोषित करना आसान है।

विश्व में राम का अवतार मंदिर संप्रदाय :

राम पंथ, की राजनीतिक विचारधारा और उसका मंदिर पूजा के स्वरुप में तत्वज्ञान पर सही अध्ययन नहीं हुआ है।

दक्षिण एशिया में रामपंथ 11 वीं सदी के आरंभ में या 12 वीं सदी में बिल्कुल अस्तित्व में नहीं था। इस पंथ की शुरुआत एक खास ऐतिहासिक घटना के कारण हुई है। (संदर्भ- हंस बेकर 1987 : 21-22)

आर.जी.भांडारकर ऐसा कहा है कि राम का दैवतीकरण पहले ही हो चुका था। लेकिन राम के मंदिर पूजा का पंथ बहुत देर बाद शुरु हुआ। (भांडारकर-1913 : 47)

राम की पंथ के रुप में बहुत देर बाद आरंभ हुआ, यह जानकारी देने के लिए हँस बेकर का धन्यवाद! गुप्तकाल में (स्कंध गुप्त) सारंगधर मंदिर निर्माण के शिलालेख का

प्रमाण प्राप्त हुआ है। जो वर्तमान अयोध्या में होगा (राम मंदिर होगा) तो 5 वीं सदी के अंत में राम पंथ राज-रजवाड़ों तक ही सीमित था, ऐसा हम कह सकते हैं। **लेकिन गुप्तों के काल में राजधानी अयोध्या लेकर गए थे, यह स्वीकार करने के लिए कोई खास ठोस सबूत नहीं है।** (वेबर 1986 : 24) 12 वीं सदी के पहले राम पूजा का कहीं पर भी जिक्र नहीं मिलता, केवल 5 वीं सदी में वाकाटक रानी प्रभावती गुप्त ने दान दिया स्वामी ''पद-मुलात'' ऐसा आदेश निकाला था। (कालिदास के रघुपति पर मेघदूत में भी इसका जिक्र मिलता है) इसी जगह को उत्तर महाराष्ट्र में 'नंदीवदेन' कहा जाता है। अगर उसे हम राम मंदिर कहें (इस जगह शंका है कि जिसे मैने नीचे व्यक्त किया है) तो यह एक ही सबूत है और वह छोटे प्रदेश तक सीमित है और छोटे मंदिर से संबंधित है। (सन् 400 से 465- बेकर - 1986: 60) वहां से आगे 700 वर्ष तक राम के मंदिर का कहीं पर भी जिक्र नही मिलता है!

कुछ नगण्य स्थानों में जैसे की आंध्र प्रदेश में विजयवाड़ा से 10 किलोमीटर दूरी पर इंदोवली जगह पर पत्थरीली गुफा में रामायण शिल्प दिखाई देता है और वह विष्णु कुडीन राजा के समय का होगा। (4 से 5 वी सदी का-राजेंद्र प्रसाद 1980 : 72) फिर भी इसके बाद आंध्र प्रदेश में राम का कोई भी मंदिर निर्माण हुआ नहीं है। ऐसी ही स्थिति पूरे दक्खन में है। 7 वें सदी से लेकर आगे रामायण के प्रति लोगों की जिज्ञासा बढ़ती हुए दिखाई देती है। जैसे कि पटदक्कुल के चालुक्यों का निर्माण हुआ विरुपाक्ष और पापनाथ का मंदिर (नाग राजाराव, 1978 : 306, शिवराम मूर्ति 1980 : 638) इस काल के पश्चात पूर्व और दक्षिण भारत में अत्यल्प रामायण के प्रसंग दिखाई देते हैं। जैसे की 7 वें सदी के अंत में भुवनेश्वर का परशुराम मंदिर, 8 वें सदी के कांची का कैलाशनाथ मंदिर और महाबली पुरम ओलक्कामेश्वर मंदिर (नागास्वामी 1980 : 40gfc) फिर भी इस उदाहरण से राम का कोई खास महत्त्व दिखाई नहीं देता है। दूसरी खास बात कही जाए तो ये सभी मंदिरें शैव मंदिर हैं और शिव का महत्त्व बढ़ाने के लिए रामायण के कुछ प्रसंग उसपर चित्रित किये हुए हैं। उदाहरण के लिए रावण को कैलास पर्वत हिलाते हुए दिखाया है।)

उत्तर भारत में भी खास स्थिति नहीं है। उधर भी राम के अत्यल्प शिल्प दिखाई देते हैं। लेकिन राम पंथ का सबूत दिखाई नहीं देता।

देवगढ़ के प्रसिद्ध विष्णु मंदिर में (सन् 500) रामायण के आठ प्रसंग दिखाए गए हैं। बिहार के नवादा जिले के नवादा शहर के उत्तर पूर्व में 30 किमी अंतर पर विष्णु

मंदिर मिला है। जिसका निर्माण गुप्त राजा आदित्य सेन ने किया था। (सिन्हा 1968 : 216 FF), (II 3 : 202 FF) लेकिन देवगढ़ के मंदिर में विष्णु के अनेक प्रसंग हैं और एक बड़े वराह की मूर्ति भी है। इसलिए यह दशावतार मंदिर है और राम का उसके साथ कोई संबंध नहीं है। यही स्थिति पश्चिम भारत में भी है। संपूर्ण विस्तृत ऐसे गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य में (सन् 725-1000) यानी ऊपर से राजस्थान से लेकर नीचे विंध्य पर्वत तक और पूर्व की ओर कनौज तक इस समय एक भी राम का मंदिर नहीं मिलता है।

लेकिन 12 वीं सदी के मध्यावधि में परिस्थिति एकदम बदलती है और राम मंदिर निर्माण प्रक्रिया को अचानक गति मिलती है और प्रक्रिया अगले 200 वर्ष तक चलती है। अब इसमें उदाहरण पेश किया जाए तो रतनपुर के कलचुरी राजा द्वारा राम के लिए निर्माण किया हुआ दो मंदिर (रायपुर जिला, मध्य प्रदेश) में है। उसमें पहला मंदिर राजा पृथ्वी देव और दूसरा उसके मंत्री ने सन् 1145 को राजीन में निर्माण किया हुआ मंदिर और दूसरा त्रिपुरा के बाद के कलचुरी वंश के समय का सांमत विजय सिन्हा ने 1873 में तथा 1893 में निर्माण किए हुए मंदिर हैं। पहले मंदिर में एक बहुत छोटा सा अभिलेख मिलता है जो इस समय के रामपंथ का राजनीतिक शक्ति के तौर पर कैसे इस्तेमाल किया इसका सबूत देता है। ''राजा जगपाल के डर के कारण उसके घमंडी दुश्मन मयुरेका और दुष्ट सावंत मंडल में महाजन के सामने पूर्णतः शरणागत हुए। जिस तरह क्षत्रिय राम, एक उत्कृष्ठ योद्धा, जिसने दानवों या धनुषधारी वंशों का नाश किया था उसी तरह राजा जयपाल ने अपने शत्रुओं का असंख्य बाणों से विनाश किया... रामायण जैसे काव्यों का पठन करके सभी प्राणी जगत का उद्धार करके राजा जगतपाल ने ब्राह्मण परिवार को दान दिया। राम की महती बढ़ाई, इसलिए इस राजा द्वारा अत्यंत सुंदर मंदिर का निर्माण किया है।'' भले ही यहाँ शत्रु का स्पष्टतः जिक्र नहीं किया है तो भी राम का राजा ने किया हुआ जिक्र उस पंथ के बाबत की हुई स्तुति महत्त्वपूर्ण है। इससे राजनीति और रामायण का गठजोड़ इसी काल में हुआ, यह दिखाई देता है। (मिराशी 1955 : 450 FP, यह मंदिर वास्तविक विष्णु मंदिर के तौर पर बनाया गया है, 451 M.2, 346FP, बेकर - 1986 : 64-65)

इसी समय यानी 11 वें सदी के मध्यावधि और 12 वें सदी के आखिर में गहड़वाल वंश ने अयोध्या में मंदिर बनाने की प्रक्रिया में वहां पर वैष्णव केंद्र निर्माण किया था। दुर्भाग्य से वहां मिले शिलालेख निराशाजनक हैं फिर भी शायद चंद्रदेव ने स्वर्गद्वार घाट

जगह पर राम का मंदिर बनाया था। शायद आखिर के गहढ़वाल राजा जयचंद्र ने राम मंदिर बनाया होगा- बेकर 1986, 51 EP, 1987 : 17 FP, शर्मा 1990-10)

13 वीं सदी के आखिर और 14 वीं सदी के आरंभ में रामपूजा के लिए अनेक पंथ निर्माण किये गए। उसमें से दो जगह का विचार मैं यहाँ करना चाहूँगा। एक रामटेक (रामटेकडी, नागपुर के उत्तर पूर्व को 45 किमी अंतर पर) और विजयानगर का रामचंद्र मंदिर ''स्थानीय किवदंती'' के अनुसार हेन्री कजिन्स के मतानुसार रामटेक 'शूद्र संन्यासी शम्बूक' की राम ने हत्या किया वह स्थान है, ऐसा बताया जाता है। ''उसके बाद एक हेमाडपंथ (कुछ लोग उसे राक्षस समझते हैं तो कुछ लोग उसे ब्राह्मण समझते हैं।) इसने रामटेक पर पाँच मंदिर बनाये थे। एक राम के लिए, जिसमें राम और सीता की मुर्तियाँ है, हनुमान का मंदिर, एक मंदिर एकदशी देवी के लिए और एक लक्ष्मी नारायण का मंदिर बनाया गया।'' (Ousens 1897 : 7 FF) इसी मंदिर के समूह को पंचायत मंदिर से संबोधा जाता है।) इस जगह का शोध हाल ही के ए.पी.जामखेडकर और बेकर ने किया है। (जामखेडकर 1986, बेकर 1989) शायद यहीं पर वाकाटक के समय से ही रामटेकडी पर चालुक्य काल और यादव काल के ऐसे कुल पाँच मंदिर हैं। लेकिन उसमें से वाकाटक का मंदिर वैष्णव मंदिर है और वह मंदिर राम से संबंधित होने का कोई लिखित या चित्रित सबूत नहीं है (इसके उलट वह मंदिर नरसिंह, वराह भगवान इन्हें समर्पित किये हैं।) जो कोई मंदिर राम से संबंधित है वह सब हेमाडपंथी रीति के हैं और उससे पहले के समय के राम मंदिर हटाकर वहाँ नये राम मंदिर बनाने के कोई सबूत मिलते नहीं हैं।

कजीन्स के समय में एक बिना तारिख का शिलालेख मिला है, लेकिन दुर्भाग्य से वह अत्यंत खराब स्थिति में है। यह शिलालेख लक्ष्मण स्वामी मंदिर के गर्भगृह में प्राप्त हुआ था जो अब प्रकाशित किया गया है। (T 25 : 7 FF, F. Baker 1989b) उस शिलालेख में शासक राजा का वर्णन ''यादवों वसंहा'' किया गया है और आगे 17 वें लाईन में 'सिंहाना' कहा गया है। जिसमें राजा का नाम 'राजश्री रामचंद्र' है (वह अपने अधीन अधिकारियों को आदेश दे रहा है, ऐसा उसमें कहा है) यह मंदिर तेजस्वी राजा के दान से साम्राज्य की उन्नति का प्रतीक के तौर पर बनाया गया है।'' इस अभिलेख में देवगिरी का यादव राजा रामचंद्र है (सिंहाना का पोता) वह 1271 में राजगद्दी पर विराजमान हुआ। इस राजा के अन्य शिलालेख में ऐसी जानकारी है कि ''इस राम का कैसे वर्णन करे? उसने वाराणसी को मलेच्छ के चंगुल से छुड़ाया और

वहां पर सारंगधर का सोने का मंदिर बनाया।'' (सारंगधर विष्णु सारंग धनुष रहा मनुष्य) यह विशेष इस समय मे राम का विशेषण बनाया गया। क्योंकि भक्तमाला पद 55 और 128 में राम को सारंगपाणि कहा है। रामचंद्र ने मात्र बनारस को मलेच्छों के चंगुल से छुड़ाने का सबूत इतिहास में कहीं पर भी नहीं मिलता।

उपरोक्त लिखित प्रमाण को कोई उत्खननीय सबूत नहीं है। रामटेक और रामागिरी (वाकाटक ने दान दी हुई जगह) यह एक ही है। ऐसा दर्शाती है कि दान देने के पहले भी यह स्थान राम के पूजा का केंद्र था। राजा रामचंद्र की यहाँ की प्रशस्ती मात्र यह दर्शाती है कि उन्होंने इस जगह अपने मंत्री को रामपंथ शुरु करने का आदेश दिया था और यादव वंश के बाद इस जगह बहुत सारा परिवर्तन हुआ था, ऐसा दिखाई नहीं देता।

इसमें कोई शंका नहीं है कि हेमाडपंथ नाम यादवकालीन अन्य मंदिरों के साथ भी जोड़े गए हैं (लेकिन राम मंदिर के साथ नहीं, क्योंकि इन क्षेत्रों में राम मंदिर अस्तित्व में ही नहीं है।- देखें वर्मा-1973) हेमाद्री पंडित यादव राजा रामचंद्र और उसके पिता का मंत्री था। उसने ही धर्मनिबंध कानून का ग्रंथ लिखा था, जिसमें राम को अवतार के तौर पर उसकी पूजा कैसे करे, इस बाबत सूचना दी थी और राम के जन्म के संबंध में राघवद्वाशीवृत्त उत्सव कैसे शुरु करें, यह लिखा हुआ है। (चतुवर्मार्चिंतामणि, वृत्तकांड : 1034-35) हेमाद्री ने अगस्त संहिता का भी हिस्सा लिया है, जिसमें बताया है कि पहले हिस्से में रामनवमी रामजन्म का उत्सव कितना महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रंथ 12 वें सदी के पहले का बिलकुल नहीं है। धर्मबंधन हेमाद्री के ग्रंथ को पहली बार ब्राह्मणों ने रामपंथ को स्वीकार किया है। (काणे, 1962-75 Vol. V, 84-88, बेकर 1986 : 153 ff, 1987 : 15)

14 वें सदी के मध्यावधि में दक्षिण के विजयानगर साम्राज्य के निर्माण के बाद राम के पंथ को राजनीतिक आश्रय प्राप्त हुआ। उसके पहले उत्तर कर्नाटक या आंध्र प्रदेश में भारत के अन्य हिस्सों की तरह राम के मंदिर न के बराबर थे। दक्षिण में राम का सबसे पहला मंदिर यानी काकतिया काल गुंटूर जिले में सन् 1323 को शिलालेख का पहला राम मंदिर है। जिसमें वहां के निवासियों ने उनकी कमाई का कुछ हिस्सा वहां पर निर्माण किए गए वरद गोपीनाथ और राम-लक्ष्मण मंदिर के लिए दान देने और उसके द्वारा राजा प्रतापरुद्र देव इन्हे उनके नाम पर पुण्य इकठ्ठा के लिए किया है। (S II, 10 : 288)

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के साथ रामायण के किष्किंधा और पंचा सरोवर दक्षिण की ओर जाना जाने लगा और इस राजा के राजधानी में राम का मंदिर बनाया गया। यह रामचंद्र मंदिर (सन् 1450 के पहले निर्माण गया, (cfritz etaal, 1984a : 65) यह राजधानी के बीचोबीच था, वहीं राजा का मुख्य केंद्र बना और उसके साथ वह धार्मिक राजनीतिक का मुख्य केंद्र बना। ए.एच. लाँगहस्ट पहले 1917 में सूचित किया उसके अनुसार, जान फ्रिज ने इस शहर का धार्मिक-राजनीतिक गुत्थियाँ खोली। वह ऐसा कहते हैं कि राम मंदिर की जगह शहर के बीचोबीच इस तरह चुनी गई है, जिससे राजा और दैवी राजा राम इनके बीच में एकरुपता प्रकट हो और राजा को राजमहल से बाहर आते समय राम मंदिर का पवित्र मार्ग से ही जाना पड़े। इस तरह दोनों में मिथकीय ढंग से एकरुपता निर्माण की गई। ''राजा का इसके आगे का कार्य यानी राम का अवतार कार्य समझे और वह देव के दरबार में धर्म कार्य में सहभागी हुए।'' सन् 1379 का अभिलेख ऐसा कहता है कि ''विजयनगर के उस पवित्र शहर में राजा हरिहर ऐसे ही रहते थे जैसे पूर्व काल में राम उसके नगर अयोध्या में रहते थे। (Fritz, 1986 : 53, 1985 : 266 ; Fritz et al. 19784a -54) (फुट नोट. विजयनगर के मध्य स्थान में राम मंदिर यह वाल्मिकी रामायण के अनुसार बनाया गया है। (A. L. Dallpiecola व्यक्तिगत संवाद, cf Dallpiecola 1992, यह केवल मंदिर के बाहरी दिवार के बारे में लागू होता है। ''इसी मंदिर के अंदरुनी हिस्से की रचना कार्य बदली हुई दिखाई देती है।'' ऐसा डालापिकोले ने कहा है। जिसमें रामायण के तेलगू संस्करण का प्रभाव है, ऐसा वह कहती है।) Stein 1980 : 388 FF कहता है कि विजयनगर साम्राज्य में महानवमी उत्सव को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ, जिसमें रावण का पराभव करने के पहले राम दुर्गा की पूजा करते है। दसवें दिन राम का विजय के तौर पर विजयादशमी उत्सव विजयनगर साम्राज्य में पहली बार शुरु हुआ होगा। विजयनगर का राजा राम का आपस में संबंध अगले सदियों में और बढ़ गया। क्योंकि विजयनगर को परास्त करके राजगद्दी हासिल करने वाले राजा नरस (1459-1508) यह खुद को अच्युत राया भदिया इस ग्रंथ में ऐसा कहते हैं कि ''वह खुद ही राम का अवतार हैं। उसने समन्दर पर सेतु बनाया और उसने पूर्व जन्म में प्राप्त किये शक्ति के आधार पर सहेजा (कावेरी) नदी के तीर पर पुल बांधा है और श्री रंगे शहर पर कब्जा जमाया है। (1.30)

उसके बाद विजयानगर/नायक काल में राम मुख्य देवता के तौर पर स्वतंत्र मंदिर

बड़े पैमाने पर निर्माण होने लगे। फिर भी उनकी संख्या अत्यल्प ही है। (दो राम मंदिर यानी कुंभकोणम 16 वें सदी में रघुनाथ नायक के निर्माण किए हुए रामस्वामी मंदिर और 18 वें सदी में कुतुबशाही वंश के पतन के बाद आंध्र प्रदेश के खमम जिले के गोदावरी के तीर पर निर्माण किया गया भद्राचलम मंदिर)

राम के मंदिर पंथ का उगम 12 वीं सदी में हुआ था। इसे छोटा सा अपवाद यानी प्रारंभी के चौल राजवंश में निर्माण हुआ राम का मंदिर (फुटनोट–एन.पी.उन्नी ने सन् 920 के शिलालेख अनुसार मुसीक वंशी लक्ष्मण का मंदिर बनाने का जिक्र किया है) चोल काव्य में अनेक ब्रांड धातु के कोदंड राम के मूर्ति और उंगली दिखाई जाती है, लेकिन यह मूर्तियाँ 10 वें सदी के तंजावर जिले से संबंधित है। वहां के राजा आदित्य से संबंधित है, जिसने खुद को ''कोदंड राम'' विशेषण लगाया था। खास बात यह है कि मूर्तियाँ केवल तंजावर जिले और उस राजा तक ही मर्यादित है। ''यह मूर्तियाँ कबंन के रामकथा से प्रभावित होकर बनाई गई है या नहीं, इस बाबत शंका है। क्योंकि यह तमिल कविता विशिष्ट राजनीतिक उद्देश्य ध्यान में रखकर लिखी गई है या नहीं, यह बताया नहीं जा सकता। इसलिए इस ग्रंथ का कार्यकाल निश्चित करना संभव नहीं है। फिर भी 9 वें सदी के उत्तरार्ध और 12 वीं सदी के अंत में यह ग्रंथ लिखा गया होगा। वह बाद के समय का अधिक लगता है। लेकिन राजा आदित्य ने मात्र रामायण का राजनीतिक शस्त्र के तौर पर इस्तेमाल किया था, यही मात्र निश्चित है। (नागास्वामी 1983 : 7, 154–59)

मंदिर में रामायण की शिल्पाकृति देखकर 9 वें और 10 वें सदी के तमिल प्रांत में राम का पंथ अस्तित्व में था ऐसा नहीं कहा जा सकता है। नदामी के चालुक्य के अभिलेख में भी रामायण का राजनीतिक में इस्तेमाल किया गया, यह दिखाई नहीं देता। मगर उस इलाके में रामायण की अधूरी शिल्पाकृति दिखाई देती है। खासकर एलोरा और चौल प्रदेश में रामायण का इस समय में महाभारत, कृष्ण अवतार जैसे अन्य कथानकों के साथ संघर्ष करना पड़ा। इसलिए इस इलाके में अन्य लोगों ने कहा उस तरह रामायण को मध्यवर्ती स्थान प्राप्त हुआ नहीं था। (Santord 1974)

... दक्षिण भारत में 12 वीं सदी के पहले राम की शिल्पाकृति बहुत ही दुर्लभ दिखाई देती है और उसके बाद के शतकों में भी वह दुर्लभ ही रही है। वैसे देखा जाए तो इस इलाके में एक मुख्य देवता के तौर पर राम को महत्त्वपूर्ण स्थान बहुत बाद में यानी 18 वें सदी के उत्तरार्थ में प्राप्त हुआ है। (Dagens, 1984-614-15, cf, 63 and

174-75)

5 वें सदी में उत्तर पूर्व भारत के (साहेत–माहेत और अन्य जगह) लेकिन अपवादात्मक स्वरुप मकानों के कुछ अल्प मात्रा में टेराकोटा के रुप में रामायण के प्रसंग प्राप्त हुए हैं। देखें–पाल 1986–87–Vol. I, 232 (वाल्किमी रामायण में एक लाईन का 5 वें सदी का राम का टेराकोटा) ct. Vogel 1906 - 8 : 96 भी देखें और प्लेट XXVII, P, 155 देखें (इस पर 5 वें सदी के हुनमान का टेराकोटा है), मार्च 1990 के Sothe के Sale Coinlogise में नंबर 236 का टेराकोटा (हनुमान सीता को अशोक वन में बोलते हुए) लेकिन खास बात यह है कि 9 वें सदी में लिखे गए 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में राम और लक्ष्मण का स्वरुप कैसा होगा, इसका वर्णन किया है। (चर्तुवर्ग चिंतामणी वृत्तकांड : 1035 में यह संदर्भ आया है।)

... विजयनगर में निर्माण हुए रामपंथ ने अन्य पंथ को पीछे छोड़ दिया ऐसा नहीं। क्योंकि विरुपक्ष उस समय विजयनगर की राष्ट्रीय देवता थी और अपने शिलालेख में या मंदिर में अपने को खुद रामभक्त कहने वाले अनेक राजा वास्तव में शैवपंथीय थे। यादव राजा रामचंद्र की जानकारी पहले ही दे चुके हैं। आगे हम देखते हैं कि जयसिंह सिद्धराजा जिन्होंने अनाहिलवाड़ा पर विख्यात सहस्त्रलिंग जलाशय बनाया था जो शैव था और पृथ्वीराज तृतीय ने इसे भी पृथ्वीराज विजय 1105 में पूर्णतः शैव अनुयायी कहा है। एक बात तो निश्चित है कि आरंभ में यह पंथ खास समय और स्थान तक ही सीमित था, लेकिन बाद में 12 वीं सदी के आखिर में अचानक गति पकड़ ली और महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। 14 वें सदी के मध्य तक यह पंथ कुछ समय के लिए और कुछ स्थानों के लिए महत्त्वपूर्ण पंथ बना।

... मध्ययुगीन भारत के राजनीतिक उथल पुथल में रामायण जो कुछ राजानीतिक खुराक पहुंचाया है उसके प्रमाण मध्ययुगीन काल के उत्तरार्ध अभिलेखों में स्पष्ट होते हैं। प्रथम सहस्त्र के इस बाबत कुछ संदर्भ मिलते हैं, लेकिन उनकी संख्या 12 वें सदी के बाद बढ़ी हुई दिखाई देती है।

प्राचीन काल के अतिश्योक्तिपूर्ण अभिलेखों से राम का आपको थोड़ा–बहुत आकलन होता है, लेकिन यह वर्णन स्थितिशील और सुत्ररुप में है। आरंभ के नाशिक के शालिवाहन प्रथस्ती (ईसा.सन् 150) पर राम का जो वर्णन किया है उससे उसकी कल्पना की जा सकती है, जिसमें अनेक नायकों में राम का भी जिक्र एक नायक के तौर पर ही आया है।–

''नाभगा-बहुषा-जममजेया-सकरा-ययाति-रामा-अथरिसा-समतेजसा'' (अर्थात-नागभ जैसा वैभवशाली) इसे अपवाद यानी गुप्त सम्राट स्कंद गुप्त ने उसकी तुलना राम के साथ की है। 'राम जैसा बड़ा आक्रमक शक्ति वाला राजा' (CFI-313118-5; ऐसी ही स्कंद गुप्त की तुलना युधीष्ठिर से की गई है) पूरे गुप्त साम्राज्य के अभिलेखों में राम का जिक्र केवल एक बार आया है और जनधारणा के अनुसार गुप्त काल में गुप्त की राजधानी अयोध्या में स्थानांतरित की थी। यह आपने ध्यान में नहीं रखा तो उपरोक्त संदर्भ की ओर आपका ध्यान भी नहीं जायेगा।

पाल, 1986-87 Vol. I : 74 (ct. 232) ने कहा है कि- ''कट्टर वैष्णव रहे गुप्त राजाओं ने राजा राम का आदर्श सामने रखकर अपना राज कारभार चलाया था। लेकिन गुप्त काल में 'राम का आदर्श' गुप्त राजाओं के समक्ष था, इसके लिए क्या सबूत है? ऐसे सबूत हाल ही के समय में शोध के जरिए (Williams, 1982) अत्यल्प मात्रा में प्राप्त हुए हैं। **गुप्तकाल में राम का आदर्श था, इस में कुछ भी तथ्य नहीं है।**

गुर्जर- प्रतिहार साम्राज्य के समय (ईसा सन् 725-1000) में राम का जिक्र नहीं मिलता है। (पुरी 1986 : 211) केवल 9 वीं सदी के भोज राजा के ग्वालियर प्रशस्ती पत्र में राम का मात्र जिक्र आता है। विष्णु मंदिर निर्माण कार्य में पद 3 में ऐसा लिखा है कि 'उसके वंश में (सूर्यवंशी राजा के वंश में) (विष्णु धर्मानुसार) के प्रतिभा से अपना पैर रखा था विनाश और हत्या का युद्ध लड़ा गया था... जिसमें रावण मारा गया था।' उसके बाद जुनैद के अरबी सैन्य ने नागभट के उज्जैन पर किए गए हमले का वर्णन पर एक पद है। (सन 725) ''उस वंश में... जो तीनों लोकों का शरण स्थान है, उस वंश में देवराजा नागभट के समक्ष प्राचीन ऋषि नारायण खुश होकर मूर्ति रुप में साकार हुए है। शक्तिशाली मलेच्छ आक्रमणकारियों के विशाल सैन्य को काटते हुए वह (नागभट) अपने सत्कृत्य के कारण चमकीले घातक शस्त्रों सहित चार हाथों का लग रहा था।'' इस तरह की विधानों की रचना भारत कें 12 वें सदी के पहले अन्य जगह कहीं पर भी नहीं मिलती, इसलिए आने वाले सदियों के प्रतिकों का विकास की यह एक शुरुआत थी, ऐसा मुझे लगता है।

प्रतिहार के समकालीन सिलाहारों ने भी राम का जिक्र नहीं किया (मिराथी 1977) यही स्थिति बदामी के चालुक्यों की (सन् 500 से 750) है। उन्हें संस्कृत महाकाव्यों की भलीं-भाँति जानकारी है और वे उसका सम्मान भी करते रहते हैं।

(उदा.IA, 7 : 161-3) लेकिन उन्होंने उनके आदेश में राम का जिक्र तक नहीं किया है। उनके दक्षिण-पश्चिम राज्यों में केवल मात्र एक ही अभिलेख मिला है (रमेश 1984 : 176) और उत्तर-मध्य प्रांत में परमार के राज्यों में भी राम के संबंध में एक ही अभिलेख मिला है। (EI 2 : 15) राम के बाबत प्रारंभ में जिक्र 9 वें शतक के शुरुआती दौर में राष्ट्रकुट के प्रदेश में मिलता है- ''सभी राजाओं के लिए लागू पड़ने वाला महत्त्वपूर्ण सेतु यानी धर्म सेतु है, प्रत्येक को उसका पालन करना ही चाहिए। रामभद्र (V 1, रामचंद्र) बारबार भविष्य के राजाओं को यही बताना चाहते हैं। (सन् 807 में गुजरात के राष्ट्रकुट राजा का अभिलेख EI 23 में पहले मिलता है) इस अभिलेख को पढ़कर ऐसा लगता है कि इसमें राम को एक महानतम राजा के तौर पर पेश किया है और राम की यह प्रतिमा ब्राह्मणों ने साहित्य के माध्यम से कई सदी पहले निर्माण की थी। पल्लव अभिलेख में राम का जिक्र नहीं मिलता। लेकिन राजा नरसिंह वर्मन (8 वीं सदी) के शिलालेख में राम से भी ज्यादा महत्ता बढ़ा चढ़कर बताते हुए कहा है- ''राम के लंका पर जो विजय हुआ उससे भी महान विजय नरसिंह वर्मन का है।'' (S II 2 : 348, 22) ऐसा ही वर्णन दो सौ साल बाद राजेंद्र चौल प्रथम ने अपने सेनापति के सिंहल द्वितीय पर विजय हासिल की है। लंका जाने के लिए राज को सेतु बांधना पड़ा और बंदरों की सहायता लेनी पड़ी थी। ''लेकिन मेरे सेनापति ने जहाज से सागर पार किया और लंका के राजा को आसानी से मार डाला। इस तरह मेरे सेनापति ने राम को भी पीछे छोड़ दिया।'' (S II 3 : 421.80, 1018 सन) सिंहल राजा को पराजित किया इसलिए परांतक के सामंत पृथ्वीपति को भी 'संग्रामराघव' की उपाधि दी गई है, (S II 2 : 383.810) रामायण की ही तरह विराजेंद्र देव का (सन् 1030) कन्याकुमारी शिलालेख है, जिसमें चोल वंश की आश्चर्यजनक प्रशस्ती है। अनेक विधानों में राम की तारिफ की उसके साथ-साथ चोल राजा का भी इतिहास दिया गया है। 'जंगल में शिकार के लिए जाने के बाद (राम की तरह) राजा को भी एक जादुई राक्षस हिरण ने रास्ता भटकाया। इसलिए राजा को मार्ग का विस्मरण हुआ और वह चलते-चलते कावेरी नदी तक पहुंच गया। उस जगह ब्राह्मण न होने के कारण आर्यवृत्त से दक्षिण में ब्राह्मण लाये और उन्हें साथ लेकर चोल मंडल स्थापित किया। (EI 18 : 21 FF, 37. 139 FF)

चोल प्रशस्ती जैसे प्रशस्ती कल्याणी का (उत्तर कर्नाटक) चालुक्य वंश का विक्रमादित्य पाँचवा (सन्-1008 से 1015) प्रशस्ती है। इसमें पहली बार चालुक्य

वंश का संबंध राम के सूर्यवंश के साथ जोड़ा गया है और इस 59 चालुक्यवंशी राजाओं ने अयोध्या पर राज करने के बाद वह कुल दक्षिण कल्याणी को कैसे स्थानांतरित हुआ? इसका वर्णन है। (IA 1887 : 15 FF : P. 21-11-12) इसी वंश के विक्रमादित्य छठाँ खुद को चालुक्यवंश कहते थे। (EI-1534 a FF vs 20, कन्नड) और चोल के राज साहित्य में भी रामायण के प्रसंग का जिक्र किया गया है। इस तरह की राजनीतिक वर्णन विक्रमादित्य छठाँ के चरित्र में दिखाई देती है। यह वर्णन सन् 1077 का है। रामायण के कथा के साथ यह सुसंगत है। (रावण के विरोध में राम और वानर सेना के गठबंधन की तरह ही दक्षिण के चौल के विरोध में चालुक्य का गठबंधन दिखाया गया है।) ''अपना पिता (जनक) इसमें निर्माण की हुई लक्ष्मी (संपत्ति/सीता) फिर से हासिल करने के लिए अपने भाई और सुमित्रा के पुत्र को साथ लेकर वह वानर सेना निकली। अनेक सिर वाले राक्षस को लेकर डरे हुए द्रविड़ का प्रमुख विभिषण भी उसकी सहायता के लिए आया और चालुक्य राम विभिषण का औदार्य देखकर उसके आगे झुक गया।'' (EI-12-269FF, Lines 88 FF)

8).. इस तरह की वंशावली बनाने का चलन आंध्र प्रदेश के इस्वाक राजवंश में भी देखने को मिलती है। (Science 1939-10FF) यही प्रचलन मध्ययुगीन भारत में प्रतिहारों के समय में भी देखने को मिलती है। जो खुद को लक्ष्मण का वारिस अर्थात उसका भाई रामभद्र के दरवाजे के द्वारपाल यानी प्रतिहार कह लेता है। (EI 18:95, 4, 197 VSS-3-4) लेकिन उनके धार्मिक रीति की तरह ही राजनीतिक प्रशस्ती में भी राम का जिक्र नहीं मिलता!)

9) विक्रमा का देवचरित में विक्रमादित्य VI के पिता का वर्णन विल्हाण ने ऐसा किया है- ''उसके बाद अहवमल्ल देव राजा हुआ, उसे त्रैलोक्यमल्ल (सोमेश्वर) भी कहा जाता था... उसके शुद्ध जीवन चरित्र से (पवित्र चरित्र) उसे भिन्न-भिन्न कथा, कविताएं और नाटकों के कारण ही उसे दूसरा राम कहा जाता था।''

'अब मैं और भी उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूँ जिसमें रामायण के दृष्टिकोण से राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है।'

10) राजा और विष्णु की एकरुपता दिखाने के लिए कुछ शिलालेख मैं यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ। इससे गहड़वाल का जिन्होंने राम को ध्यान में रखकर खुद का वर्णन नहीं मिलता है। cfg : 319 ff, vs 18 में ऐसा कहा गया है कि '''दुष्ट तुर्को के आक्रमण से वाराणसी को बचाने के लिए हरा में गोविंदचंद्र को बताया कि वह पृथ्वी

का रक्षणकर्ता है, इसलिए हरा ने ही यहां पर जन्म लिया है और उसका नाम प्रभावशाली गोविंदचंद्र है' और उसके पोता जयचंद्र के ताम्र पत्र पर ऐसा लेख है। (होकर-1986 : 53) ''गोविदचंद्र से एक दैवी पुरुष जयचंद्र के रुप में पैदा हुआ जो राजाओं का राजा था, वैसे वह नारायण का अवतार पृथ्वी को बचाने आया था'')

कवि सोमेश्वर देव ने दाभोई (दर्भवती) अभिलेख में संवत् 1311 (सन् 1253) में लिखा है कि जिसमें वाघेला वंश के सदस्यों के साथ चालुक्य सोलंकी राजा भिमा दूसरा (सन् 1178-1242) का मंत्री लवण प्रसाद का जिक्र है, जिसने वाघेला वंश को स्वतंत्र शासक वंश के रुप में स्थापित किया था। (BI 1 : 20 FF, HIG 3 : 46 : 6 ff)

''उसने (अर्नोराजा) अपने पुत्र लवण प्रसाद के कंधे पर गुर्जरों का बोझ रखा... वह जब राज कर रहा था... क्या गुर्जर राज्य में यह रामराज्य से बड़ा नहीं था...? पृथ्वी पर ढ़ेर सारे राजा हैं परंतु तुरुक्ष राजा का नाम सुनते ही वे सब डर जाते हैं। केवल वह एक ही राजा (लवण प्रसाद) तुरुक्षों के साथ युद्ध के लिए आगे आया। जिस तुरुक्ष ने अनेक राजाओं के सिर छांटे थे और इस पृथ्वी को खून से नहलाया था, वह भी लवण प्रसाद के आगे डर के मारे मारा गया था, कोई भव्य स्तम्भ की तरह उसने तुरुक्षकों को हराया। जिस मलेच्छ राजा को कोई हरा नहीं सकता था, ऐसे राजा को हराने वाला राजा क्या सामान्य मनुष्य होगा?''

(II - रामराज्य की संकल्पना भारतीय राजनीति का इतिहास कृष्ण से शुरु हुआ, इसका अभी तक किसी ने खोज नहीं की है। लेकिन सामन्यतः गुजरात में इसकी शुरुआत हुई थी, ऐसा दिखाई देता है। मुलाराजा द्वितीय विक्रम सवंत 1232 सन् 1176) में अजय पाल के संदर्भ में ऐसा लिखा हुआ मिलता है- ''उसने राम राज्य पृथ्वी पर अवतरित किया। (अवतरित रामराज्य, Gadre n.d. 73. 9) अजय पाल ने मध्य एशिया के राजा के विरोध में युद्ध किया, इस बात को दर्ज किया गया है। हो सकता है कि अपने पूर्वज कुमार पाल के जैन धर्म के विरोध में अजय पाल ने शैव ब्राह्मण धर्म को बढ़ाने के लिए उसने रामराज्य का विशेषण उसके राज्य को लगाया होगा। ''वैदिक धर्म का वृक्ष उसने फिर से लगाया'' ऐसा एक जगह उसके संदर्भ में कहा है।

रामराज्य संकल्पना का विस्तारित स्वरुप आर.डी.भांडारकर के 1912 को प्रकाशित अभिलेख में आया है। लेकिन उसका जिक्र बाद के साहित्य में नहीं मिलता

है। यह लेख संवत् 1224 (सन् 1168) का है जो हरियाणा के हान्सी असी या असिफा होने की संभावना है, ऐसा लगता है।) इस नगर में मिला है। इस नगर का दिल्ली के पश्चिम मार्ग पर अतयंत महत्त्व का स्थान था और 11 वीं सदी के मध्य से यहाँ लड़ाई का केंद्र भी बना था। (शर्मा 1975.69) यह लेख यानी चहामान राजा पृथ्वीराज द्वितीय की प्रशस्ती है, जिसपर तुर्कों पर आक्रमण करने के लिए अपने मामा किलहाता को उसने हान्सी के किले पर नियुक्त किया था। (''आक्रमक हम्मीरा यह सभी विश्व को चुभने वाला कांटा बना हुआ था, ऐसा पृथ्वीराज को लगता है'' 4 थी और 5 वीं लाईन) किल्हाणा किले की नाकेबंदी करता है और शत्रुओं के आक्रमण का अनुमान लेता है। (हम्मिरा) कहां है, तुम्हारी आक्रामक शक्ति अब कहा गई है? - लाईन 7 वीं CF EI 9 : 77 Vs, 34, जिसमें नादुल के चाहमान रिकॉर्ड में केल्हाणा के बारे में लिखा है कि- ''पराक्रमी तुरुक्ष को हराने के बाद उसने सोने का मिनार खड़ा किया है। जैसे की यह सोमेथा का निवास स्थान होगा, ऐसे अभिलेख से दिखाई देता है।'') इस किल्हाणा को विभिषण का एक खत आता है, जिसमें हम दोनों मिलकर राम का सेतू बनाने में कैसी सहायता की थी इसकी किल्हाणा को याद दिलाता है। उसके बाद उसने पत्र में लिखा है :-

''पृथ्वीराजो महाराजो रामो सऊ सभ्यायाम विना हनुमान निश्चितम विराभवन अद्भूत-विक्रमाह।''

अर्थात- वह राम यानी पृथ्वीराज राजा है। निश्चित ही वह एक नायक और दैवी कृत्य करने वाला हनुमान यानी तुम लोग हो। (लाईन 14) इस अभिलेख में स्पष्ट किया गया है कि ऐतिहासिक राजा पृथ्वीराज को यहां पर दैवी राजा राम प्रस्तुत किया गया है। (भांडारकर 1912 : 17) उसके विरोधक यानी मध्य व पश्चिम एशिया के तुरुक्षों का राक्षसीकरण किया गया है।

विश्व के इतिहास में राम का वजूद नहीं था। 12 वीं सदी के मध्य से अगले दो सौ वर्ष तक चल रहे रामायण की राजनीतिक प्रक्रिया को यहां पर खोलकर बताते हैं। मैं केवल दो ही संस्कृत साहित्य का यहां पर सबूत पेश करने वाला हूँ। एक में जैनों की ऐतिहासिक जानकारी (प्रबंध) है तो दूसरे में इतिहास को आधार बनाकर लिखा गया एक बड़ा काव्य है।

हेमचंद्र के दुवयाश्रया काव्य, इस काव्य ग्रंथ में जैनों के आश्रयदाता और कवि चालुक्य सोलंकी राजा गुजरात के सिद्धराजा (सन् 1094-1143) की जानकारी है और

उसे रामचंद्र के अवतार (15-56-57) उस तरह हाल ही में प्रकाशित हुए बिलपंक प्रशस्ती पत्र के अनुसार उसके खुद के अभिलेख में उसने खुद का जिक्र विष्णु किया हुआ है। ''महापुरुष (विष्णु) ही वैसा पृथ्वी पर अवतार लेकर आया है।'' (EI, 40 : 27 FF vs 15) हेमचंद्र से संबंधित एक जिक्र में रुतुंग के प्रबंध चिंतामणी (सन् 1304) में जिक्र आया है। उसमें सिद्धराजा प्रवरण में ''मलेच्छों के आक्रमणों को रोकने का वर्णन'' इस नाम से किया है :-

''जब मलेच्छों के प्रमुख इकठ्ठा आ गए, तब राजा ने मध्य प्रदेश के कुछ गुप्तहेरों को बुला लिया और उन्हें गुप्त सूचना देकर भेज दिया। दूसरे दिन शाम को बारह बजे जोर से बहने वाले पलाडां की जोड़ी सिर पर जो सोने की ईंटें थी वह राजा को उपहार के तौर पर उसके चरणों पर रख दी - ''देवों की पूजा करते समय महान लंका के राजा विभिषण के दिमाग में ऐसा विचार आया कि उसने हमें राजगद्दी पर बिठाया, इसलिए उस रघुवंश के सितारे को यानी श्रीराम को कुछ तो भी उपहार देना चाहिए। तब अपने ज्ञान के बलबूते पर विभिषण को समझ में आ गया कि चालुक्य वंश का सितारा श्री सिद्धराजा के रुप में अपने मालिक राम ने अवतार लिया है। तब विभिषण के दिमाग में पहले सिद्धराजा को मिलने का विचार आया। लेकिन मिलने के लिए राजा अनुमति देंगे या नहीं? इसकी उन्हे शंका लग रही थी। तब मिलने की अनुमति लेने के लिए राजा के पास गया और कहा, राजा ने हमें आपके पास भेजा है। आपके दैवी मुख से महाशय महाराज संदेश दे' (राजा ने मिलने के लिए ना कर दिया और दोस्ती की पहचान के तौर गले के सोने का हार विभिषण को भेज दिया) और बाद में दोनों ने वापस जाने के लिए राजा से अनुमति मांगी। जब जरुरत पड़ेगा तब राजा ने हमें मिलने के लिए बुलाएं, ऐसा भी कहा। राजा की अनुमति मिलते ही वह दो राक्षस तुरुंग हवा में अदृश्य (गायब) हो गए। उसके बाद मलेंच्छ प्रमुख सतर्क हो गए, उनका हौसला खत्म हुआ और राजा की पूजा करने की उन्होंने राजा से अनुमति मांगी। उन्होंने राजा को बड़े-बड़े उपहार भेंट दिए फिर सिद्धराजा ने उन्हें जाने को कहा।'' 72 (जिविजय 1933 : 73)

येसतुंग के इस काल्पनिक काव्य में इतिहास की भी जानकारी मिलती है, उसका सिद्ध राजा पर लिखा गया चैप्टर अगले पद से समाप्त होता है-

''जैसा उच्च गुणों से युक्त राम दशरथ के घर में पैदा हुए वैसे ही जयसिंह सिद्धराजा के घर में पैदा हुए।'' (जिनविजय, 1933 : 55, VS, 98)

रामराज्य की संकल्पना पृथ्वी-विजय काव्य में पूर्णतः विकसित हो गई थी। यह ऐतिहासिक काव्य अजमेर के दरबार में रह चुके कश्मीरी कवि जयनाक (या विनायक पंडित) ने लिखा हुआ था। वह 1178 से 1193 के उस दौरान लिखा गया था, जब गुजरात के भीमदेव ने मुहम्मद बिन गोरी को हराया था (पृथ्वीराज विजय 11.9) और 1193 में जब मुहम्मद बिन गोरी ने पृथ्वीराज को हराया था।

(13 - विनायक पंडित की सारगंधर पद्धति (40.1254) में कहा गया है कि ''मुझे शिव की पूजा करने में बिलकुल कोई रस (इच्छा) नहीं है। कृष्ण की पूजा करना अच्छा नहीं लगता। शिव के पत्नी की पूजा करना अच्छा नहीं लगता और ब्रह्म का भी महत्त्व नहीं लगता। शत्रू से रक्षण करने वाला पृथ्वीराज हमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण लगता है और उनके पवित्र चिन्ह को चेहरे पर चिन्हित करके हम सुरक्षित रहते हैं। इसलिए मुझे उनके राजधानी के रास्ते की घास की पत्ती की भी पूजा करना गर्वनीय लगता है।' भवभूति के प्रारंभ का राम काव्य महाविरचित को- एक कवि नायक विनायक भट ने ही पूरा किया था, ऐसा कहा जाता है। (Ed. Todek mall, London, 1928 ms, 5.46)

पृथ्वीराज विजय काव्य में प्रथमतः रामायण के दृष्टिकोण से राजा का वर्णन किया गया है। उसके पहले का ऐसा ही एक लेखन यानी संध्याकर दिन का रामपाल चरित्र है। (इसके दो शतक पहले पाल राज्यकालीन रामायण पर आधारित ग्रंथ यानी गौडा अभिनंदा का रामचरित्र है। लेकिन उसका संबंध किसी भी राम के साथ नहीं जोड़ा गया है। रामपाल चरित्र का संबंध मध्य एशियाई से न होकर 11 वीं सदी के मध्यावधि में बंगाल के कैवर्त राजा भीमा के साथ है। लेकिन उसमें भीमा का राक्षसीकरण नहीं किया है। उसमें रामपाल और रामचंद्र के जीवन की तुलना नहीं की गई। इसके उलट जयनाक, पृथ्वीराज तृतीय के उपरोक्त काव्य पूर्णतः राम के साथ सुसंगत है। (14- राजशेखर के प्रबंध-कोसा (जिनविजय 1935 : 81-82) और पुरातत्व प्रबंध संग्रह। जिन विजय 1935 : 8-9) में एक 'विक्रमादित्य' की कथा बताई गई है जो खुद की 'अभिनव राम' के तौर पर घमंडी है, लेकिन रामशक्ति दिखाकर उसका गर्वहरण करता है।)

आरंभ में वाल्मिकी काव्य 'वेद की तरह सत्य' (com.on.1.5) की स्तुति करके जयनाक कहता है कि ''मेरे हृदय में जो निवास करता है उसी को मेरा काव्य सुनना

चाहिए, जिसके शरीर में राम अवतरित हुआ हो।'' (यानी जिसका राम के तौर पर पुनर्जन्म हुआ हो- जंगमा यो राममयम् सरियम श्रोता सा इवास्तु हदी स्थितोमी, 1.33) इससे यह काव्य ऐतिहासिक लगता है। पृथ्वीराज का विष्णु या राम अवतार के पहले अजयमेरु भाग खासकर पुष्कर तीर्थ को मलेच्छों ने भ्रष्ट किया था, ऐसा वर्णन है। ब्रह्म, विष्णु को पृथ्वी पर अवतार लेने को कहता है। इस कलियुग में शिव अनावश्यक हुआ है; उसका नंदी (धर्म) वह अब एक ही पैर पर खड़ा है। (1.44) संन्यस्त बुद्ध अवतार यह शांति के मार्ग को लगा हुआ है। (1.45), यज्ञ में बलि न मिलने के कारण इंद्र भी कमजोर हुआ है। (1.48) फिर भी 'राम के जन्म से प्रफुल्लित हुए सूर्य का प्रकाश बुद्ध के जन्म से कम हुआ और वह अपने वंश पर ही शंका करने लगा है।' (1.48)। आगे इस काव्य में रामजन्म की सुप्रसिद्ध तीर्थों की क्या अवस्था हुई है? इसका वर्णन ब्रह्म इस तरह से करते हैं -''विष्णु तू हिरण का मित्र बन गया, लेकिन मेरा निवास पुष्कर तीर्थ मात्र मातंग के (अछूत यानी तुर्क) डर से भयग्रस्त है। विश्व की निर्मिती करने के बाद उस स्थान पर मैं आखिरी अर्ध्य दिया था। उस जगह मंदिरों और ब्राह्मण स्थलों का विनाश करके मलेच्छों का सैन्य अब इस तीर्थकुंड में दाखिल हो रहे हैं। जिस जगह इंद्र पत्नी शचित स्वर्ग के पंक्षियों को स्नान नहीं करने देती थी अब उस जगह अत्यंत नीच लोगों की मासिक पाली हुई महिला भी स्नान करती हैं। रेगिस्तान में सफर करते हुए धूप में यह लोग खुले में ऊंट की गर्दनों को काटकर उसके पेट का पानी पिते हैं, लेकिन उनकी प्यास अभी तक खत्म नहीं हुई और वे यहां का अमृततुल्य पानी पी रहे हैं।

- (1.49-50, 53-54) पृथ्वी जिन विजय काव्य के 6 नंबर के पृष्ठ में पृथ्वीराजा की वंशावल दी गई है। राजा अर्णोराजा की दो बिबियाँ थीं। उसमें से एक चालुक्य/सोलंकी राजा सिद्धराजा जयसिंह की लड़की दी थी। उसका बेटा सोमेश्वर ने एक बच्चे को जन्म दिया था। भविष्य वेत्ताओं ने बताया था कि 'वह राम का अवतार बनेगा।' 'तुम्हारा पुत्र राम के रुप में पैदा होगा और अधूरा कार्य पूरा करेगा' (6.35) वह पुत्र 'रावण का राज होकर कलियुग का पृथ्वीपति के रुप में पैदा होगा।' (7.6) ''विष्णु का रुप मनुष्य रुप में पैदा हुआ है।'' (8.10) ''वह राम का अवतार है।'' (रामावतार सैना पृथ्वीराजस्य 8-62), उसके मंत्री कदंबवसा और भवनैकामल्ल हनुमान और गरुड़ के अवतार में पैदा हुए हैं (9.38-39, 88-89) पृथ्वीराज राजा बनने के बाद 'कलियुग में भी पृथ्वी संपन्नता और खुशहाली से भर गई।' (9.35) पृष्ठ

10 में आसपास के शत्रुओं का नाश करने के बाद राजधानी में लौटने पर पृथ्वीराज पहली बार मुहम्मद बिन गोरी के बारे में सुनते हैं।

''गोरी दुषित भोजन खाने वाले गाय को (गो) शत्रू (अरि) है, इसलिए उसका नाम गोरी पड़ा'' (10.38-42) गो-अरि (VS. 40)

गोरी का गुजरात में पराभव होने के पश्चात (11.9) पृथ्वीराज उसके बालकनी में जाता है (भवभूति के राम की तरह) और दैवी राजा राम की तरह वह अपने पहले की जीवन का वर्णन करता है। (11.24-11.104)

इतिहास के खिलाफ लेखन

मुस्लिम आक्रमणों के बाद 12 वीं सदी के आगे रामायण का राजनीतिक व्यवहार में परिस्थिति का चित्रण करने के लिए इस्तेमाल किया गया।

सन् 1008 में शाही जयपाल के नेतृत्व में उज्जैन, ग्वालियर, कलांजरा, दिल्ली और अजमेर के राजाओं की गुट मुहम्मद गजनी के खिलाफ इकठ्ठा होकर लड़े, लेकिन गजनी ने उन सभी को पराभूत किया। ... सन 1030 में मुहम्मद गजनी मर गया, लेकिन उसकी मौत के बाद भी गजनी के सैन्य ने भारत पर आक्रमण करना जारी रखा। उसकी प्रतिक्रिया से गहड़वाल ने अयोध्या में एक बड़ा वैष्णव तीर्थ में रुपांतरित करना शुरु किया। यह कार्यक्रम अगले एक सदी तक चलता रहा। अगली तीन पीढ़ी के बाद कलांजरा के दक्षिण के त्रिपुरी कलचुरी ने प्रथमतः राम का स्वतंत्र मंदिर बनाना आरंभ किया और इसपर उनका राजा जयसिन्हा ने सन् 1161 में खुश होकर ऐसे उद्‌गार निकाले ''ऐसा करने के कारण तुरुक्ष की शक्ति कम हुई।'' (EI 21-95- CII 4.327 : जयसिन्हा का पुत्र विजयसिन्हा ने भी ऐसा ही दावा 1180 में किया था- CII 4 : 649 और n.3)

मुहम्मद गोरी से लेकर अगली 12 वीं सदी के अंत तक आक्रमण चल रहे थे। गुजरात के जयसिंहा सिद्धराज ने गजनी के सेनापति बहराम शाह का पराभव किया था और उसका जिक्र पर्शियन साहित्य में सिद्ध राजा के उपरोक्त प्रबंध में है। इससे स्पष्ट होता है कि (Mujmdar 1956 : 495-98) साकंभरी के चहमान वंश का समकालीन विराहराजा IV (सन् VI 52-67) हमेशा तुर्को के साथ लड़ रहा था। '11 वें देव ने आर्यवृत्त जन वापस वैभव प्राप्त करवाया और मलेच्छ को भगाया था।' इसमें

कोई शंका नहीं की राजा विश्व का प्रथम पुरुष होता है। ''ऐसा उसका वर्णन किया गया है। (IA . 19 : 218) सन् 1168 में उसके वंशज पृथ्वीराज द्वितीय ने घन्सी का किला जिता था। कुछ ही दशकों में गजनी के सैन्य ने गुजरात में हमला किया। भीमा द्वितीय (या उसका भाई मुलाराजा द्वितीय) ने उसके साथ युद्ध किया और 1178 में मुहम्मद बिन गोरी को पराजित किया। लेकिन बाद में मुहम्मद का सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1195-96 में उसको पराजय किया। भीमा द्वितीय लवण प्रसाद का एक साधारण शासक था और लवण प्रसाद ने कुतुबुद्दीन ऐबक को गुजरात से भगाया था (EI I : 22-23) आगे पूर्व के पास मुहम्मद का फिर से पराजय हुआ। लेकिन अगले ही वर्ष दुबारा आकर मुहम्मद ने पृथ्वीराज और उसके 150 सहकारी शासकों को पराजय किया। आगे दो वर्ष में गहड़वाल राजा जयचंद्र को तुर्को ने युद्ध में मार दिया और बनारस लूट किया और अगले दो वर्ष में कनौज लूटा। 1202 में बख्तियार खिलजी ने बिहार में प्रवेश किया।

(19. हम्मिरा यानी सबुक्तगीन- et.Ec. I. 217 ft) महोबा के चंदेल अभिलेख में कहा है कि ''आगे चंदेला में शक्तिशाली राजा पैदा हुआ। उसने पृथ्वी पर बोझ बने हुए हम्मीरा को मार डाला)

20. जयसिन्हा से पराजित हुए गजनी बहराम शाह का सेनापति बहलिम था। (et. Mujamdar 1956 : 408-9) जयसिन्हा का एक समकालीन परमार सामंत धारा वर्णा ने गोरी के सैन्य को सन् 1178 को माऊंट आकू पर्वत पर पराजित किया था। उसकी याद में 1230 में एक अभिलेख ऐसा है... ''स्वभाविक है वह दशरथ का पुत्र (राम) है, जो शत्रुओं का नाश करने के लिए पृथ्वी पर दोबारा जन्म लिया है। (EI 8 : 211 - V 537)

21. शाकंबरी के विग्रहराजा IV के ग्रंथालय में वाल्मिकी रामायण की एक मूल्यवान प्रति मिली, वह भी बोन के ग्रंथालय में सुरक्षित है। (Kartc 1954 : 13)

रावी नदी के आसाम तक के पूरे उत्तर भारत में 1206 के आसपास तुर्को के अधिपत्य के नीचे आया था। शक संवत् 1127 (सन् 1205) में चैत्र महीने के 15 वें दिन तुरक्ष कामरुप और इधर के राजाओं को हराया गया। (IHa 3 : 843; IIH 15 :

175)

13 वीं सदी के आरंभ में जलालुद्दीन के फिर से दिल्ली का सुलतान बनने के बाद उसका भतीजा अल्लाउद्दीन सुलतान बना। कुछ सालों बाद (यानी 1296 से 1306 में) उसने वर्तमान राजस्थान के अनहिलमाड़ा के चालुक्य/सोलंकर राजा के कर्ण द्वितीय का पराभव किया और उसने देवगिरी के यादव को भी हराया, जिसने रामटेक में राम मंदिर निर्माण का कार्य शुरु किया था। अल्लाउद्दीन का सेनापति मलिक कपूर ने 1302 में वारंगल के काफनियां पर हमला किया। 1309 में आखिर में वहां के राजा प्रतापरुद्र का पराजय किया। इस प्रतापरुद्र ने ही आंध्र प्रदेश में सबसे प्रथम राम मंदिर बनाने का कार्य आरंभ किया था और उसके दरबार में ही पहला रामायण संस्कृत में लिखा गया था। (साकल्यमल्ल ने उदरराघा का संस्कृत काव्य लिखा है 1990 IVFT) इसके बाद दक्षिण दिल्ली के सुलतान ने अपना प्रशासक नियुक्त किया और प्रतिक्रिया के तौर पर विजयनगर की राजधानी के मध्य भाग में राम मंदिर खड़ा किया।

इतिहास की पुनरावृत्ति

मुझे ऐसा लगता है कि 12 वीं सदी की राजनीतिक परिस्थिति ऐतिहासिक प्रक्रिया से निर्माण हुई थी। आधुनिक भारत के लोगों को रामायण के पात्र पूर्णतः ऐतिहासिक लग रहे थे। जैसे कि अचेलिस काल्पनिक पात्र एलेक्जांड्रीया के लोगों को लगता था। या बुट काल्पनिक पात्र प्राचीन ब्रिटेन के लोगों को लगता था। (16 वीं सदी के टीकाकार महेश्वर तिर्थ (ad. 2.41. 10 v 418.) कहता है कि ''वाल्मिकी रामायण के जो कुछ प्रसंग दिखाए गए हैं वे वास्तव में इतिहास में घटित हुई हैं।'' इतना ही नहीं, मध्ययुगीन समय के राजस्थान, गुजरात और दक्षिण भारत के राजाओं के सामने नाटक पेश किए जाते थे। इसी तरह के काव्यों पर आधारित नाटक सन् 1784 के फ्रांस राज्य में क्रांति करने वाले क्रांतिकारकों के सामने उनका धैर्य बढ़ाने के लिए कॅटो आर अन्य रोमन गणराज्य की नाटक पेश की जाती थी। इतिहास की नकल कैसे की जाती है? इसपर मार्क्स ने 'The Eighteenth Bremire' में ऐसा कहा है कि- ''पिछले मृत पुरखों का बोझ उनके दिमाग में भरा हुआ होता है और पिछले लोगों के नाम, उनके युद्ध कौशल्य, लिबास, व्यवहार की नकल यह लोग वर्तमान में अपने जीवन में उसी तरह उतारते हैं?'' इतिहास के दृष्टिकोण से वर्तमान को आकार देने के लिए वैसा

दिखाने का वह प्रयास है, ऐसा मुझे लगता है। मार्क्स आगे कहते हैं कि- ''मृतों को जिंदा करके फ्रांस की क्रांति करने के लिए वहां के तज्ञों ने इतिहास के चश्मे से वर्तमान के संघर्ष को प्रभावित करने, क्रांति का उद्देश्य साध्य करने का ... और उसके द्वारा क्रांति की चेतना उग्र करने का फ्रान्स में प्रयास किया हैं।'' (Marks 1963 : 15, 17)

... इस पर जीन पॉल सार्द्र ने अत्यंत सटीक निरीक्षण दर्ज किया है। मार्क्स की ही तरह उन्होंने भी व्यक्ति पूजक नाटक और 'मानव कृति से व्यक्त होने वाले नये विचार' पर अपनी राय बताई है। 1789 के फ्रेंच क्रांति का विरोध करने के लिए शोषकों (bourgeois) ने 'इतिहास नकारने के लिए राजनीति के जोर पर नीतिमत्ता स्थापित करने के लिए कॅटो बनने का नाटक शुरु किया है'। इस तरह पोषक अपने कृति को मिथक कथाओं का आधार लेकर परिस्थितियों से बाहर आने का प्रयास करते हैं।

(Sartve 1963 : 45 - 46, Ct. Joneson. 1971 : 22 ff)

भारत में शासक जाति ने भी राम का प्रतीक इसी तरह से इस्तेमाल किया था, ऐसा मुझे लगता है। उसके लिए दो उदाहरण नीचे दे रहा हूँ-

... पहले गुप्तों ने मौर्य या कुषाणों की नकल करने का प्रयास किया तो 10 वीं सदी में कन्नड कवि ने उसके राजा को महाभारत के पात्रों के साथ दिखाने का प्रयास किया।

... मुझे यहां पर यही पूछना है कि 12 वीं से 14 वीं सदी तक राजनीतिक परिस्थिति पेश करने के लिए केवल रामायण पर एक ही मिथक कथा का इस्तेमाल किया गया होगा? दूसरे काव्य भी इस परिस्थिति को दर्शाने के लिए उपलब्ध थे (जैसे चम्पा और रत्ना कवि ने उनके समर्थ राजाओं को महाभारत के भीम और अर्जुन कहकर अपने काव्य में व्यक्त किए) लेकिन मलेच्छ अरबो के आक्रमणों का जवाब देने के लिए वैष्णवों ने एक पात्र परिस्थितिनुसार तैयार किया था। वह पात्र कल्कि पात्र है। 7 वें सदी से वैष्णवों ने अवतार श्रृंखला में कल्कि अवतार दिखाई देता है। 7 वें सदी के मध्यावधि में एक अनामिक कवि ने अजमेर के दर में ऐसा वर्णन किया है कि 'कल्कि विष्णु का एक अवतार है जो घोड़े की पीठ पर बैठकर आएगा। कलियुग को नष्ट करने वाली तलवार उसके हाथ में होगी और वह गाय और बैल को एकसाथ लाकर पिछले कृत युग को दुबारा लाएगा और वह मलेच्छों का संहार करेगा।' (EI 29 : 181)

काल्पनिक हथियार

रामायण के कथा से कुछ खास पूरक प्रसंग राजनीतिक कल्पना करने के लिए मिलते हैं, जिसमें अनेक राजनीतिक मिथक बिखरी हुई रुप में हमें दिखाई देती है। मुझे लगता है कि रामायण कथा विभिन्न राजनीतिक कथाओं का 'दैवतीकरण' और 'दानवीकरण' दो भागों में विभाजित होते हैं। अनेक भारतीय कथाओं में राजनीति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। लेकिन आधुनिक भारत के लिए रामायण की कथा एकदम फिट बैठती है। इस कथा में राजा का राम के रुप में दैवतीकरण किया गया है जो राजा को अच्छा लगता है। इसके उलटा राजा की राजनीतिक कक्षा के बाहर शत्रुओं का रामायण में वर्णित दानवीकरण किया गया है। रामायण के दैवीकरण की संकल्पना का विचार यह बताता है कि मानवी जीवन दैवी पद्धति से नियमित किया गया है और उसके अनुरुप ही वह चलेगा। दूसरी संकल्पना यह है कि जो लोग दैवी व्यवस्था बिगाड़ने का प्रयास करेंगे, वे मनुष्य न होकर राक्षस हैं और वे देवता के शत्रू हैं।

... काव्य रचयिताओं के सामने सवाल राजनीतिक शक्ति का था। वह वजूद में रहेगा और आने वाली पीढ़ियों को कैसा दिया जाए। भारत युद्ध शुरु होने के पहले महाभारत ने यह मुद्दा कैसे हल किया है?

''मनुष्य राजनीतिक शक्ति का गुलाम है, लेकिन राजनीतिक शक्ति मात्र किसी व्यक्ति की गुलाम नहीं होती।'' (6:41, 36, 51, 61, 77) ऐसा युद्ध होने के आरंभ में ही महाभारत में कहा गया है। इसलिए महाभारत ने यह मुद्दा भाईयों की हत्या से हल किया है, जिसमें केवल पराजित ही मारे नहीं जाते, बल्कि विजेता भी मारे जाते हैं। इंद्रप्रस्थ को युद्ध करके वापस आने के बाद युधिष्ठिर अपने भाईयों को कहते हैं ''हम सब जिंदापन में ही मर गए हैं।'' (15.46.8) महाभारत में कथा के सुखद अंत के साथ-साथ उसके पात्रों की दुःख व्यथा मनस्थिति बारबार महाभारत में सादर की है। यह परिस्थिति मुख्यतः धार्मिक और राजनीतिक तत्वों को जड़ से ही विभक्त करने के कारण महाभारत में निर्माण हुई है। (महाभारत में युधिष्ठिर धर्म का पुत्र है जो श्रेष्ठतर नैतिकता का प्रतिनिधित्व करता है तो अर्जुन इंद्र का पुत्र है जो धर्म के नीचे राजधर्म का (क्षत्रिय धर्म का) प्रतिनिधित्व करता है। धर्म और राजधर्म इन्हें इकठ्ठा लाने के लिए ही महाभारत की असमर्थता देखकर 9 वीं सदी के कश्मीरी कवि आनंदवर्धन

ने यह मत व्यक्त किया है कि अत्यंत विस्तृत वैराग्य यही महाभारत की मुख्य शिक्षा है। वह महान कवि कहता है- ''जितनी व्यवस्था लड़खड़ाती है, उतना दुःख बढ़ता है और उसमें उतने ही बड़े पैमाने पर समाज में अलौकिक वैराग्य अपने आप पैदा होते हैं।'' (महाभारत : 12.16 78.4) (ध्वन्यलोक 4.5) महाभारत के दुःखद कथानक को रामायण ने जवाब दिया है। जो नये सिरे की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पेश की है, जिसमें छोटे भाई को राजा बनाने का अधिकार खत्म किया गया है। इससे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राजा को धार्मिक वलय देकर उसे संन्यस्त दिखाया गया है। सारांश, प्राचीन भारत के राजनीतिक गुत्थी वाल्मिकी ने 'दैवी राजा' (Divine King) के रूप में सुलझाई है।

List of Abbreviations

BI Bibliotheca Indica
BORI Bhandarkar Oriental Research Institute
BSOAS Bulletin of the School of Oriental and African Studies
CII Corpus Inscriptionum Indicarum
CI Critical Inquiry
EI Epigraphia Indica
EPW Economic and Political Weekly
HIG Historical Inscriptions ofGujarat
IA Indian Antiquary
IHQ Indian Historical Quarterly
JAOS Journal of the American Oriental Society
JASB Journal of the Asiatic Society of Bengal
JBORS Journal of the Bihar and Orissa Research Society
JBRS Journal of the Bihar Research Society
JIH Journal of Indian History
JRAS Journal of the Royal Asiatic Society
JSAS Journal of South Asian Studies
NLR New Left Review
SAS South Asian Studies

Sil South Indian Inscriptions

SS Social Scientist

WZKSA Wiener Zeitschrift fur die Kunde Slidasiens

List of References

AHMAD, Aziz. 1963. "Epic and Counter-Epic in Medieval India." JAOS 83, 470-76.

This content downloaded from 128.112.203.157 on Thu, 21 Aug 2014 21:49:57 UTC All use subject to JSTOR Terms and Conditions 294 SHELDON POLLOCK.

ANDHARE, SHRIDHAR. 1987. Chronology of Mewar Paintings. Delhi: Agam Kala Prakashan.

ATHAR ALI, M. 1990. "Encounter and Effloresence: Genesis of the Medieval Civilization." SS 20-21, 13-28.

BAKKER, HANS. 1986. Ayodhya. Gronigen: Egbert Forsten.

. 1987. "Reflections on the Evolution of Rama Devotion in the Light of Textual and Archaeological Evidence." WZKSA 31, 9-42.

. 1989a. "The Antiquities of Ramtek Hill, Maharashtra." SAS 5, 79-102.

. 1989b. "The Ramtek Inscriptions." BSOAS 52, 467-96.

BARNETT, ANTHONY. 1990. "'Cambodia Will Never Disappear.'" NLR 180, 101-25.

BASAK, RADHAGOVINDA, ed. 1969. Rdma[pdla1carita, rev. ed. Calcutta: Asiatic Society of Bengal.

BELVALKAR, S. K., ed. 1914ff. PrthvFraja Vijaya. Calcutta: Asiatic Society. Bibliotheca Indica.

BHANDARKAR, R. G. 1912. "Some Unpublished Inscriptions, 3. Hansi Stone Inscription of Prthvi`rJa {lVikrama-}Samvat 1224." IA 1912, 17ff.

1913. Vaisnavism, Saivism, and Minor Religious Systems. Repr. ed. Varanasi: Indological Bookhouse, 1965.

BHATIA, PRATIPAL. 1970. The Paramdras. New Delhi: Manshiram Manoharlal.

BHATNAGAR, V. S., trans. 1991. Kdnhadadeprabandha. New Delhi: Aditya Prakashan.

BOSWORTH, CLIFFORD EDMUND. 1977. The Later Ghaznavids: Splendour and Decay. New York: Columbia University Press.

A Collection of Prakrit and Sanskrit Inscriptions [of Kattywar, etc.]. Published by the Bhavnagar Archaeological Department under the Auspices of the Maharaja of Bhavnagar. Bhavnagar: State Printing Press. No date [ca. 18961, no editor [introduction by Peter Peterson].

COUSENS, HENRY. 1897. List of Antiquarian Remains in the Central Provinces and Berar. Calcutta: Archaeological Survey of India.

DAGENS, BRUNO. 1984. Entre Alampur et Sris:ailam: Recherches archeologiques en Andhra Pradesh. Vol. I. Pondichery: Institut frangais d'Indologie.

DALAL, CHIMANLAL D., ed. 1920. Hammiramadamardana of Jayasimhasuri. Baroda: Central Library. Gaekward's Oriental Series 10.

DALLAPICCOLA, ANNA LIBERA. 1992. The Rdmacandra Temple. New Delhi: American Institute of Indian Studies.

DASGUPTA, S. N., and S. K. DE. 1962. History of Sanskrit Literature, Classical Period, Vol. I. Calcutta: University of Calcutta.

DEYELL, JOHN S. 1990. Living Without Silver: The Monetary History of Early Medieval North India. Delhi: Oxford University Press.

DISKELKAR D. B. [sic]. 1960. "Qualifications and Subjects of Study of Inscriptional Poets. " JIH 38.2, 553ff.

ENGINEER, ALI ASGHAR. 1991a. "The Bloody Trail: Ramjanmabhoomi and Communal Violence in UP." EPW, 155-59.

. 1991b. "Remaking Muslim Identity." EPW, 1036-38.

FRITZ, JOHN. 1985. "Was Vijayanagar a 'Cosmic City?'" In A.-L. Dallapiccola and S. Zingel-Ave Lallement, eds., Vijayanagar-City and

Empire. Wiesbaden:

Steiner. 1986. "Vijayanagar: Authority and Meaning of a South Indian Imperial

Capital." American Anthropologist 88. 1.

This content downloaded from 128.112.203.157 on Thu, 21 Aug 2014 21:49:57 UTC

All use subject to JSTOR Terms and Conditions

FRITZ, JOHN M., et al. 1984a. Where Kings and Gods Meet: The Royal Centre at Vijayanagara. Tucson: University of Arizona Press.

. 1984b. The Royal Centre at Vijayanagara: Preliminary Report. Melbourne: University of Melbourne, Vijayanagara Research Centre.

GADRE, A. S. N.d. (ca. 1943). Important Inscriptionsfrom the Baroda State. Baroda: N. p.

GOETZ, HERMANN. 1965-66. "Friihe Darstellungen von Moslems in der Hindu-Kunst." Oriens 18-19, 193-99.

GOPAL, SARVAPALLI, et al. Nd. "The Political Abuse of History: Babri Masjid-Rama Janmabhumi Dispute." New Delhi: Center for Historical Studies, Jawaharlal Nehru University. Reprinted in SS 18 (1990), 76-81.

GRABAR, OLEG, and SHEILA BLAIR. 1980. Epic Images and Contemporary History: The Illustrations of the Great Mongol Shahnama. Chicago: University of Chicago Press.

HABIBULLAH, A. B. M. 1961. The Foundation of Muslim Rule in India. Allahabad: Central Book Depot.

HARTH, DIETRICH, and JAN ASSMANN. 1992. Revolution und Mythos. Frankfurt/Main: Fischer.

HESS, LINDA. 1992. "'I Swear to Rid the Earth of Demons': Uses of the Tulsi Ramayanand Ram-bhakti in the Ram-Janma-bhumi Movement." Paper presented at the American Academy of Religion annual meeting.

JAMESON, FREDRIC. 1971. Marxism and Form. Princeton: Princeton University Press.

JAMKHEDKAR, A. P. 1986. "Ancient Structures." Marg 37.1, pp. 25-36.

JINAVIJAYA, MUNI, ed. 1933. Prabandhacintamani. Santiniketan: Singhi Jaina Jnanapitha., ed. 1935. Prabandhakosa. Santiniketan: Singhi Jain Jnanapitha., ed. 1936. Purdtanaprabandhasa,mgraha. Calcutta: Singhi Jain Jnanapitha.

KANE, P. V. 1962-75. History of Dharmasastra. Second edition Poona: BORI.

KATRE, S. M. 1954. Introduction to Indian Textual Criticism. Poona: Deccan College.

KIELHORN, F., ed. 1901. "Bruchstiicke indischer Schauspiele in Inschriften zu

Ajmer." Festschrift zur Feier des hundertfiinfzigaihrigen Bestehens der Konigl. Gesellschaft der Wissenschaften zu Gottingen. Berlin: Abhandlungen der phil.-hist. Klasse.

KRISHNAMACHARIAR, R. V., ed. 1907. Acyutarydbhyuadaya. Srirangam: Sri Vani Vilas Press.

KULKE, HERMANN, and DIETMAR ROTHERMUND. 1986. A History of India.Totowa, New Jersey: Barnes and Noble.

LACOUE-LABARTHE, PHILIPPE, and JEAN-Luc NANCY. 1990. "The Nazi Myth." CI 16.2.

LIENHARD, SIEGFRIED. 1984. A History of Classical Poetry. Wiesbaden: Harrassowitz.

LOSTY, J. P. 1978. "TheJagat Singh VWlmfki Ramaya,na Manuscript from Udaipur."

Bulletin of the International Association of the Vrindavan Research Institute, No. 4, 3-14.

LUTGENDORF, PHILIP. 1991. The Life of a Text. Tulsidas's

Raimcaritmdnas in Performance. Berkeley: University of California Press.

LYOTARD, JEAN-FRANCOIS. 1973. Des dispositifs pulsionnels. Paris: UGE.

MAJUMDAR, ASOKE KUMAR. 1956. Chaulukyas of Gujarat. Bombay: Bharatiya Vidya Bhavan.

MAJUMDAR, N. G., ed. 1929. Inscriptions ofBengal, Vol. 3. Rajshahi: Varendra Research Society.

MARX, KARL. 1963. The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte. New York: International Publishers.

This content downloaded from 128.112.203.157 on Thu, 21 Aug 2014 21:49:57 UTC All use subject to JSTOR Terms and Conditions

MIRASHI, V. V. 1955. Inscriptions of the Kalchuri-Chedi Era. Ootacamund. CII, Vol. 4. 1977.

Inscriptions ofthe Silahdras. CII, Vol. 6.

NAGARAJARAo, M. S., ed. 1978. Calukyas of Badami Bangalore: Mythic Society.

NAGASWAMY, R. 1980. "Sri Ramayana in Tamilnadu in Art, Thought and Literature." In Ramayana Traditions in Asia. Delhi: Sahitya Akademi.

1983. Masterpieces of Early South Indian Bronzes. New Delhi: National Museum.

OJHA, GAURISHANKAR HIRACHAND, and CHANDRADHAR SHARMA GULERI, eds. The PrithvFrdjavijaya of Jayanaka. Ajmer: Vedic Yantralaya, 1941.

PAL, PRATAPADITYA. 1986-87. Indian Sculpture. Los Angeles: Los Angeles County Museum of Art.

PATHAK, V. S. 1966. Ancient Historians of India: A Study in Historical Biographies. New York: Asia Publishing House.

POLLOCK, SHELDON. 1986. The Ramaya,na of ValmFki, an Epic of Ancient India, Vol. 2: Ayodhydkdnda. Princeton: Princeton University Press. 1991. The Ramaya,na of VdlmFki, an Epic of Ancient India, Vol. 3.

Aranyaka,n,da. Princeton: Princeton University Press.

PRABHA, CHANDRA. 1976. Historical Mahdkdvyas in Sanskrit. New Delhi: Shri Bharat Bharati.

PRASAD, PUSHPA. 1990. Sanskrit Inscriptions ofthe Delhi Sultanate. Delhi: Oxford University Press.

PURI, B. N. 1986. The History of the Gurjara-Pratihdras. Second revised edition. Delhi: Munshiram Manoharlal.

RAJENDRA PRASAD, B. 1980. Art of South India-Andhra Pradesh. Delhi: Sundeep.

RAMDAS. 1985. Srfrdmdasdimce Samagra Gra,mtha. Pune: Varda, 1985.

RAMESH, K., ed. 1984. Inscriptions of the Western Gangas. Delhi: Agam Prakasham.

RAO, V. NARAYANA. 1991. "Ramayana as Contested Reality: Protest Ra-mayanas in Telugu." Paper presented at the International Conference, "Ramayana: Texts and Traditions," U. of Hyderabad.

RICHARDS, J. F. 1974. "The Islamic Frontier in the East: Expansion into South Asia." JSAS 4, 91-109.

RICHMAN, PAULA, ed. 1991. Many Ramdya,nas. Berkeley: University of California Press.

SACHAU, EDWARD, trans. 1910. The Chronology of Ancient Nations (The Atharal-baqlyah of al-Biruni). London: Kegan Paul.

SANDESARA, B. J. and PUNYAVIJAYA, eds. Ulloghardghava of Somesivara. 1961. Baroda: Oriental Institute.

SANFORD, DAVID THERON. 1974. "Early Temples Bearing Ramayana Relief Cycles in the Chola Area: A Comparative Study." Unpublished diss., UCLA.

SARDA, HAR BILAS. 1913. "The Prithviraja Vijaya." JRAS 1913,

259ff.

SARDESAI, G. S., ed. N.d. [19271. Shivaji Souvenir: Tercentenary Celebration, Bombay: 3 May, 1927. Bombay: Keshav Bhikaji Dhawale.

SARTRE, JEAN-PAUL. 1963. Search For a Method. New York: Knopf.

SHARMA, DASHARATHA. 1975. Early Chauhdn Dynasties, Second revised edition. Delhi: Motilal Banarsidass.

SHARMA, R. S. 1990. "Communalism and India's Past." SS 18, 10.

SIMHA, B. P. 1968. "Representation of Ramayanic Scenes on an Old Temple Wall at Aphsad. " JBRS 54.

SIRCAR, D. C. 1939. The Successors of the Sdtavcghanas inLower Deccan. Calcutta: University of Calcutta.

This content downloaded from 128.112.203.157 on Thu, 21 Aug 2014 21:49:57 UTC All use subject to JSTOR Terms and Conditions

RAMAYANA AND POLITICAL IMAGINATION IN INDIA 297. 1965. Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization, Vol. 1.

Second edition. Calcutta: U. of Calcutta. 1980. "Ramayana Traditions in Asia. Delhi:Sahitya Akademi, 322ff. 1983. Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization, Vol. 2.

Delhi: Motilal Banarsidass. SIVARAMAMURTI, C. 1980. "The Ramayana in Indian Sculpture." In Rdma-yana Traditions in Asia. Delhi: Sahitya Akademi.

SMITH, W. L. 1988. Rdmayana Traditions in Eastern India. Stockholm: University of Stockholm, Department of Indology.

STEIN, BURTON. 1980. Peasant State and Society in Medieval South India. Delhi: Oxford University Press.

TARLING, NICHOLAS. 1992. The Cambridge History of Southeast Asia, Volume One. From Early Times to c. 1800. Cambridge, Eng.: Cambridge University Press.

TOD, JAMES. 1884. Annals and Antiquities of Rajasthan. Calcutta: Rajasthan Press.

TULPULE, S. G. 1979. Classical Marathi Literature. Wiesbaden: Harrassowitz.

VAUDEVILLE, CHARLOTTE. 1974. KabFr, Vol. I. Oxford: Clarendon Press.

VENKATACHARYA, T. 1990. The Uddrardghava of ?dkalyamalla. Madras: Adyar Library and Research Center.

VERMA, ONKAR PRASAD. 1973. A Survey of Hemadpanti Temples in Maharashtra.Nagpur: Nagpur University.

VIDAL-NAQUET, PIERRE. 1990. La Democratie grecque vue d'ailleurs. Paris: Flammarion.

[Vishva Hindu Parishad}. 1991. History versus Casuistry: Evidence of the Ramajanmabhoomi Mandir presented by the Vishva Hindu Parishad to the Government of India in December-January 1990-91. New Delhi: Voice of India.

VOGEL, J. P. 1906-8. Archaeological Survey of India Annual Report. Archaeological Survey of India.

WILLIAMS, JOANNA. 1982. The Art of Gupta India. Princeton: Princeton University Press.

WINK, ANDRE. 1990ff. Al-Hind, The Making of the Indo-Islamic World, Vol. 1 Leiden-New York: E. J. Brill.

ZVELEBIL, KAMIL V. 1974. Tamil Literature. Wiesbaden: Harrassowitz

परिशिष्ट–6

तीर्थयात्रा का स्थल के रुप में अयोध्या का विकास– हॅन्स बेकर

1. अयोध्या का प्राचीन इतिहास–

प्राचीन शहर का विकास तीर्थयात्रा के महत्त्वपूर्ण स्थल के रुप में अयोध्या का विकास कैसे हुआ? इसकी जानकारी प्राप्त करने का इस शोध में प्रयास किया गया है।[1] अयोध्या (उत्तर प्रदेश) प्राचीन गौरवशाली नगर है और भारत के मुख्य सात तीर्थस्थलों में से एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जहां पर मनुष्य को मुक्ति मिलती है।[1] लेकिन फिर भी यह सत्य है इस बात को सिद्ध नहीं कर सकता है कि प्राचीन काल में भी इसी उद्देश्य को लेकर यह नगरी प्रसिद्ध थी।

ब्राह्मणी साहित्य में जिस नगर को अयोध्या कहा जाता है उसे बौद्ध साहित्य में साकेत कहा जाता है[3] यह स्थान प्राचीनकालीन विकसित भारत का ईसा पूर्व 'शताब्दी में एक महत्त्वपूर्ण व्यापारी केंद्र था। पाली त्रिपिटक में भारत के प्राचीन 6 नगरों में से इसका जिक्र आता है।[4] बुद्ध के समय इस नगर पर प्रेसनजीत का राज था। (संस्कृत में प्रसेनजीत सूर्यवंशी राजा था) यह राजा श्रावस्ती में रहता था और श्रावस्ती साकेत के मुख्य रास्ते से जुड़ी हुई थी।[5]

धम्मपद की टीका में यह बताया गया है कि राजा प्रसेजनीत के कार्यकाल में अयोध्या–साकेत में एक उत्सव बिभित्स स्वरुप में मनाया जाता था, जिसे विवातन खत्ता या प्रजा दिन कहा जाता था।[6] उच्चकुलीन घरों की अविवाहित लड़कियाँ इस दिन कम कपड़ो में सरयू नदी के तीर (तट) पर पैदल चलती थी।[7] जिन्हें देखकर सामने वाली रेखा में खड़े क्षत्रिय नवयुवक अपने पसंद की लड़की के गले में अपनी प्रिय पत्नी के रुप में पुष्पहार फेंकते थे।

जैन परंपरा में भी अयोध्या साकेत को महत्त्वपूर्ण नगर समझा गया है। सात तीर्थकारों का यह जन्मस्थल माना गया है और जैन धर्मग्रंथ जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति में इसे आर्यों की भूमि का केंद्र बिंदू समझा गया है।[8] (यहां आर्य शब्द बहुजनों के लिए ही इस्तेमाल किया है)

जैन और बौद्ध इन दो परंपराओं के अध्ययन से यह निश्चित नहीं होता कि प्राचीन काल में अयोध्या स्थल कर्मठ ब्राह्मण धर्म का केंद्र था या नहीं। बुद्ध के समय

तीर्थयात्रा थोड़े–बहुत मात्रा में अस्तित्व[9] में थी। ऐसा माने तो भी महाभारत या रामायण जैसे ब्राह्मणवादी ग्रंथों में एक तीर्थस्थल के रुप में अयोध्या का उल्लेख नहीं मिलता।[10]

रामायण में अयोध्या का जिक्र खास तौर पर राजा दशरथ और राम के निवास स्थान के रुप में मिलता है। लेकिन सूर्यवंश के इन दो पौराणिक राजाओं की ऐतिहासिकता कितनी सत्य है? इसके बारे में चर्चा करना इस आलेख शोध मर्यादा के बाहर है।

रामायण के उत्तरकांड में यह बताया गया है कि राम अपने अयोध्या के अनुयायियों के साथ कैसे सरयू नदी के तीर (तट) पर जाकर स्वर्ग में स्थान प्राप्त करने के लिए उन सभी के साथ आत्महत्या करते हैं।[11] महाभारत में इस संयुक्त आत्महत्या की घटना का जिक्र आया है। उस स्थान को गोपतारा कहा गया है, जो अयोध्या नगर के पश्चिम 8 किमी है जहां पर राम और उसके अनुयायी ने नदी में डुबकी लगाकर आत्महत्या कर ली थी। सरयू नदी यह एक अकेला तीर्थस्थल है।[12]

अयोध्या का राजनीतिक महत्त्व मौर्य काल में जो अच्छा–खासा बना रहा था और पहला शुंग शासक पुष्यमित्र (ईसापूर्व 187–151) के काल तक टिका रहा। आखिरी मौर्य सम्राट ब्रहद्रथ काल में जब मौर्य साम्राज्य विघटन की स्थिति में पहुंचा था, उस समय पांचाल और मथुरा के संयुक्त सैन्य दल ने अयोध्या पर आक्रमण किया था। ऐसा लगता है कि उनकों ग्रीक आक्रमणकारी सैन्य का भी सहयोग मिला था। इस नगर को जीतने का जिक्र युगपुराण और पतंजलि की पाणिनी के ऊपर लिखा हुआ टीकाग्रंथ (अरुणाघ यवना साकेतम) इन दो जगहों पर मिलता है।[15] यवन (ग्रीक) लोगों का आक्रमण ईसापूर्व 190 में होने की संभावना लगती है।[16] मौर्य प्रशासन में उथलपुथल के कारण शुंग ब्राह्मण के शासक बन जाने से बौद्ध धर्म के खिलाफ प्रतिक्रांति करने का ब्राह्मणों को मौका मिला।[18]

फिर भी शुंग शासक अयोध्या पर ज्यादा समय तक शासन नहीं कर सके। मुद्रा शोध के आधार पर यह बात सामने आयी है कि उत्तर भारत में मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद बहुत सारे छोटे–छोटे संस्थान पैदा हुए। अयोध्या में जो मुद्राएं मिली है उसपर देव और दत्त राजाओं का जिक्र मिलता है।[19] युगपुराण में 'साकेत के सात राजाओं का जिक्र मिलता है।[20] अयोध्या में एक शिलालेख मिला है, जिसमें राजा धन... (शायद यह राजा धनदेव होगा, जिसकी मुद्राएं भी अयोध्या में मिली है।) जिसने पुष्यमित्र शुंग के बाद खुद को अयोध्या का 6 वाँ राजा कहा है और उसने नगर में

एक बड़ी इमारत (केतन) बनाई थी।[21]

ईसा की पहली शताब्दी में आक्रमणकारी कुषाण राजाओं ने अयोध्या का राज्य जीत लिया था। तिब्बती साहित्य में यह जिक्र आता है कि साकेत (सोकेड) को कुषाण सम्राट कनिष्क (कणिका) ने जीत लिया था।[22]

गुप्तों के राज्यकाल में अयोध्या नगर राजनीति के सर्वोच्च स्थान पर पहुंच गया था।[23] वैष्णववादी सम्राट चंद्रगुप्त-II के समय से हम देखते हैं कि चीनी यात्री फाहियान ने उसके समय 5 वीं सदी के शुरुआत में अयोध्या का वर्णन किया था। कनिंघम[24] और वॅटर्स[25] ने एक समान निष्कर्ष निकाला है कि फाहियान की साँची साकेत[26] (अयोध्या) से जुड़ती है। यह निष्कर्ष आश्चर्यजनक तरिके से अयोध्या महात्म्य ग्रंथ के वर्णन से भी जुड़ता है।[27]फाहियान बताता है कि साँची (साकेत) के दक्षिण दरवाजे से नगर से बाहर निकलते वक्त रास्ते के पूर्वेत्तर बगल में एक छोटा सा पेड़ मिलता है जो बुद्ध ने अपने दातून के इस्तेमाल के बाद फेंकी हुई लकड़ी से निर्माण हुआ था। ब्राह्मणों ने उसे कई बार तोड़ने की कोशिश की इसलिए उसकी उंचाई नहीं बढ़ी। अभी वर्तमान में उस जगह को अयोध्या महात्म्य में दंत धवन कांड कहा गया है।[28] जहां पर राम अपने दाँत धोते थे। आज भी इस जगह को देखने के लिए बौद्ध यात्री आकर्षित होते हैं। स्थानीय पंडितों का कहना है कि अयोध्या का यह सबसे पुराना तीर्थस्थल है। शास्त्रों से बौद्ध परंपरा को नष्ट करते-करते थकहारकर क्या ब्राह्मणों ने इस तरह से इस जगह का ब्राह्मणीकरण करने का प्रयास किया है?[29]

सम्राट कुमार गुप्त या उसके वंशज स्कंद गुप्त (455-567 के कार्यकाल में शायद राजधानी पाटलीपुत्र से अयोध्या स्थानांतरित की गई थी। शायद बाढ़ की वजह से उन्होंने पाटलीपुत्र को छोड़ दिया था।[30] शायद कालिदास के रघुवंश का 16 वाँ कांड इस घटना को इस तरिके से बताता है।[31]

कुसावती ब्राह्मण के हवाले करने के बाद एक योग्य दिन पर कुश ने अयोध्या के लिए प्रवास शुरु किया। उसके साथ उसकी पत्नीयाँ थी और पीछे-पीछे सैन्य दल थे। जैसे हवा के साथ बादल चलते हैं।

कई दिनों के प्रवास के बाद वह सरयू के किनारे पहुंचा और रघु के वंशजों ने यज्ञों के लिए जो अलग-अलग यज्ञ भूमि बनाई थी, उन सैकडों जगहों पर कब्जा किया। धुप में जलती पृथ्वी पर पहली बारिश से गिरते पानी की धारें जिस तरह सुखदायक होती है उसी प्रकार कई दिनों तक चलने के बाद राजपुत्र के साथ आए

कारागिरों ने अगल-अलग साहित्य को एकजुट कर उस विषण नगरी को फिर से पुनर्जिवित किया।

इस तरह मिथिला का परपोता रघुवंश के स्थान पर निवास करता है और उसके नगरी को उसका पूर्व वैभव औरस सौंदर्य दिलाता है। जिसका मकसद स्वर्ग का राजा या अलख का महाराज भी नहीं कर सकता।[32]

इसी स्कंद गुप्त ने (जिसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर ली थी)[33] उसने अपने भतिजे नरसिंह गुप्त (बलादित्य) को वसुंधरा को लाने के लिए भेजा था, जो अभिधर्म कोष का लेखक था। स्कंध गुप्त के बाद राजगद्दी पर आये बलादित्य और उसकी माँ ने बौद्ध विद्वान वसुबंधु को अयोध्या स्थित अपने राजमहल में रहने को बुलाया था।[34] इस तरह उत्तर भारत में पाँचवी सदी के आखिरी दशकों में अयोध्या-साकेत स्थान बौद्ध धम्म का सांस्कृतिक केंद्र बन गया था और बौद्ध धर्म में उसके संबंध की परंपरा कायम सुरक्षित रखी है।[35] लेकिन स्कंद् गुप्त के समय पश्चिम दिशा से आक्रमणकारी हुणों का जो अंधेरा निर्माण हो चुका था, उसके दुर्दैवी वंशजों पर टूट पड़ा। स्कंद् गुप्त के समय गुप्त साम्राज्य हुणों के विनाशकारी आक्रमण का लक्ष्य बन गया। उसके कुछ ही समय बाद अर्थात छठीं सदी के मध्य में उत्तर भारत का राजनीतिक केंद्र कनौज में स्थानांतरित हो गया, जो आने वाली शताब्दियों में राजनीतिक गतिविधियों का मुख्य केंद्र बना रहा।[36]

इस तरह उत्तर भारत के शहरों में से दीर्घकाल तक प्रमुख नगर रहा अयोध्या दुर्लक्षित बन गया और अपना महत्त्व टिका नहीं सका।[37] अब हम देखेंगे कि लगभग आधे सहस्त्र बर्षो तक (500 वर्ष) दुर्लक्षित बने हुए अयोध्या नगरी को फिर से धार्मिक महत्त्व कैसे प्राप्त हुआ?

हिंदू/ब्राह्मणवादी परंपरा का अगर हम अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि इतिहास में पहले अर्ध सहस्त्रक (सन् 1 से 500) के दौरान अत्यंत कम मात्रा में धार्मिक महत्त्व था। ऊपर बताये दो पुराणों के बजाए दूसरे पुराणों में भी महाभारत की तरह सरयू के वक्रतारा तीर्थ का ही जिक्र है।[38] या कभी-कभी अयोध्या का नाम पवित्र धार्मिक स्थल के नाम पर जिक्र आया है।[39] या रामायण[40] की तरह राम के जगह का काल्पनिक और वही घिसापिटा वर्णन पुराणों में आया है, जिसमें अयोध्या धार्मिक क्षेत्र के तौर पर जिक्र आया है।[41]

पंचरत्र संहिता[42] जैसे प्राथमिक वैष्णव साहित्य में भी अयोध्या का अल्पमात्रा में

जिक्र आया है। उसमें वैष्णवों का धार्मिक केंद्र के तौर पर जिक्र नहीं आया। यही स्थिति धर्मनिर्बंध के साहित्य की भी है। लक्ष्मीधर (12 वीं सदी का आरंभ) महाभारत का उदाहरण देते हुए सिर्फ गोप्रतारा का तीर्थ के तौर पर जिक्र करता है, लेकिन उसमें अयोध्या को तीर्थस्थल नहीं माना है।[43] बाद के निबंध लेखकों या धार्मिक स्थलों पर लेखन करने वाले लोगों ने भी अयोध्या या गोप्रतारा का उल्लेख नहीं किया है।[44] आखिर में मित्र मिश्रा (सन् 1600 से 1650) ने अयोध्या का जिक्र एक पवित्र धार्मिक स्थल पर तीर्थ प्रकाश में जिक्र किया है।

2) रामपंथ –

आधुनिक भारत में अयोध्या धार्मिक तीर्थयात्रा का महत्त्वपूर्ण केंद्र कैसे बना? यह समझने के लिए रामभक्ति या रामपंथ सामाजिक, धार्मिक स्तर पर कैसे विकसित हुआ? यह समझना जरुरी है। फिर भी आरंभ में यह प्रक्रिया समझना उतना आसान नहीं होगा, क्योंकि इससे संबंधित किताबें बहुत अल्पसंख्य प्रकाशित हुई हैं और वे इतनी आसानी से पढ़ने के लिए मिलती भी नहीं। दूसरी बात यह है कि रामपंथ की शुरुआत कैसे हुई? इसके बारे में कोई वैज्ञानिक शोध नहीं हुआ है, जो पंथ पूरे भारत भर में फैला है।[46] इसलिए इस पंथ का विकास सीधा-सीधा अयोध्या संबंधित समझाकर यहां बताया गया है।

रामपंथ की शुरुआत इतिहास में शामिल हो गई है। फिर भी उसकी नींव पहले सहस्त्राब्दी की आखिरी शतक (10 वी सदी) में हुई है। वराहमिहिर (6 शताब्दी) की बृहदसंहिता और कुछ पंचरात्र संहिता और उसके साथ पद्मसंहिता में राम की मूर्तियाँ तैयार करने का जिक्र कुछ हद तक मिलता है।[47] फिर भी रामचरित्र के नाम से तथाकथित रामकथाएं बड़े पैमाने पर मिलती है, जिनका उल्लेख पुराणो में भी मिलता है। कुछ कथाएं खो गई या अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनी रही।[48] राम केवल हिंदू धर्म तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जैन साहित्य में भी बड़े पैमाने पर मिलता है और वहां उसे पद्म कहा गया है। उदाहरण के तौर पर विमलसूरी के पौमचरित्रम् में राम का विस्तृत जीवन चरित्र है। उसी तरह रवि सेन के पद्मपुराण में भी उपलब्ध है।[49] जहां तक पता चलता है राम/पद्म का जैन और हिंदू परंपरा में क्या कार्य है? इसके बारे में किसी ने तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया है। ऐसा अध्ययन राम के बारे में अधिक जानकारी हासिल करने में फायदेमंद होगा।[50]

राम पंथ के किताबों का जब हम अध्ययन करते हैं तो उसमें अगस्त संहिता का मुख्य किरदार है, ऐसा दिखाई देता है।[51] इसपर रामचरित्र लिखने वाले अनेक लेखकों ने भरोसा किया है।[52] हमें भी अगस्त संहिता को रामपंथ का मुख्य आधार मानना होगा, क्योंकि रामानंदी सम्प्रदाय का यह एक मुख्य धार्मिक किताब है। रामानंदी संप्रदाय केवल वैष्णव पंथ में रामभक्ति करने वाला मुख्य राम संप्रदाय है।

हेमाद्री ने उसके संपूर्ण साहित्य में अगस्त संहिता के 26 अध्याय दिए हैं, जिसमें तथाकथित रामनवमी व्रत अर्थात राम के जन्म पर रखा जाने वाला व्रत महत्त्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट होता है कि अगस्त संहिता का समय सन् 1260 साल का है। इसका मतलब यह ग्रंथ रामानंदी के पहले तैयार हो चुका था। उसमें धार्मिक विधि अत्यंत जटील और विस्तारित है। इससे पता चलता है कि लंबे समय तक वह किताब लिखी गई।

अगस्त संहिता का निर्माण कहाँ पर हुआ? यह किसी को पता नहीं। लेकिन एक बात तो तय है कि उसमें अयोध्या का धार्मिक क्षेत्र के रुप में वर्णन नहीं है।[53] बल्कि उसमें बनारस (वाराणसी) का वर्णन किया है कि वहां पर षडाक्षरी राममंत्र (मूलतंत्र) पहली बार पृथ्वी पर तैयार हुआ था। अपने अनुयायी के माध्यम से मुक्ति पा सकेंगे इसका जवाब ढूंढने के लिए जब शिव ने ब्रह्मा को बुलाया तब ब्रह्म जिसे पहले राम ने सामने लाया था वह शिवजी के सामने उसके निवास स्थान वाराणसी (लोलार्क तीर्थ) हाजिर हुआ।[54] उसने शिव को मोक्ष प्राप्ति देने वाला मंत्र बताया।[55] जब शिव ने बड़े ध्यान से इस मंत्र का जप चालू किया तब राम ने उसे यह वरदान दिया कि जो भी यात्री बनारस (अविमुक्त) को आयेंगे चाहे वह शैव हो या और कोई उन्हें मुक्ति मिलेगी। वह सभी लोग जो प्रहलाद या शिव से इस षडाक्षरी मंत्र को सिखेंगे वे मृत्यु के बाद राम में विलीन हो जाएंगे।[56]

अगस्त संहिता और रामपंथ की शुरुआत पंच संप्रदाय की तरह उत्तर भारत से ही शुरु हुई थी।[57] स्पष्ट बात यह है कि अगस्त संहिता पंचरत्र साहित्य का ग्रंथ नहीं है।[58] (उसमें व्यूह सिद्धांत नहीं है।), फिर भी उसमे और पंचरत्र में काफी समानता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अगस्त संहिता का निर्माण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर पंचस्त्र संहिता से हुआ है।[59]

अगर हमारा अंदाजा सही है तो अगस्त संहिता और उससे संबंधित ग्रंथ जैसे कि रामतपनीय उपनिषध[60] इनके संबंध आपस में जुड़ जाते हैं। जैसा कि वार्डे विले[61] इस

तरह से बताया है- ''प्राचीन भागवत अर्थात पंचरात्र संप्रदाय और चैतन्य प्रणित वैष्णव धर्म के बीच का बड़ा समूह उजागर हो चुका है।'' वह आगे जो कहती है की उत्तर भारत के वैष्णव पंथ का पंचरात्र संहिता से कुछ देना नहीं है, इस विधान में सुधार करना जरुरी है। अगस्त संहिता के लिखने के बारे में वार्डे विले को शायद जानकारी नहीं है। क्योंकि उन्होंने[62] रामानंद पर भांडारकर[63] के मत का जिक्र किया है, लेकिन अगस्त संहिता में रामानंद की संपूर्ण जीवनी ही चित्रित की है।

दक्षिण भारत में कृष्ण पंथ से विभिन्न रामपंथ का अलग से अस्तित्व नहीं है। यह सिद्ध करता है कि रामपंथ का निर्माण उत्तर भारत में हुआ है। लेकिन कुछ शोधकों ने (उदा. आलचीन, फर्कहर) इन पंथो का उगम दक्षिण भारत में बताया। क्योकि, उन्होंने राम भक्ति को वैष्णव भक्ति के साथ जोड़ा, लेकिन दक्षिण भारत में जो भक्ति आंदोलन शुरु हुआ था,[64] उसने उत्तर भारत में शुरु हुए रामपंथ को बढ़ावा दिया।[65] ऐसा लगता है कि आरंभ में रामपंथ ब्राह्मणवाद या पंचरात्र से नहीं जुड़ा था।[66] अगस्त संहिता में स्पष्ट रुप से कहा गया है कि पृथ्वी के सभी लोगो के कल्याण के लिए राम का जन्म हुआ है। (सर्व-हितार्थया) और इसलिए सभी लोगों को राममंत्र दिया जाता है। जिन लोगों को राम पूजा करने की अनुमति नहीं मिल सकती थी उन्हें भी एक शब्द मंत्र 'राम, राम, राम' दिया जाता था।[67] इसलिए रामानंद ने राम शब्द साधना के लिए दिया था। यह जो सामान्य धारणा बन चुकी है वह गलत है। रामानंद का खुद का इतिहास यही दर्शाता है कि उसकी धार्मिक गतिविधियों में जाति भेदों को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता था।[69] परंपरा यह बताती है कि जातिय विवाद के कारण रामानंद ने श्रीवैष्णव संप्रदाय छोड़ दिया था और उसके अनुयायी रैदास चमार जैसे नीचली जातियों में से भी थे। रामानंद का काफी प्रभावित व्यक्तित्त्व होगा। क्योंकि उसके अनुयायी जिन्हे रामानंदी कहा जाता है, उन्होंने उससे प्रेरणा लेकर अपना अलग रामानंद संप्रदाय बनाया था।[70] रामानंद का काल कौन सा है? इस पर विवाद है, लेकिन विभिन्न मतों और सबूतों को ध्यान में रखकर यह निश्चित होता है कि वह शायद 14 वीं सदी के मध्य में हुआ था।[71]

राम का दैवी क्षत्रिय के रुप में प्रसार इसीलिए भी हुआ होगा, जब 11, 12 वीं सदी के दौरान गंगा के प्रदेश में राजपूत जमातियाँ आकर रहने लगी। ऐसा दिखाई देता है कि अनेक राजपूत लोग उस दौरान अयोध्या में आकर रहने लगे और वे सभी अपनी क्षत्रिय मूल भावना को दर्शाने लगे थे। आक्रमक मुस्लिम शासकों के खिलाफ अपनी

क्षत्रिय पहचान दिखाने के लिए उन्होंने क्षत्रिय राम की देवता और नायक के रुप में पूजा शुरु कर दी थी।[72] फिर भी इन दो प्रक्रिया में स्पष्ट समानता दिखने के बावजूद जब तक इसके लिए ठोस सबूत नहीं मिलते तब तक इसे एक परिकल्पना समझना होगा।[73]

16 वीं 17 वीं सदी में राम पूजा को लेकर अनेक परिवर्तन हुए। इसे प्रथमतः ऐसा दिखाई देता है कि कर्मकांडी राम पूजा के जगह पर (अगस्त संहिता और राम तपनीय उपनिबंध जैसे आरंभिक ग्रंथो में बताया है।) भक्तिवादी पूजा का महत्त्व बढ़ा। राम भक्ति का परिवर्तन दक्षिण के चार महत्त्वपूर्ण वैष्णव संप्रदाय के प्रभाव में हुआ।[74] तुलसीदास (सन् 1532-1623) ने उनको अपने लेखन में व्यक्त किया है। उसके रामचरित मानस में जो रामायण का पद्य प्रकार है और जो रामपंथी मंदिरो में जनता के सामने गायन करके सुनाया जाता था, उसका सभी वर्गो के लोगों पर गहरा प्रभाव था। उसकी वजह से राम पूजा का प्रभाव समाज में अधिक फैला, जिससे अयोध्या में राम भक्त यात्रियों का प्रवाह बढ़ते गया।

धीरे-धीरे राम के संबंध में संस्कृत में लेखन बड़े पैमाने पर बढ़ता गया जो यह दर्शाता है कि जन सामान्यों का राम भक्तिवाद लेखन करने वाले वर्गो ने भी स्वीकार किया।[75] इस बारे में खास ध्यान अध्यात्म रामायण की ओर जाता है जो 15 वीं सदी के अंत और 16 वीं सदी की शुरुआत में लिखा गया था। उसमें राम की पूजा और कर्मकांड को सैद्धांतिक अधिष्ठान देने का प्रयास किया गया है।[76] इस तरह रामपंथ का और उसमें खासकर रामानंदी संप्रदाय का कर्मठ ब्राह्मणवाद की तरफ झुकाव बढ़ता गया और उसको एक खास सामाजिक पहचान प्राप्त हुई। 16 वीं 17 वीं शताब्दी में उत्तर भारत में हिंदू पहचान प्रस्तापित करने का यह एक माध्यम था। उसी समय ब्राह्मणों का आश्रय प्राप्त करने के उद्देश्य से दूसरे चार वैष्णव संप्रदायों ने भी खुद को वेदांत परंपराओं से जोड़ दिया।[77]

इस प्रकार रामपंथ का ब्राह्मणीकरण होने की वजह से उसे 'एक अच्छे कर्मठ हिंदू पंथ' पहचान मिली।[78] और उसे गोरखनाथ योगी, चिस्ती सुफी और संत परंपरा जैसे जनसामान्यों के पंथों से ऊपर का दर्जा मिला। इसका फायदा अयोध्या के स्थानीय ब्राह्मणों ने लिया और उन्होंने रामपंथ को अधिक बढ़ावा दिया।[79] उसके लिए ब्राह्मणों ने अयोध्या महात्म्य के माध्यम से रामभक्तों को अयोध्या में आकर्षित करने के लिए यही राम की

जन्म भूमि और निवास है, ऐसा प्रचार किया।

अयोध्या का बाद का इतिहास :

हमने पहले ही यह स्पष्ट किया है कि उत्तर भारत में राजनीति का केंद्र 6 वीं शताब्दी में अयोध्या से कनौज में कैसे स्थानांतरित हुआ? उसका सबूत यह है कि कनौज के राजा ने पहला सबूत लिखकर रखा है कि अयोध्या हिंदुओं का धार्मिक क्षेत्र है। (ब्राह्मणों का क्षेत्र) गहड़वाल राजा चंद्र देव ने शिलालेख में यह लिखा है कि 500 ब्राह्मणों को जमीन दान देते समय उसने सूर्यग्रहण के वक्त स्वर्ग द्वार तीर्थवर 23 अक्टूबर, 1093 के दिन सरयू और घागरा नदी के संगमपर धार्मिक स्नान किया था। (सरयू-घर्गरागा-मरसाने स्वर्गद्वार नामानितिर्थ) सूर्य और शिव की योग्य पूजा करने और वासुदेव की पूजा करने के बाद वह जमीन ब्राह्मणों को दान दी गई थी। **लेकिन खास बात यह है कि 11 वीं सदी में अयोध्या अगर रामभक्ति का मुख्य केंद्र बन गया था तो चंद्रदेव की प्रशस्ती में राम का जिक्र आना जरुरी था। लेकिन उसमें राम का जरा भी जिक्र नहीं है।**[80]

सन् 1226 में दिल्ली सुलतान के साम्राज्य के अंतर्गत अयोध्या औध (अवध) प्रांत की राजधानी बनाई गई थी। अयोध्या परिसर के बारे में मुस्लिम इतिहासकारों ने यह वर्णन किया है कि अयोध्या परिसर जंगल जैसा था, जहां प्राणियों का शिकार अच्छी तरह से की जा सकती थी।[81] स्थानीय परंपरा यह बताती है कि अयोध्या के परिसर में 'भार' नामक अनार्य लोग निवास करते थे।[82] हमने पहले भी बता दिया है कि 11 वीं सदी के आसपास राजपूत वंश के लोगों ने अयोध्या के परिसर में रहना शुरु कर दिया था और वे वहां के छोटे-छोटे राजा बन गए थे। अर्थात मुस्लिम शासनकाल में अवध प्रांत का इतिहास छोटे-छोटे राजपूत संस्थानों और केंद्रीय मुस्लिम शासन के बीच का अंतर कलह का इतिहास है।[83]

मुगल शासन के पहले उभरती जौनपुर नगरी के लिए अच्छा राजनीतिक माहौल देने के लिए अयोध्या को पीछे हटना पड़ा। लेकिन, बाद में शासन के दरम्यान अयोध्या को प्रांतिक राजधानी का दर्जा प्राप्त हुआ। बाबर ने सन् 1527 में अयोध्या को उभरते नगर के रुप में देखा और फिर 16 वीं सदी में अयोध्या मुख्य धार्मिक केंद्र बना।[84] मुस्लिम शासन में जो स्थिरता और विकास लाया था, उसका फायदा ब्राह्मण विरोधी या गैर ब्राह्मण जनमानस में प्रचलित धार्मिक पंथों ने लिया। इसकी तुलना करेंगे तो पता चलेगा कि मुस्लिम काल में अयोध्या एक हिंदू धार्मिक क्षेत्र के रुप में कैसे

विकसित हुआ।[85] अर्थात 31 साल उम्र के तुलसीदास ने अपने बहुसंख्य अनुयायियों के साथ अयोध्या को चैत्र शुक्ल 9 सन् 1574 में राम का जन्म मनाने के लिए भेंट दी थी।[86] यहां पर यह भी देखना जरुरी होगा की इसी तुलसी दास ने उसकी रामकथा रची थी।

अकबर के मृत्यु के बाद 17 वीं सदी में राजपूत का प्रभाव बढ़ने लगा और मुगल साम्राज्य बिखरने लगा। औरंगजेब के मृत्यु के बाद (सन् 1707) अवध पर नवाबों का कब्जा बना, जो दिल्ली के मुगल सम्राट के अधिनस्थ थे। इन नवाबों के कार्यकाल में 18 वीं सदी के मध्य में अयोध्या स्थित राजवाड़ा और उससे संबंधित राजनीतिक व सैन्य संबंधी कार्यालय नये शहर फैजाबाद में स्थानांतरित किए गए जो अयोध्या के पश्चिम में नजदीक था।[87] सन् 1856 में अवधप्रांत पर ब्रिटिशों ने कब्जा किया और उस प्रांत का नाम फैजाबाद रखकर उसकी राजधानी फैजाबाद नगरी बनाई गई।[88]

अयोध्या महात्म्य

अब हम अयोध्या महात्म के अलग-अलग संस्करणों का अध्ययन करेंगे। जिसमें हमें यह पता चलेगा की हिंदू धर्म का खासकर वैष्णव धर्म का प्रमुख धार्मिक केंद्र अयोध्या कैसे बना?

मैं अयोध्या महात्म्य के दस खंडो से परिचित हूँ जो तीन विभाजित है। उन तीनों में अनेक अध्यात्म एक समान है। अयोध्या महात्म्य की सबसे प्राचीन संस्करण सन् 1801 की है।[89]

अयोध्या महात्म्य का पहला संस्करण, A यह स्कंद पुराण में मिलता है,[90] उसका दूसरा संस्करण B यह बहुत विस्तृत और सुनियोजित संस्करण है।[91] उसका तीसरा संस्करण C यह संस्करण A से ज्यादा B नजदीक है।[92] और यह संस्करण भी विस्तृत और सुव्यस्थित है। संस्करण C हमें पढ़ने के लिए अभी-अभी मिला है। उसपर शोध बाकी है। इसलिए उसे छोड़कर हम चर्चा आगे बढ़ाते हैं।

संस्करण A में 1000 श्लोक हैं और उसका वर्णन मित्र मिश्रा के तीर्थप्रकाशा (जो 17 वीं सदी के मध्य में लिखा गया था) में है।[93] स्कंद् पुराण के साथ-साथ मित्र मिश्रा ने ''भारत'' जैसे अयोध्या के तीर्थो का जिक्र किया है। लेकिन, भारत नामक तीर्थ का महाभारत के किसी भी संस्करण में जिक्र नहीं है।[94] ऐसा हो सकता है कि मित्र मिश्रा के लेखन में लिखते वक्त कुछ गलती हुई होगी या इस तीर्थ के बारे में उसे गलत

जानकारी मिली होगी। उसने जिस परिच्छेद का वर्णन किया है वही परिच्छेद नरसिंह पुराण में भी मिलता है,[95] **और खास बात यह है कि अयोध्या के संदर्भ में अनेक तीर्थो का वर्णन होने के बावजूद उसमे राम के बजाए नरसिंह पूजा करने को कहा है।** नरसिंह पुराण का यह अध्याय वर्तमान नरसिंह पुराण के मुद्रित कॉपी में नहीं है। जो यह दर्शाता है कि अयोध्या महात्म्य के तीनों संस्करणों के बाहर का वर्णन है। मुझे पता है संस्करण B और C को किसी भी संस्कृत साहित्य में नहीं लिया गया है और उसका जिक्र भी नहीं किया गया है। पुराने संस्करणों के ग्रंथों में अयोध्या महात्म्य का संबंध रुद्रयामल तंत्र से संबंधित है। रुद्रयामल तंत्र पर शोध करने के बाद यह पता चला कि विभिन्न प्रकार के अनेक ग्रंथ किस तंत्र से संबंधित है और इससे शंका उत्पन्न होती है कि रुद्रयामल तंत्र का मूल ग्रंथ उपलब्ध है या नष्ट हो गया?[96] यह तो स्पष्ट होता है कि रुद्रयामल का नाम अयोध्या महात्म्य में इसलिए लिया गया ताकि उसे अधिक पुराना और प्रबल दावेदार समझा जाए।

ऊपर राम पूजा के विकास की चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि अयोध्या महात्म्य का उगम रामपंथ से संबंधित साहित्य से हुआ है। तीन संस्करण राम के अयोध्या का संबंध राम की मिथक कथा में जिक्र किए हुए तीर्थो से संबंध दिखाते हैं। राम को सर्वोच्च देवता विष्णु के रुप में पूजना चाहिए, यह भी उसमें बताया गया है। फिर भी हम यहाँ अलग-अलग संस्करणों के महत्त्वपूर्ण भिन्नताओं पर चर्चा करेंगे।

संस्करण B यह संस्करण A से काफी बड़ा है। उसमें दान संबंधी प्रभाव अधिक गहरा है। उसमें राम संबंधी धार्मिक विधि और रामनवमी पर भी अधिक विस्तार से बताया गया है। रामनवमी का वर्णन करते हुए संस्करण B में अगस्त्य संहिता का जिक्र है, लेकिन उसमें अगस्त संहिता का प्रत्यक्ष नाम नहीं लिया गया है। **दूसरी तरफ अगस्त्य संहिता और राम तपनीय उपनिषध जैसे राम संबंधी पुराने ग्रंथों में अयोध्या का धार्मिक केंद्र के रुप में थोड़ा सा भी जिक्र नहीं है।** केवल बनारस को अगत्स्य संहिता में थोड़ा सा महत्त्व दिया गया है।[97] **14 वीं सदी के शुरुआत में लिखे गए तीर्थ कल्प में भी राम के मिथक का हलका सा जिक्र किया गया है।** जैन ग्रंथ में जिन तीर्थो का महत्त्वपूर्ण जिक्र किया गया है वे अयोध्या महात्म्य के संस्करण A में भी मिलते हैं।[98]

सभी संस्करणों का सविस्तर अभ्यास की मर्यादा के बाहर है। लेकिन, उसके शोध के लिए उचित तरिका अपनाया गया है। उन ग्रंथों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने

के बाद उसके संबंधी शोधनात्मक अनुक्रमणिका बन सकेगी और फिर उस हिसाब से प्रत्येक संस्करण का रामपंथ के लिए क्या मतलब है? यह सुनिश्चित किया जा सकेगा।[99] इस तरह की अनुक्रमणिका धार्मिक, सामाजिक इतिहास के अनुसार तैयार होनी चाहिए। इसके साथ प्रत्येक संस्करण में वर्णित किए गए तीर्थो और लोक परंपरा और जनसंस्कृति के साथ जोड़कर और अन्य ऐतिहासिक साधनों की मदद से सुव्यवस्थित ऐतिहासिक जानकारी तैयार की तो अयोध्या नगर के इतिहास के बारे में स्पष्ट ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होगी। फिर भी अयोध्या महात्म्य को लेकर कठिनाई यह है कि उसमें काल्पनिक त्रेतायुग को लेकर परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। लेकिन, स्पष्ट ऐतिहासिक जानकारी नहीं दी गई है। अगर यह तीन बातें ध्यान में रखकर अयोध्या का इतिहास नये सिरे से लिखा तो उसकी धार्मिक ऐतिहासिकता, स्थानीय इतिहास और साहित्यिक इतिहास की जानकारी स्पष्ट रुप से प्राप्त होगी। इसलिए अयोध्या महात्म्य के तीनों संस्करण भी महत्त्वपूर्ण है। अयोध्या का वास्तविक व सत्य इतिहास सामने लाने के लिए महत्त्वपूर्ण है। श्रीमती बिरडाऊ ने महाभारत का जिस प्रकार का मूल संस्करण ढूंढ लिया है उस तरह अयोध्या महात्म्य का मूल संस्करण यहां ढूंढने की जरुरत नहीं है। इसलिए उसके सभी संस्करणों का एक साथ प्रकाशन करने की हम सोच रहे हैं।[100]

अयोध्या महात्म्य के विभिन्न संस्करणों में संस्करण A सबसे पुराना है और उसे पुराण में शामिल किया है। उसकी कालावधि 1114 सदी है। स्थानीय पुरोहितों द्वारा रामपंथ को बढ़ावा देने वाला वह पहला सबूत है। लेकिन बाद के सदियों में रामपंथ पहले स्कंद पुराण में और बाद में तीर्थ प्रकाशा में सम्मिलित होकर कर्मठ ब्राह्मणवादी परंपरा का हिस्सा बन गया।

संस्करण B ने संस्करण A का स्वरुप धारण किया। बढते रामपंथ के साथ वह अयोध्या का धार्मिक तीर्थ के रुप में बढते प्रभाव के साथ संस्करण B बनता गया। इस प्रकार रामभक्ति का बढ़ता प्रवाह हमें संस्करण B में दिखाई देता है। उसका धार्मिक स्वरुप 15 वीं 16 वीं सदी के दूसरे राम संबंधी साहित्य (अध्यात्म्य-रामायण) के जैसा बनता गया। इस महात्म्य का मुख्य उद्देश्य यह था कि अयोध्या जैसे पवित्र तीर्थ को देखकर या भेंट देकर दर्शन करना और उसके माध्यम से मुक्ति हासिल करना इसके साथ ही भक्ति मार्ग जैसे अन्य साधना धार्मिक तत्त्वाधान का एक हिस्सा है। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं **कि संस्करण B की रचना 15 वीं या 16**

वीं सदी में हुई थी। इसके पीछे मुख्य कारण यह है कि संस्करण का सबंध कर्मठ ब्राह्मणवादी स्मृति साहित्य के बजाए रुद्रयामल तंत्र के साथ है।

रामदुर्ग –

अयोध्या के परिसर को आज कल रामकोट अर्थात राम का किला कहा जाता है। यह एक तीर्थ है जो ऊपर की प्रक्रिया कैसे शुरु हुई यह बताता है। यह एक टिले जैसा ऊपर उठा हुआ जमीन का हिस्सा है और तीनों ओर से सरयू नदी से घिरा हुआ है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में शायद ईसापूर्व 6 काल में एक किले के रुप में उसका इस्तेमाल होता होगा। यह कल्पना केवल तार्किक स्वरुप पर आधारित है। क्योंकि अयोध्या में इस जगह पर कोई वैज्ञानिक उत्खनन नहीं हुआ है। प्राचीन भारतीय दुर्गयुक्त नगरों के तुलनात्मक पुरातात्विक शोध के आधार पर A घोष में यह सारांश में लिखा है।[101]

''प्राचीन ऐतिहासिक नगरों की परिघि में जो संरक्षक दिवारों के ऊपर का सर्वे दो हिस्सों में बटा हुआ है।..

1) वह नगर जो 600 ईसा पूर्व में बने थे।

2) जो ईसा पूर्व 200 से 100 में बसे थे, जब मौर्य साम्राज्य का विघटन हुआ था और प्रत्येक राजवंश में अपनी राजधानी के लिए संरक्षक दिवारें बनाई थी।

यह समझना गलत होगा की, नगर के बनते ही उसके चारों तरफ संरक्षक दिवारें बनाई गई थी।

अगर हमने इस सिद्धांत को स्वीकार किया और ईसा पूर्व दूसरी सदी की शुरुआत में ही अयोध्या के चारों तरफ संरक्षित दिवार बनाई गई थी, जैसे कि ग्रीक आक्रमण के बारे में बताया गया है तो इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि अयोध्या नगरी का निर्माण पहले ग्रुप में आता है जो ईसा पूर्व 600 में बनी थी। इसकी पुष्टि उसके नाम अ–योध्द्या नाम से होती है, जिसका अर्थ होता है जितने में कठिन नगर। अथर्ववेद (AV. 10,2.31) में भी देवताओं की अपराजित नगरी, ऐसा जिक्र आया है।[102]

यही जगह कनिष्क ने भी जीत ली थी और बाद में फहियान भी यह लिखता है कि साकेत नगरी सभी तरफ से संरक्षित दिवारों से घिरी हुई थी और उसे दक्षिण प्रवेशद्वार से नगर को छोड़ा था। उसके बाद नगर के अच्छे दिन कम होते गए और बाद के सदियों में उसकी दिवारें भी टूटने लगी, जिसका वर्णन ह्युएनत्संग ने किया

है।[103] जब उसने हुणों के आक्रमणों के बाद साकेत को भेद दी थी। अभी अयोध्या में जो दिवारों के पुराने अवशेष मिलते हैं वह मुगल शासन काल के आरंभ काल से पहले के नहीं हैं। ऐसा लगता है कि मुगल शासकों ने अयोध्या में अपने वास्तव्य के दौरान अयोध्या के पुराने संरक्षक दिवारों को मरम्मत करके फिर से नया बनाया था। 15–16 वीं सदी तक उसका इस्तेमाल मुस्लिम शासनकाल में केवल सैनिकी संरक्षण के लिए होता था। इसी मुगल काल के दौरान लिखे गये धार्मिक ग्रंथों में दुर्ग या कोट को पवित्र तीर्थ क्षेत्र के रुप में वर्णित किया गया है। 14 वीं सदी का जैन ग्रंथ तीर्थकल्प अयोध्या का वर्णन करते हुए उसके संरक्षक दिवार का वर्णन 'पायरा' नाम से (संस्कृत प्रकारा) से करता है और उस दिवार के ऊपर मतगयमदा यक्ष (संस्कृत मातगजेंद्र यक्ष) बैठता था, ऐसा लिखा था। अयोध्या महात्म्य का संस्करण रामदुर्ग या अन्य किसी दुर्ग का वर्णन नहीं किया है। लेकिन उसने अयोध्या के क्षेत्र में अयोध्या के संरक्षक (अयोध्या रक्षक) मत्तगजेंद्र का जिक्र आधुनिक रामकोट के संबंध में किया है। वर्तमान रामकोट के अंदर दूसरे तीर्थो का भी जिक्र संस्करण A में संरक्षक देवता के रुप में विघ्नेसा और पिंडार का वर्णन आया है।[106] लेकिन इनका राम के मिथक के साथ जरा भी संबंध नहीं है। मत्तगजेंद्र तीर्थ जगह को क्यों कहा है? इसकी जानकारी हमें तीर्थकल्प से इस प्रकार मिलती है ''आजकल एक भी हाथी इस कोट के सामने नहीं आते है। क्योंकि, जब वे एकजुट होकर आते हैं तब वे मर जाते हैं।[107] इस तरह अयोध्या के रामकोट के संरक्षक दिवार के सामने 'पागल हाथी' इस उद्देश्य से रखा जाता था ताकि शत्रू के आने वाले हाथियों को डराया जा सके। रामकोट के अंदर राम जन्मस्थान तीर्थ के रुप में भी संस्करण A में जिक्र आया है।[108] आजकल जन्मस्थान पर मस्जिद में मुगल राजपुत्र बाबर ने उस जगह का हिंदू मंदिर तोड़कर उसपर मस्जिद बनाने का आदेश सन् 1528 में दिया था।[109] ऐसा शिलालेख वहां पर उपलब्ध है। उस समय से आज तक हिंदू–मुस्लिम का विवाद का कारण बन चुकी है। संस्करण B रचना काल तक परिस्थिति काफी बदली हुई थी, ऐसा दिखाई देता है। क्योंकि अयोध्या के संरक्षक दिवार को बाद में पवित्र तीर्थ रामदुर्ग संस्करण B में कहा जाने लगा।[110] उसके बाद रामकोट के दिवार और बुरुज (टावर) अलग–अलग संरक्षक यक्षों के नाम से पुकारे जाने लगे और उनको रामायण के प्रसिद्ध पात्रों के नाम दिये जाने लगे। राजा के द्वार पर जो महत्त्वपूर्ण स्थान है उसे हनुमत तीर्थ कहा जाने लगा और दोजम दर्जे के जगह को संस्करण A में मत्तगजेंद्रे की तरह संरक्षक यक्षों के नाम दिये जाने लगे। इस तरह

मुगलकालीन संरक्षक दिवार के 16 वीं सदी में या उसके कुछ साल पहले पवित्र तीर्थों के रुप में जाने जाना लगा। अयोध्या महात्म्य के संस्करण बी के अलावा भुसुंडी रामायण जो सन् 1600 के आसपास संस्कृत में प्राचीन लिखा गया,[111] सबसे पहला संस्कृत ग्रंथ है, उसमें ऐसा लिखा है–

''हनुमंतम चा सुग्रीव लक्ष मनंचा विभिषणम। अयोध्या–कोटा–पलमस चा प्रतार उत्थाया याह कल्याणम् समवफ्लोती दुहस्वा प्नादिमस स्मारत चा नयासत।।''

आज कल इनमें से बहुत सारे बंदर संबंधी बुरुज नष्ट हो चुके हैं, लेकिन फिर भी उसके बचे हुए मिट्टी के टिलों को सुग्रीव टिला, नल टिला, नीला टिला ऐसे अलग–अलग–अलग संरक्षक यक्षों के नाम से पुकारा जा रहा है।[112] संस्करण B में रामदुर्ग के अंदर स्थित जन्म स्थान को भी विस्तारित किया है, जिससे अयोध्या के आस–पास के संपूर्ण दुर्ग को रामचंद्र दशरथ और उसकी चार पत्नियों, सीता की रसोई वगैरह, अलग–अलग स्थानों से भरा जा सके। इस संस्करण में यह भी लिखा है, जन्म स्थान पर कौन सा कर्मकांड करना चाहिए।[113] लेकिन फिर भी उसमें रामदुर्ग तीर्थ का आखिरी विकास का जिक्र नहीं है। अयोध्या महात्म्य में अनुमत टिले का जिक्र न के बराबर है। लेकिन आज कल उसे अत्याधिक महत्त्व प्राप्त हो चुका है। आजकल 'हनुमत का किला' जिसे तथाकथित हनुमानगढ़ी को केवल रामकोट के अंदर का ही नहीं, बल्कि संपूर्ण अयोध्या के अंदर का अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझा जा रहा है।[113]

हनुमानगढ़ी के निर्माण होने का अत्यंत मनोरंजक इतिहास 'श्री हनुमानगढ़ी का इतिहास' के रुप में मिलता है। जिसे आर.त्रिपाठी ने आधुनिक पुस्तिका के रुप में अयोध्या में भेंट दे रहे यात्रियों को जानकारी हेतु लिखी गई किताब में लिखा है। इससे यह तो पता चलता है यह ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णता अविश्वनिय है, क्योंकि ब्राह्मणों की यह सनातन प्रवृत्ति रही है कि वे हमेशा इतिहास को मिथक कथाओं से जोड़ते है। लेकिन हिंदू धर्म और उसका स्वरुप एकदम नजदीकी शतकों में निर्माण हो चुका है, ऐसी जानकारी बिलकुल देते नहीं। जबकि उन्हें इस बात की बराबर जानकारी रहती है कि उनके अलग–अलग पंथ और उनसे संबंधित अलग–अलग मंदिरों का वास्तविक इतिहास क्या है। हनुमानगढ़ी का इतिहास जैसे छोटी–छोटी पुस्तिकाओं पर अधिक विचार होना जरुरी है। क्योंकि हिंदू धर्म के सामाजिक, धार्मिक विकास और उसके नजदीक कालीन निर्माण में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन, शोध में उन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता।

इस प्रकार उदाहरण के तौर पर 'हनुमानगढ़ी का इतिहास इस छोटी पुस्तिका से हनुमान गढ़ी मंदिर का निर्माण कैसे हुआ? यह पता चलता है। 17 वीं सदी के अंत में वैष्णव पंथ के अलग–अलग संप्रदायों के बीच हो रहे झगड़ों के बाद हनुमानगढ़ी का निर्माण कैसे हुआ था? इसकी जानकारी इस छोटे से किताब में मिलती है।[114] दूसरे नवाब सफदर जंग (17.39–1754) के समय अयोध्या की गढ़ी कुछ हदतक प्रायः नष्ट हो चुकी थी। अभी जहां हनुमत मंदिर खड़ा है उस टिले को हनुमान टिला कहा जाता था। इस टिले पर हनुमत की पूजा करने वाले दो संन्यास पंथ[115] थे एक गोसाई अर्थात गोरखनाथ योगी का संकरित शैव पंथ और दूसरा वैष्णववादी रामानंदी पंथ, जो दोनों 17 वीं सदी में संग्रहित सैनिकों के रुप (ANI) और अखाड़ों के रुप में शैवनागा संन्यासियों का विरोध करने के लिए तैयार हो चुके थे।[116] 18 वीं सदी के मध्य रामानंदी संन्यासियों का एक जत्था जिसे निर्वाणी अखाड़ा कहा जाता है उसका प्रमुख कोई अभयराम नामक संन्यासी था। नींद में सपनों में हनुमत के सूचना पर मिलने के बाद इस अभयराम ने इस टिले को गोसाईयों से छुड़ाकर कब्जे में लिया; ''जो गोसाई हनुमत की भैरव के रुप में पूजा करते थे।''[117] कहानी यह बताती है कि अभयराम ने नवाब सफदर जंग को बिमारी से मुक्त किया था और उसके एहसान स्वरुप उसने अभयराम को हनुमत मंदिर बनाने की अनुमति दी थी। इस किले जैसे मंदिर को बनने के पीछे दूसरा कारण यह बताया जाता है कि सफदरजंग ने उसका मुस्लिम दरबार अयोध्या से फैजाबाद में स्थानांतरित किया था, जिससे हिंदुओं को अयोध्या में खुली छूट मिल गई थी। इस छूट का फायदा उठाकर हिंदुओं ने आधुनिक अयोध्या को धार्मिक तीर्थ क्षेत्र के रुप में विकास किया और अयोध्या के महत्त्वपूर्ण मंदिर हनुमानगढ़ी के निर्माण की नींव रखी।

राम किले की कहानी केवल जुबानों पर है। राम ने अपने लोगों और सैनिकों का संरक्षण करने के लिए अयोध्या में किला बनवाया था। इस प्रकार की कहानी अयोध्या में यात्रा के लिए आए अज्ञानी लोग ब्राह्मण कथा के रुप में बार–बार बताते हैं। अयोध्या से संबंधित जो बाते नहीं है उन्हें कथावाचक राम की मिथक कथा के रुप में बारबार प्रस्तुत करते हैं। उदा.मत्तगजेंद्र को आज कल विभिषण का पुत्र समझा जाता है। आधुनिक कथाएं बताती हैं कि बौद्ध धर्म के कारण कलियुग में अयोध्या का पतन हुआ था। लेकिन राजा विक्रमादित्य ने कलियुग का अंत कर राम का पुराना किला और उसके अंदर स्थित विभिन्न तिर्थो को पुनर्जिवित करके उन्हें उनको प्राचीन वैभव

दुबारा दिलाया था। फिर भी विक्रमादित्य जिसे हमने अयोध्या का शासक स्कंद गुप्त के रुप में पहचाना है उसके कार्यकाल में अयोध्या के दुर्ग का कोई धार्मिक महत्त्व नहीं था। इसलिए ऊपर बताई सभी काल्पनिक कथाएं ऐतिहासिक दृष्टि से निरर्थक हैं। इन कथाओं से यही बात समझ मे आती है कि किस तरह इतिहास के साथ धार्मिक मिथकों की मिलावट की जाती है और उनका इस्तेमाल तीर्थयात्रा बढ़ाने के लिए किया जाता है जो वर्तमान हिंदू धर्म की महत्त्वपूर्ण खासियत है।

उपरोक्त चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किस तरह गौरवशाली प्राचीन पवित्र स्थल को आधुनिक धर्मयात्रा का केंद्र बनाने के लिए मिथक कथाओं का इस्तेमाल किया जाता है।

नोट

5. मज्झिमनिकाय I, 148-149 धम्मपद अठ्ठकथा (Vo. 1, पृ. 388) यह जानकारी देता है कि राजा प्रसेनजीत ने अपने धनी मित्र धनंजय को उसकी पुत्री विशाखा के साथ जो मगध से आए थे उन्हें व्यापार बढाने के लिए साकेत में बुलाकर स्थापित किया था।

8. जम्बूद्विपपन्नाती (जम्बूद्विप प्रज्ञाप्ति) पृ.154 पर जैनों ने अयोध्या को विनिता (विनया) कहा है। (जिनप्रभासुरी पृ.78) विनिता का निर्माण धनबैमाई (धनपतीमती) किया था) उस नगर का आकार 9 योजन चौड़ा और 12 योजन लंबा बताया गया था।

11. (रामायण 7.100.20) राम ने गोप्रतारा पर सरयू में डुबकी लगाकर आत्महत्या की थी।

29. इसी तरह बौद्ध धर्म के मौर्यकालीन स्तूपों और बाद के स्तूपों को हिंदू परंपरा में सम्मिलित किया गया। पुरानी अयोध्या के दक्षिण में 1500 मीटर अंतर पर जो कृत्रिम टिला दिखाई देता है उसके संबंध में यही हुआ है। ह्युएनत्संग (Beal, पृ.226) ने भी इसी जगह पर स्तूप का वर्णन किया है। वर्तमान में यह टिला हिंदू धर्म का तीर्थस्थल मणि पर्वत कहा जाता है। (अयोध्या महात्म्य संस्करण B, 13.2 ff)

36. गुप्त सम्राज्य के पतन के बाद हर्ष वर्धन पुरखों मांखारी वंशी शासकों ने अपनी राजधानी अयोध्या से कनौज में स्थानांतरित कर दी थी। (C.H.I. iii पृ.gf)

37. ह्युएनत्संग ने उसके समय अयोध्या का वर्णन इस तरह किया है। –

''अयोध्या का राज्य 5 हजार ली (1600 किमी) गोलाकार आकार का था और उसकी राजधानी साकेत 20 ली (6.5 किमी) आकार की थी। इस राज्य में अनाज की उपज ज्यादा होती है और फल–फूल भी अधिक मात्रा में पैदा होते हैं। वातावरण रहने लायक है। लोग धर्मिक औरस सभ्य स्वभाव के हैं। उन्हें धर्म कार्य करने में अच्छा लगता है और धर्म को सिखने में भी अच्छा लगता है। इस राज्य में लगभग 100 संघाराम हैं और उसमें 3000 भिक्खु निवास करते हैं और वे दोनों यानों का अनुकरण करते है। वहाँ दस देव मंदिर है जिसमे अलग–अलग पंथ के पाखंडी रहते हैं। लेकिन वह संख्या में कम है। राजधानी साकेत में पुराना संघाराम है। ... उसके बगल में प्रायः नष्ट हो रही प्राचीन संरक्षक दिवार है। यह एक बड़ा हॉल था, जिसमें बोधिसत्व वसुबंधु अलग–अलग देशों के राजाओं और दुनिया के प्रसिद्ध श्रमणों–ब्राह्मणों को बौद्ध धर्म के तत्त्व समझाते थे। (Beal- पृ.224 f)

47. B.H.Smith 1969 पृ. 147+152

बृहदसंहिता 57.3 में राम का वर्णन विष्णु के रुप में नहीं किया है, बल्कि उसे बलि के साथ अर्थात (विरोचन का पुत्र) उसके रुप दिखाया है।

NOTES

1 For improving my English I am greatly indebted to Mr. Alan Entwistle. 2 Reference is often made to the famous sloka:

Käši Känti ca Mayakhya ty Ayodhya Dväravaty api/ Mathura Avantika caita sapta puri 'tra mokshada // Skanda Pur. 4.6.68. Cp. Ensink 1974, Kane IV, p. 678.

3 The identity of Säketa with Ayodhyä seems to follow from the various descriptions and locali sations of both cities in almost all sources. This identification is nowadays generally accepted. 4 D.N. II, 146.

In the Gta-jätaka (Jat. IV. 82), comprising a Buddhist version of the Krishna-Vasudeva legend, it is told that Vasudeva and his brothers in order to conquer the whole world, first besieged Ayodhya, took its king

Kälasena prisoner and then took the sovereignty of the place into their hands" before they finally settled in Dväravati (Dväraka) as world sovereigns. Apparently the possession of Ayodhya was indispensable for world-dominion (As to this legend see H. Lüders 1904).

5 M.N. I, 148, 149.

The Dhammapada Thakatha (Vol. I. p. 388) further informs us that Pasenadi once let a wealthy man (Dhananjaya), together with his daughter the well-known Višákhâ, come from Magadha, kingdom of his mighty but friendly neighbour Bimbisára, in order to settle them in Säketa so as to increase its standing. 6 Dhammapadatthakatha Vol. I. p. 388. a-paticchannena sarirena (loc. cit.).

Jambuddivapannatti (Jambudvipaprajñapti) p. 154. In the Jain context Ayodhya is known under the name Vinita (or Viniya). (Cp. Jinaprabhasüri, p. 78). Vinita is said to have been built by Dhanavaimai (Dhanapati Mati). The city is said to measure 9 yojana in width and 12 yojana in length, figures that are highly standardized and say nothing about the real proportions of the town (cp. Schlingloff 1969, p. 29 f.). In consequence of this acknowledged central position of the place it is said that the digvijaya of an Universal ruler (cakravartin) should consist of a ritual circumambulation (pradaksina) with Ayodhya 9 Jacques 1962, p. XXII. Ensink 1974, p. 73. centre, Alsdorf 1974, p. 78 f., Kirfel 1920, p. 225. as

10 The description of Ayodhya in the Ram. 1.5.7 ff. seems to be based on an ideal and stereotyped conception of how a city should be rather than on empirical evidence. (Cp. Schlingloff 1969, p. 5 ff.).

11 Ram. 7.100. The drowning took place at a fort called Gopratara (Ram. 7.100.20). 12 Mbh. 3826365 The city of Ayodhya is often mentioned in the Mbh., for instance as the residence of king Rituparna who employed king Nala as his charioteer, but in all these instances the

place has only a secular character.

13 The kingdom of Kosala probably formed part of the dominion of the later kings of Magadha, in particular the Nanda dynasty (see KSS. I, p. 37), and certainly belonged to the Maurya-empire,

14 Yugapur. 11.94-95.

15 Patanjali ad Panini III.2.11, illustrating the use of the imperfect in case of recent events not witnessed by the author himself. (Cp. Weber Ind. Stud. XIII 304 ff.). 16 J. E. Mitchiner's Introduction to his forthcoming critical edition of the Yugapurana p. 77. I am greatly indebted to John Mitchiner who gave valuable suggestions as to the period under discussion.

17 Cp. John Mitchiner, op. cit. p. 77.

18 Lamotte 1958, p. 391. 19 Gupta 1968. Michael Mitchiner 1976, Vol. 7, Chapter 21. H.C.I. I, p. 173 f. 20 Yugapur., 11116119

21 EL XX (1929), p. 54 ff. Cp. Gupta 1968, p. 118. H.C.I. II, p. 173. The inscription is to be dated epigraphical around 50 B.C.

22 The Annals of the Li-country. See Thomas 1935, p. 119. Cp. Petech 1968. 23 According to the Vayupur. 1137377 already the first Gupta-monarch, Chandragupta I (c. AD 320), ruled over Säketa (C.H.I. II, p. 4, also cp. Mookerji 1947, p. 69).

24 Arch.Survey. 1, p. 318 f. 25 Watters p. 354 f.

26 Beal p. XLIII. It appears from Fa-Hsien's description that the town was of no great importance for the Buddhist at that time, which is not surprising after the Brahmanic Sunga 27 The argument still stands open to some doubt since there are more places where the same and Gupta-rulers. legend has been recorded. (See Watters p. 374 ff.). 28 Ay Mah. B 6.11.

29 In the same way other Buddhist monuments, stüpas, dating from the times of the Mauryas and later, have probably been incorpo-

rated into Hindu tradition. This applies in particular to an artificial mound, about 1500 m. south of the old city of Ayodhya. Hsuan Tsang (Beal p. 226) mentions a stüpa at about the same locality. The present hill is a Hindu tirtha known as the Maniparvata (Ay Mah. B, 13.2ff.). (See also Arch.Survey 1, pp. 322 ff., Carnegy 1870, p. 24 containing also a good photograph of the hill). 30 Cp. Schlingloff 1969, p.41.

31 Cp. Frauwallner 1951, p. 30, n. 1.

32 Raghuvamsa 1625353842

33 H.C.I. II, p. 27.

34 As is reported in Paramartha's biography of Vasubandhu and Hsuen Tsang's journal. Paramartha pp. 283-288, Beal pp. 225 ff.). On the question of Vasubandhu see Frauwallner (See 1951.

35 The two Chinese pilgrims Fa-Hsien en Hsuen Tsang in fact provide the only extant evidence for the importance of Ayodhya in the Buddhist tradition, an importance that warranted a visit to the town on a pilgrimage. 36 As the Gupta empire disintegrated, several former vassals saw a chance of asserting their independence. One of them, the Maukhari clan, obtained sovereignty over a kingdom in North India, including also, it would seem, Ayodhya. Under their rule the capital of the kingdom was transferred to Kanauj (C.H.L. III, p. 69 f.). 37 Ayodhya of these days is thus described by Hsuen Tsang: "The kingdom (scil: of Ayodhya) is 5000 li (c. 1600 km) in circuit and the capital about 20 l (c. 6.5 km). It abounds in cereals, and produces a large quantity of flowers and fruits. The climate is temperate and agreeable, the manners of the people virtuous and amiable. They love the duties of religion, and diligently devote themselves to learning. There are about 100 sangharamas in the country and 3000 priests, who study both the books of the great and the little vehicle. There are ten Deva Temples: heretics of different schools are found in them, but few in number. In the capital is an old

sarigharama ... by the side of it are some ruined foundation walls. This was the hall in which Vasubandhu bodhisattva explained the principles of religion and preached of kings of different countries, eminent men of the world, Sramans and Brähmans". for the benefit Beal p. 224f 38 Vam.pur. 5786310

39 Gar.pur. Utt.Kh. 28.3. Brahmandapur. 34409193 Agnipur. 109.24. Kürmapur. 2.3945

40 Vi.Dh.pur. 1.13.1-13. Padmapur. Utt,Kh. 2424142 Bhagpur. 9112536

41 The puranas not mentioned in notes 38-40 do not mention Ayodhya as a tirtha. E.g. Märkandeyapurana, Vayu Purana, Matsya Purana, Vishnu Purana.

42 Schrader 1916, Smith 1975, Gonda 1977.

43 Tirthavivecanakanda p. 234 f.

44 As such I have checked Devanabhatta (as far as published), Vacaspati Misra, Dalapati Raja, and Räghunandana (see remarks in Kane I, p. 890 f.). Anantabhatta's Tirtharamakara (A.D. 16701698 seems to have contained an Ayodhyamahatmya but MSS in the Anup Sanskrit Library of Bikaner are in disorder and incomplete: under the heading of MS.Nr. 1791:

'Ayodhya Mahatmya" the greatness is sung of Mäyäpuri (= Gangadvära) and the Gangàvatara is told according to the Ramayana. (Information based on research of Prof. Dr. J. Ensink in the Anup Sanskrit Library of Bikaner, cp. Ensink 1974, p. 60, n. 12).

45 Mitra Misra, pp. 496-502.

46 The extremely complex religious field after the twelfth century has attracted comparatively little attention from Indologists until recently. The brilliant analysis of the socio-religious context of Kabir, the foremost of the Saints, contained in the introduction of Vaudeville's (1974)

translation of his Sakhis, has been of great help to me.

47 D. H. Smith 1969, pp. 147-152. Brihat Samhita 57.30. It might be significant that in the Brihat Samhita Rama is not (yet?) classified under Visnu but is separately treated, grouped together with Bali (son of Virochana).

48 Bulke 1971, passim. For possibly one of the oldest sites of Rama worship see H.C.1. III, p. 421 f., dealing with Rämagiri (= Ram?ek).

49 See Introduction of the revised ed. of the Paumacariyam by V. M. Kulkarni.

50 Many important Ramaite texts have still to be studied. First of all there are those that are ascribed to Rämänanda himself: Vaisnava matabja bhaskara, Ramarcanapaddhati several works in Hindi (see Vaudeville 1974, p. 111 n. 3). Some others are the Ananda Ramayana (dealing inter alia with ritual), Hanumat Samhita (edited by the Ramanandi Ramnarayandas, sce also Agastya Samhita and Ay. Mäh.), Ramacandra Vidhi Paddhati, Ramapujasarani (used by important of which is the probably older Päicaratrasamhitä of this name that has only partly come down to us (See Smith 1975, pp. 25-30). Distinction may be made between: (1) Weber 1864, MS in Berlin), the Sea Samhita (which seems to comprise a Rama Navami, see Smith 1975, p. 438), and the Satyopakhyana.

51 Besides this Ramaite Ag. Sam, there are several other texts with the same name, the most Ramaite text: Agastya-Sutikshna-samväda (2) Päñcarätra-text: Agastya-Brahma-samväda (3) Agastya-Narada-samvada (4) a purana like Agastya-Suka-samvada (Cp. Gonda 1977, p. 105). Moreover an original part of the Skandapurana seems also to have been called Agastyasamhita

(Cp. Eggeling's India Office Cat. Prt. VI, pp. 1320 ff. and Hazra 1940, p. 158). The Ag.Sam. edition used by me is the one edited by

Rämnäräyandas.

52 The Ag. Sam. has been quoted in: Rama-uttaratapaniya-upanisad (R.U.T.up., ed. Weber 1864541615 = Ag Sam. 716172932 Rämarcanacandrika of Anandavana (passim), Ayodhyamahatmya (Ay.Mah. B.8.1-17), the anonymous Comm. on Rämapurvatapaniya Up. (used by Weber 1864), and in almost all Dharmanibandha. Reference is made to it as the authority on ritual matters in the Adhyatma Ramayana 4.4.26.

53 Caturvargacin tämani, Vratakhanda (Vol. II, prt. 1. pp. 981-986).

54 Cp. Kane I. p. 753.

55 ram rämäya namah. Ag-Sam. 7.1-37. Another tirtha in Benares mentioned in this context is Siddhesvara.

56 It is this passage that is partly borrowed by the Ramauttaratapaniya Up. (RUTUP.), following the explanation of the esoteric sense of Avimukta in accordance with Jäbala Up. Deussen, ignorant of the origin of the relevant passage (RUTUP. $ 4,1-8) remarks: "Indes wird dieser Gedanke von unserm Autor nicht mehr verstanden oder doch verdunkelt, sofern er in den weiter folgenden Versen" (scil. quotation of Ag.Sam. 716172932 "erzählt, wie Rama dem Šiva als Gnadengabe verlichen habe, dass alle in Avimuktam Sterbenden zur Erlösung eingehen sollten. - wodurch Avimuktam doch wieder auf die Lokalität in Benares beschränkt wird". (Deussen 1921, p. 819).

57 Gonda 1977, p. 54.

58 If we compare for instance the contents of the Ag.Sam. with the ten main subjects dealt with in the Päñcaratra literature as summed up by Schrader 1916 (p. 30) we observe that actually only one topic is lacking in the Ag.Sam. viz. Temple-building', whereas Social rules (vamásramadharma) are only dealt with briefly. If we compare its contents with traditional fourfold division of a samhita (jñanapáda, yogapada,

caryapäda and kriyäpada) we observe striking similarities with many other samhita, for instance with the Padma Tantra (= Padma Samhita) (cp. summary in Smith 1975) (1) jñänapäda, Ag.Sam. 1-6: general religious schema, Visnu's avatara (Rama, whereas the vyuha-doctrine is missing), means of release (mukty-updya-vicära) etc.

(2) yogapada, Ag.Sam. 19-23: dealing with yoga exercises, postures, breathing exercises etc. (yogalaksana pranayämavidhi yamadilaksana etc.).

(3, 4) kriyapada and caryapada are more or less mixed up in Ag.Sam.7-18 and 24-34, dealing with inter alia construction of yantra and mandapa, consecration of a pitha, installation of the Råma idol (pratisthavidhi), consecration of the puja-implements and the worshipper himself (snana, bhutušuddhi- and nyasa-rites). Much attention is devoted to the mantrasastra, the püja-rite, initiation rites (diksd), while three chapters deal with the Rama festival par

59 Besides the formal and external resemblance put forth in n. 58, this hypothesis needs excellence: Ramanavami. further corroboration on internal grounds. A study of the ritual as treated in the Ag-Sam. revealed that the worship ceremonies are basically the same as those described in other Pañcaratra-texts. The results of this study will be published in due course.

60 Gonda 19601963 II, p. 167 (without argument) postulates the 9th century as date of the Rama Privata Pansija up.

61 Vaudeville 1974, p. 100 f.

62 Vaudeville 1974, p. 111.

63 Bhandarkar 1913, p. 67.

64 Cp. Vaudeville 1974, p. 101.

65 Like the older tantric Sahajiya cult in Bengal intermingled with the waves of the Vaisnava. theistic position (i.c. Rama), absorbed the

bhakti current and was transformed to the bhakti, especially as initiated by Caitanya, and resulting in Bengal-Vaisnavism (Dimock 1966, pp. 1-40), so the older Päñcarätra school of North India, modified already towards a more Ramabhakti cult as we still know it today. See also below.

66 Gonda 1977, p. 49.

67 Ag.Sam. 27.1-10. E.g. Gonda 19606311 p. 169.

69 An important source of the rather spurious tradition that Ramananda was opposed to caste is the Bhaktamála of Nabhaji (c. A.D. 1600) and its commentary by Priya Das (c. A.D. 1712). Another important but recent text of the Ramanandi sect is the Ramananda Digvijaya by Trivedi. The author discusses the biography of Ramananda in his lengthy Introduction. 70 The order of Rämänandis is one of the most important Vaisnava sects of present-day North India. It has several centres in Ayodhya, including the important Ba?a Sthan. According to the Census of India of A.D. 1891 there were 1474 Ramanandis living in Ayodhya (see Crooke 1896, 1, p. 118). (Cp. n. 77) 1 The opinions fall into two groups: according to one group of scholars (Bhandarkar, Bagchi, Ghurye and Vaudeville) Ramananda was born in A.D. 1299/1300, at least his floruit fell in the fourteenth century. The other group (Macauliffe, Farquhar, Gonda 19601963 II, p. 169) dates him in the fifteenth century. The latter date seems however almost exclusively based on the traditional assumption that Ramananda figured as the guru of Kabir (A.D. 14001450 This assumption however lost much of its plausibility after the research of Vaudeville (1974. p. 110 ff.). 72 Fyz. Gaz. pp. 147-149. Carnegy 1870, pp. 2-3: these Rajputs do their utmost to 17/24 their origin back to either the Solar dynasty, or to ksatriya-circles around king Dasara Rama. Cp. Crooke 1896. IV, pp. 217-223 (s.v. Rajput). As to the Rajputs of Oudh see also Crooke s.v. Bais (Crooke 1896, 1, pp.

118-126). 73 Cp. n. 80.

74 Cp. n. 64.

75 Cp. n. 65.

76 In it Rama is homologized on the one hand with the paramàtman, on the other hand with parabrahman. The creation of the illusive world by Räma's mäyä is personified by Sitä. The considers the kriyamarga preliminary to the path of knowledge (ffanamärga, which is some times said to consist of the bhaktimarga), and it rejects the so-called samuccaya-doctrine. (See in particular von Glasenapp 1951).text tries to connect the doctrine of the Advaita Vedanta with a belief in Rama's grace. Though the Ag.Sam. is mentioned as the authority in ritual matters (see also note 52), the Adhy. Ram.

77 Cp. Vaudeville 1974, p. 113 f. The Ramapujašarani, a text book on Ramaite ritual, reports a dispute between two branches of the sampradaya called the 'New ones' navinas (represented by "Rämapärshadas') and those who adhere to the older tradition (Weber 1864, p. 282). The Ramapujasarani may be tentatively dated in the sixteenth or seventeenth century, or even earlier.

78 Cp. Vaudeville 1974, p. 81-119.

79 E.I. Vol. XIV, (1917-18) pp. 192-209. As to this king Candradeva see H.C.L. V, p, 51f.

80 E.H.I. II, p. 328 f. This Muslim conquest seems to have taken a heavy toll. The first governor of the province became Malik Nasir-ud-din Mahmud, the elder son of sultan Shams ud-din who had overthrown and sent to hell the accursed Bartuh (?) under whose hands and sword more than one hundred and twenty thousand Musulmans had received martyrdom. He overthrew the rebel infidels of Oudh and brought a body of them into submission". (Tabaqat i-Nasiri 21.2, E.H.I. p. 328 f.). A well organized and fierce resistance by an alliance of original Bhars' (hence

the name Bartuh) and Rajputs?

81 E.H.I. passim.

82 Fyz. Gaz. 147 ff. See also Crooke 1896, II, pp. 1-12. S. M. Singh 1962.

83 The end of the fourteenth century saw the collapse of the Delhi Sultanate and from A.D. 1393 Oudh formed part of the independent Moslem kingdom of the Sharqi-dynasty, which lasts until 1479. Under the Sharqis the capital of the province of Oudh is changed to Jaunpur. When in 1479 the Sharqi-dynasty is overthrown by Bahlul Lodi the province remains a part of the 'Lodi-federation' until the coming of the Moguls.

84 Just those very passages of the Babur nama relating to Babur's activities in the year A.H. 934 (= A.D. 1527), the year in which he must have visited Ayodhya, are only scantily transmitted. But one fragment may refer to Ayodhya: "After spending several days pleasantly in that place where there are gardens, running-waters, well-designed buildings, trees, particularly mango-trees, and various birds of coloured plumage, I ordered the march to be towards Ghazipur". (Babur nama. Translate. Beveridge vol. II, p. 680). Babur destroyed the Hindu temple on Räma's birthground (Janmasthana) and replaced it by a mosque. See below. (Babur näman vol. II pp. 653-680. N. B. discussion in the notes).

85 We are in possession of a Jain text, the Tirthakalpa of Jinaprabhasuri, dating from the first half of the fourteenth century, which describes Ayodhya as an important Jain and Hindu centre. The text mentions Svargadvära, already known from the inscription (see supra) and several other Hindu tirthas (loia-titthäni) also known from the Ay.Mäh. See p. 11.

86 Allchin 1964 p. 38 f. Allchin's source is a biography of Tulsi Das, Gautama Chandrika, dating from A.D. 1624. Cp. Vaudeville 1955.

87 The foundations of the adjacent Faizabad were laid by the first Nawab of Oudh, Sa'ädat Khan 17201739 The court moves to it in the time of his successor Abu'! Mansür Khân Safdar Jang (1739-1754). See Srivastava 1954. The third nawwab of Oudh Shuja -ud-daula (1754-1775) is defeated by the British at Buxar in 1764, after which he retreats to Faizabad. (Fyz. Gaz. p. 213 f.). The city is then at the height of its prosperity. Under Shuja'-ud-daula successor Asafu'd-daula the quarters are transferred to the rival Lucknow. (See S 19611945

88 Fyz.Gaz. p. 162.

89 The oldest MS. registered dates from V.S. 1850 (= A.D. 1793) (Cat. of Jodhpur-Collection prt. III A p. 214 No. 187415791 Two MSS. in our possession come from the 'Chandra Shum Shere collection in the Bodleian Library (Oxford). This collection contains c. 6600 MSS. The existence of this rich collection seems to be little known. Unfortunately it has only been catalogued provisionally and the slips are not in alphabetical order.

90 Skandapur. Vaishnava Khanda 8. This recession will be referred to as 'Ay.Mah. A'.

91 The comprehensive and the concise version have each been published once, though very few copies of the comprehensive recension seem to have been printed. This book is not available in any public library either in Holland or in Great Britain, nor have I seen any reference to it in any other text. For our acquisition of it we are greatly indebted to Mr. G. Tackema who brought it with him from Ayodhya. This recension is referred to as 'Ay Mah. B'. Both MSS from Oxford (see note 89) contain this recension.

92 To my knowledge there exists no published edition of this recension. The MSS in our possession come from BORI, Poona (the comprehensive version) and VRI, Vrndavana (concise version in Bengali-script).

This recension is referred to as 'Ay.Mäh. C'.

93 Mitra Misra, pp. 496-502

94 Mitra Misra, pp. 497-500

95 MS. in India Office Library. (E. 337510918 Cp. Hazra 1958, pp. 219 ff. The quoted passage Mitra Misra forms adhyaya 50 of this MS.

96 A Rudrayamala-uttara-tantra edited by Jivänanda Vidyasagara contains a diversity of text materials but no Ay Mah. Neither does a large MS., in the colophon called 'Rudrayämalapürvabhäga' from the Adyar Library in Madras, contain an Ay.Mäh. As to this purvabhäge Avalon remarks: "Thus the Prakäräntara mantrabhidhana is reputed to be part of the Rudrayamala the first portion of which, so far as I am aware, is not found". (Avalon, Tantrik Texts I, p. VI). From Dr. T. Goudriaan (Utrecht University) I have learnt that a microfilm of a R.Y.T. MS. that appears to be rather old is in the possession of the Oriental Institute. It does not contain an Ay.Mäh. however, Also cp. H.T. p. 11.

97 See p. 6. Even the three chapters dealing with Ramanavami do not mention Ayodhya!

98 It is intended that these different recensions, together with a translation and commentary, will be published in due course. For the time being an outline of the approach to be taken is suggested here

99 Hacker 1961, p. 492: "Bei all diesen Arbeiten zur Geschichte des Hinduismus sollte die Methode, wenn man von Texten ausgeht, zunächst auf die Philologie beschränkt sein, d.h. ethnologische, anthropologisch-archaeologische u.a. Erwägungen sollten fürs erste strikt beiseite gehalten werden. Erst wenn Ergebnisse vorliegen, kann das Gespräch mit den ander historischen Wissenschaften - das allerdings wichtig und notwendig ist wirklich fruchtbar werden".

100 M. Biardeau 1968 and 1970.

101 A. Ghosh 1973, p. 66.

102 Beal XLII. Cp. n. 26.

103 Beal I, p. 224 . Cp. n.

104 Jinaprabhasüri Tirthakalpa, pp. 78-81.37.

105 Ay. Mah. A Chapter 10 (Skandapur. 2.8.10). 06 Besides having an evil nature, Raksasas also have their benevolent protecting (i.e. deterrent)

107 Jinaprabhasüri, p. deities. (Cp. Ram. 7.4.13).79. side, and figure as

108 Ay Mah. A. Chapter 10 (= Skandapur. 28101825

109 For text and translation of these inscriptions see Bäbur nama, transl. by A. S. Beveridge, Appendix U.

110 Ay Mäh. B (comprehensive version), 6281033 II See Bulke 1971, p. 748.

112 Bus. Ram. I. 102118119 Ay.Mäh. B (comprehensive version), 7.1-30; 7.46-8.17.

114 Sri-Hanuman Garhi ka Itihas pp. 6-14.

115 Cp. Vaudeville 1974, p. 113 n. 2; G. W. Briggs 1938, pp. 88, 150.

116 Ghurye 1953, p. 203.

117 R. Tripathi 1966, p. 7.

118 Reference is made to the Ram.Utt.Kh. 7982425 as the locus classicus of this myth, though a castle is not mentioned here. The legend of Rama's suicide together with all the inhabitants of Ayodhya, incompatible with this new myth, is not at all derogatory to this new invention.

119 G. Sarma 1973, p. 38.

ABBREVIATIONS

Adhy. Ram. - Adhyatma Ramayana. With the com mentaries of Narottama, Ramavarman and Gopala Chakravarti. Critically Edited from Original Manuscripts by Nagendranath Siddhantaratna. Introduction by P. C. Bagchi. Calcutta 1935. 2 Vols. Calcutta Sanskrit Series No. XI.

Agnipur. - Agnipurâna of Maharsi Veda Vyasa. Edit. by Baladeva Upadhyaya. Varanasi 1966. Kashi Sanskrit Series 174.

Ag.Sam. - Agastya Samhita (edit by] Ramanarayana Dasa. [Publ. by Seth Choteläl Laksmichand, bookseller. Ayodhya Printed at the Jain press, Lucknow 1898.

An Ram - The Anandaramayana by Valmiki. With Hindi translation called Jyotsna", by Ramtej Pandey. Edit by Yugal Kisor Dvivedi. Väränasi 1977.

Arch. Survey - Archaeological Survey of India. Vol. I. Four reports made during the years 1862636465 by Alexander Cunningham. Simla 1871.

AV - Atharva Veda Sanhita. Herausgegeben von R. Roth and W. D. Whitney. Zweite verbesserte Auflage besorgt von M. Lindenau. Berlin 1924.

Avalon, Tantrik texts - Tantric Texts. Edit. by Arthur Avalon. Vol. I. Tanträbhidhäna with Vija Nighantu and Mudranighantu, edit. by Täränätha Vidyaratna. London, Calcutta 1913.

Ay. Mah. A - Ayodhya Mahatmyam. In:

Ay. Mäb. B Sriskandamahapurana. Vaishnava Khanda 8. (I) (comprehensive) Ayodhya Mahatmya from

the Rudra yamala tantra. Edit. by Ramanäräyanadasa. Ayodhya s.d.

(II) (concise): Ayodhya Mahatmya from the Rudrayamala tantra. Edit. by Babu Phataha Näräyanasimhaji. Kaši 1925 - A.D.1868)

Ay Mah.Transl. - Translation of the Ayodhya Mähatmya, or "Pilgrimage to Ayodhya by Ram Näräyan. In: Journal of the Asiatic Society of Bengal. Vol. XLIV prt. I (1875), pp. 130-178.

Beal - Si-Yu-Ki. Buddhist records of the Western World. Transl. from the Chinese of Hiuen Tsang (AD629) by Samuel Beal. London 1884. pp. XXIII-LXXXIII: Fo-Kwo-Kt. The Travels of Fa-Hien.

Bhagpur. - Srimad Bhagavata Maha Purana [by) Veda Vyasa. With Hindi commentary. Gorakhpur 2008 (= A.D. 1950). 2 Vols.

Bhus Ram. - Bhusundi Ramayan. Poorva Khand. English Introduction by V. Raghavan. Edited by B. P. Singh. Varanasi 1975

Brahmandapur. - Brahmanda Purana of sage Krsna Dvaipayana Vyasa. (With Introduction in Sanskrit and English and an Alphabetical Index of Verses). Edit. by J. L. Shastri. Delhi etc. 1973.

Cat. of Jodhpur -Collection - A Catalogue of Sanskrit and Prakrit MSS. in the Rajasthan Oriental Re search Institute (Jodhpur Collection).

Edit. by Padma Shri Muni Jinavijaya. Jodhpur 1964.

D.N. - The Digha Nikaya. Edit. by T. W. Rhys Davids and J. Estlin Carpenter. London 189019113 Vols. Pali Text Society.

E.H.I. - The History of India as told by its own Historians. The Muhammadan Period. Edited from the posthumous papers of the late H. M. Elliot by John Dowson. London 18671877 8 vols.

E.1. - Epigraphia Indica and Record of the Archaeo logical Survey of India, edit. by F. W. Thomas (Vol. III-Vol. XV) published under the authority of the Government of India as a supplement to the Indian Antiquary. Vol. XIV. Calcutta/ Bombay 1917-1918.

Fyz.Gaz. - Fyzabad: a Gazetteer being Volume XLIII of the District Gazetteers of the United Provinces of Agra and Oudh by H. R. Nevill. Allahabad 1905.

Gar.pur. - Garuda Puranam of Maharsi Veda Vyasa. Edit. with Introduction, indexes and textual criticism (in Hindi) by Ramshankar Bhattacharya. Varanasi 1964. Kashi Sanskrit Series 165.

H.C.I. - The History and Culture of the Indian People. Edit. by R. C. Majumdar (and others). Bombay 1951197711 Vols. Bharatiya Vidya Bhavan,

HT - Hindu Tantrism by Sanjukta Gupta, Dirk Jan

Hoens and Teun Goudriaan. Leiden 1979. Handbuch der Orientalistik. Zweite Abteilung 'Indien'. Vierter Band, Zweiter Abschnitt.

Jat. - The Jätaka together with its commentary being tales of the anterior births of Gotama Buddha. Edit by V. Fausbøll. London 877–1897. 7 Vols. Reprint Pali Text Society 19621964

Kane - History of Dharmasastra (ancient and mediaeval religious and civil Law in India) by P. V. Kane. BORI, Poona 1930-1962 (revised edition 1968). 5 vols.Government Oriental Series, class B No. 6.

KSS - Katha Sarit Sagara. Die Märchensammlung des Sri SomadevaBhatta aus Kaschmir. Erstes bis fünftes Buch. Herausgegeben vonHermann Brockhaus. Reprint. Hildesheim/ New York 1975.

Kürmapur. - The Kürma Purana. Crit. Edit. by Anand Swarup Gupta. Varanasi 1971. All-India Kashiraj Trust.

Mbh. - The Mahabharata for the first time critically edited by V. S. Sukthankar, with the cooperation of S. K. Belvalkar, A. B. Gajendragadkar, P. V. Kane, R. D. Karmarkar, P. L. Vaidya, M. Winternitz, R. Zimmermann, and other scholars and illustrated by Shrimant Balasaheb Pant Pratinidhi. [Since 1943 edit. by S. K. Belvalkar). Bhandarkar Oriental Re

search Institute, Poona 1927-1959 19 vols.

M.N. - The Majjhima-nikaya. Edit. by V. Trenckner, Robert Chalmers and (C. A. F. Rhys Davids. London 1888–1925. Reprint: London 1964-1960 4 vols. Pali Text Society.

Padmapur. - Sripadmam mahapuranam. Venkateswara press, Bombay 1927.

Ram. - The Välmiki-Ramäyana. Crit. edited for the first time by a board of Editors. Baroda 1960-1975 7 Vols.

R.Y.T. - Rudrayamala, a treatise on Tantra Sastra, edit. by Jibananda Vidyasagara. Saraswati Press. Calcutta 1892 [First published in Tantrasara by Krsnänanda Vägisa Bhattacarya. Calcutta 1877 1884. 2 vols., vol. II). [Third edition, Calcutta 1937].

Skandapur. - Sriskandamahapurana. Venkateshwar Steam Press, Bombay samvat 1965/66 (= A.D. 1908-9). 6 vols.

Vampyr. - The Vämana Purana. Crit. Edit. by Anand Swarup Gupta.I Varanasi 1967. All-India Kashiraj Trust.

Väyupur. - The Vayu Purana. Edit. by Rajendra Lal Mishra. Calcutta 1880-1888. 2 Vols. Bibliotheca Indica Work 85.

Vi.Dh.pur. - Visnudharmottaramahapurana. Venkatesvara - press, Bombay samvat 1969 (- A.D. 1912).

Watters - On Yuan Chwang's travels in India (A.D. 629-645) by Thomas Watters. Edited after his

death by F. W. Rhys Davids and S. W. Bushel. With two maps and an itinerary by Vincent A. Smith. (Indian Edition) Delhi 1961.

Weber Ind.Stud. - Indische Studien. Zeitschrift für die Kunde des indischen Altertums. Im Vereine mit mehreren Gelehrten herausgegeben von Albrecht Weber. (reprint) Hildesheim 1973. 18 Vols.

Yugapur. - A critically edited text of the Yuga-Puräna by D. R. Mankad. In: Journal of the United Provinc Historical Society XX (1947) PP. 32-64

BIBLIOGRAPHY

Abu'-l-Fazl: 1977, The Akbar Nama. History of the reign of Akbar including an account of his predecessors. Transl. from the Persian by H. Beveridge. Delhi (reprint).

Allchin, F. R.: 1964, Tulsi Das. Kavitavali. Translated and with a Critical Introduction by F. R. Allchin London. Alsdorf, Ludwig: 1974, Kleine Schriften. Herausgegeben von Albrecht Wezler. Wiesbaden,Glasenapp-Stiftung Bd. X. pp. 71-100: 'Zur Geschichte der Jaina Kosmographie und Mythologie [Ursprünglich in Z.D.M.G. 92 (1938) pp. 464-493)

Ananda Vana: 1925 , Ramarcanacandrika. [Edit. by] Väsudeva Šarman. Niršana Sagara press, Bombay.

Bibur náma: 'The Baburnama in English (Memoirs of Babur). Transl. from the original Turki Text of Zahiru 'd-din Muhammed Babur Padshah Ghazi by Annette Susannah Beveridge. Issued in four Fasciculi: Farghana 1912 - Kabul 1914 - Hindustan 1917. - Preface Indices etc. 1921 - London 1922. 2 Vols.

Biardeau, Madeleine: 1968, 'Some more considerations about textual criticism', Purana X, No. 2, pp. 115-123.

Biardeau, Madeleine: 1970, "The story of Arjuna Kärtavirya without seconstruction',

XII, No. 2, pp. 286-303. Briggs, George Weston: 1938, Gorakhnath and the Känphata Yogis. Calcutta. Bulke, K.: 1971, Ramkatha. (Utpatti aur vikas). Prayag 1971.

Carnegy. P.: 1870, A Historical Sketch of Tahsil Fyzabad, Zillah Fyzabad, including parganas Havelt-Oudh and Pechhimrath, with the old capitals Ajudhia and Fyzabad by P. Carnegy. Pargana Mangalsi by J. Woodburn and pargana Amsin by C. S. Noble. Lucknow. Crooke, W.: 1896, Tribes and Castes of the North-Western Provinces and Oudh. Calcutta. 4 vols.

Dalpati Raja: 1936, Nrsimha Prasada. Tirthasara. Edit. by Surya Narayana Sukla. Allahabad. Princess of Wales Saraswati Bhavana texts No. 62.

Deussen, Paul: 1921, Sechzig Upanishads des Veda aus dem Sanskrit übersetzt und mit Einleitungen und Anmerkungen versehen. Leipzig 1921 3. Devana Bhatta: 1921,

Smrticandrika of Devanabhatta Akaucakanda. Edit, by R. Sharma Sastry. Mysore. University of Mysore Oriental library publications, Sanskrit Series No. 56.

Dhammapadatthakatha: 1906. The Commentary on the Dhammapada. Edit by H. C. Norman.London. 5 vols. Pali text Society.

Dimock, Edward C.: 1966, The place of the Hidden Moon. Erotic Mysticism in the Vaisnava sahajiya Cult of Bengal. Chicago/London.

Ensink, J.: 1974, The problems of the study of Pilgrimage in India', Indologica Taurinensia 2. p. 57-74, Torino.

Frauwallner, Erich: 1951, On the date of the buddhist master of the Law Vasubandhu. Roma. Serie Orientale Roma III.

Ghosh, A.: 1973, The city in early Historical India. Simla.

Ghurye, G. S.: 1953, Indian Sadhus. Bombay.

Glasenapp, Helmuth von: 1951, Zwei philosophische Ramayanas. Wiesbaden. Ak. d. Wiss. und d. Lit, in Mainz. Abh. d. Geistes, und Sozialwiss. Kl. Jahrgang 1951. No. 6.

Gonda, Jan: 1960-1963, Die Religionen Indiens. 1. Veda und älterer Hinduismus. II. Der jüngere Hinduismus. Stuttgart, 2 vols. Die Religionen der Menschheit. Band 11, 12.

Gonda, Jan: 1975, Medieval religious Literature in Sanskrit. Wiesbaden. A History of Indian Literature. Vol II. 1.

Gupta, P. L.: 1968, The Coinage of the Local Kings of Northern India and the Date of Kaniska', Papers on the Date of Kaniska. Edit. by A. L. Basham, Leiden. pp. 114–120.

Hacker, Paul: 1961, Zur Methode der geschichtlichen Erforschung der anonymen Sanskrit literatur des Hinduismus', ZDMG Bd. 111. N.F. Bd. 36, pp. 483-492.

Hanuman Samhita: Edit by Rämanaräyana Dasa etc. Followed by Pañchadha bhaktirasa, a tract on the religious emotions, by Rämanarayana Dasa. s.d.

Hazra, R. C.: 1940, Studies in the Puranic Records on Hindu rites and customs. Dacca.

Hazra, R.C.: 1958, Studies in the Upapuranas. Vol. I (Sama and Vaishnava upapuranas). Calcutta. Calcutta Sanskrit College Research Series, No. II. Hemadri: 1878, Caturvarga Cintamani. Vol. II.

Vrata Khanda Prt. 1. Edit. by Bharatachandra Siromani. Calcutta.

Jacques, Claude: 1962, Gaya Mähatmya. Edition critique, traduction française et introduction par Claude Jacques. Pondichéry. Publications de l'Institut Français d'Indologie No. 20.

Jambuddivapannatti: 1977, Jambuddiwapannatti

(Jambüdvipaprajñapti) with the (Sanskrit) gloss of Dharmasagara Janivara. Edit. by Labhsägargani. Gopipura. Agamoddharaka Series 57.

Jinaprabhasüri: 1923, Tirthakalpa, a treatise on the sacred places of the Jainas, by Jinaprabhasüri. Edit. by D. R. Bhandarkar and Kedarnath Sähityabhüsana. Calcutta. Bibl. Ind. 238 (N.S. No. 1459).

Kirfel, Willibald: 1920, Die Kosmographie der Inder nach den Quellen dargestellt. Bonn/Leipzig. Laksmidhara Bhatta: 1942. Kritya Kalpataru Tirthavivecanakanda. Edit. by Rangaswami Aiyangar. Gaekwad Oriental Series No. XVII. Baroda.

Lamotte, E.: 1958, Histoire du bouddhisme Indien. Des origines à l'ère Saka. Louvain, Bibliothèque du Muséon 43.

Lüders, Heinrich: 1904, 'Die Jatakas und die Epik', ZDMG 58, pp. 687-714.

Mitchiner, Michael: 1976, Indo-Greek and Indo-Scythian Coinage. Vol. 7. The Decline of the Indo-Scythians. Contemporaries of the Indo-Scythians. London (Indo-Greek and Indo Scythian Coinage, 11 Vols.).

Mitra Misra: 19171918 Viramitrodayah Vol. X. Tirthaprakasah. Edit. by Visnu Prasad. Benares. Chowkhamba Sanskrit Series 239, 240, 241, 242, 247, 248.

Mookerji, Radhakumud: 1947, The Gupta Empire. Bombay.

Paramartha: 1904, "The Life of Vasubandhu'. Translated by J. Takakusu, Toung pao Archives pour servir à l'étude de l'Histoire, des langues, de la géographie et de l'ethnographie de l'Asie orientale. Série II, Vol. V, pp. 269-296.

Patañjali: 1962–1965, The Vyakarana-mahabhasya of Patanjali. Edit. by F. Kielhorn. Third Edition revised and furnished with additional readings, references and select critical notes by K. V. Abhyankar. Poona. 2 Vols.

Petech, Luciano: 1968, Kashmiri and Tibetan Materials on the Date

of Kaniska', Papers on the Date of Kaniska. Edit. by A. L. Basham. Leiden. pp. 244-246.

Sarma, Gudunji: 1973, Sri-Ayodhya ji ka Pracin Itihas ya Ayodhya-gaid. Ayodhya.

Schlingloff, Dieter: 1969, Die altindische Stadt. Eine vergleichende Untersuchung. Wiesbaden Abh. d. Ak. d. Wiss. und d. Lit. in Mainz. Geistes, und Sozialwiss. Kl., 5.

Schrader, Otto F.: 1916, Introduction to the Päñcaratra and the Ahirbudhnya Samhita. Madras.The Adyar Library Series 5.

Singh, Shiw Mangal: 1962, "The ancient Bhars and Their Ruined Settlements in the Ganga Ghaghara Doab West', The Nat. Geographical Journal of India. Vol. VIII prt. 3-4, p. 183-196.

Smith, Daniel H.: 1969, A sourcebook of Vaishnava Iconography according to päñcaratragama texts, Sanskrit texts compiled and arranged with commentary in English by Daniel H. Smith.and K. K. A. Venkatachari (Sanskrit Editor), illustrations by V. Ganapathi. Madras.

Smith, Daniel H.: 1975, A descriptive bibliography of the printed texts of the Pañcaratragama. Volvo. Baroda. Gaekwad Oriental Series 158.

Srivastava, Ashirbodi Lal: 1961-1945, Shuja-Ud Daulah (A Thesis approved for the Degree ofDoctor of Letters by the Agra University in 1938). Vol, I 1754-1765, Vol. II 1765-1775. Second revised edition, Vol. I, Delhi/Agra/ Jaipur 1961. (First ed. 1939). Vol. II, Lahore 1945,

Srivastava, Ashibodi Lal: 1954, The first two Nawabs of Awadh. Foreword by Jadunath Sarkar. Second Ed. Revised and Corrected, Agra 1954 (First ed. 1933).

Thomas, F. W.: 1935, Tibetan literary texts and documents concerning Chinese Turkestan. Selected and translated by F. W. Thomas. Part I: Literary Texts. London. Oriental Translation Fund. New Series Vol. XXXII.

Tripathi, Ramrak?a: 1966, Sri-Hanumangarhi ka Itihas. Ayodhya (1970²).

Trivedi, Bhagavad Das Brahmacari: 1927, Rämanandadigvijaya. (A (Sanskrit) Poem on the life and religious career of Ramananda. With Sanskrit Commentary called Balabuddhiprasadini, Hindi translation called Pataka, and Hindi introduction by the author). Edit. by Ramasobhadasa Vaisnava. Abu (printed on the Utkrsta Press in Ahmedabad).

Vacaspati Mišra: 1912, Tirthacintämani. Edit. by Kamala Krsna Smriti Tirtha. Calcutta. Bibliotheca Indica.

Varahamihira: 1968, Brihat Samhita with the Commentary of Bhattotpala, edited by Avadha Vihäri Tripathi. Varanasi: 2 Vols. Sarasvati Bhavan Granthamala. Vol. 97.

Vaudeville, C.: 1955, Étude sur les sources et la composition du Ramayana de Tulsi Das. Paris.

Vaudeville, C.: 1974, Kabir. Volume I, Oxford.

Vimalasüri: 1962, Paumacariyam with Hindi Translation. Part I. Edit. by H. Jacobi. Sec, edition revised by Muni Shri Punyavijaya, translate. into Hindi by Shantilal M. Vora. [Introduction by V. M. Kulkarni). Varanasi. Prakrit Text Society Series No. 6.

Weber, A.: 1864, Die Ramatapaniya Upanishad, in: Abh. d. Kön. Ak. d. Wiss. zu Berlin. Phil.und Hist. Abh. pp. 271-373. Berlin.

●●●

परिशिष्ट-7

महाभारत में 'बुद्ध' शब्द का जिक्र
-ग्रेग वेली

महाभारत और प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में शाब्दीक साम्यता के बारे में मेरा जो शोध चल रहा है उसी पर आधारित यह शोधनिबंध लिखा गया है। लेकिन सामान्य शब्दावली के अध्ययन के अनुसार, कुछ श्लोकों और शब्दो में थोड़ा बदलाव किया गया है। इसमें पहला शब्द अध्ययन करने लायक है - बुद्ध शब्द और इस शब्द के अनुरुप दूसरे शब्द महाभारत में कैसे इस्तेमाल किए गए हैं? सिद्धार्थ गौतम के ज्ञानप्राप्ति के बाद बुद्ध बनने के संदर्भ में महाभारत में बुद्ध शब्द का इस्तेमाल किया गया है या बुद्ध संकल्पना को लेकर वह शब्द इस्तेमाल किया गया है। बौद्ध दर्शन का अप्रत्यक्ष रुप में जिक्र करने के लिए जानबूझकर महाभारत के लेखकों ने बुद्ध शब्द का इस्तेमाल किया है या हिंदू धर्म के विस्तृत दैववादी मोक्षधर्म प्रवण जैसे संदर्भ में बौद्ध दर्शन को निगलने के लिए क्या महाभारत में बुद्ध शब्द का इस्तेमाल किया गया है? या ऐसा कुछ भी संबंध नहीं है? एक मुख्य समस्या यह है कि भारत में धार्मिक तत्त्वज्ञान में बुद्ध मूल शब्द का जोरदार तरीके से इस्तेमाल हुआ है। इसलिए किसी खास धार्मिक विचारधारा से इस शब्द को जोड़ना भी असफल प्रयास हो सकता है। फिर भी **महाभारत में बुद्ध शब्द 131 बार आया है। इसलिए इस शब्द से संबंधित प्रत्येक संदर्भ का बारिकी से अध्ययन होना जरुरी है।** इसके बावजूद भी बुद्ध शब्द के बारे में यह काम इतना आसान नहीं होगा। क्योंकि बुद्ध+ति से मिलकर बुद्धि शब्द बना है और महाभारत में यह शब्द हजारों बार आया है।

(1. लईस गोमेज (1999-693) ने सांख्य शब्द का अचूक अर्थ बताते हुए कहा ''अगर सचमुच कोई ऐतिहासिक संबंध है तो यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि उसका संबंध एक मुख्य विचारधारा और उससे संबंधित अन्य विचारधाराओं से है या सर्वसामान्य सांस्कृतिक जीवन का एक सर्वसामान्य शब्द है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वर्तमान जानकारी के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि सांख्य शब्द की समानता नीचले स्तर की सांख्य या ऊपरी स्तर की सांख्य विचारधारा से संबंधित है।)

प्राथमिक आवश्यकताएं

131 बार बुद्ध का महाभारत में जिक्र के संदर्भ में केवल बुद्ध, अबुद्ध या बुद्धवत शब्द 43 बार आया है।[2] (तुलनात्मक अध्ययन दृष्टि से देखा जाए तो संपूर्ण रामायण में बुद्ध शब्द से संबंधित अन्य जोड़ा जैसे अनु, अभि, अवा; प्रा, प्राती, वि और साम शब्द इस्तेमाल हुए हैं। कुछ जगह पर बुद्ध शब्द का सीधा अर्थमुक्त शब्द बुद्धिमत या बुद्धि के रुप में आया है। (जैसे की 3.76.12; 12.292.48; 12.293.3) और यह शब्द और बुद्ध से संबंधित अन्य जोड़ शब्द एक ही श्लोक में बार-बार आया हैं। सामान्य तौर पर हम कह सकते है कि बुद्ध शब्द यह दर्शाता है कि उसपर विचार करने वाले लोगों की एक खास ऊंचाई तक पहुंच हो चुकी है, जहां पर कुछ खास अध्यात्मिक शब्दावली उपलबध हो सकती है और पहले की अज्ञान अवस्था से छुटकारा पाकर जागृति की अवस्था प्राप्त हो सकती है।

महाभारत में बुद्ध शब्द का जिक्र जो 82 बार आया है (जोड़ शब्द या केवल बुद्ध शब्द) वह शांतिपर्व में भी आया है और 14 बार अरण्यक पर्व में आया है। शांतिपर्व के 82 बार जिक्र में ये केवल 5 बार बुद्ध शब्द का जिक्र मोक्ष धर्म पर्व के बाहर के हैं। बुद्ध शब्द के संदर्भ में और अधिक वर्गीकरण सांख्य ग्रंथ (जिसमें 47 बार बुद्ध शब्द का जिक्र है) और सांख्यतेर ग्रंथ (इसमें 84 बार बुद्ध का जिक्र है) इन ग्रंथो में अनेक बार अलग-अलग अर्थो में बुद्ध शब्द का इस्तेमाल किया गया है। खासकर मैने सांख्य अर्थ या सामान्य अर्थ में बुद्ध शब्द को स्पष्ट किया है और सामानार्थी बुद्ध शब्द को भी अलग-अलग उपविभागों में अर्थ निकाला है।

महाभारत में केवल दो बार ही बुद्ध का स्पष्ट जिक्र है और वह भी विष्णु के अवतार के संदर्भ में है। वह दोनों संदर्भ परिशिष्ट में नीचे दिये गए हैं।

''बुद्धरुपम समस्थाया सर्व धर्म परायानाहा।-महाभारत 12.7.17।
सुद्धोधनासुतो बुद्धो मोहाईस्यानी मानवान।-महाभारत 12.31.4
सुद्राह श्रद्धेसु भोजयन्ते माई बुद्धत्वम अगाते-महाभारत 12.31.5)''

व्याख्या-

मैनें परिच्छेद 6 अध्ययन के लिए आरंभ में लिए हैं, जिनमें से 3 सांख्य ग्रंथों के है। इसमे कोई व्यक्ति बुद्ध जैसा है, इसका स्पष्टीकरण बता देने के लिए बुद्ध शब्द का इस्तेमाल किया गया है। महाभारत के 3.34.65 श्लोक में बुद्धिबल खेल के वक्त

सभागृह में कौरव के खिलाफ लड़ने के बजाए युधिष्ठिर 12 सालों तक वन में जाने का निश्चय करता है। तब भीष्म उसे प्राचीन हवाला देकर समझाने की कोशिश करता है या अभी भी वे वन में ही हैं, ऐसा समझाने का प्रयास करता है। युधिष्ठिर के साथ चर्चा करते समय भीष्म उसे बताता है कि धर्म और अर्थ संभालने चाहिए, लेकिन धर्म का पालन करते वक्त व्यक्ति को थोड़ा ढीला रवैया अपनाना चाहिए।-

इवाम इवा मनुसेंद्रा धर्माम व्याक्तवल्पकम नरह।
धर्मम अपनोती सा बुद्ध इतिहा निश्चितः।।
अमित्राम मित्रासंपन्नाम मित्रेर भिनदांति पंडितः।

अर्थात,-''छोटा धर्म छोड़ने पर व्यक्ति बड़ा धर्म प्राप्त करता है और उससे वह बुद्ध के समान समझा जाता है। (बुद्धा इति निश्चितः) इसी तरह बुद्धिमान लोग (पंडितः) दुश्मन को उसके दुश्मन के साथ दोस्ती बनाकर खत्म करते हैं।...''

- 3.3465 a-66b; भाषांतरकार बुटनर 1975 : 298

इसी अर्थ से द्रोपदी और अन्य पांडवों ने युधिष्ठिर के खिलाफ वाद-विवाद किया है। वह छोटा धर्म पालन करने का मत उनके सामने रखता है। लेकिन अनेक बार उसको इस मत के लिए अपमानित होना पड़ता है और तकलीफें सहनी पड़ती है। इसमें अनेक बार बड़े पैमाने पर बुद्ध से संबंधित चर्चा हुई दिखाई देती है और बुद्ध के जैसा ही बुद्धिमान बनना (बुद्धा इति निश्चितः) यह विधान दो बार (3.30.23, 3.33.15) इस्तेमाल हुआ है। सत्य को दृढ़तापूर्वक पेश करने के लिए इस विधान का इस्तेमाल युधिष्ठिर ने किया है। कठोर राजनीतिक या युद्धजन्य स्थिति को ध्यान में रखकर अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करना चाहिए, ऐसा भीष्म युधिष्ठिर को बार-बार समझाता है। ऐसी स्थिति में धर्म का पालन कम हुआ तो भी चलेगा, ऐसा भीष्म का कहना है। उस पर अध्याय के अंत में युधिष्ठिर तीव्र शब्दों में नाराजगी जाहीर करते हुए भीष्म के कथन को नकार देता है। (3.35.21) ऊपर के कथन में बुद्ध के अर्थ में जो श्लोक आया है वह धर्म के संदर्भ में व्यक्ति के रुप में बुद्ध की तरफ इशारा करता है या राजनीतिक रणनीति के तौर पर भीष्म विद्वतापूर्ण अपने विचार नीचे दिए हुए श्लोकों के पंडितों की तरह व्यक्त करता है, यह समझ में नही आता।

दूसरे परिच्छेद में भीष्म के मत के विरुद्ध संजय अपने विचार व्यक्त करता है और

पांडवों का दूत बनकर युद्ध टालने के लिए उन्हें संदेश देते हुए आखिरी प्रयास करता है और विनती करता है कि वह युधिष्ठिर से आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने को छोड़कर युद्ध के मैदान में उतरना ठीक नहीं है।

''निबंधानि है अर्थत्रस्नेहा पार्था ताम इसातो बद्धते धर्मा इवा।
धर्मातु याह प्रवरनिते सा बुद्धाह कामे ग्रंथो हीयते रथानुरोध।।[4]

(4- विभिन्न शब्द इसके संबंध में है जैसे की K-3 से 5 में सा बुद्धिमान B1 प्रबुद्धाह और कुछ दक्षिणी ग्रंथो में G1.4.5 में सर्व बुंधुह, KG3 और M (M छोड़कर) में सा बंधुह ऐसे शब्द आये हैं।

अर्थात- **''सत्ता संपत्ति की प्यास (अर्थ) यह आदमी को हिला देती है पार्थ जो व्यक्ति इस प्यास के पीछे (तृष्णा के पीछे) दौड़ता है वह दुःखी बन जाता है। जो धर्म को चुनता है वह बुद्ध बन जाता है। (सा बुद्धाह) जो व्यक्ति वासनाओं के पीछे दौड़ता है वह व्यक्ति वासनाओं के प्रभाव में आकर खत्म हो जाता है।''**

- 5.27.5, भाषांतरकार वान बुटनर 1978 : 236

इसमें बुद्ध शब्द का इस्तेमाल पहले की तुलना में अधिक अध्यात्मिक स्वरुप में किया है। क्योंकि संजय का कहना है कि गृहत्याग सन्यासी जीवन और उसपर आधारित सन्यस्त धर्म ग्रहस्थ जीवन (जैसे की बड़ाई करना) इससे बढ़कर अच्छा है। मुझे लगता है कि यहाँ धर्म शब्द का इस्तेमाल किसी खास व्यवहारिक नियमों को लेकर ना होकर मनुष्य का दुनिया में व्यवहार कैसा होना चाहिए? इसके संदर्भ में है। सही मायने में युधिष्ठिर व्यक्तित्व का वर्णन है। लेकिन, तृष्णा जेसे बौद्ध साहित्य के शब्दों का इस्तेमाल होना खास महत्त्व रखता है। क्योंकि, यह शब्द दूसरे सन्यासों पंथों का नहीं है। इसके पहले की कुछ श्लोकों में भी बौद्ध दर्शन की झलक मिलती है। उसके अनुसार पाँचवें श्लोक में आयी हुई तृष्णा संकल्पना का अर्थ भी हम सभी तरीके से लगा सकते हैं।-

''अल्पकालम जीविताम यान मनुस्ये महाश्रवण नित्यदुःखम कालम का।''

अर्थात- मनुष्य का जीवन एक तूफान जैसा है, लेकिन संक्षिप्त में कहा जाए तो मनुष्य जीवन दुःख का सागर है और वह अनित्य है... -5.27.3 ab, भाषांतर बुटनर 1978 : 236 इस श्लोक में जो विचार व्यक्त किए हैं वह बौद्ध दर्शन अनिक्कम दुःखम

अनत्त को व्यक्त करते हैं, जो यह दर्शाता है कि निरंतर प्रवाही धारा जीवन में व्यक्ति का अस्तित्व कभी ना कभी नष्ट होने वाला है।

तीसरा और चौथा उदाहरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि उसमें बुद्ध की व्याख्या के संदर्भ में सवाल खड़े किए गये हैं और वे सवाल भी उपरोधिक तौर पर हैं। दोनों श्लोक समानार्थी हैं और व्यापक दृष्टिकोण से उनमें थोड़े-क्रम मात्रा में मतभिन्नता है। पहले श्लोक में खुद को जानने वाले व्यक्ति के ज्ञान की अवस्था के बारे में वर्णन है-

''ना कतमा साक्याते दृष्टम इंद्रियसुविभागासाह।
तत्र तत्र विस्त्रस्तेसु दुर्जेयेस्व अक्रतात्मभिह''
इताद बुद्धवा भावेद बुद्धाह किम अन्यद बुद्धलक्षणम।।[5]
विजनाया ताद धी मान्यते कताकृत्य मनिसिनाह।।''

अर्थात : व्यक्ति के इंद्रीय ज्ञान से खुद को समझना कठिन है। क्योंकि अलग-अलग इंद्रीय अलग-अलग वस्तुओं पर आकर्षित होते हैं। इसलिए सामान्य व्यक्ति को इन इंद्रियों पर काबू पाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन जब उसे इस बात का ज्ञान मिलता है तब वह बुद्धिमान व्यक्ति बनता है। बुद्ध व्यक्ति को पहचानने का इससे और दूसरा कौन सा तरिका हो सकता है? एक बार बुद्धिमान व्यक्ति इस 'ज्ञान को जान ले तब क्या करना चाहिए उसकी समझ आ जाती है।'[6]

-12.187.56-57, भाषांतर WNA : 2009 : 185

5 बदलाव अत्यल्प हैं। ग्रंथ Dn1 पद में बुद्धाह के जगह पर बुद्धीह शब्द है और संहिता D6, G 1,2 और 2M 1.67 में बुद्धलक्षण के जगह पर बुद्धी-लक्ष्मणम है।)

(6-विस्त्रस्तेस का दुर्वारयास के जगह पर विस्त्रस्तेसु दर्जेयेस्व शब्दों का इस्तेमाल भाषांतर में किया गया है।)

अन्य भाषांतरों ने भी बुद्ध शब्द का अर्थ 'बुद्धिमान व्यक्ति' ऐसा लिया है। जेसे कि ड्यूसेन (1906 : 186) में भी इसी तरह भाषांतर किया है।

''जो यह जानता है वह बुद्धिमान है। बुद्धिमान के अन्य कौन से लक्षण हो सकते है?'' लेकिन इगर टर्न (1965 : 260) थोड़े अलग तरिके से अनुवाद करते है।-

''इसे जानने के बाद वह बुद्ध बनता है, बुद्ध बनने वाले व्यक्ति के और क्या अन्य लक्षण हो सकते है?''

यह दो पद बुद्ध शब्द के धार्मिक अर्थ को समझने के लिए प्रर्याप्त हैं। लेकिन उन्हें

अलग तरिके से महाभारत में इस्तेमाल किया गया है। यहाँ अन्य और तत्पुरुष शब्दों के साथ बुद्ध लक्षण शब्द के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात यह है कि इस तरह के शब्द संपूर्ण महाभारत में लगभग 33 बार आए हैं। उनमें से 12 बार प्रश्नार्थक रुप में और 7 बार युद्ध में विशिष्ठ योद्धा की मृत्यु पर उसका अंत स्पष्ट करने के लिए इस्तेमाल किये गए हैं। मतलब यहां पर भी उपरोधिक तरिके से बुद्ध शब्द का इस्तेमाल किया गया है। अन्य 14 जगहों पर खास जवाब देने के लिए प्रश्नार्थक रुप में बुद्ध शब्द का इस्तेमाल किया गया है।[7] (7 महाभारत- 1.196.23.2.34.10, 14:5.8.13: 5.93.51; 5.126.19; 6.38.8, 6.115.3.51. 164.25, 12.8.25, 12.15.25, 12.127.7 : इत्यादी) उसके जवाब भी उसी अर्थ में है। वह अर्थ क्या है? इंद्रियों के माध्यम से खुद को न देख पाना या पहले 55 श्लोकों में व्यक्ति को सांख्य रुप में स्पष्ट करना। क्या यही अध्यात्म को व्यक्त करने का मकसद है? बुद्ध मानसिन है लेकिन क्या अक्रतातमान नहीं हैं? या क्या बुद्ध आत्मरातिरमुनीह है (12.187.45)? या क्या वह कृताप्रज्ञा है? (12.187.46)? महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि बुद्ध शब्द अन्य जोड़ शब्द के साथ आया है, जिनका उद्देश्य ऐसे व्यक्ति को दर्शाना है जिसने इंद्रियों के ज्ञान के पार जाकर आत्मा या अध्यात्म को खोज लिया है। दूसरी बात यह है कि बुद्ध के बारे में दूसरा कोई वर्णन नहीं है। 'बुद्ध मतलब आत्मा या खुद का प्राथमिक और विशुद्ध ज्ञान।'

अगर पद b में लक्षण शब्द, बुद्ध लक्षण शब्द से जोड़कर न बना होता तो हम समझ सकते थे कि उसका गौतम बुद्ध से कोई लेना-देना नहीं है। फिर भी बुद्ध के 32 लक्षणों संबंधी का सिद्धांत उस समय हिंदू और बौद्ध दोनों प्रदेशों में ज्ञात होगा। इसलिए संस्कृत और पाली साहित्य में बुद्ध को विलोभनीय पुरुष दिखाने के लिए उसे 32 लक्षणों से युक्त दिखाया गया है। सुप्रसिद्ध लखनसुत्त (दीघनिकाय का 30 वाँ सुत्त) में बुद्ध के सभी 32 लक्षण बताए गए हैं जो हमें पाली और संस्कृत बौद्ध साहित्य में सभी तरफ जिक्र मिलता है, जो यह दर्शाता है कि बुद्ध लक्षणों की संकल्पना उस समय बड़े पैमाने पर बढ़ गया था, जब महाभारत लिखी जा रही थी। इसलिए उष्णीव और लंबे कान जैसे बुद्ध लक्षणों का वर्णन हमें महाभारत में मिलता है।

इस श्लोक के संदर्भ को विस्तृत में चर्चा करना चाहता हूँ। यह श्लोक मोक्षधर्म

प्रवण का है, जिसमें विभिन्न तात्विक और सांस्कृतिक विषयों पर चर्चा है। इसलिए उसमें शब्दों का मिश्रण मिलता है।[8] (8–शब्दों का समिश्रण हमें अश्वघोष के लेखन में भी मिलता है। इसके लिए ल्टिलिटल–2006 देखें।)

स्वाभाविक है कि यह हमारा अनुमान हो सकता है, लेकिन अगर इसके साथ इसी मोक्ष धर्म प्रवण के प्रकरण में दूसरे बौद्ध प्रभाव मिलते हैं, तो हमारे संदेह को पुष्टि मिलती है।[9]

(9– यहां एक और बात बताना जरुरी है कि संयुक्त शब्द कलाकृत्य बौद्धों से संबंधित है। क्योंकि उससे संबंधित पाली शब्द है– कृताकृत्य जो पाली में हमेशा 'अर्हत' की प्राप्ति के संदर्भ इस्तेमाल किया जाता है। (इसके लिए R. Rhas Devids and Stede, 2007 : 81 देखें।) यह शब्द बुद्ध के संपूर्ण गुणों का अर्थ बताने के लिए उपयोग में लाया जाता था।

इसका उत्तम उदाहरण हम देखेंगे।

''इताम बुधवा जरो बुधया भुतानम अगतिम गतिम।

समावेक्षा सनायस कैवा लाभाते समम उत्तमम।।''

अर्थात – जो व्यक्ति अपनी बुद्धि का इस्तेमाल कर जीवों के आने और जाने की प्रक्रिया को समझता है और उसपर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है, वह उच्चतम गति प्राप्त करता है। – 12.187.15

इसी प्रकार का वर्णन 12.187.54 और 12.241.9 में आया है। इन तीनों श्लोकों में यही बताया है कि जीवों के जन्म और मृत्यु को अच्छी तरह समझने पर मुक्ति मिलती है। या हम कह सकते हैं कि इन श्लोकों से मुक्ति का जिक्र बुद्ध शब्द के साथ होने के कारण हम उसे ''निर्वाण'' कह सकते हैं। इसका संदर्भ बौद्ध साहित्य में भी मिलता है, जिसमें बुद्धत्व प्राप्ति के पहले बुद्ध को तीन ज्ञान मिलते हैं और उसका संदर्भ पाली और संस्कृत दोनों बौद्ध साहित्य में है। उपरोक्त श्लोक में आए हुए ''भूतानम अगतिम गतीम'' इससे मिलने वाले शब्द दीघनिकाय में मिलते हैं। जैसे कि– ''यो'' हाम कस्सपा इमेसाम तप्पसीनाम इवाम अगतिन का गतीन का कुटीन का उपपात्तिनं का यथाभूत पजानम।।

अर्थ–''कस्सप, मैं ही हूँ जो जीवों के आने और जाने को (अगतिन का गतीन का) देख सकता हूँ और अर्हतों के ऊपर बढ़ने और नीचे गिरने को भी देख सकता हूँ। जो वास्तव में वैसा ही होता है।''–दीघनिकाय, 1.162

''पुरी में यामे अनाधाम दिव्याम चक्षुर योनीसो विसोधत्वा सत्वानाम

अगतिगतीम विविधाम भगवाम अभिजनाशी''

अर्थात– रात्रि के पहले प्रहर में भगवान बुद्ध ने अपनी 'दैवी दृष्टि' से सभी क्लेषों को साफ कर दिया और जीवों के विभिन्न तरिकों से आने और जाने का मार्ग समझ लिया।

–महावस्तु 1, 3 अनुवाद Jones 1949 : 5

''इमाम लोकम परालोकम सत्वानाम अगतिमगतीमच्युल पापत्ती संसारम सम्बुद्धो स्वंयम अद्दासा।।''

अर्थात– निर्वाण प्राप्त संबुद्ध बुद्ध ने खुद अपनी आँख से विश्व और उसके पार देखा और उस दरम्यान उन्हें जीवों के आने और जाने की प्रक्रिया दिखाई दी। इस तरह जीवन मृत्यु के संसार चक्र को उन्होंने खुद समझा।

महावस्तु 1.6 भाषांतर Jones 1949 : 9

महाभारत के श्लोक और बौद्ध साहित्य के उपरांकित सुत्त में बहुत कम फर्क है। लेकिन, महाभारतकारों ने उनके श्लोक स्वतंत्र तरिके से लिखे होंगे। ऐसा मान भी लिया जाय तो भी बौद्ध साहित्य के संदर्भ के बिना उन्होंने यह नहीं लिखा, जिससे और पुख्ता सबूत मिलता है कि महाभारत और बौद्ध साहित्य में शाब्दीक समानताएं है। इससे हम यह अर्थ निकाल सकते हैं कि बुद्ध कें संदर्भ में जो सवाल खड़े किए गए हैं वे उसी व्यक्ति के संदर्भ में है जो अध्यात्मन पूर्ण रुप से जानता है।

इसी विषय पर आधारित दूसरा श्लोक 12.241.11 है और उससे संबंधित संपूर्ण प्रकरण 12.187 श्लोक के जैसा है–[10]

''इताद वै जन्मसामर्थ्याम ब्राह्मणास्या विशेषतः।''

आत्मज्ञानम समास कैवा पर्याप्तम तात्पर्यानाम।।

इताद बुधवा भावेद बुद्धाह।। किम अन्यद बुद्धलक्ष्मणम।12

विज्ञायैताद विमुचंतै कृता कृत्य मानिबी जाए''

अर्थात– खुद को जानना और समझना यही सचमुच एक ब्राह्मण के लिए अनुरुप है और इसी तरिके से उच्चतम अवश्य प्राप्त हो सकती है। इस ज्ञान को समझने से ही कोई व्यक्ति ज्ञानी (बुद्ध) बन सकता है। ज्ञानी व्यक्ति के (बुद्ध के) और दूसरे कौन से लक्षण (बुद्धलक्षण) हो सकते हैं? इसी ज्ञान को जानकर ज्ञानी व्यक्ति अपना कार्यभार पूर्ण करते हुए मुक्त हो जाता है (निर्वाण प्राप्त करता है।)–महाभारत

12.241.10–11

(फूटनोट–

10– श्लोक 12.187 और 12.239–41 का आपसी संबंध समझने के लिए Bissdhop and Bakker 1199 को पढ़ें।

11. 9 संहिता में बुद्धाह शब्द की जगह पर सुद्धाह शब्द आया है। इसका अध्ययन Dcussen ने किया है, जिसने उससे संबंधित भाषांतर इस तरह से किया है– (1906 : 391)

''जिसने यह जाना है वह शुद्ध है, बुद्धिमान व्यक्ति के अन्य कोई लक्षण नहीं हैं। इसे समझने के बाद बुद्धिमान व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुचता है और मुक्त हो जाता है।''

12.12.304.27ab की रचना का स्वरुप देखें– इताद घी योगम योगानाम किम अन्यद योग लक्षणम।)

इन श्लोकों के पहले कुछ अन्य श्लोक हैं जो ज्ञानी व्यक्ति और अज्ञानी व्यक्ति में फर्क स्पष्ट करते हैं। उसमें क्षत्रज और इंद्रीय ज्ञान तथा गुणों के बीच फर्क बताया गया है और आखिर में प्रवर्जित मार्ग को स्वीकार किया है, जिसमें संसारिक जीवन में मुक्ति और आत्म के सच्चे ज्ञान पर जोर दिया गया है। इसलिए यह ऐसा ज्ञान है जिसको इस तरह की जीवन पद्धति लगती है जो व्यक्ति को बुद्ध अवस्था (बुद्धत्व) तक पहुंचा देती है। इसी तरह का अनुमान श्लोक 12.187.57 में मिलता है। लेकिन हम इसे नकार नहीं सकते कि इसमें ब्राह्मण विरुद्ध बुद्ध के संदर्भ में भी श्लेष के रुप में बयान दिया है।

सांख्य प्रकरण के 12.291–96 में दोनों उदाहरण 5 और 6 स्थान पर हमें मिलते है, जो इस तरह है–

''बुद्धते का परम बुद्धीम विस्सुधाम आमलम यंदा।
सदविमसो राजसादुला तदा बुद्धत्वम अब्रजेत।।''

अर्थात– जब कोई व्यक्ति उच्चतम ज्ञान को शुद्ध और स्पष्ट रुप में समझ लेता है तब 26 वें बुद्ध की तरह वह व्यक्ति बुद्धत्व अवस्था को (बुद्धत्वम) प्राप्त करेगा और राजाओं में वह शेर बनेगा। –12.296.11 13

(13– इस पर अर्जुन मिश्रा (देखें Belvalkar 1954 : 1648) कहते हैं कि बुद्धत्वम विमुक्ताम्मनम। Edgerton (1965 : 318) ने बुद्ध का अनुवाद इस तरह किया है–

''बुद्धते मतलब वह व्यक्ति जो बुद्धत्व प्राप्त करता है।'' और बुद्धत्व अब्रजेत का अर्थ ''वह व्यक्ति जो बुद्धत्व के मार्ग में प्रवेश कर चुका है और बुद्ध बनने जा रहा है।''

मैं उपरोक्त श्लोक का अर्थ यह निकालता हूँ कि बुद्धि के ऊपर ज्ञान भी प्राप्ति की अवस्था है। बुद्धि पूर्णतः प्रकृति प्रभाव से विशुद्ध हो जाती है। इसके संदर्भ में नीचे श्लोक इस तरह है–

''ना कैसा तत्ववंस तात निसत्वास तव इसा बुद्धीमान।
इसा मनुचाति तत्वम ही सीप्रम बुद्धास्य लक्षमण।।''

अर्थात– वह व्यक्ति बंधनों में शामिल नहीं होता, बल्कि ज्ञानी व्यक्ति (बुद्धिमान) तत्त्वों से मुक्त हो जाता है। वह जल्द ही बंधनों से मुक्त हो जाता है जो बुद्धत्व (बुद्धास्य) का मुख्य लक्षण है।14) –महाभारत 12.296.15

(14. गांगुली (1972–76, Vol. 10.29) ने इसका अर्थ यह लगाया है– **''बुद्धत्व की प्राप्ति के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति जल्द ही बंधनों को छोड़ देता है जो जागृत अवस्था अर्थात बुद्धत्व का प्रतीक है।''** Deussen (1906 : 635) के अनुसार – ''जैसे ही व्यक्ति सांसारिक स्वरुप को जल्द से जल्द छोड़ देता है वैसे ही उसमें बुद्धत्व के लक्षण (बुद्ध लक्षण) निर्माण होते हैं।'') मैं इसका अर्थ यह निकालता हूँ कि थोड़ा बहुत संभ्रम होने के बावजूद महाभारत में बुद्ध को एक व्यक्ति के रुप में सभी बंधनों से मुक्त समझा गया है और उसके साथ आध्यात्म जोड़ दिया गया है। इसके अलावा इन श्लोकों का कोई अर्थ नहीं है। सभी श्लोकों में यही बताया गया है कि जो बुद्ध है वह सभी ज्ञात चिजों से ऊपर है। उसके साथ ही जिस संसार को लांघ कर उसने पार किया है उसका भी उसे पूर्ण ज्ञान है। (खास बात यह है कि बौद्ध धर्म की तरह महाभारत में भी बुद्ध को महिला के रुप में नहीं दिखाया गया है।)

सारांश रुप में इस विषय पर यही स्पष्ट होता है कि बुद्ध कौन और कैसा है? इस पर चर्चा करने की महाभारत को जरुरत पड़ी। महाभारत के किसी भी श्लोक में इस पर समाधानकारक जवाब नहीं मिल पाता, बल्कि चर्चा के दौरान सवालों की तालिका बढ़ती ही जाती है। क्योंकि बुद्ध शब्द को समझाने के लिए महाभारतकारों ने कुछ तांत्रिक शब्दावली तैयार कर दी थी और उसके अलग–अलग अर्थ निकल रहे थे। बुद्ध शब्द से संबंधी अलग–अलग अर्थ निकालने की प्रक्रिया रोकने के लिए महाभारतकारों ने ''किम अन्यद बुद्ध लक्ष्मणम'' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। जिसे

उपरोधिक प्रश्नों के जवाब के संदर्भो में सामने लाया है। जिसके द्वारा यह दर्शाया गया है कि एक विशिष्ट ज्ञान का स्वरुप बुद्ध शब्द के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है, दूसरा कोई उसका अर्थ नहीं है। फिर भी महाभारत में बौद्ध धर्म पर हुई टिका-टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अप्रत्यक्ष रुप में बुद्ध को स्वीकार किया है। उसके माध्यम से जोर देकर बुद्धत्व प्राप्ति के अनुभव को इसी अर्थ में स्पष्ट किया है कि बुद्धत्व मतलब आत्म (स्वंय) का ज्ञान और इस प्रकार के अर्थ को बौद्ध धर्म में भी पहले ही बताया गया है।

बुद्ध शब्द का अन्य स्थानों पर इस्तेमाल

यह देखना जरुरी है कि बुद्ध के संबंध में (या बुद्ध शब्द से संबंधित शब्द संग्रह में) केवल धार्मिक उद्देश्य से महाभारत में नहीं आये हैं। इसका मतलब यह है कि बौद्ध ग्रंथों की तरह महाभारत भी इन शब्दों को व्यापक स्वरप में इस्तेमाल किया है। उदाहरण के तौर पर श्लोक-1.134.17 में पांडवों को बोध होता है (बुद्धवंतो) कि लाख से बना घर अशुभ स्थल (आशिवम) है। या श्लोक 3.76.12 में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को जानबूझकर या अनजाने में (बुद्धी पुर्वामी यादी अबुद्धानी...) जानकारी देता है। या श्लोक 7.84.39 में दुर्योधन कहता है कि अभी उसे युद्ध के दौरान कुछ समझ में नहीं आ रहा जो युद्ध के पहले महत्त्वपूर्ण लोगों द्वारा युद्ध के पहले समझाने पर समझ में आता था। या श्लोक 6.85.9 में संजय धृतराष्ट्र को कहता है कि बुद्धिबल खेल के अंतिम फैसले के बारे में विदुर का मार्गदर्शन समझने में धृतराष्ट्र असफल रहे। (ना बुद्धावान असी) या श्लोक 7.163.3-4 में सहदेव ने उसके पुत्र को इतनी जल्दी कैसे मार डाला? इस बात को दुशासन (बुद्धावान)[15] समझ नहीं सका। या आखिर में श्लोक 12.1361.142 में जाल से छुटने के लिए बिल्ली को चूहा इस शब्द में मार्गदर्शन करता है-

''पहले तुम जाल को समझ नहीं पाई (ना बुद्धावान) क्योंकि उस समय तुम मंदबुद्धि बन चुकी थी।- भाषांतर Fitzgerald, 2004 : 519

ऊपर बताये गए प्रत्येक श्लोकों में यही बात उभरकर सामने आती है कि उन श्लोकों के पात्रों को एक तो किसी विषय के बारे में पूरी जानकारी नहीं है या जानकारी है भी तो गलत जानकारी है। इसके आगे भी और मसाला है। अनेक श्लोक मृत्यु के

जाल से छुटने की स्थिति का वर्णन करते हैं या कुछ खास क्रिया ना करने की वजह से किसी की मृत्यु का कारण बताते हैं। दुर्योधन और धृतराष्ट्र के संदर्भ सुंसंगत है क्योंकि उनके कर्मो के परिणामों की पूर्व सूचना पहले से ही दी जा चुकी थी, लेकिन उन्होंने उस पर गौर नहीं किया। या हम कह सकते हैं कि अपने कर्मो के परिणामों के बारे में वे दोनों जागृत नहीं थे, जिसके परिणाम स्वरुप वे ऐसी परिस्थिति निर्माण करते हैं जहां बड़े पैमाने पर लोगों की मृत्यु हो जाती है।

आत्मज्ञान

ऊपर दिये गए श्लोकों में आत्मज्ञान का संदर्भ भी मिलता है जो बुद्ध के अर्थ से संबंधित है। इन सभी उदाहरणों में बुद्ध से जोड़ शब्द इस्तेमाल नहीं किया गया। उदा.

''ज्ञानरामस्य बुद्धस्य सर्वभूता विरोधीनाह
जेवरुत्ती भंय अस्तिहा परालोके भयं-कुताह।।''

अर्थात - बुद्ध जागृत है और ज्ञान में लीन रहता है। उसके मन में किसी भी जीव के प्रति घृणा नहीं है और संसार में पुनःवापस आने का खतरा वह नहीं उठाता है।- अगर बुद्ध इतना भयविहीन है तो उसे अगले जन्म में भी किसी का भय होगा?''

महाभारत 12.154.33 भाषांतर Fitzgeval 2004.572

जो ब्राह्मण धर्म के अनुसार बर्ताव करना चाहता है उसका आचरण कैसा होना चाहिए? इसके संदर्भ में भीष्म ने उपरोक्त मार्गदर्शन गंभीर श्लोक के रुप में दिया है। आत्मनियंत्रण, यह सभी वासनाओं को नियंत्रित करने का मुख्य आधार स्तंभ है, इसपर भीष्म ने जोर दिया है। आखिर में जब वह मोक्ष पर (154.29) बोलने लगता है तो वह प्रत्यक्ष रुप में बुद्ध ही बनता है। क्योंकि उसके वर्णन के स्वरुप में कुछ सार मैनें नीचे दिया है।-

ऐसा ही वर्णन 12.232. 2c-3b में इस प्रकार आया है-

''आत्मानो ध्याईनाज तात ज्ञानम इताद अनुत्तमम।।
ताद इताद उपसांतेना दांतेनाध्यात्मासीलिना।
आत्मारामेना बुद्धेना[15] बोधाव्यम सुचिकर्मजा।।''

अर्थात–यह उच्च कोटि का आत्मज्ञान उसी व्यक्ति को मिलता है जो ध्यान, चिंतन करता है। इसे वही व्यक्ति समझ सकता है जो शांत, स्थिर है और उच्च कोटि के आत्मज्ञान से युक्त है। जो खुद के ज्ञान में लीन रहता है। जो प्रबुद्ध है और जिसके कर्म पूर्ण शूद्ध हैं।''

(15– संहिता DS, D7, T, GI. 3.6 और GI.3.6 और MI 5-7 में बुद्धेना की जगह पर शुद्धेना शब्द आया है।)

श्लोक 12.304.12 में भी इसी तरह से थोड़ा बदलाव करके यह बताया गया है–

''तद इवाम उपसांतना दांते नैकांता सिलीना।
आत्मरोना बुद्धेना[16] योक्ताव्यो त्मा ना समसायाह।।''

अर्थात– इसलिए इन परिस्थितियों में (जब रात के कुछ खास समय पर ज्ञान के सभी इंद्रीय पूर्णतः एकरुप हो जाते हैं) उस समय जो व्यक्ति जागृत है और खुद के ज्ञान में लीन रहता है जो स्थितपज्ञ है, जिसने सभी इंद्रियों को जीत लिया है, जो केवल एक ही लक्ष्य पर अपना मन केंद्रीत करता है, उसको अपने आत्मा को ज्ञान के साथ जोड़ना या एकजुट करना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है।

(16. MI.6.7 में बुद्धेना की जगह पर युद्धेना यह खास रुप में बदल किया गया है। इस पर नीलकंठ ने उसके शास्त्र तत्वविदा में अधिक स्पष्टीकरण किया है। (इसके लिए किंज वाडेकर : 1979, Vol. 5 : 642 देखें।)

यह संकल्पना एक अध्याय में स्पष्ट की गई है, जहां पर सांख्य दर्शन से बढ़कर योग साधना को महत्त्व दिया गया है। उसमें बोधायाम की जगह पर योक्ताव्येय को लिया गया है, जिसमें बोधायाम के ज्ञान की जगह पर व्योक्ताव्ये के आत्मन को महत्त्व दिया गया है।

उपरोक्त तीनों विषयों में बुद्ध शब्द केवल विशेषण के रुप में इस्तेमाल किया गया है जो अन्य तीन या उससे अधिक गुणों को दर्शाता है। जैसे कि ''ज्ञानरामस्य बुद्धस्य सर्वभूताविरोधीजाह, आत्मरामेना बुद्धेना सूचीकर्मना; उपसान्तेन दांतेमैकन्तासिलिना आत्मरामेना बुद्धेना'' यह सभी शब्द संन्यस्त गुण दर्शाने वाले ग्रंथों में हमेशा प्रयोग में आते हैं और उनका किसी एक परंपरा से संबंध नहीं रहता। मुद्दा यह बाकी रहता है कि उनके साथ आया हुआ बुद्ध शब्द का अर्थ वे किस तरह से दर्शाते हैं।

आत्मारामह शब्द महाभारत में मुझे दो जगह पर मिला है। (महा.12.9.15 और 12.312.24) और इन दोनों जगह पर यह शब्द बहुव्रिही के रुप में आत्माराम प्रसन्तात्मा के रुप में आया है। उसमें एक बुद्ध के अर्थ में ही उसका संबंध होने की आवश्यकता महसूस नहीं लगती। फिर भी तात्विक दृष्टि से उसका संबंध आत्मा से है। इसलिए आत्मज्ञान की तरफ यह शब्द इशारा करते हैं। संयुक्त शब्द सर्वश्रृता विरोधी नैतिक व्यवहार को दर्शाता है। दान्त शब्द मानसिक अवस्था की शारिरीक प्रक्रिया की तरफ निर्देश करता है और उपसांत शब्द इस प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाली मानसिक अवस्था को दर्शाता है। लेकिन एकांत सिलीन दैववाद को दर्शाता है और सूचीकर्म शब्द तत्वज्ञान की तरफ इशारा करता है। अर्थात यह सभी शब्द उस समय के विभिन्न पांथिक विचारधाराओं में चलन में आने वाले सामान्य शब्द हैं। उन्हें अलग–अलग विचारधाराओं से उठाकर मोक्ष धर्म प्रर्वण में प्रयोग में लाया है। इसका मतलब यह है कि इस पर्वण में बड़े पैमाने पर सर्वसामान्य तत्व को दर्शाता है और संस्कृत रचनाकारों को यह सभी शब्द अच्छी तरह से परिचित थे, ऐसा हम समझ सकते हैं। उसी के अनुसार आत्मरामेन और बुद्धेना शब्द महत्त्वपूर्ण बनते हैं, जब बौद्ध धर्म को अनात्मवादी सिद्धांत हम ध्यान में रखते है। इसमें और अधिक महत्त्व प्राप्त होता है, क्योंकि इन संयुक्त शब्दों में बुद्ध शब्द महत्त्वपूर्ण है और उसके साथ दूसरे विशेषण जोड़े गए हैं।

आखिरी परिछेद में आए हुए योग सिद्धांत को ध्यान में रखा जाए तो उसमें आया हुआ बुद्ध शब्द ऐसे व्यक्ति की तरफ निर्देश करता है, जिसने सत्यता को वास्तविक रुप में बोध किया हो। जैसे कि इस शोध निबंध के आखिर में कुछ सांख्य उदाहरणों को दिया गया है। उसमें यह अर्थ निहीत है। फिर इसका अर्थ यह होगा कि बुद्ध मतलब दृश्य जगत के 25 तत्त्वों के सत्य स्वरुप को समझना और आत्मा उसके साथ कैसे जुड़ता है और उनमें बंदिस्त होता है, यह समझना। लेकिन बौद्धिक दृष्टि से सांख्यों का 26 वाँ तत्त्व बुद्धत्व प्राप्त व्यक्ति के अध्यात्मिक और दर्शन अवस्था दोनों को दर्शाता है।

बुद्ध शब्द के कुछ अत्यल्प प्रयोग–

कुछ अलग अंदाज में बुद्ध शब्द का इस्तेमाल महाभारत में दो बार हुआ है। जहां

उचित फैसला लेने की राजा की क्षमता पर उपदेश देते हुए विदुर धृतराष्ट्र से कहता है और दूसरे श्लोक में धर्म और अर्थ के संबंध की जानकारी देता है। वे दो श्लोक इस तरह हैं-

''अर्थसिद्धीम परम इच्छां धर्मम युवादितस करेत।
ना ही धर्माद अपती अर्थाह स्वर्गलोकाद युवामृताय।।
यत्मात्मा विराटाह पापात कल्याने सा निवेसिताह।
तेना सर्वहम इदम बुद्धम प्रकृतिर विकृतीसच या।।''

अर्थात-अगर राजनीति में पूरा यश चाहता है तो उसे आरंभ से ही जुड़े रहना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार अमृत स्वर्ग से दूर नहीं रह सकता, जिसकी आत्मा दुष्कृत्यों से परे है (यास्यात्मा विराटाह पापात) और जिसका मन अच्छाईयों पर टिका हुआ है, उसके लिए सभी बातों का बोध हो जाता है। चाहे वह कारण हो या परिणाम। (तेना सर्वहम इदम बुद्धम)

महा.-5.37.44-45, भाषांतर Van Bultenrn, 1978 : 276.

मुझे लगता है कि यह एक राजनीतिक भाष्य है-सचमूच यह राजनीतिक है जो अलग-अलग अध्यायों में हमें दिखाई देता है। इसमें अलग-अलग ज्ञानी लोक धृतराष्ट्र को यह समझाने की कोशिश करते हैं किसी भी तरिके से दुर्योधन को पांडवों के साथ संबंध सुधारने के लिए तैयार करो। उसके अलावा इसमें कोई दूसरा अर्थ नहीं दिखाई देता। ऊपर चर्चा में लिए श्लोकों की तरह यहां पर आत्मा शब्द का वैसा अर्थ नहीं है। यहां पर आत्मा शब्द ''एक व्यक्ति'' को निर्देशित करने के लिए उपयोग में लाया गया है, ऐसा व्यक्ति जो एक आदर्श राजा होकर धर्म के लिए पुर्णतः प्रतिबद्ध है।

थोड़े बदले स्वरुप में दूसरा उदाहरण मोक्षधर्म प्रर्वण में मिलता है.

''द्वमद्वारामेसु सर्वेसुय इके रमते मुनिह।
परेसाम अनानुध्यायामंस तम देवा ब्राह्मणाम विदुह।।
येना सर्वम इदम बुद्धम प्राकृतिर विकतिस च या।
गतिज्ञाहं सर्वभूतानम् तम देवा ब्राह्मणामम विदुह।।''

अर्थात : जब सभी लोग एक साथ जीने का मजा लेते हैं तब मुनि अकेले में आनंद महसूस करता है और दूसरो की चिंता करना छोड़ देता है। उसके लिए देवता मतलब ब्राह्मण ही है जो इस बात को जानता है (येना सर्वम इदम बुद्धम), जो वस्तुओं का

मूल स्वभाव और उसके बदलाव को समझ लेता है, वह सभी जीनों का भवितव्य जानता है; उसके लिए देवता मतलब ब्राह्मण ही है।-12.261.30-31

इस श्लोकों का सामान्य अर्थ इस अध्याय की दृष्टि से यही है कि महाभारतकर्ता आदर्श ब्राह्मण का स्वरुप बताने के लिए बेताब हैं। उनकी दृष्टि से आदर्श ब्राह्मण मतलब ऐसा मनुष्य जो संन्यस्त और गृहस्थ भेद को पार कर देता है। इसलिए यहां पर सांख्य अध्यायों में जिस तरह बुद्ध मतलब संपूर्ण ज्ञानी इस संकल्पना का यहां संदर्भ नहीं लिया है। या दूसरे शब्दों में कहें तो एक आदर्श राजा के लिए राजनीति का पूर्ण ज्ञान होना जरुरी है। फिर भी यहां पर ब्राह्मण शब्द को अधिक ऊंचाई पर रखा गया है, जो सामाजिक जीवन से दूर एकांतवास में आनंद भी लेता है और उसके साथ सभी जीवों के गति को भी देख सकता है। (गतिज्ञाह सर्वभूतानाम)17

(17- शायद 'गतिज्ञाह सर्वभूतानाहं' यह शब्द भूतानाम अगतिम गतीम इस बौद्ध संकल्पना की तरफ इशारा करता है जो पहले स्पष्ट किया गया है।) लेकिन मेरी दृष्टि से यह श्लोक वास्तविक परिस्थिति को समझाने के उद्देश्य से बनाया गया है और सत्यता के बारे में नए ज्ञान की अचानक इजाफा करने का उसका उद्देश्य नहीं हैं।

अंत में एक श्लोक 12.277 चर्चा के लिए लेना चाहता हूँ, जिसमें सभी बातों की पूर्ण सूची है जो सही मायने में मुक्ति दिला सकती है।-

''अपत्यानामच वैगुण्याम जनम विगुनम इवच।
पस्यन भूईस्थसो लोक को मोक्षम नाभिपुजेयत।।
शास्त्राल लोकाच यो बुद्धाह सर्वम पश्चती मानवाह।
असाराम इवा मनुस्याम सर्वथा मुक्त इव सह।।''

अर्थात- अपने वंशजों की अयोग्यता को मुख्यता देखकर और सांसारिक लोगों की गुणहीनता देखकर कोई मुक्ति क्यों नहीं चाहेगा? ऐसा व्यक्ति जो ज्ञानी ग्रंथों के सहारे और संसार का ज्ञान प्राप्त करने के बाद जब पूर्ण ज्ञानी (बुद्ध) बनता है और जो मनुष्य के संबंधी प्रत्येक चीज को अनावश्यक समझता है, वह निश्चित रुप में हर तरिके से मुक्त हो जाता है।-12.277.44

लेकिन इन श्लोकों में ऐसा प्रतीत होता है कि सांसारिक ज्ञान व्यक्ति के मन में असंतुष्टि बनाने के लिए पूरक हैं, जिसके माध्यम से मोक्ष (निर्वाण) को आखिरकार प्राप्त किया जा सकता है। इस श्लोक में मनुष्य का बुद्ध बनना सांसारिक असंतुष्टि

जानने के लिए जरुरी समझा गया है। मोक्ष प्राप्ति के लिए यह महत्त्वपूर्ण प्राथमिक अवस्था समझी गई है।

नींद से जागना–

महाभारत में यह एक सामान्य शब्दावली है जो व्यक्ति को रातभर के नींद से सुबह जागने की प्रक्रिया को दर्शाती है। यह शब्दावली ब्रह्मा के लिए भी लागू है जो उसकी वैश्विक रात्रि से सुबह में नींद से जागता है और विश्व निर्माण का कार्य आरंभ करता है। इसके संदर्भ में 23 ऐसे उदाहरण हैं, जिसमें बुद्ध शब्द के साथ प्रा (6), प्राती (13), वि (4) जैसे संयुक्त शब्द आये हैं। यह शब्द जागने की प्रक्रिया को दर्शाते हैं और बुद्ध शब्द का अलग स्वरुप स्पष्ट करते हैं। जो विशिष्ट ज्ञान या दर्शन की तरफ जाने का था उसे जानने का सूचक शब्द है।

सांख्य–

बुद्ध शब्द का अत्याधिक वर्णन सांख्य/योगा प्रकरण में आता है जो महाभारत के 12.289–96 श्लोकों में सीमित है। इसमें बुद्ध मूल शब्द के साथ अलग–अलग संयुक्त शब्द भी आये हैं। बल्कि इन अध्यायों की सैद्धांतिक रचना करने के लिए उनका इस्तेमाल भी किया गया है। इन अध्यायों का मुख्य उद्देश्य जीव किस तरह से 26 तत्त्वों को मिलकर बनता है और अध्यात्मिक स्तर पर प्रकृति के साथ विलिन हो जाते हैं। इसके साथ ही जीव इन तत्त्वों के विघटन के साथ प्रकृति से कैसे मुक्त हो जाता है? यह विषय हमेशा अध्यात्मिक और तात्विक स्तर पर समस्या के रुप में चर्चित किया गया है। क्योंकि ज्ञान और जीव महाभारत में अनेक जगह पर एक–दूसरे से जुड़े हुए दिखाये गए हैं।

श्लोक 12.290 के आरंभ में भीष्म युधिष्ठिर से कहता है कि वह उसको सांख्य तत्त्वज्ञान सिखायेगा। क्योंकि, अभी उसको योग सीखाकर पूरा हो चुका था।

''स्त्रनु में त्वम इदम सुद्धम सांख्यानाम विदीत्माना।
विहितम यतिभिर बुद्धेह कपिला दीभिर इस्वेरेर।।''

अर्थात – मेरे मुँह से शुद्ध ज्ञान सीखो युधिष्ठिर, जो ज्ञानी (विधीत्मानम)

आचार्यो ने उतारा है, जिसे बोधि प्राप्त (बुद्धदेव) महर्षि कपिल ने पहले रखा था। – 12.290.3

इसके पहले दिये गए सांख्य ग्रंथों के श्लोकों से यह समझ में आता है कि बुद्ध मतलब ऐसा व्यक्ति जो पूर्ण ज्ञानी अवस्था में पहुंच गया है, जहां पर सांख्य के तत्त्वों का कोई अर्थ नहीं है और जो उसका ज्ञान दूसरों को सिखा सकता है। इसलिए ऐसे ज्ञान सिखाने वाले आचार्यो का वर्णन इस श्लोक में किया है। कपिल एक काल्पनिक मिथकीय व्यक्ति है जैसे कि मोक्षधर्म पर्वन को लिखते समय बुद्ध की तरह भी महाभारत का मिथकीय अवस्था के रुप में देख रहे थे। (यह लेखनकाल ईसा के पहले शताब्दी में शायद शुरु हुआ था।)

उसी अध्याय के आखिर में युधिष्ठिर कहता है–

''प्रवृत्ती लक्षणम धर्मम पस्यामि परमम नृप।
मगनस्थ ही परे ज्ञाने किम नु दुःखतम भवत।।''

अर्थात– मुझे लगता है कि महाराज, जिस शिक्षा में सक्रिय हो वही श्रेष्ठ है। लेकिन जो उच्चतम ज्ञान के सागर में डूब चुका हो, उसके लिए इससे अधिक दुःखमय बात क्या हो सकती है? –12.290.79

इसके प्रत्युत्तर में भीष्म ने त्वरित जवाब दिया–

''यथा न्यायम त्वया नाम प्रश्नाह प्रस्ताह सुसमकताह।
बुद्धानाम अपी सम्मोदाह प्रश्न स्मीज भारतरसआ।।''

अर्थात– ''महाराज, आपने यह अत्यंत जटिल प्रश्न योग्य समय पर पूछा है। जो पूर्ण ज्ञानी है उनको भी इस प्रश्न पर बड़े पैमाने पर संदेह है, हे भारतो के वृषभ!''

यहां पर जिनके लिए यह विषय समस्या लगता है उनकी समझ कुछ अलग तरिके की हो सकती है– लेकिन फिर भी उन्हें बुद्ध ही कहा गया है। यह बुद्ध मिथकीय बुद्ध से अलग है जो 26 तत्त्वों पर खड़ा है। क्योंकि बुद्धत्व की यह अवस्था, तत्त्वों के पूर्ण ज्ञान की अवस्था और इन तत्त्वों के बंधनों में अटकने और मुक्त होने के ज्ञान की अवस्था।

इंद्रीय, मन और बुद्धि के बारे में विस्तृत चर्चा करने के बाद श्लोक 12.291 में युधिष्ठिर क्षरा और अक्षरा के बारे में पूछता है। यह विषय इसके पहले के अध्याय (12.290) में भी चर्चा के लिए लिया गया था। युधिष्ठिर के प्रश्न का जवाब इतिहास के रुप में दिया जाता है। जो इतिहास वशिष्ठ ने कालजनक को बताया था, जिसमें

गुण और तत्त्वों पर आधारित विश्व की उत्पत्ति का बखान किया गया था। श्लोक 12.291.41 में व्यक्ति में स्थित आत्मा (सा... आत्मबाग- 229-39) को धीरे-धीरे सहानतम आत्मा कैसे प्रकृति के साथ मिलकर बजता है? इसका वर्णन है।

''इवाम इसा महान आत्मा सर्गप्रलयकोविदाह।
विकृवजाह प्रकृतिमान अभिमज्यति अबुद्धीमाग।।
मतहसत्वरजोयुक्तास तासू तासू इह योजिसु।
लियते प्रतिबुद्धत्वत्वाद अबुद्ध जन सेवनाता।।''

अर्थात- सचमुच यह महान आत्मा विश्व की उत्पत्ति और विलय का अनुभव करता है और उसे प्राथमिक स्वभाव में परिवर्तित करता है। (विक्रवजाह प्रकृतिवन।) यह सोचकर की उसे खुद का आत्मभाव (अभिमन्यती) है लेकिन, उसमें बोध का अभाव है। तामसत्त्व और रजस गुणों के प्रभाव में आकर वह जन्म-मृत्यु के संसार चक्र में बंधा है। क्योंकि वह पूर्णरुप से जागृत (बुद्धत्व) प्राप्त नहीं है और अजामृत लोभों के साथ संपर्क में रहता है।- 12.291.41-42

संयुक्त शब्द अप्रतिबुद्धत्वाद और अबुद्ध जन सेवनात, हम बुद्ध शब्द को समझने के लिए गुत्थी सुलझाने में इस प्रकरण में सहायक हो सकते हैं। क्योंकि इन अध्यायों में यह शब्द बार-बार आते हैं। इसमें का महत्त्व शब्द साधारण शब्द है, क्योंकि वह सिर्फ इतना ही बताता है कि ''यह महान आत्मा'' प्रकृति में क्यों डूब चुका है? वह इसलिए डूब चुका है क्योंकि दर्शन के स्तर पर वह अच्छी तरह से ज्ञानी नहीं बना। ज्ञानी बनने के लिए प्रकृति (संसार) से अलग होना पड़ता है। दूसरा शब्द भी यही बताता है कि समझ (बोध) का अभाव होने के कारण किस स्थिति में जीने वाले सभी अबुद्ध हैं। उनके साथ संबंध रखने से महान आत्मा भी प्रकृति के बंधनों में और अधिक बंध जाता है। इस विषय पर अधिक स्पष्टीकरण अंतिम श्लोक 12.292 में इस तरह दिया है।

''इवम अव्यक्तमिस्यम कसराम आहूर मजिषाह।
पंचविंमसातिमो यो याम ज्ञानाद इवा प्रवर्तते।।
वसिष्ठ उवाच।
इवम अप्रतिबुद्धत्ववाद अबुद्धम अनुवर्तते।
देहाद देह स्त्रहस्त्रानी तथा समभिपाध्यते।।''

अर्थात- ज्ञानी लोग यह कहते हैं कि नष्ट (क्षय) होने वाली वस्तुएं अव्यक्त विश्व के अंतर्गत आती है, जो 25 वें तत्त्व को बुद्धत्व प्राप्त करता है।

वशिष्ठ कहते हैं

सचमुच जो व्यक्ति पूर्णतः जागृत (अप्रतिबुद्धाववाद) नहीं है वह उसी का अनुसरण करता है, जो बुद्ध नहीं है। (अबुद्धम) और इसकी वजह से वह हजारों सालों तक एक शरीर से दूसरे शरीर में जन्म लेता है।

-12.291.48-292.1

यह एक सामान्य मूलभूत प्रश्न का सामान्य मूलभूत जवाब है जो श्लोक, 12.291.42 में भी दोहराया हुआ है। इन सभी श्लोकों में यही संदेश दिया है कि जो व्यक्ति जागृत अर्थात बुद्ध बनता है पुनर्जन्म का अनुभव नहीं करता। यह वर्णन सांख्य अध्याय के बाहर का है। अध्याय 12.292 में आत्मा के प्रकृति में डूब जाने का वर्णन है और अध्याय के अंतिम श्लोकों में मुक्ति का वर्णन है। अध्याय 12.293 के आरंभिक कुछ श्लोक ऐसे हैः-

''अभावो भवम आत्मानाम अभयो भयं आत्मनह।
अक्षरह शरम आत्मानह अबुद्धीसत्व अभिमन्यते।।
वशिष्ठ उवाच
इवम अप्रतिबद्धत्ववाद अबुद्ध जन सेवनात।
सर्गकोटी सहस्त्रानी पतनानतानी गच्छति।।''

चंद्रमा व कोसनाम पुनस तत्रा सहस्त्रासाह लियते प्रतिबुद्धत्ववाद इवम इसा है अबुद्धीमस्ता

अर्थातः- लेकिन ज्ञान के बगैर व्यक्ति यह सोचता है कि जीवों के बनने की प्रक्रिया समझ में ना आते हुए भी वह सोचता है कि उसका आत्मा विकसित बनने जा रहा है। उसके मन में भय नहीं है, लेकिन फिर भी उसका आत्माश्रय का अनुभव करता है। वह अविनाशी है, लेकिन फिर भी उसका आत्मा विनाश का अनुभव करता है।

वशिष्ठ कहते हैं-

कारण यही है कि वह व्यक्ति पूर्णतः जागृत नहीं है और वह अजागृत लोगों के संग रहता है (अप्रतिबुद्धत्ववाद अबुद्ध जनसेवनात) इसलिए उसे हजारों जन्म-मृत्यु के

चक्रों का अनुभव होता है जो बनते और नष्ट होते हुए दिखाई देते हैं।... जैसे चंद्रमा अलग-अलग कलाओं में बढ़ता और घटता है उसी तरह अजागृत व्यक्ति भी हजारों जन्म के चक्र में घुमता रहता है। क्योंकि वह पूर्णतः अजागृत या अबुद्ध है। (लियते प्रतिबुद्धत्त्ववाद) सच कहें तो उसे कोई बोध या समझ प्राप्त नहीं है।-12.292.48-293.3

यह सभी श्लोक (293.11, 294.4 ; 295.46; 296.4, 6, 21; 306.73) इसके जैसे और भी अनेक श्लोक हैं।) इन सभी श्लोकों में अबुद्ध और उसके अलग-अलग समानार्थी शब्द (अप्रतिबुद्धत्व, अप्रतिबुद्ध, अप्रतिबुद्धक) ऐसे अनेक शब्द आये हैं जो यह दर्शाते हैं कि जब आत्म इंद्रियों के अधीन हो जाता है तब व्यक्ति को अस्तिव का ज्ञान नहीं मिलता और वह अज्ञानी बनता है। खास बात यह है कि अबुद्धि शब्द भी अबुद्ध शब्द के जैसा है और यह शब्द सांख्य अध्यायों के बाहर भी महाभारत में आया है। इससे संबंधित दूसरे अध्यायों के अन्य श्लोकों में बुद्ध अवस्था की तुलना अबुद्ध अवस्था के साथ की गई है। श्लोक 12.294.4 इसी के संबंध में है और यह महत्त्वपूर्ण मुद्दा सामने रखता है।

''तद इतच कोतम अच्छामि नानात्वये कत्वा दर्शनम। बुद्धम अप्रतिबुद्धम च बुद्धमानम च तत्त्वतः।।''

अर्थात- मैं सचमुच जागृत (बुद्धत्त्व) और अजागृत (अबुद्ध) अवस्था के विभिन्न और खास अध्यात्मिक ज्ञान को सुनना चाहता हूँ और बुद्धत्व प्राप्ति की प्रक्रिया को भी समझना चाहता हूँ।

12.294.4cf ; 12.293.10; 295.46; 306.78 इन अध्यायों के श्लोकों में अनेक जगहों पर यह तीन शब्द (अप्रतिबुद्ध, बुद्धगमान और बुद्ध) आत्मा का प्रकृति के साथ विभिन्न अध्यात्मिक स्तरों पर संबंध दर्शाते हैं। आरंभ में आत्मा प्रकृति के अंदर पूर्णतः डूबा रहता है, जिससे व्यक्ति को प्रकृति से अपनी भिन्नता समझ में आनी शुरु हो जाती है। इस समझ के साथ चलकर धीरे-धीरे अध्यात्मिक ऊपरी स्तर पर वह प्रकृति से पूर्णतः अलग हो जाता है, जिसे पूर्ण आत्मज्ञान कहते हैं।

''इवम प्रतिबुद्धसश्च बुध्यामानसश्च ते नघा।
बुद्धास चक्तो यथा तत्वम मया स्मृति निदर्शनात।।''

अर्थात - इस प्रकार एक व्यक्ति जो पूर्णतः जागृत नहीं, एक दूसरा जो जागृति की प्रक्रिया में है और एक जो पूर्णतः जागृत है। इसकी जानकारी मैनें तुम्हे पूर्णतः

सत्यता से दी है और यह वेदों के दर्शन के अनुसार पूर्णतः सत्य है।

-12.306.78

यहां जो जागृत बनने की प्रक्रिया जागृति में चलने की प्रक्रिया और पूर्ण जागृत अवस्था बताई गई है। उसके बारे में 1924 में इगर्टन ने यह लिखा है:-

''... हम यहां से शुरु करते हैं... उपरोक्त बताया गया श्लोक (11464) श्लोक नं. 11463 के बाद आता है। जिसमें यह बताया गया है कि- ''हे राजन 25 वें तत्त्व के ऊपर और कोई तत्त्व नहीं बताया गया है। लेकिन, सांख्य के उच्चतम तत्त्व को सही मायने में आत्मा जागृत है (11465) ऐसा बताया है और उसमें आत्मा पहुंचता है। (बुद्धम अप्रतिबुद्धत्ववाद बुध्य मानम सा) यह सत्य है। या तत्त्वों के अनुसार (तत्त्वतः) यह सत्य है। आत्मा जागृत बनने की प्रक्रिया और बाद में उसका जागृत बनना यह योग सिद्धांत का भी हिस्सा है। Edgerton 1924 : 23

मुझे ऐसा लगता है कि मैनें अप्रतिबुद्धत्वाद को जीव/आत्मा प्रकृति के जाल में फंसाया है और बुद्ध उसकी उल्टी अवस्था, जिसमें जीव/आत्मा प्रकृति के जाल (बंधन) से मुक्त हो जाता है। अप्रतिबुद्धत्व व्यक्ति की इस अवस्था को दर्शाता है, जिसमें मनुष्य अज्ञानता की अवस्था के साथ चलता है। उसके उलट बुद्ध मतलब व्यक्ति की ऐसी अवस्था, जिसमें मनुष्य ज्ञान के मार्ग पर चलता है। लेकिन आत्मा में डूबा रहता है।

श्लेष का टिकात्मक स्वरुप-

इगर्टन ने संयुक्त शब्दों को बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया है, लेकिन नकारार्थी संयुक्त शब्दों पर भी ध्यान देना जरुरी है। जैसे कि- अबुद्ध जनसेवनात (श्लोक 12.291.42 और 293.1) अबुद्ध सेवनात (293.10) और अबुद्ध परिवर्जनात (293.42) इस प्रत्येक शब्द में ऐसे व्यक्ति का संदर्भ है जो प्रकृति के जाल में फंसा हुआ है और उसकी तरफ से सभी नकारार्थी बातें संसार में बढ़ रही है। इस बारे में दो प्रभावी वचन श्लोक 12.293.10 में इस तरह से दी है-

''अबुद्धसेवनात चापी बुद्धोपि
अबुद्धतम व्रजेत।।''

अर्थात- अजागृत (अबुद्ध व्यक्ति) के साथ रहकर जागृत (बुद्ध) व्यक्ति भी अज्ञानी बन जाएगा। श्लोक 12.293.42 में दूसरा श्लोक ऐसा दिया है-

''यत तद बुद्धेह परम प्रहह सांख्य योगास च सर्वसह।

बुद्धयम्मानम महाप्राजनम अबुद्धापरिवजनात।।''

अर्थात- सांख्य और योगी तत्त्वज्ञ यह स्पष्ट करते हैं कि जो व्यक्ति यह समझता है कि बुद्धि से बढ़कर सबकुछ श्रेष्ठ है, यह बात बहुत ही गहनीय है। क्योंकि वह निर्णुद्ध (अजागृत) लोगों से पूर्णतः दूरी बनाए रखता है।18 -12.293.42

(18 - Edgerton (1963 : 306) ने आखिरी संयुक्त शब्द का अर्थ यह है ''जो अजागृत है उससे पूर्णतः दूर रहना'' चाहिए। ड्यूसेन (1906 ; 623) के अनुसार ''अगर व्यक्ति ने अजागृतता पास में रखी तो अबुद्धत्व भी उससे दूर रहता है।)

इस संयुक्त शब्द में कुछ थोड़े-बहुत बदलाव करके यही शब्द तीन अध्यायों में चार बार महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से आता है और उसका नकारार्थी स्वरुप दो जगहों पर (292.1 और 295.26) अबुद्ध शब्द के रुप में आता है। यहां मैं कुछ नहीं कर सकता सिर्फ श्लेष का विकृत परिणाम बता सकता हूँ, जिसके माध्यम से उस समय के अत्यंत स्पर्धात्मक माहौल में बौद्धों का विरोध करने के लिए ब्राह्मणों को इसके माध्यम से अच्छा फायदा हुआ। लेकिन ब्राह्मण ज्यादा कठोर भाषा में उसका उस समय इस्तेमाल नहीं करना चाहते थे। मैं जन (अबुद्धजन सेवनात में आया हुआ शब्द) को संयुक्त नाम के रुप में देखता हूँ। यदि वह एक ही व्यक्ति की तरफ इशारा करता है।19 (19-cf Edgerton (1965 : 303) ''अजागृत व्यक्ति के साथ रहकर, Deussen 1906 : 613 - अजागृत लोगो में प्रवेश करना मैं यहाँ श्लेष का काम इन संयुक्त शब्दों के बारे में तत्त्वज्ञान दर्शाने के रुप में किया था, ऐसा समझता हूँ, जिसका वर्गीकरण कुछ उच्च कोटी (श्रेष्ठ) बौद्धिक बौद्ध धर्म के तत्त्वों से मिलता हुआ देखता हूँ। जिसके साक्ष्य महाभारतकारों की स्पर्धा चल रही है।

एक आखिरी श्लेष संबंधी का उदाहरण अशुद्ध शब्द के बारे में है-सांख्य अध्यायों में जीव प्रवृत्ति के साथ भिन्न रहता है, यह पहले ही हम चर्चा कर चुके हैं। उसके साथ उन अध्यायों में जीव की रचना उसको कैसे समझना और मृत्यु के बाद जीव की क्या स्थिति रहती है? इसकी भी जानकारी है। जीव के मृत्यु के बारे में अज्ञानी व्यक्ति किस तरह आत्मा नष्ट होता है, ऐसा समझता है। इसकी जानकारी निचले श्लोक में ऐसी है-

''ना जिवनासोस्ती ही देह भेद्रे मिथ्यातद आहुर मूर्ते इति अबुद्धाह।

जिवास तू देहांतरिताह प्रयाति दसार्थातैवास्य सरिरभेदाह।।''

अर्थात- 'शरीर मरता है, लेकिन आत्मा नहीं मरता' वे अज्ञानी लोक है जो झूठा इल्जाम लगाते हैं कि शरीर के साथ आत्मा भी मरता है। शरीर मरने के बाद आत्मा उस शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। मनुष्य की मृत्यु मतलब केवल शरीर का विघटन है।

-12.18.26 भाषांतर Wynne 2009 : 127 (12.187.27)

क्या यह चर्चा बौद्ध धर्म के अनात्मवाद सिद्धांत के विरोध में है, जिसमें जीव की अमरता को नकारा है? अगर यह टीकात्मक श्लोक है तो ''इस तरह का वर्णन ब्राह्मणवादी व्यवस्था के मूलभूत शिक्षा को एक तरिके से नकारने जैसा तो है ही पर उसके साथ ही अनात्मवाद सिद्धांत को भी नकारने जैसा है। जो बौद्ध धर्म का मूलभूत सिद्धांत है।[20]

(20- लेकिन इस श्लोक के अनुरुप दूसरा एक श्लोक नीचे देखें, जिसमें अबुद्धाह की जगह पर उसी के समानार्थी मुधाह शब्द इस्तेमाल किया है :

''ना जिवनासो स्ति ही देहभेदे मिथ्यताद अद्दूर म्रियत्येती मुधाह।

जिवास तू देहान्तिताह प्रयाती दसार्थ- तैवस्य शरीरभेदाह।।

महाभारत 3.200.2611)

निचोड :

इस संपूर्ण चर्चा से क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं- प्रारंभिक तौर पर चर्चा के रुप में अन्य भाषाओं की तरह यहां पर भी ज्ञान प्राप्ति के लिए अलग-अलग शब्द इस्तेमाल किये गए हैं। इसका क्या अर्थ है? यह हमें समझना चाहिए कि उस समय के स्पर्धात्मक भारतीय दर्शन के क्षेत्र में अध्यात्मिक और दर्शनों के क्षेत्र में विभिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करने के लिए अलग-अलग भाषिक शब्द विकसित करने के लिए काफी बड़े पैमाने पर प्रयास किये गए। मूल धातु बुद्ध से ऐसे अनेक शब्द बनाये गये और उनके माध्यम से ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया और ज्ञानप्राप्ति की अवस्था के रुप में वह एक स्थिर अवस्था समझी जाने लगी। बाद के समय में बुद्ध शब्द का पूर्णरुप से दर्शन समझाने के लिए इस्तेमाल किया गया जो हमें महाभारत के सांख्य अध्याय में दिखाई देता है। इसी तरह का बुद्ध शब्द पाली त्रिपिटक में मिलता है जो ऐसे व्यक्ति को निर्देशित करता है, जिसने वास्तविकता की सत्यता को पूर्णरुप से समझा है जो संसार में तब तक रहेगा जब तक उसके कर्म नष्ट नहीं हो जाते। लेकिन

यह एक सामान्य तुलनात्मक विचार है, उसके विपरित बुद्ध शब्द के संदर्भ में महाभारत के सांख्य श्लोकों में पाली त्रिपिटक में सीधा शाब्दिक संबंध है। कुल मिलाकर यही स्पष्ट होता है कि हमें महाभारत के सांख्य अध्याय और बौद्ध धर्म के कार्यकारण भाव में बौद्धिक संबंध स्पष्ट दिखाई देता है, जिसे प्राथमिक बौद्ध साहित्य में स्कंद और प्रतित्यसमुत्पाद कहा गया है। इसके संदर्भ में हम गोमेज के विचार देखते हैं।

''बौद्ध तत्त्वज्ञान (दर्शन) और उसका विकास के संदर्भ में अध्ययन करने से हमें यह बात समझने में फायदा होगा कि, बौद्ध अध्यात्मवाद और उसका प्राग विज्ञानवाद कहा जाने लगा। इसका अर्थ यह है कि पूर्व के शोधकों की तरह हमें अंदाजा लगाने की खास जरुरत है कि शाखा, पंथ या आंदोलन में बौद्ध धर्म पर प्रभाव डाला या बौद्ध धर्म को जन्म दिया।'' Gomez, 1999 : 707

इस शोध निबंध में उठाए गए सवालों के निराकरण के लिए महाभारत के सांख्य अध्याय मुख्य आधार है। क्योकि उनमें बुद्ध और उससे संबंधित संयुक्त शब्द बार-बार आते हैं। इस स्थिति को समझने के बाद दो बातें हमारे सामने आती हैं- पहला यह है कि बुद्धि और बुद्ध/बुद्धा इन शब्दों का आपस में क्या मूलभूत संबंध है और दूसरा, बौद्ध धर्म के अभिधर्म का मानसिक वर्गीकरण का बारिकी से अध्ययन करना साथ ही उसके समानार्थी शब्द और विधान महाभारत सांख्य साहित्य में ढूंढना।

यदि उपरोक्त श्लोकों में आए बुद्ध शब्द के बारे में नकारात्मक तरिके से सोचकर हम विचार करेंगे कि मुख्य बौद्ध संकल्पनाओं और शब्दों को चुराने का किसी का उद्देश्य है तो उन बौद्ध संकल्पनाओं और शब्दों ने किसको प्रभावित किया होगा? **महाभारत की भाषा और गोलमाल है, जिससे अनेक अर्थ निकल सकते हैं। इस तरह का भाषा प्रयोग उन्हीं विद्वानों ने किया होगा, जिनका आपस में संघर्ष है। महाभारत सुनाते समय बहुसंख्य श्रोताओं को यह सामग्री जानबूझकर नहीं बताई जाती होगी या उससे यह छिपाई जाती होगी। इस प्रकार के अनेक चालबाजी करने के बावजूद महाभारत में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो स्पष्ट दर्शाते हैं कि प्राचीन बौद्ध धर्म के प्रभाव में ही महाभारत लिखा गया।**

(Proceeding of the Epics adn Puranas Section at the 15 th World Sanskrit Conference

The Churning of the Epics and Puranas

Ed. By- Simon Brodbeck/Adam Bowles/Alf Hilte Beitel. PP.240-263) ●●●

References

Digha Nikäya. Vol. 3. Ed. T.W. Rhys Davids and J.E. Carpenter. London: Pali Text Society. 1960-67.

[Mbh] Mahabharata. V.S. Sukthankar et al., eds., The Mahabhärata for the First Time Critically Edited. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute, 1933-66.

Mahavastu. P. Bagchi, ed., Mahavastu Avadana, vol. 1. Darbhanga: Mithila Institute, 1970.

Ramayana. G.H. Bhatt et al., eds., The Välmiki-Ramayana Critically Edited for the Time. Baroda: Oriental Institute, 1958-75.

Belualkar, S.K., ed. 1954. The santiparvan (Part III: Moksha Dharma, A), being the Bevdeh Book of the Mahabharata, the Great Epic of India, for the First Time Critically Edited. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute.

Bisschop, P. and H. Bakker. 1999. "Moksadharma 187 and 239-241 Reconsidered." Asiatische Studien/Etudes Asiatiques, 53.3: 459-72.

Van Buitenen, J.A.B., tr. 1975. The Mahabharata, vol. 2:2. The Book of the Assembly Hall; 3. The Book of the Forest. Chicago: University of Chicago Press. tr. 1978. The Mahabharata, vol. 3: 4. The Book of Vira?a; 5. The Book of the Effort. Chicago: University of Chicago Press.

Deussen, P., tr. 1906. Vier philosophische Texte des Mahabharatam. Leipzig: Brockhaus.

Edgerton, F. 1924. "The Meaning of Sankhya and Yoga." American Journal of Philology, 45.1:1-46.

tr. 1965. The Beginnings of Indian Philosophy. London: George Allen and Unwin.

Fitzgerald, J.L., tr. 2004. The Mahabharata, vol. 7: 11. The Book of the Women: 12. The Book of Peace, Part One. Chicago: University of Chicago Press.

Ganguli, K.M., tr. 197276188496 The Mahabharata of Krishna-Dwaipayana Vyase Translated into English Prose from the Original Sanskrit Text. 3d edn. Delhi: Munshiram Manoharlal.

Gómez, L.O. 1999. "Seeing, Touching, Counting, Accounting: Samkhya as Formal Thought and Intuition." Asiatische Studien/Études Asiatiques, 53.3: 693-711.

Hiltebeitel, A. 2006. "Asvaghosa's Buddhacarita: The First Known Close and Critical Reading of the Sanskrit Epics." Journal of Indian Philosophy, 34.3: 229-86.

Jones, JJ., tr. 1949. The Mahävastu, vol. 1. London: Luzac and Co.

Kinjawadekar, R., ed. 1979. The Mahabharatam with the Bharata Bhawadeepa Commentary of Nilakantha. 2nd edn. 6 vols, Delhi: Oriental Books Reprint Corporation

Rhys Davids, T.W. and W. Stede. 2007192125 The Pali-English Dictionary. Springfield, VA: Nataraj Books.

Wynne, A., tr. 2009. Mahabharata Book Twelve: Peace. Volume Three: The Book of Liberation. New York: New York University Press/ IJC Foundation.

परिशिष्ट–8

बौद्ध धम्म का इस देश में फिर से पुनर्जीवन हो रहा है, इसका स्पष्ट दृश्य दिखाई दे रहा है। इस बाबत मुझे तनिक भी संदेह नहीं है।–डा.बाबासाहब आंबेडकर

(ब्रह्मदेश के सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश यू चॅन ट्यून (Hon'ble Justice V Chan Htoon, Judge of the Supreme Court of The Union of Burma) इनके सम्मान के लिए दि. 3 अप्रैल 1955 को मुंबई के बुद्ध भवन, सिद्धार्थ कॉलेज में कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर डा.बाबासाहब आंबेडकर ने भाषण दिया था। वह बौद्ध आंदोलन की दिशा तय करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण भाषण है। वह भाषण यहां दे रहे हैं।

भाईयों और बहनों,

लोकतंत्र के दो प्रमुख शत्रु हैं। एक तानशाही और दूसरा यानी व्यक्ति–व्यक्ति में असमानता मानने वाली भेदनीति या संस्कृती है। अमेरिका, आजादी के संबंध में बकल ने कहा था कि तानाशाही के कारण निर्माण हुई शक्ति या सामाजिक संगठन इसके कारण हमेशा के लिए टिक नहीं पायेगी। क्योंकि तानाशाही में यह प्रेरणा मूलतः नष्ट हो जाती है। वह प्रेरणा निकालते ही संगठन खत्म हो जाते हैं और यही कारण है कम्युनिजम की राजवट मजबूत नहीं है। यह उसी की नीति सामाजिक, आर्थिक भेद पूर्वक आधारित संस्कृति है। यह दोनों लोकतंत्र के लिए बहुत बड़ा धोखा है।

हिंदू धर्म के बारे में बोला जाए तो उसका मुख्यतः तीन वर्ग में विश्लेषण किया जा सकता है। पहला वर्ग, नीचले पायदान के दबे कुचले लोगों का वर्ग। इस वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक दुर्गति धर्म के ही कारण हुई। दूसरा वर्ग, ब्राह्मणेत्तर और पिछड़ा वर्ग है। यह वर्ग तुलनात्मक दृष्टि से स्थितिप्रज्ञ है। इस वर्ग में स्थित्यंतर या बदलाव होने के लिए इन वर्ग में शिक्षा के अभाव, नई सामाजिक चेतना के अभाव के कारण थोड़ा समय लगेगा। तीसरा और आखिरी वर्ग, ब्राह्मण या तत्सम ऊँची जाति का वर्ग है। इस वर्ग के लिए इस धर्म में विशेषाधिकार है। यह वर्ग अधिकारों और उपयोग पर जब अतिक्रमण हुआ तो वे कालानुरुप बदलना तो दूर वे तुरंत प्रतिकार भी करते हैं। क्योंकि उन्हें धर्म का दिया ऊँचा स्थान टिकाना है और इसलिए उन्हें इसी तरह का धर्म जिंदा रखना उनका मकसद है। उनकी दृष्टि होने वाले बदलाव की ओर

अधिरता से देखती है और उनके विचार भेदनीति के अलावा कुछ नहीं देख सकते। लेकिन मैं बहुजन समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसलिए मेरे ऊपर जो टिका–टिप्पणी होती है उसे ध्यान में लेकर भी बुद्ध धर्म के इस देश के भविष्य के बारे में अत्यंत आशावादी है।

ब्रह्म के मुँह से ब्राह्मण, हाथ से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पैर से शूद्र की निर्मिती हुई। इस आधार पर जो हिंदू धर्म की रचना की गई है वह मानवता का अपमान करने वाली है, बुद्धि का भेद करने वाली और इश्वर का भी द्रोह करने वाली है। इस तरह की धर्मरचना में समता का वास कभी नहीं हो सकता। व्यक्ति का विकास कभी भी पूरा नहीं हो सकता। इसलिए पूरे होश हवास से मुझे यही लगता है कि नीचले वर्ग को इस ब्राह्मणी विचारधारा के खिलाफ न केवल विद्रोह करना चाहिए, बल्कि वह विचारधारा ही त्याग देनी चाहिए। इसका अर्थ ऐसा है कि इस तरह का धर्म छोड़कर सभी समता को मानने वाली ऐकता और बुद्ध की बताई हुई शिक्षा को अपनाना चाहिए। इसलिए मैं सभी भाईयों को आखिरी आवाज दे रहा हूँ कि आपको मुक्ति चाहिए तो बौद्ध धर्म की दीक्षा लो। पश्चिमी देशों के इतिहास पर नजर डालोगे तो पता चलेगा कि राज्य और धर्म (State and Church) इनका विभक्तीकरण करके जो युद्ध हुए हैं वह इतिहास में सबसे बड़ी गलती हुई है। धर्म की मानवी जीवन में इस तरह विभाजन नहीं कर सकते। उल्टा धर्म यह मानवी जीवन का सर्वांग है, अधिष्ठान है। वह सभी तत्वों की मूल अंतरप्रेरणा है। इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता। रोम का पतन इस गीबन के लिखे हुए किताब का कुछ हिस्सा भी देखा जाए तो उससे यह बात जाहिर तौर पर दिखाई देती है कि क्रिश्चन धर्म की भनक लगते ही उमरावों के शोषण से त्रस्त जनता जिन्हें बिना आवास के रहना पड़ता तथा शाम को भोजन के लिए सड़कों पर भटकना पड़ता था। ऐसे ही गुलामों ने जीवनमुक्ति के मार्ग के तौर पर क्रिश्चन धर्म अपना लिया था। रोम देश में गुलामों ने ही क्रिश्चन धर्म का पहला कदम उठाया, यह एक ऐतिहासिक सबूत है। इसी तरह भारत की परिस्थिति का आकलन करते हुए यह स्प्ष्ट हो जाएगा कि भारत के लोगों पर हो रहे जुल्म और शोषण से ही बुद्ध धर्म का बिजारोपण होकर ही रहेगा।

हिंदू धर्म गैरबराबरी पर आधारित है, यह मैनें स्पष्ट किया है। दूसरा बड़ा पौर्वात्य धर्म– मुसलमानी (इस्लाम) धर्म (Muslim Religion) है। धर्म भाईचारे के लिए विश्वविख्यात है। लेकिन यह भाईचारा उनके धर्म तक ही सीमित है। उसमें खासकर

मानवता (Human Brotherhood) का अभाव है। बौद्ध धर्म ही सभी मनुष्यों को समानता का अधिकार देता है। इसी धर्म में ही मनुष्य जीवन को यथोचित आदर है। (Respect For Human Being) उसमें कोई भेदनीति (Discrimination) नहीं है। मैनें इस कार्य को थोड़ा विलंब किया है। इस बाबत मुझे थोड़ा खेद होता है। नहीं तो आज उस बिजारोपण के फल देखे होते। मेरे समाज के 90 फीसद लोग मेरे इस फैसले को सहमती देंगे और वे मेरे साथ होंगे, इस पर मुझे किंचित संदेह नहीं है। विरोधक कुछ भी बोलें, लेकिन बौद्ध धर्म को इस देश में फिर से पुनर्जीवन हो रहा है, इसका स्पष्ट दृश्य दिखाई दे रहा है। इस बाबत मुझे तनिक भी संदेह नहीं।

वर्तमान स्थिति में लोगों को धर्म की क्या जरुरत है? इस तरह की टिका-टिप्पणी कुछ लोग करते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि यह लोग मानवी जीवन के लिए समाज की धारणा के लिए धर्म की कितनी जरुरत है यही बात भूल जाते हैं। मानवी समाज को दो उपलब्धियाँ धर्म ने दी है और वह है मानवी जीवन में एकता अबाधित रखने वाली मानसिक प्रेरणा का निर्माण करना। धर्म के ही कारण मानवी एकता का पोषक ऐसा एक खास तरह का मानसिक माहौल पैदा हो सकता है और दूसरा यानी मानवी समूह में धर्म ही समता का निर्माण कर सकता है। इन दो महत्त्वपूर्ण मापदंडों पर वर्तमान में समता निर्माण करके अच्छी तरह लोकतंत्र चलाने के लिए धर्म की नितांत आवश्यकता है।

(संदर्भ- उपरोक्त भाषण जनता से दि.9 अप्रैल 1955 में प्रकाशित हुआ था। जो अब Dr.Babasaheb Ambedkar Writing & Speeches Vo. 18, Part 3, पृष्ठ 435-437 से लिया गया है)

●●●